

# भारत का इतिहास (प्रारम्भ से 320 ईसवी तक)

History of India - Earliest to 320 AD

एम.ए. इतिहास (उत्तरार्द्ध)

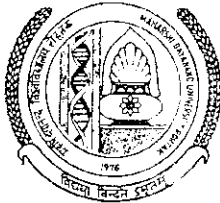
M.A. History (Final)

Group B :

प्राचीन भारत (Ancient India)

प्रश्न पत्र - VII

Paper - VII



**Directorate of Distance Education  
Maharshi Dayanand University, Rohtak**



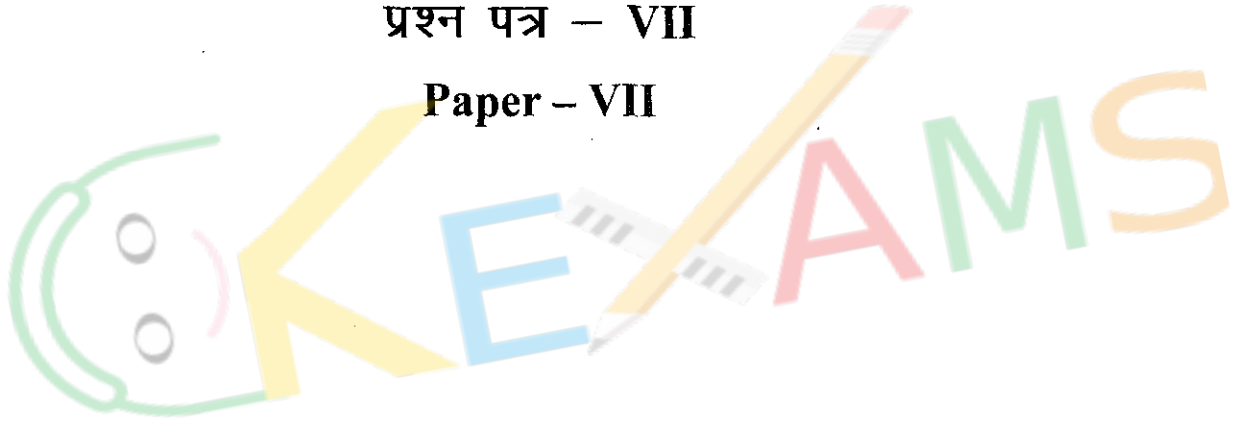
**भारत का इतिहास**  
(प्रारम्भ से 320 ईसवी तक)

**प्राचीन भारत**  
**Ancient India**

Group – B

प्रश्न पत्र – VII

Paper – VII



एम.ए. इतिहास (उत्तरार्द्ध)

M.A. History (Final)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय  
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय  
रोहतक-124 001



Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University  
ROHTAK – 124 001



# विषय सूची

## UNIT-I

अध्याय 1:	प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत	5
अध्याय 2:	पुरापाषाण काल	14
अध्याय 3:	नवपाषाण कालीन संस्कृतियाँ	22
अध्याय 4:	हड़प्पा सभ्यता	22

## UNIT - II

अध्याय 1:	वैदिक सभ्यता	35
अध्याय 2:	जनपद एवं महाजनपद	62
अध्याय 3:	यूनानी आक्रमण	88
अध्याय 4:	नन्द वंश (344-322 ई० पू०)	97

## UNIT - III

अध्याय 1:	शुंग वंश (187-5 ई० पूर्व से 75-3 ई० पूर्व)	8
अध्याय 2:	कण्व वंश (75-30 ई० पूर्व)	12
अध्याय 3:	हिन्द-यूनानी शासक	13
अध्याय 4:	शक	7
अध्याय 5:	पहलव (पार्थियन या हिन्द पार्थियन)	7
अध्याय 6:	सातवाहन राजवंश	7
अध्याय 7:	कुषाण वंश तथा उनका प्रशासन	14
अध्याय 8:	गणराज्य	21

**M.A. History (Final)**  
**Group – B**  
**Paper – VII**  
**Ancient India**

**M. Marks : 100**  
**Time : 3 Hrs.**

**Note :** 10 questions shall be set in the paper spread over the entire syllabus more or less proportionately, out of which the candidates shall be required to attempt five questions, selecting at least one question from each unit. All question shall carry equal marks.

**Unit – I**

1. Reconstructing Ancient Indian History:  
*Source and Historiographical trends.*
2. Stone age hunters and gatherers:
  - a) Paleolithic
  - b) Mesolithic cultures
3. Early farming Communities:
  - a) Postoralism and incipient farming.
  - b) Neolithic and Chalcolithic Village Cultures
4. Harappan Civilization :
  - a) Origin and Expansion
  - b) Town Planning and Drainage System
  - c) Political System
  - d) Decline

**Unit – II**

1. Vedic Civilization:
  - a) Beginning and Development
  - b) Main Features
  - c) Political Organisation and Institutions.
2. Janapadas and Mahajanapadas :
  - a) Territorial state's Monarchical and Republican
  - b) Age of Reason and Revolt; Jainism; Budhism; Ajivikism
3. Greek Invasion:
  - a) Political condition of India on the eve of invasion of Alexander.
  - b) Alexendere invasion and its effects.
4. Towards Empire :
  - a) Nandas-Establishment and Expansion.
  - b) Mauryan Empire-Formation; Administration; Nature of State; Ashoka's Dhamma; Downfall.

**Unit – III**

**Post Mauryan Development:**

1. Sungas
2. Kanvas
3. Indo-Creeks
4. Saka
5. Pahlavas
6. Satvahanas and Western Kshatrapas
7. Kushanas and their adminstration.
8. The Republics
  - a) Yaudheyas; b) Kunindas; c) Audambaras

# इकाई-I

## अध्याय-1

### प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

यह बड़े खेद की बात है कि प्राचीन भारत के इतिहास लेखन के लिए किसी थूसीडाइडस या टैसीटिस जैसे भारतीय इतिहासकार ने कोई लिखित इतिहास नहीं छोड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में इतिहास लेखन की कोई परम्परा ही नहीं रही। पुराणों में तो जो घटनाएं घट चुकी हैं उसे भी भविष्यकाल में लिखा है कि इस काल में यह घटना होगी। वस्तुतः इन में इतिहास का बोध एक मजाक सा बन कर रह गया है। यह नहीं है कि इन में हमें कोई ऐतिहासिक चीज प्राप्त नहीं होती। इनका एक भाग में राजवंशावली भी दी गई है। वैसे तो इतिहास की पंचम वेद तक कहा गया है तथा पुराणों में भी इतिहास एक प्रमुख भाग माना गया है परन्तु कल्हण की राजत्रंगिणी से पूर्व भारत में कोई भी ऐसा इतिहासिक ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता जिसके इतिहास को मानने में किसी अन्य साक्ष्य की आवश्यकता न हो।

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के अनेक साक्ष्य हैं जिनमें पुरातात्विक साक्ष्य (Archaeological sources) प्राचीन साहित्य तथा विदेशियों के विवरण इत्यादि प्रमुख हैं।

### पुरातात्विक साक्ष्य

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में पुरातात्विक साक्ष्यों का बहुत अधिक महत्त्व है क्योंकि यहां पर कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ प्राचीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में उपलब्ध ही नहीं है। दूसरे कुछ काल तो ऐसे भी जिस समय लेखन कला का प्रारम्भ ही नहीं हुआ था जैसे पाषाण काल से लेकर चतुर्थ सदी ईसा पूर्व या कुछ ऐसे भी काल हैं जिन के बारे में अन्य सभी साक्ष्य मौन हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी घटनाएं भी हैं जिनके साहित्यिक प्रमाण तो हैं जो पुरातात्विक साक्ष्यों की पुष्टि बिना कोरी कल्पनाएं ही रह जाती हैं परन्तु इन साक्ष्यों की सहायता से हमें प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में काफी सहायता मिलती है। पुरातात्विक साक्ष्यों में हम उत्खननों (excavations), स्मारकों (monuments), अभिलेखों (Inscriptions), सिक्के (coins) इत्यादि को रख सकते हैं।

(अ) उत्खनन एवं सर्वेक्षण :- पुरातात्विक उत्खननों एवं सर्वेक्षणों की सहायता से हमें प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में काफी मदद मिलती है। पाषाण काल के इतिहास का ज्ञान तो हमें इन्हीं साक्ष्यों से होता है। इतना ही नहीं इन्हीं की सहायता से हमें प्राचीन भारतीय सभ्यता के काल की विभिन्न पहलुओं का पता चलता है। मिश्र तथा सुमेर में तो वस्तुगत इतिहास ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व से लिखित रूप में मिलना शुरू हो जाता है परन्तु भारत में ऐसा नहीं है। सिन्धु सभ्यता के उत्खनन उसकी नगर योजना, भवन, स्मारकों, समाजिक आर्थिक जीवन इत्यादि का ज्ञान हमें उत्खननों द्वारा ही मिलता है। इसके अतिरिक्त आर्यों की संस्कृति जो चित्रित धूसर मृदाभंड संस्कृति मानी गई है का ज्ञान भी हमें उत्खननों से होता है यद्यपि इसके साहित्यिक साक्ष्य तो उपलब्ध है जो कि काफी बाद में लिपिबद्ध किए जाने के कारण अधिक कारगर नहीं लगते। कृषाण काल में भी कई ऐसे काल हैं जिनके बारे में हमें अधिक ज्ञान उत्खननों से ही हुआ है। कनिष्क पहले हुआ या कृजुल तथा विम्वे कैडफिसस पहले हुआ इसका पता हमें तक्षशिला के उत्खननों से हुआ जहां पर कैडफिससों के सिक्के निचली परतों में मिले जबकि उपरी परतों में कनिष्क इत्यादि कृषाण राजाओं के सिक्के प्राप्त हुए।

(ब) अभिलेख :- प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अभिलेखों का बहुत अधिक महत्त्व है जो कि पत्थर, या धातु पर उत्कीर्ण करवाई गई थी। इन पर अधिक विश्वास इस लिए भी अधिक किया जा सकता है कि इनमें किसी प्रकार का कलकट नहीं की जा सकती क्योंकि प्रत्येक काल में शब्दों की बनावट अलग प्रकार की थी जो इनके तिथिक्रम में भी सह-युक्त सिद्ध होती है। इसी लिए सबसे विश्वसनीय साक्ष्यों के रूप में इन्हे बिना किसी हिचकिचाहट के प्रयोग में लाया जा सकता है। ब्राह्मी, खरोष्ठी, युनानी अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में काफी सहायक हैं। ब्राह्मी तो बाएं से दाएं लिखी जाती थी जबकि खरोष्ठी दाएं से बाएं लिखी जाती थी जिसका प्रयोग अधिकतर उत्तरपश्चिमी भारत में ही सीमित था प्राचीन भारतीय इतिहास के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक पहलुओं पर इन अभिलेखों से प्रकाश पड़ता है।

भारत में सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के हैं जो शिलालेख, स्तम्भलेख, गुहालेख इत्यादि के रूप में उत्कीर्ण हैं। अशोक ने स्वयं लिखवाए तथा इनसे हमें तत्कालीन इतिहास का ज्ञान होता है। खरोष्ठी, ब्राह्मी तथा अनेक इत्यादि अभिलेख

ये लेख अशोक की राजाज्ञाओं घोषणाओं के रूप में हैं। इनसे हमें उसकी धार्मिक नीति, समाज कल्याण के कार्यों, प्रशासनिक कार्यों इत्यादि का विस्तार से पता चलता है। इसके अतिरिक्त कलिंग के युद्ध का विवरण का विस्तार इन्हीं से मिलता है। पूरे साम्राज्य में पाए जाने वाले इन अभिलेखों की प्राप्ति स्थलों से उसके साम्राज्य विस्तार का विस्तार से पता चलता है। कई अभिलेखों में तो दूसरे देशों से सम्बन्धों का भी विवरण मिलता है जो प्राचीन भारतीय इतिहास के तिथिक्रम में भी सहायक सिद्ध होता है। इसी तरह ऐतिहासिक दृष्टि से खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण है जो खाखेल के काल का इतिहास जानने का एक मात्र साक्ष्य है।

अशोक के बाद के काल के भी बहुत से ऐसे अभिलेख हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं जिनमें हम दक्षिणी अफगानिस्तान से प्राप्त रबताक अभिलेख को रख सकते हैं। इस अभिलेख की सहायता से हमें कुषाणों का प्रारम्भिक इतिहास पता चलता है तथा साथ ही पता चलता है कि सम्राट कनिष्क, कुषाण सम्राट विम कैडफिसस का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था इससे पूर्व विद्यवान कैडफिसस ग्रुप के राजाओं को कनिष्क ग्रुप के राजाओं से अलग मानते थे। समुद्रगुप्त का इलाहाबाद अभिलेख समुद्रगुप्त के इतिहास का एक महत्वपूर्ण श्रोत (source) है जिससे हमें उसके व्यक्तित्व, विजयों, नीतियों इत्यादि का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय महारौली स्तम्भ अभिलेख, स्कन्दगुप्त का भीतरी अभिलेख भी महत्वपूर्ण हैं। जो कि इस काल के इतिहास के बहुत से अछुते पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। पुष्पभूति (Puspabhuti) वंश का इतिहास जानने के लिए हर्ष का बांसखेडा अभिलेख महत्वपूर्ण है। मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति से प्रतिहार राजवंश के इतिहास का ज्ञान होता है। बंगाल के सेनवंश के राजा विक्रमसेन की प्रशस्तियों से भी बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी मिलती है। चालुक्यों के इतिहास तथा हर्ष पर उनकी विजय का ज्ञान हमें पुलकेशिन द्वितीय की अईहोल (Aihole) प्रशक्ति से होती है। इसके अतिरिक्त बहुत सी ताम्रप्रशस्तियों से हमें भूमि दान इत्यादि का पता चलता है। ये सरकारी आगए दान दी गई भूमि का माप, सीमा, दान की शर्तों तथा बाद के राजाओं द्वारा इन्हें जारी रखने (या चांद तारों के रहने तक) इत्यादि का ज्ञान देती हैं। इन्हीं से हमें उस काल में सामन्तवाद के उदय होने का बोध होता है।

सारकारी अभिलेखों, जिन्हे राजाओं के कवियों तथा लेखकों ने उन्हीं की आज्ञा से उत्कीर्ण करवाया, सामान्यत राजाओं की उपलब्धियों एवं व्यक्तित्व इत्यादि का अधिक वर्णन करते हैं। उनकी असफलताओं का नहीं। जैसे हर्ष के किसी अभिलेख में उसकी पुलकेशिन द्वितीय द्वारा करारी हार का वर्णन नहीं है। दूसरी ओर बहुत से गैर सरकारी अभिलेख भी हैं जो देवी देवताओं की मूर्तियों, स्मारकों इत्यादि पर लिखवाए गए हैं। इनसे हमें सामाजिक धार्मिक तथा राजनैतिक दशा का पता चलता है इसके अतिरिक्त हमें उस काल की मूर्ति कला धर्म के विकास वास्तुकला इत्यादि का भी ज्ञान होता है। इसी प्रकार इनकी भाषा तथा शैली से भारतीय साहित्य भाषा पर तो प्रकाश पड़ता ही है साथ ही इतिहास का भी ज्ञान होता है।

भारतीय अभिलेखों के अतिरिक्त कुछ विदेशी लेख भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में सहायक हैं। इनमें बहुत से तो आर्यों के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। एशिया माइनर के बोगाज कोई अभिलेख (Bogaz-Koi inscription) से पता चलता है कि 1400 ई. पूर्व के आसपास आर्य लोग इस क्षेत्र में रहते थे तथा इससे हमें वैदिक वेदों का भी पता चलता है। इरान में भी कुछ ऐसे अभिलेख मिले हैं जिनसे प्राचीन काल में इरान तथा भारत के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। डेरियस (522-486 ई. पूर्व) के नक्ष-ए-रुस्तम अभिलेख (515 ई. पू) से हमें हिन्दु या उत्तरी पंजाब के उसके राज्य में होने का प्रमाण मिलता है। इसके अतिरिक्त मिश्र में एल-अमरना में बहुत सी मिट्टी की मुहरे प्राप्त हुई हैं जिनमें बैबिलोनिया के शासकों के नाम हैं। इनमें से कुछ भारतीयों जैसे नाम लगते हैं। इससे हमें इन्हें आर्यों से जोड़ सकते हैं तथा उनके भारत में आने से पूर्व के स्थानों का ज्ञान इनसे होता है। कुछ लेख सुदूर पूर्व में भी मिले हैं जो भारत के इन देशों से राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के द्योतक हैं।

(स) **सिक्के** :- प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में सिक्कों का अपना विशेष महत्व है। इनसे न केवल हमें राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, समाजिक, प्रशासनिक, धार्मिक इत्यादि जानकारी मिलती हैं अपितु कुछ काल तो ऐसे भी हैं जिनके बारे में जानने के साक्ष्य केवल सिक्के ही हैं। वैसे तो यह माना जाता है कि सिक्कों से केवल पूर्व विदित तथ्यों की प्रमाणिकता ही मिलती है परन्तु प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसा नहीं है। क्योंकि प्राचीन भारतीय इतिहास के कई काल ऐसे हैं जिन्हे पहले अन्धकारमयी युग (dark period) कहा जाता था परन्तु अब सिक्कों इत्यादि की सहायता से हमें उन कालों के इतिहास का भी ज्ञान होता है। भारत के, विशेषकर उत्तरपश्चिमी भारत के, अनेक भागों पर द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से हिन्द युनानी शासकों का राज्य रहा है। अन्य साक्ष्यों से हमें केवल 3-4 राजाओं का ही नाम मिलता है परन्तु सिक्कों के मिलने से हमें 40 के लगभग राजाओं, रानियों, राजकुमारों इत्यादि के होने का पता चलता है जिन्होंने एक के बाद एक या एक ही समय में

अलग-2 क्षेत्रों पर राज्य किया। ये सभी राजा दो प्रमुख राजवंशों युथीडीमस तथा युकेटाइडस से सम्बन्धित थे। सिक्कों पर उनके नामों चिन्हों (monograms) की सहायता से इन दोनों वंशों के राजाओं के अलग-2 कर कालक्रम के आधार पर पता चल सकता है। हिन्द युनानी शासकों के बाद आए शक (Sakas) शासकों में ऐजिज (Azes-I) तथा द्वितीय, ऐजीलिसस (Azilises), के अन्तर्गत काल तथा उनके राज्य विस्तार का हमें इनके सिक्कों से ही ज्ञान होता है। इसी तरह पहलव राजा गणराज्य के उत्तराधिकारियों के बारे में जानने का केवल साधन मुद्राएं ही हैं। प्रारम्भिक कुषाणों में कुजुल कैंडफिसस सातरमगम तथा कुछ हद तक विम कैंडफिसस के शासन का पता हमें उनके द्वारा चलाए गए सिक्कों से लगता है। बाद के कुषाण राजाओं के बारे में तथा किदार कुषाण इत्यादि राजवंशों का इतिहास सिक्कों के आधार पर ही बनाया गया है।

गुप्त काल के बारे में तो हमें बहुत से साहित्यिक एवं अन्य साक्ष्य मिलते हैं परन्तु इस राजवंश के भी कई ऐसे शासक हैं जिनका पता हमें केवल उनके सिक्कों द्वारा ही लगता है जैसे समुद्रगुप्त से पूर्व उसके बड़े भाई (?) ने कुछ वर्षों तक राज्य किया जिसका नाम किसी गुप्त अभिलेख में नहीं है तथा न ही कोई अन्य साक्ष्य उस पर प्रकाश डालता है। काच नामक राजा के राज्य का पता हमें उसके चक्रध्वज प्रकार के सिक्कों से लगता है जिस पर काच नाम लिखा है। इसी प्रकार राम गुप्त की ऐतिहासिकता के प्रमाण भी हमें उसके चलाए सिक्कों से ही मिलते हैं। यदि यह सिक्के न होते हो देवी चन्द्रगुप्त में वर्णित गुप्त राजा रामगुप्त उनके शकों से हारना, चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शक नरेश का वध इत्यादि महज कोरी कल्पनाएं ही रह जाती।

राजवंशों के अतिरिक्त भारत में बहुत से गणराज्य भी थे जिनमें यौधेय, कुण्डिन्, औदुम्बर, शिबी, मालवा, काढ, क्षुद्रक, अग्र इत्यादि भी थे। इनमें से अधिकतर गणों का ज्ञान हमें उनके सिक्कों से ही होता है तथा इन्हीं से हमें उनके साम्राज्य क्षेत्र इत्यादि का भी पता चलता है उनकी शासन पद्धति का ज्ञान धार्मिक आस्थाएं इत्यादि पर भी सिक्कों पर बने चिन्हों तथा तस्वीरों से पता चलता है।

(द) स्मारक :- सिक्कों तथा अभिलेखों के अतिरिक्त और भी अन्य पुरातन चीजें हैं जिससे उस काल की सामाजिक आर्थिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का पता चलता है। इनमें हम पुराने भवनों, भवनाशेषों, मूर्तियों, मृदभांडों इत्यादि को रख सकते हैं। इन से हमें कला तथा वास्तुकला का इतिहास जानने में सहायता मिलती है चाहे राजनैतिक दृष्टि से इनका महत्त्व अधिक नहीं हो परन्तु अन्य बहुत से पहलुओं पर इन से प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारत के इतिहास से सम्बन्धित स्मारकों का हम दो भागों में बांट सकते हैं पहला देसी तथा अन्य देशों के स्मारक।

हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों के उत्खननों से बहुत से बड़े-बड़े भवनों एवं स्मारकों के अवशेष मिले जैसे शानागार, अन्नागार, सभागार इत्यादि इनसे हमें उस काल की धार्मिक आर्थिक समाजिक एवं प्रशासनिक स्थिति का पता चलता है। धालावीर (गुजरात) से सिन्धु सभ्यता कालीन पालिशदार स्तम्भों के मिलने से हमें उस काल के भवनों के निर्माण सम्बन्धि प्रमाण प्राप्त मिलते हैं साथ ही यह अवधारणा का भी खण्डन हो जाता है कि भारत में ऐसी कला अशोक के काल में परशिया से सम्बन्धित आई। इसी तरह सिन्धु सभ्यता के स्थलों से प्राप्त कला की वस्तुएं इस बात को भी नकारती हैं कि भारतीय कला अन्नागार कला से निम्नस्तर की है। इसके अतिरिक्त सारनाथ से प्राप्त गंटाकार स्तम्भ मस्तक सर्वोच्च नक्काशी का प्रमाण है जिससे समता का प्रचीन विश्व में कोई दूसरा प्रमाण नहीं है ऐसा सर जॉन मार्शल का विचार है। झांसी के देवगढ़ के पत्थर के मन्दिर, कानपुर के भीतर गांव के इंटों के मन्दिर, कोर्णाक का सूर्य मन्दिर, खजुराहों के मन्दिर वास्तुकला के अद्भुत नमूने हैं। इसके अतिरिक्त अजंता, एलोरा की गुफाओं की चित्रकला भारत की एक समृद्ध कला के प्रमाण हैं। इन सभी से न केवल कला वास्तुकला का ही ज्ञान होता है अपितु उस काल के समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। जिनमें कुछ के बारे में साहित्य या अन्य साक्ष्यों से कोई जानकारी नहीं मिलती जैसे भीमबेटका की गुफाओं में मिली चित्रकारी पाषाण कालीन मानव के जीवन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी मिलती है। दिल्ली में महरौली का स्तम्भ गुप्त काल में उन्नत वास्तुकला का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त हजारों की संख्या में भारत में अन्य प्राचीन स्मारक इत्यादि भी उपलब्ध हैं।

(च) विदेशी स्मारक :- भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी बहुत से स्मारक पाए जाते हैं जो भारत से सम्बन्धित हैं चाहे अशोक कम्बोज में प्राप्त स्मारक देवालय इत्यादि ने केवल भारत के इन देशों से राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के प्रतीक हैं बल्कि इनसे भारतीय कला पर विशेष प्रकाश पड़ता है। मलाया तथा बाली द्वीप में भी देवालय, प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिनसे हमें भारतीय संस्कृति के प्रसार का पता चलता है।

प्राचीन स्मारकों से तिथिक्रम का ज्ञान भी हो जाता है क्योंकि एक विशेषकाल में एक अलग प्रकार की कला प्रदत्त होती जाती है क्योंकि एक युग में इमारतों की बनावट मिलती है जिससे उसी प्रकार की कला, वास्तुकला इत्यादि के विभिन्न पहलुओं में सहायता मिलती है। उदाहरण के तौर पर खोखराकोट (रोहतक) में एक प्राचीन मन्दिर के अवशेष मिले हैं जो भीतरगांव के गुप्त मन्दिर जैसी नक्काई वाली इंटों जैसी इंटों से बना था। इससे हमें यहां से प्राप्त उस मन्दिर के काल का पता



काल आंक सकते हैं। इसी आधार पर यदि लाल पत्थर में सफेद कणों वाले किसी स्तम्भ या मूर्ति को देखते हैं तो हमें अनायास ही मथुरा कला का आभास हो जाता है।

### साहित्यिक साधन

प्राचीन भारत में किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना के अभाव में हमें साहित्यिक साक्ष्यों का भी सहारा लेना पड़ता है। जैसा कि माना जाता है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है तथा समाज में जो भी कुछ होता है या घटित होता है वह साहित्य में अवश्य आ जाता है। प्राचीन भारत में ऐतिहासिक का बोद्ध तो था इसी लिए वैदिक साहित्य में बहुत से ऋषियों, अध्यापकों इत्यादि की क्रमबद्ध सूचियां दी गई हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक तथा उत्तरवैदिक साहित्य, पुराणों इत्यादि में राजाओं की वंशावलियां भी दी गई हैं यद्यपि इनमें राजाओं की स्तुति अधिक मिलती है। ह्यूनत्सांग ने अपने भारत प्रवास के दौरान पाया कि भारत के विभिन्न भागों में अपने-2 राजकीय रिकार्ड रखे जाते थे जिसमें सभी अच्छी तथा बुरी घटनाओं का वर्णन किया जाता था। इसके बाद भी यह प्रथा सदियों तक चलती रही। इससे हमें पता चलता है कि भारतीय इतिहास को जानने के साक्ष्य तो बहुत अधिक हैं परन्तु वे ऐतिहासिक ग्रन्थ इत्यादि न होकर अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ हैं तथा कुछ गैर धार्मिक ग्रन्थ भी हैं जिनमें व्याकरण, ज्यातिष इत्यादि के ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त राजाओं के दरबारों में भाट, चारण तथा अन्य अधिकारी भी घटनाओं का रिकार्ड रखते थे। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ, वेद, वेदांग, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, पुराण इत्यादि में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है जिनका विशलेषण एवं समीक्षा कर इतिहास का निर्माण किया जा सकता है।

### धार्मिक साहित्य

प्राचीन भारतीय साहित्य में अधिकतर धार्मिक ग्रन्थों को ही लिया जा सकता है यद्यपि अधिकतर ये धर्म से सम्बन्धित थे परन्तु इनमें जहां तहां इतिहासिक घटनाओं का वर्णन भी है। पर कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसके आधार पर क्रमबद्ध इतिहास का पूर्ण ज्ञान हो सके। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन तथा अन्य सम्प्रदायों ने अपने-2 ग्रन्थों में पृथक एवं स्वतन्त्र रूप से लिखा। कई बार तो इनमें एक ही समय की घटनाओं को अलग-2 रूप से लिखा जो कि उनके धार्मिक दृष्टिकोण के कारण है।

**वैदिक साहित्य** :- भारत के प्राचीनतम ग्रन्थों में वैदिक साहित्य ही है तथा इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है। इसके अतिरिक्त इतिहास ही दृष्टि से अथर्ववेद का महत्त्व, सामवेद तथा यजुर्वेद से अधिक है। ऋग्वेद से हमें आर्यों के प्रसार, उनके आपसी संघर्षों, दूसरे अनार्यों से संघर्षों के साथ उस काल के भूगोल, राजनैतिक स्थिति, सामाजिक जीवन, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन का तो प्रकाश पड़ता ही है साथ ही राज्य की संरचना उसके स्वरूप, प्रशासन इत्यादि सम्बन्धी भी ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में आर्यों की सांस्कृतिक प्रगति के विविध रूपों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों को रखा जा सकता है। यद्यपि ये वैदिक मंत्रों के प्रयोग, यज्ञों इत्यादि से अधिक सम्बन्धित हैं परन्तु स्थान स्थान पर हमें सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का संदर्भ भी मिल जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय, शतपथ, गोपथ, तांडय, पंचविंश इत्यादि का नाम प्रमुख है जो कि विशेष रूप से इतिहास के लिए उपयोगी है। ब्राह्मणों के अन्तिम भाग आरण्यकों में यद्यपि दार्शनिक प्रश्नों पर विचार किया गया है परन्तु बृहदारण्यक इत्यादि से तो हमें इतिहास पर काफी संदर्भ मिलते हैं। वैदिक साहित्य के अन्तिम चरण में हम उपनिषदों को रख सकते हैं। इनमें ईश, केन, कंठ, तैत्तरीय, छान्दोग्य इत्यादि प्रमुख ग्रन्थ हैं जो कि इस काल के समाज के ज्ञान के साधन हैं।

### सूत्र साहित्य

वैदिक साहित्य के बाद सूत्र साहित्य को रखा जाता है जो तीन प्रकार के हैं। (1) कल्प सूत्र (2) गृह्य सूत्र तथा धर्म सूत्र। कल्प सूत्र में तो यज्ञ विधान आदि वर्णन है, गृह्यसूत्र में गृहस्थ से सम्बन्धित संस्कारों, कर्मकाण्डों इत्यादि का वर्णन है। इन दोनों से हमें सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का पता चलता है। धर्मसूत्रों में तो राजनीतिक वैधानिक एवं सामाजिक व्यवस्था दी गई है तथा इतिहास की दृष्टि से ये अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके बाद वेदांगों को रखा जाता है जिनमें शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष छः भाग हैं। इन वेदांगों में भी जहां तहां ऐतिहासिक संदर्भ मिल जाते हैं।

### महाकाव्य

महाकाव्यों में रामायण एवं महाभारत आते हैं। इनकी तिथियों के बारे में विद्वानों में यद्यपि मतभेद है तथापि इनका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है। रामायण का काल महाभारत से पहले का है तथा महाभारत का युद्ध विभिन्न विद्वान 1500-1000 ई. पूर्व रखते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर महाभारत को चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति के साथ जोड़ा जाता है तथा राज्यवंशावलियों तथा राजाओं की गणना तथा उनके सामान्य राज्यकाल को जोड़ने से भी कम से कम 1000 ई. पूर्व का काल इस महायुद्ध का आंका जा सकता है जहां रामायण की कहानी में कोशलों तथा विदेहों का वर्णन है जो कि आधुनिक अवध तथा बिहार

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

क्षेत्र के राज्य थे। दूसरी तरफ महाभारत में कौरवों तथा पांडवों के बीच युद्ध में देश के कोने-2 से राजा आए थे। इन नए राजाओं के ऐतिहासिक राज्य राजा तथा गणराज्य इत्यादि थे। इन दोनों महाकाव्यों से उस काल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आर्थिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

### पुराण

महाकाव्यों के बाद पुराणों का काल है जो कि किसी निश्चित काल में नहीं लिखे गए। इन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनमें प्रमुख 18 पुराण हैं जो अलग-2 समय की जानकारी हमें प्रदान करते हैं जैसे विष्णु पुराण से मौर्य राजवंश तथा मत्स्य पुराण से दक्षिण के आन्ध्र राजवंश की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। एफ. ई. पारजीटर ने पुराणों में गई राजवंशालिया के आधार पर न केवल कालक्रम के अनुसार अलग-2 राजवंशों का वर्णन किया है बल्कि उनकी राजनैतिक इतिहास भी लिखा।

### बौद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री काफी अधिक है। ई. सा से छठी शताब्दी पूर्व के बाद के काल के लिए इनका महत्त्व बहुत अधिक है। बौद्ध साहित्य में जातक, पिटक तथा निकाय इत्यादि हैं जातकों की कहानियों में जहां बुद्ध के पूर्व जन्म की घटनाओं का वर्णन है वहीं इनसे राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास के बारे में भी महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है। बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक का विशेष महत्त्व है इनमें विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक हैं। सुत्तपिटक में बुद्ध के धार्मिक सिद्धान्तों का वर्णन है इस पिटक के पांच निकाय हैं दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय। दूसरे पिटक अभिधम्म में वेदान्तिक सिद्धान्तों का वर्णन है तथा विनय पिटक में संघ की संरचना, अनुशासन, दिनचर्या इत्यादि का वर्णन है। प्राचीन गणराज्यों के सिद्धान्त पर आधारित संघ के संविधान से हमें उस काल के गणराज्यों की राज्य व्यवस्था का विस्तार से पता चलता है।

इसके अतिरिक्त अन्य पाली ग्रन्थों में मिलिन्द पन्हों महत्त्व पूर्ण है जो हिन्द युनानी राजा मिनाण्डर के नागसेन से प्रश्ना पर आधारित है। उसके काल की महत्त्वपूर्ण जानकारी हमें इस ग्रन्थ से मिलती है। इसके अतिरिक्त दीपवंश तथा महावंश से हम दक्षिण भारत तथा लंका के इतिहास का वर्णन है तथा लंका से भारत के सम्बन्धों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश ये ग्रन्थ डालते हैं। यद्यपि इन धार्मिक ग्रन्थों में कपाल-कल्पित और अतिरंजित सामग्री काफी है परन्तु इन से प्राचीन भारतीय इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 3 वीं शताब्दी के गणराज्यों, मगध के उत्कर्ष, मौर्य काल की जानकारी के लिए बौद्ध ग्रन्थ एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है इनके अतिरिक्त कुछ टीकाओं जैसे सुमंगल, विलासिनी, सामान्त प्रसादिका, महावंश टीका आदि से भी काफी मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। पाली के अतिरिक्त बाद के काल में संस्कृत में भी बौद्ध ग्रन्थों की संरचना हुई। इनमें से कुछ ग्रन्थ हीनयान सम्प्रदाय के हैं जबकि अधिकतर महायान सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। इन ग्रन्थों में महावस्तु, ललितविस्तार, बुद्ध चरित, सौन्दरान्दकाव्य, पद्मपुराण, आर्यमञ्जुश्री कल्प इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

### जैन साहित्य

ब्राह्मण तथा बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त जैन साहित्य से भी हमें पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। कुछ ऐसे ग्रन्थों में तथ्य भी हैं जिनके बारे में ब्राह्मण तथा बौद्ध साक्ष्यों में या तो कोई वर्णन नहीं है यदि है तो बहुत कम है। वहाँ जैन साहित्य काफी सहायता करते हैं जैन आगमों में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। कल्पसूत्र, आचारांग सूत्र तथा भद्रबाहु चरित नामक ग्रन्थों से 5 वीं सदी ई. पूर्व से छठी शताब्दियों तक का महत्त्वपूर्ण वर्णन मिलता है। जैन आगम जिनमें जैनियों ने अपनी समीचीन विभिन्न विचारों एवं परम्पराओं को संग्रहित किया है तथा इन में महत्त्वपूर्ण है बारहअंगों का। इन सब में से ऐतिहासिक सामग्री ही नीहित है। आचारांगसूत्र के दोनों रूकन्धों में जैन भिक्षुओं के आचार-नियमों का वर्णन है जबकि महावीर के जीवन पर प्रकाश डालने वाला संगवतीसुत्र भी महत्त्वपूर्ण है। भगवती सूत्र से भी हमें महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

### धर्मनिर्पेक्ष साहित्य

धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय इतिहास की संरचना के लिए गैर धार्मिक साहित्य भी महत्त्वपूर्ण है। इनमें ऐतिहासिक ग्रन्थ, व्याकरण ग्रन्थ, ज्ञान, काव्य हैं, राजाओं की जीवनियां (Biographies) इत्यादि हैं। पांचवीं शताब्दी ई. पूर्व की प्राणिनी का अष्टाध्यायी से हमें बहुत से गणराज्यों का वर्णन मिलता है जिनमें यौधेय, कुण्ड, औदुम्बर, राजन्य, मालव इत्यादि प्रमुख हैं। अतिरिक्त का अर्थशास्त्र मौर्य काल के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालता है। पतञ्जलि का महाभाष्य द्वितीय सदी ईसा पूर्व का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जहां तहां ऐतिहासिक संदर्भ भी देता है। शुंग काल के प्रारम्भिक काल की जानकारी में इसका विशेष महत्त्व है। गुप्त काल के कुम्भिल पहलुओं पर प्रकाश डालने वाला वात्सायन का कामसूत्र भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

की राजत्रिनिनी है जो बारहवीं सदी के मध्य लिखी गई तथा काश्मीर के इतिहास के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है तथा भारत का पहला ऐतिहासिक ग्रन्थ है जो अरब तथा चीनी इतिहास लेखन परम्परा से प्रभावित है। शुक्रनीतिसार से भी प्राचीन भारत के ऐतिहासिक तत्त्वों की जानकारी मिलती है।

इनके अतिरिक्त बहुत से लेखकों ने अपने राजाओं का जीवन वृत्तान्त लिखा है जिनसे उनके काल के इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है यद्यपि अपने स्वामी की प्रशंसा उन्होंने इनमें की है। इन में बाण भट्ट का हर्ष चरित महत्त्वपूर्ण है जो पुष्पभूति राजाओं का इतिहास हर्ष के काल तक वर्णन करता है। वाकपति तथा बिल्हण ने यशोवर्मन तथा चालुक्य वंश के विक्रमादित्य का वर्णन गौडवाहों तथा विक्रमाकदेव चरित में किया है। बंगाल के राजपाल के इतिहास को जानने के लिए राम चरित महत्त्वपूर्ण है। संध्याकार नन्दी का यह ग्रन्थ रामचरित पाल वंश के इतिहास का वर्णन करता है। सेन वंश के इतिहास को आनन्द भट्ट का बल्लाल चरित, पृथ्वीराज के काल का वर्णन चन्दबरदाई का पृथ्वीराजरासो तथा जयानक का पृथ्वीराज विजय, परमार वंश के लिए पदमगुप्त का नवसाहसाक चरित इत्यादि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ राजाओं के जीवन चरित भी महत्त्वपूर्ण हैं जिनमें जयसिंह का कुमारपाल चरित, हेमचन्द्र का दव्याश्रयकाव्य, नयचन्द्र का हम्मीरा काव्य, पदमगुप्त का नवसाहशाक चरित, बिल्लाल का भोजप्रबन्ध भी महत्त्वपूर्ण हैं। गुजरात क्षेत्र के इतिहास के बारे में भी हमें बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं। इनमें सोमेश्वर कृत रासमाला तथा कीर्ति कौमुदी, अरिसिंह कृत सुकृत-संकीर्तन, मेरुतुंग (Merutunga) का प्रबन्ध-प्रिन्तामणि, राजशेखर का प्रबन्धकोश, जयसिंह का हम्मीरा मद मर्दन तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति, उदयप्रभा की सूकनीति-कल्लोलिनी, बालचन्द्र की वसन्त विलास इत्यादि से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। सिन्ध के इतिहास पर प्रकाश डालने वाला तेहरवीं सदी में लिखा गया चचनामा से अरबों द्वारा सिन्ध की विजय तथा इससे पूर्व के इतिहास को दर्शाता है।

इनके अतिरिक्त बहुत से साहित्यिक में भी ऐतिहासिक सामग्री छिपी पड़ी है। कालीदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूत इत्यादि नाटकों भास के नाटकों हर्ष के नाटकों प्रियदर्शिका, नागानन्द तथा रत्नावली इत्यादि भी हमें महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी देते हैं। मात्विकाअग्निमित्रम् से शुंग राजा अग्निमित्र के इतिहास की जानकारी मिलती है। देवीचन्द्रगुप्तम् से रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल तथा शकों से उनके संघर्ष का वर्णन है इसके अतिरिक्त साहित्य में अन्य बहुत से नाटक, काव्य इत्यादि हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं।

### विदेशी यात्रियों का विवरण

भारतीय साहित्य के अतिरिक्त बहुत से विदेशी यात्रियों का वर्णन भी भारतीय इतिहास को जानने का महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है। इन विदेशियों ने भारत में अपने भ्रमण के दौरान जो देखा उनका वर्णन किया तथा अपने ढंग से यहां की राजनीति, धर्म, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति इत्यादि का वर्णन भी किया। इन विदेशी लेखकों में इरान के भारत आक्रमण के समय स्काइलैक्स नामक सेनापति का विवरण बहुत रोचक है जिसका वर्णन हमें युनानी दार्शनिक अरस्तु के लेखों से पता चलता है। परन्तु विदेशी यात्रियों की रचनाओं में युनानी तथा चीनी साक्ष्या प्रमुख हैं।

1. **युनानी तथा रोमन लेखक** :- सर्वप्रथम हेरोडोटस ने 5 वीं सदी ई. पूर्व इरानी लेखकों के वर्णनों के आधार पर भारत पर इरानी आक्रमण का वर्णन किया है। इसी तरह टेशियस ने भी भारत से लौट कर गए लोगों के वृत्तान्त के आधार पर एक वर्णन संग्रह किया है चाहे हम उसे इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्त्व न दें, परन्तु सिकन्दर के आक्रमण के समय से युनानी लेखकों का वर्णन काफी महत्त्वपूर्ण है। सिकन्दर के आक्रमण तथा उसकी विजयों की जानकारी हमें उसके सैनिक अधिकारियों तथा इतिहासकारों से मिलती है इनमें निआर्क, अरिस्टोबुलस उल्लेखनीय हैं। मौर्य काल में सैल्युकस के राजदूत मैगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इण्डिका में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री दी है। पाटलीपुत्र के प्रबन्ध का वर्णन तो उसने बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त मौर्य काल की पूरी जानकारी इसमें संग्रहित है। मैगस्थनीज के बाद प्लुटार्क, एरियन, प्लिनी, कर्टियस, टाल्मी इत्यादि के विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। एक अज्ञात युनानी लेखक द्वारा लिखी पेरीप्लस आफ दी युरेथरीयन सी (Periplus of the Erythrean Sea) में प्रथम शताब्दी में भारतीय बन्दरगाह व्यापार व्यापारिक मार्गों तथा व्यापारिक सामग्री का वर्णन है।
2. **चीनी लेखक** :- चीन से आए बौद्ध तीर्थ यात्रियों ने भी अपने विवरणों में भारत के इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। चीन का सर्वप्रथम इतिहासकार मासीन था जिसने प्रथम शताब्दी ई. पूर्व में अपने ग्रन्थ में भारत का वर्णन किया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में आए चीनी यात्री फाह्यान (Fa-hien) ने यहां 15 वर्ष रह कर अपनी यात्रा पुस्तक में तत्कालीन भारत के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक इतिहास पर प्रकाश डाला है। 518 ई. में आए चीनी यात्री शुभयंग का विवरण भी हमें उपलब्ध है परन्तु सातवीं सदी में आए (हर्ष काल) चीनी यात्री ह्यूनत्सांग (Hiuen Tsang) का तो बहुत ही उपयोगी है। यह 13 वर्ष रहा तथा यहां के सभी पहलुओं पर उसने अपने ग्रन्थ में लिखा उसके मित्र हाली ने ह्यूनत्सांग की जीवनी लिखी जिसमें



भी उसकी भारत यात्रा तथा यहां के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। इत्सिंग नामक चीनी यात्री सातवीं सदी में आने लगा नालन्दा तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों में रह अध्ययन किया। उसने भी तत्कालीन भारत के बारे में अपन विवरण में लिखा।

3. **तिब्बत के लेखक** :- तिब्बत के भी कुछ लेखकों ने भी भारत के बारे में वर्णन किया है इनमें लामा तारानाथ का नाम सर्वप्रकारे है उनके ग्रन्थों कंग्युर तथा तंग्युर में भारत का विवरण है।
4. **अरब लेखक** :- पूर्व मध्य काल में भारत पर अरबों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए तथा सर्वप्रथम सिन्ध पर उनका आधिपत्य हुआ। तब से भारत में अरबों की रुची बढ़ी 1030 ई. में एक महान इतिहासकार अलबरूनी ने अपनी पुस्तक 'तहकीक हिन्द' में तत्कालीन भारत का वर्णन किया इसके अतिरिक्त सुलेमान, अलमसूदी, हसन निजामी, फरिश्ता तथा निजामुद्दीन की रचनाओं में भारतीय इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत के इतिहास को जानने की बहुत सी सामग्री तो हमारे पास उपलब्ध है परन्तु कमी केवल साहित्य से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री के कालक्रम निर्धारण की है। जो इन विस्त्रित अध्ययन शोध तथा अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित की जा सकती है।

जैसा कि हमने ऊपर लिखे पृष्ठों में देखा है कि भारत में ऐतिहासिक साक्ष्यों की कमी नहीं है परन्तु कमी है ता कवल पृथक्-पृथक् ऐतिहासिक ग्रन्थ की। प्राचीन भारतीय लेखकों ने मानवीय क्रियाकलापों के सभी पहलुओं पर लिखा है परन्तु यदि हम आज के परिपक्ष में इतिहास को देखें तो प्राचीन भारत में सही ढंग से इतिहास लिखा ही नहीं गया। इसका कारण यह था कि प्राचीन भारत के लेखक दैनिक क्रिया कलापों से ऊपर उठ कर लिखते थे। उन्हें राजाओं की लड़ाईयों, लूट पाट, वंशों का प्रारम्भ, बदलाव, सत्ता परिवर्तन, राजवंशों के उतार चढ़ाव में अधिक रुचि नहीं थी। उनके अनुसार मानव जीवन का अन्तिम कार्य या सबसे महत्वपूर्ण कार्य आत्मा को जीवन मरण के बन्धनों से मुक्त करवा निर्वाण प्राप्ति की ओर ले जाना है। समाज के बाकी लोगों के अपने कृषि कार्यों, दैनिक दिनचर्या से समय ही नहीं था कि वे देखें कि आसपास क्या हो रहा है। इसके अतिरिक्त भारत का बाहर के विश्व से सम्पर्क नहीं के बराबर ही रहा। समाज के उच्च वर्ग या ब्राह्मण वर्ग के लोग जो पठन-पाठन तथा लेखन इत्यादि करते थे, विदेश यात्रा करने के विरुद्ध मानते थे। इसी कारण उन्हें यह पता नहीं चला कि बाहर के विश्व में क्या हो रहा है तथा इस तरह वे कूप मण्डूक होकर रह गए। इस क्रम में केवल भारत ही नहीं रोमनों का भी यही हाल था जिन्हें इतिहास लेखन परम्परा का तब ज्ञान हुआ जब उन्होंने युनान पर विजय प्राप्त की। इसी तरह इरानी इतिहास लेखन परम्परा के सम्पर्क में आने से अरब इतिहास लेखन परम्परा का प्रारम्भ हुआ। परन्तु ऐसा सम्बन्ध भारतीय लेखकों को न मिल सका तथा इसी कारण यहां पर सही ढंग से इतिहास लेखन परम्परा (Historiography) का प्रचलन तथा विकास नहीं हो सका।

भारत में सर्वप्रथम सही ढंग से ऐतिहासिक ग्रन्थ काश्मीर के कल्हण (Kalhana) ने लिखा जिसका ग्रन्थ राजतरंगिणी (Rajatarangini) है जिसे उन्होंने अरब तथा चीनी ऐतिहासिक परम्पराओं के आधार पर लिखा जैसे तो स्वयं कल्हण अपने आप का एक कारण बताते हैं न कि इतिहासकार तथा उन्होंने अपने ग्रन्थों को एक बहुत सुन्दर शैली के लगभग 8000 संस्कृत श्लोकों में लिखा परन्तु लेखकों को कवि होते भी इतिहास की समझ थी उन्होंने इतिहास लेखन के उपयुक्त साक्ष्यों को चुना तथा उनका सही मुल्यांकन किया। इसके साथ-2 उन्होंने पहले के राजाओं की जारी की हुई बहुत सी प्रशक्तियों, अभिलेखों इत्यादि का प्रयोग भी किया। परन्तु अन्य कवियों की तरह वे भी जहां तहां नसीहतें देने से नहीं चूके। उन्होंने स्वयं लिखा है कि उनका इतिहास लेखन राजा का ज्ञान बढ़ाना है तथा नैतिक पाठ पढ़ाना है, दूसरे उनका काश्मीर के प्रति देश प्रेम भी उनकी कृति में झलकता है। इसी कारण उन्होंने लिखा है कि काश्मीर के शासकों ने समस्त भारत को जीता। ललितादित्य मुक्तापीड को उन्होंने विजये करते हुए समुद्र प्रपन्त पहुँचा दिया। उनके अनुसार अशोक तथा कनिष्क ने काश्मीर से ही राज्य किया। इसके अतिरिक्त उनका कहना था कि एक सशक्त कान्दियकृत शासन राजनैतिक स्थिरता के लिए आवश्यक है तथा नौकर शाही प्रगति के रास्ते में बाधा है। इस तरह यह ग्रन्थ एक राजनैतिक प्रापेगण्ड सा प्रतीत होता है जो न केवल राजा के मार्गदर्शन के लिए लिखा गया था अपितु उसकी शक्तियां बढ़ाने का भी पाठ पढ़ता है। परन्तु इतना कुछ होते हुए भी कल्हण प्राचीन भारत का एक महान्तम इतिहासकार था। इसके ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थ, राजाओं के चरित, धार्मिक तथा गैर धार्मिक ग्रन्थ भी इतिहास लेखन के साक्ष्य के रूप में जाने जा सकते हैं।

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जैसे कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन भारत में बहुत सा ऐतिहासिक साहित्य था जो समय तथा विदेशी आक्रमणों के कारण नष्ट हो गया। परन्तु यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि यदि कोई ऐसा ग्रन्थ रहा होता तो उसके संदर्भ वहीं मिलते। किसी अन्य ग्रन्थ में आवश्यक ही मिलते। यहां यह बता देना सही होगा कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र पूर्ण रूप से खो चुका है परन्तु जहां तहां मिले उसके संदर्भों से उसे पुनः पूरा किया जा सका है। आ. सी. मजुमदार का मत है कि प्राचीन भारत में इतिहास की काफी मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है परन्तु उसे देखने के लिए एक पारखी नजर की जरूरत है। यह ठीक है कि प्राचीन

भारत में हेरोडोटस या थूसीडाइडस (Herodotus & Thucydides) इत्यादि की तरह तो इतिहास नहीं लिखा गया परन्तु भारतीय इतिहासकारों का अपना एक ढंग था। जैसे वे घटित हुई घटनाओं को आने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी के रूप में या घटित हुई घटना को भविष्य के फार्मूले से लिखते थे। कभी-2 तो इन ऐतिहासिक घटनाओं में मिथ्या (Mythology) को भी जोड़ देते थे। इसी कारण पश्चिमी विद्यवान उन साक्ष्यों को नकार सा ही देते हैं। परन्तु इन अतिशयोक्तियों को निकाल कर विशुद्ध इतिहास का लेखन अवश्य किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय लेखक आदर्श (Ideal) को यथार्थ (real) से अधिक महत्व देते थे। यही कारण है कि भारतीय कला, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, कविता, नाटक इत्यादि सभी दैविक धारणा (divine conception) के प्रति अधिकतर रुचिकर थे इस लोक की सत्य की ओर नहीं। इन्हीं कारणों से हम यह नहीं कह सकते कि प्राचीन भारत में ऐतिहासिक लेखन था या नहीं। बहुत से राजाओं, राजवंशों की सूचियां तथा उनका राज्यकाल का वर्णन इत्यादि पुराणों में सुरक्षित है। राजाओं ने अपने अभिलेख, आज्ञा पत्र, ताम्रप्रशस्तियां इत्यादि भी लिखवा अपने कार्यों का उल्लेख करवाया है। इसके अतिरिक्त इनमें राजनैतिक स्थिति अन्तराज्यीय सम्बन्धों, प्रशासनिक कार्यों, धार्मिक कार्यों इत्यादि का व्याख्यान भी किया है। राजाओं ने अपना वंश का इतिहास इत्यादि लिखवाने के लिए भी लेखक रखे थे। इस तरह हम यह नहीं कह सकते कि प्राचीन भारत में लोगों की तथा राजाओं की इतिहास में रुचि नहीं थी।

इस्लाम के भारत में आने के पश्चात् भारत के इतिहास लेखन में मूलभूत परिवर्तन हो गए क्योंकि भारत में मुस्लिमों के आने से पहले उनका युनानी तथा रोमन लोगों से सम्पर्क हो चुका था तथा इस तरह उन्हें इतिहास लेखन परम्परा का ज्ञान भली भांति हो चुका था। यही कारण है कि इस काल के इतिहासकारों ने, जिन्होंने ये घटनाएं एवं देखी थी या स्वयं उन युद्धों इत्यादि अन्य घटनाओं में भाग लिया था, का लेखन भली भांति किया। तेहरवीं से पंद्रहवीं सदी के बीच इन लेखकों ने पारसी इतिहास लेखन परम्परा को भी अपना लिया।

परन्तु युरोपियनों के भारत में आने के पश्चात् यहां की इतिहास लेखन परम्पराओं में काफी परिवर्तन हुए। अपने देश से दूर उन्होंने यहां अपना प्रशासन चलाने के लिए हर कार्य को लिखित रूप से करना, अपनी कम्पनी के अधिकारियों को विदेश में सूचित करना, अपनी सरकारों से सम्बन्ध रखने के लिए बहुत सा लिखित कार्य करना पड़ा इस कारण बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री हमें प्राप्त होने लगी। इसी के साथ उन्होंने भारत पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए यहां के लोगों को बर्बर, असभ्य इत्यादि सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया जिन्हें केवल उन्होंने ही आकर सभ्य बनाया। इस तरह भारतीय इतिहास लेखन में साम्राज्यवादी परम्परा (Imperialistic Historiography) का प्रारम्भ हुआ। इनमें सर्वोपरी थे जेम्स मिल (James Mill) जिन्होंने अपनी पुस्तक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया 1806 में लिखी। वे न तो कभी स्वयं भारत आए थे और न ही उन्होंने कोई भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़ा था बस सुनी सुनाई बातों के आधार पर लिख दिया। उनकी शैली भारतीय धर्मों, परम्पराओं, संस्कृति पर प्रहार करना था। उन्होंने यहां की सभ्यता को बर्बर बताया। उनकी डन्कन फोर्ब्स महोदय ने भी आलोचना की। जेम्स मिल के पश्चात् उनके अनुयायियों ने हिन्दुओं की सभ्यता को विपरीत दर्शाना प्रारम्भ कर दिया तथा यहां तक कहा कि यहां कभी सभ्यता थी ही नहीं। इन पाश्चात्य इतिहासकारों का भारत के प्रति दृष्टिकोण साम्राज्यवादी मानसिकता का था। वे लोग भारत में विजेता के रूप में आए तथा यहां के इतिहास को साम्राज्यवादी ढंग से ही देखते थे। यहां के लोगों को बर्बर, असभ्य कहना तथा यहां की सभ्यता एवं संस्कृति को नकारना उनकी आदत सी ही थी। विलियम आर्चर जैसे ब्रिटिश लेखकों ने यह बात कही कि बर्बर, बर्बरता, वहशीपन जैसे शब्दों के प्रयोग के बिना भारतीय संस्कृति और इतिहास की चर्चा दी नहीं की जा सकती। परन्तु कुछ विद्यवानों जैसे प्रिंसेज, जोनज इत्यादि ने इससे अलग मत व्यक्त किए तथा इस तरह एक लम्बा वैचारिक मंथन प्रारम्भ हुआ।

दूसरी ओर भारतीय विद्यवानों ने जिनमें राजनारायण बोस, चन्द्रनाथ बासु, बंकिम चन्द्र चैटर्जी, ए. सी. दास, काशी प्रसाद जयसवाल, बाल गंगाधर तिलक, विनायक दामोदर सावरकर इत्यादि थे, ने हिन्दुसभ्यता को पाश्चात्य सभ्यता से अग्रसर बताया। ये राष्ट्रवादी परम्परा (Nationalist School) के विद्यवान कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा विद्यवान है जिन्हें तर्कशील विचारधारा (Rationalist School) के विद्यवान कहा जाता है। ये राष्ट्रवादी भावनाओं से प्रभावित न होकर तथ्यों तथा उनके सही मुल्यांकन के आधार पर इतिहास लेखन में विश्वास रखते हैं। इन में राजेन्द्र लाल मिश्र, आ. सी. दत्त, राधा गोबिन्द भण्डारकर, हेमचन्द्रराय चौधुरी इत्यादि हैं। एक अन्य परम्परा के लोग भारत का अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण को उजागर कर रहे थे तथा भारत की आजादी के आन्दोलन को बल दे रहे थे। इन में मेजर डी. बासु, ए. सी. मजुमदार, सी. बाई. चिन्तामणि तथा सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी इत्यादि थे। इसके अतिरिक्त एक अन्य इतिहास लेखन परम्परा को मार्क्सवादी स्कूल का नाम दिया गया है। वे सभी ऐतिहासिक घटनाओं को सामाजिक, आर्थिक एवं साम्यवादी ढंग से देखते हैं। इन में हीरेन मुखर्जी, रजनीपामदत्त, डी. डी. कौशाम्बी, नरूल हसन, रोमिला थापर, डी. एन झा इत्यादि विद्यवान हैं।

आधुनिक काल में भारतीय इतिहास को मार्क्सवादी लेखकों ने भूतकाल की व्याख्या आर्थिक घटकों के आधार पर की है तथा ये

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत

भौतिकवादी लेखक अपने दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की व्याख्या करते हैं। एस. ए. डागन अपनी पुरु के मंगला के कर्मयोग की व्याख्या करते हुए कृष्ण को बुजुआ नेता कहा है। इसी तरह डी. डी. कौशाम्बी गीता को सामन्तवाद का मनुचल बताया है। वे इतिहास को केवल उत्पादन सम्बन्धों और साधनों के क्रमिक विकास को तिथि क्रम में प्रस्तुत करना मानते हैं। रामिना थापर ने अशोक के धम्म को तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं के लिए उसके द्वारा किया गया वैचारिक अर्थकार माना है। क्योंकि इस समय राज्य के तीन तत्त्वों के पहले से मौजूद होने के बाद इतने बड़े साम्राज्य को एकीकृत रखना के लिए वैचारिक स्तर पर एकीकरण की आवश्यकता थी। उसके सामने दो विकल्प थे या तो वह राजा के देवत्व का सहारा लेता या वह इसके लिए धर्म का सहारा लेता उसने धर्म का सहारा लिया और वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। वह इसके लिए कालिंग युद्ध जनिक पश्चाताप को कारण नहीं मानते डी. एन. झा ने तो यहां तक कहा है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के प्रारूप अशोक ने जो एक लाख 50 हजार लोग बन्दी बनाए उन्हें नई बस्तियों के निर्माण के लिए लगाया गया। व्यापार के लिए राजमार्ग का भी निर्माण करवाया गया। डी. एन. झा तथा कई अन्य विद्वान गुप्त काल को भारत का स्वर्ण युग नहीं मानते। जो काफी उद तक ठीक भी प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे विद्वान भी हैं जो रांके (Ranke) की शैली में साक्ष्यों की आलोचनात्मक समीक्षा कर इतिहास रचने में विश्वास रखते हैं। इनमें सर जयुनाथ सरकार, एस. एन. बोस, डी. एन. सरदेसाई, कृष्णास्वामी अय्यर, शफत अहमद खान इत्यादि विद्वान हैं।



### पुरापाषाण काल (Paleolithic Period)

प्रागैतिहासिक काल की संस्कृतियों के बारे में जानकारी सर्वप्रथम युग में देखने पाषाण युग में देखने को मिलती है। लुंबाक ने सर्वप्रथम पाषाण युग के भिन्न-भिन्न कालों को विभाजित किया, इनके अनुसार प्रथम पुरापाषाणकाल (Palaeolithic Age) तथा तथा द्वितीय नवपाषाण (Neolithic Age) था। इन्होंने यह विभाजन पाषाण उपकरणों के प्रकार तथा तकनीकी विशेषताओं आधार पर किया। 1970 में लारटेट ने पुरापाषाण काल को तीन भागों में विभाजित किया। (1) पूर्व पुरापाषाणकाल (2) मध्यपाषाण काल (3) उत्तर पाषाण काल। इन्होंने यह विभाजन उपकरणों की विधि में परिवर्तन तथा उस काल की जलवायु में आए परिवर्तनों कि आधार पर किया। 1961 में कॉमसन तथा ब्रैडवुड ने नवपाषाण काल तक के काल को तीन भागों में बाँटा। प्रथम काल भोजन संग्रहण तथा द्वितीय मध्य पाषाण काल को उन्होंने भोजन इकट्ठा करने वाला तथा तीसरे नवपाषाण काल को उन्होंने भोजन उत्पादन का काल कहा है। दूसरे शब्दों में पुरापाषाण काल शिकारी अवस्था, मध्यपाषाण काल को शिकारी एवम् भोजन संग्रहित करने वाला तथा नवपाषाण काल का भोजन उत्पादित का काल कहा गया है। परन्तु प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के कालनिर्धारण एवम् नामकरण में लारटेट का वर्गीकरण सर्वाधिक मान्य है।

प्रागैतिहासिक मानव का इतिहास जानने का स्रोत मात्र उस काल के मानव द्वारा बनाए पाषाण के औजार है, जो मानव ने स्वयं अपनी आवश्यकतानुसार बनाए थे। लिखित साक्ष्यों के अभाव में मात्र यही स्रोत है जो काल के मानव के तकनीकी विकास को दर्शाता है। आज से करीब पाँच लाख वर्ष पूर्व मध्य प्लीस्टोसीन काल से हमें यह मिलने शुरू होते हैं। जिन्हें पुरापाषाण कहा जाता है। परन्तु कुछ विद्वान इनसे पूर्व भी मानव को किसी प्रकार के स्वयं बनाए या प्राकृतिक रूप से निर्मित, हथियारों का प्रयोग करते बताया है, जिन्हें इयोलिथ कहते हैं। 1867 में दक्षिणी ओरलियन से उपकरण प्राप्त हुए। 1877 में इस प्रकार के औजार फ्रांस से भी प्राप्त हुए, लेकिन आजकल के विद्वान इन एक तरफ फलक उतारे (One sided flaking) हथियारों को प्राकृतिक तौर से उतारे फलक मानते हैं, जिन्हें इस काल के मानव ने उपयोग किया होगा इसके अतिरिक्त इन उपकरणों से मानव को स्वयं औजार बनाने का संकेत भी मिला होगा। मानव ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप औजार बनाने की प्रक्रिया सभ्यत लकड़ी तथा अन्य कार्बनयुक्त पदार्थ के औजार बनाने से शुरू की जो आज उपलब्ध नहीं है। परन्तु जब उसने पाषाण उपकरण बनाने शुरू किए तब से हमें पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध होने लगे। ये उपकरण मानव ने अपनी जरूरतों के अनुसार तथा उनके कार्य के अनुरूप निर्मित किए थे। जैसे मांस काटने तथा छीलने के लिए चॉपर (Chopper) तथा खुरचनी (Scrapers) का निर्माण किया पुरापाषाण काल को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है :-

#### निम्न पुरा पाषाण काल (Lower Paleolithic Period)

मानव द्वारा प्राचीनतम उपकरण हमें इस काल में प्राप्त होते हैं, जब मानव ने सर्वप्रथम पत्थर का स्वयं फलकीकरण कर अपनी आवश्यकतानुसार औजार बनाए। प्राचीनतम औजार वे हैं जिनमें पैबुल (Pebble) के एकतरफ फलक उतार कर चापर औजार बनाए गए। ये प्राचीन उपकरण हमें सर्वप्रथम मोरोक्को तथा मध्य अफ्रीका में ओल्डुवई गर्ज के सबसे प्रथम तह से प्राप्त होते हैं। प्रथम स्थान पर इनके साथ विल्लफ्रैन्चिय (Villefranchian) प्रकार के पशुओं की हड्डियाँ भी मिलती हैं, जो अभिनूतनकाल (Pleistocene) से पहले काल के जानवर थे जो अभी भी बचे रह गये थे। इनमें बड़े-बड़े दातों वाले हाथी (Tusks), बड़े-बड़े नुकीले दांतों वाले चीते, लकड़बग्घा इत्यादि शामिल थे। इस काल में मानव भोजन के लिए शिकार करता था। मानव ने मध्य और अभिनूतन काल में चापर और चापिंग औजारों का निर्माण किया, इसमें चॉपर में एक तरफ से फलकीकरण करके औजार बनाए गए। इन्हीं औजारों के बाद में प्रागु हस्त कुठारों का निर्माण किया गया और कालान्तर में इन्हीं से सुन्दर हस्त कुल्हाडियाँ निर्मित हुईं।

अभिनूतनकाल (Pleistocene) काल में पृथ्वी पर कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिनके कारण मानव का जन्त हुआ मानव के प्राचीनतम अवशेष हमें अफ्रीका में ओल्डुवई गर्ज (Olduvai Gorge) तन्जानिया, कीनिया की झील रुडोल्फ (Lake Rudolf) इत्यादि में प्राप्त हुए इसके अतिरिक्त बीजिंग (चीन) में झाऊ काऊ तेन (Zhou-kaou Ten) तथा जावा में भी प्राचीनतम मानव के अवशेष प्राप्त हुए। भारत में हाल ही तक पाषाण कालीन मानव के अवशेष प्राप्त नहीं हुए थे परन्तु 1982 में मध्य प्रदेश की नर्मदा घाटी में हथनोरा (Hathnora) से तथा इसी क्षेत्र में 1997 में निम्न पुरा पाषाण कालीन मानव (Homo-eractus) के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप में सिन्ध तथा केरल को छोड़ सभी स्थानों से निम्न पुरापाषाण कालीन अवशेष प्राप्त होते हैं जो कि नदी के किनारों (Terraces) कन्दराओं (Caves), rock shelters तथा खुले स्थलों से भी प्राप्त हुए हैं। पत्थर के इन उपकरणों के साथ पशु तथा



वनस्पति के अवशेष (Fossil) भी कई स्थलों से प्राप्त हुए हैं। भारत में अलग-2 क्षेत्रों में अलग-2 उपकरण बनाने की विधियाँ का आधार पर इस काल के उपकरणों को दो प्रमाणों में बाँटा जा सकता है। 1. चापर चापिंग उपकरण Chopper Chopping tools का पाकिस्तान की सोहन घाटी में मिलने के कारण सोहन संस्कृति कहलाए तथा 2. मद्रास के समीप हस्थ कुठार (Handaxe) के अधिक मिलने के कारण इसे हस्थ कुठार संस्कृति (Handaxe culture) या मद्रास संस्कृति कहने जाने लगा। डी.टैरा (De Terra) तथा टी. पैटरसन (T.T. Patterson) ने सोहन घाटी में इस काल के मानव को द्वितीय अन्तर हिम युग (Second interglacial age) या अर्ध से साढ़े चार लाख वर्ष पहले का बताया है जबकि हसमुख धीरज संकालिया इसकी उत्पत्ति 5 लाख वर्ष पहले मानते हैं।

#### औजार बनाने की तकनीक :-

- (Block-on-anvil Technique): इस विधि द्वारा जिस पत्थर द्वारा औजार का निर्माण करना होता था उसे किसी चट्टान पर प्रहार करके उसका फलक उतारकर औजार बनाये जाते थे। इस विधि द्वारा बड़े आकार के तथा अनघड़ का ही निर्माण सम्भव था।
- (Stone Hammer Technique or Block-on-Block Technique): पूर्वपाषाण काल में मानव द्वारा औजार बनाने का सर्वाधिक प्रयोग में लाई जाने वाली विधि थी। इसमें जिस पत्थर का औजार बनाना होता था उसे एक स्थान पर रखकर दूसरे हाथ से एक अन्य पत्थर द्वारा चोट करके फलक उतार कर औजार बनाया जाता था। इस विधि द्वारा मानव bi-facial (द्विधारी) औजार भी बना सकता था।
- (Step Flacking Technique): इस तकनीक द्वारा जिस पत्थर का औजार बनाना होता था उस पर दूसरा पत्थर मारते समय जिस प्रकार का औजार बनाना था, उसे ध्यान में रखकर सर्वप्रथम मध्य भाग में चोट कर उस पत्थर पर एक निशान बना लिया जाता था। बाद में उसी की मदद से Steps (पट्टियों) में फलक उतार कर औजार बनाए जाते थे। इस विधि द्वारा हस्त कुल्हाड़ियों का निर्माण किया जा सकता था।
- (Cylindrical Hammer Technique): इस विधि द्वारा पत्थर का औजार बनाने के लिए एक सिलेंडरनुमा इथाळ का प्रयोग किया जाता था जिससे कि छोटे-छोटे फलक भी उतारे जा सकते थे। इनसे सुन्दर एशुलियन प्रकार की हस्त कुल्हाड़ियाँ बनाई जाती थी।

#### औजार Tools

इस काल का मानव कोर (Core) निर्मित औजारों का प्रयोग करता था यानि जिस पत्थर का औजार बनता था उसके फलक (flake) उतार कर फँक दिए जाते थे तथा बीच के हिस्से की ही औजार बनता था। इस काल के बने उपकरणों में chopper chopping tools (चाँपर/चाँपिंग औजार), hand-axes (हस्त कुल्हाड़ियों), Cleavers (विदारणी), Scrappers (खुरचमियाँ) इत्यादि प्रमुख थे। इनसे मानव काटने, खाल साफ करने इत्यादि कार्यों के लिए तथा मिट्टी से जड़ें और कन्दमूल आदि निकालने के काम में लाभ प्राप्त था।

#### विस्तार क्षेत्र

आधुनिक सर्वेक्षण एवं उत्खननों के कारण हमें निम्न पुरापाषाण काल के बहुत से स्थलों का ज्ञान हो चुका है। अब यह स्पष्ट हो रहा है कि यह संस्कृति पूरे भारत में फैली हुई थी। इसका कहीं अधिक तथा कहीं कम विस्तार (ecological factors) के कारण है जिनमें गंगा की घाटी में इस संस्कृति का न होना उपकरण बनाने के लिए उपयुक्त पत्थरों का न मिलना हो सकता है या शायद गंगा तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी के नीचे प्राचीन स्थल दब गए होंगे।

भारत में इस संस्कृति के प्रमाण उत्तर पश्चिमी भारत (आज के पाकिस्तान की सोहन घाटी में) में जम्मू कश्मीर लिद्वर नदी हिमाचल की ब्यास बाण गंगा घाटी, पंजाब में होशियारपुर क्षेत्र (विशेषकर अटवारपुर क्षेत्र), हरियाणा में कालका पिंजौर क्षेत्र, हिमाचल तथा हरियाणा में काला अम्ब नाहन क्षेत्र में मारकंडा नदी पर, दिल्ली तथा दक्षिण हरियाणा के अरावली क्षेत्र में अधिकतर चापर-चापिंग (Chopper-Chopping) उपकरण प्राप्त होते हैं। दक्षिण भारत तथा मध्य भारत में अधिकतर (Hand axes) हस्थ कुठार संस्कृति का विस्तार है इन में अधिकतर स्थल तमिलनाडु में अंतरिम पक्कम (Attirampakam), मन्जनकरणई, वादमदुराई गुडियम (Gudiyam cave) इत्यादि हैं। कर्नाटक में अनगवाडी (Anagwadi), हुन्सगी (Hunsgi), गुलबर्ग में इसामपुर (Isampur) तथा येदियापुर (Yediyapur) इत्यादि महत्वपूर्ण हैं इसके अतिरिक्त कृष्णा तथा इसकी सहायक नदियों पर भी बहुत से स्थलों से इन संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हैं अलूर (तलकवाद Talakwad) के समीप हीरं मुलंगी (Hire Mulangi) एक महत्वपूर्ण स्थल है। नित्तूर (Nittur) (जिला चित्तूर) में उपकरणों के साथ-2 जंगली भैंसे (Bos nomadicus) के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

आन्ध्र प्रदेश में कर्नूल (Kurnool), गिडलूर (Giddalur), करंमपुडी (Karempudi) तथा नागार्जुन कोण्डा (Nagarjuna Kondal) में हस्थ कुठार संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। इसके अतिरिक्त नालगोंडा (Nalgonda) तथा गुन्तूर (Guntur) जिला में भी इन संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

महाराष्ट्र गोदावरी-प्रवर नदी (Godavari-Pravara) की घाटी में न केवल हथ कुठार तथा (handaxes) अन्य उपकरण प्राप्त हुए हैं अपितु जंगली भैंसा, जंगली हाथी, गैंडा इत्यादि जानवरों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। नेवासा तथा संगम से भी इसी तरह के प्रमाण मिले हैं। धुलिया (Dhulia), जलगाँव बुल्सर जिलों में इसी तरह के प्रमाण मिले। अहमद नगर (Ahmadnagar) जिले का चिरकी नेवासा (Chirki Nevasa), नासिक (Nashik) जिले का गंगापुर स्थल, शोलापुर जिले का पन्धारपुर (Pandharpur) काफी महत्वपूर्ण है। कोंकण तथा मुम्बई क्षेत्र में वोरली, कान्डीवली, बोरीवली (Borivli) मलाद (Malad) इत्यादि महत्वपूर्ण स्थल हैं इसके अतिरिक्त गोवा में भी इस संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। मध्य प्रदेश में सर्वप्रथम डी टेरा (De-Terra) तथा पैटरसन (Patterson) ने नर्मदा घाटी पर उत्तर-पश्चिमी भारत की चापर चापिंग संस्कृति तथा दक्षिण भारत की हथ कुठार संस्कृति के मेल की संभावना खोजने के लिए कार्य किया। यहाँ से न केवल उपकरण बल्कि उस काल के जानवरों तथा वृक्षों के अवशेष (Fossils) भी पाए गए। यहाँ पर आस्ट्रेलियाई संस्कृति (Acheulian culture) तथा सोहन संस्कृति (Sohan Culture) के इक्ठे मिलने के प्रमाण मिले। इस संस्कृति के महत्वपूर्ण स्थल होशंगाबाद, नरसिंगपुर, महादेव-पिपरिया है। जहाँ से उपकरण स्तर स्तरविन्यास के संदर्भ में भी प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त दुरकाडी नाले (पश्चिमी नीमार जिले) से भी महत्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए। उपकरणों के अतिरिक्त इस क्षेत्र से जंगली हाथी, भैंसे, हिप्पोपोटमस, जंगली घड़ियाल, सूअर, इत्यादि के प्रमाण भी मिले। इसके अतिरिक्त चम्बल घाटी, बेतवा, सोनार, सोन नदियों की घाटियों में भी इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। भोपाल के पास भीमबेटका (Bhimbetka) आदमगढ़ भी महत्वपूर्ण स्थल हैं। राजस्थान में दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में अधिकतर इस संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। लूनी, बणाभ, गम्भीरी, चम्बल की घाटियों के कई स्थलों पर कई महत्वपूर्ण स्थल हैं। चित्तौड़ जिले में तो सोहन संस्कृति तथा मद्रास संस्कृति के इक्ठे मिलने के प्रमाण मिलते हैं। पूरे गुजरात में हमें निम्न पुरापाषाण काल के प्रमाण प्राप्त होते हैं, साबरमती नदी, माही, करजन (Karjan) नदियों पर बहुत से महत्वपूर्ण स्थल मिले हैं। यहाँ से चापर-चापिंग (Chopper chopping) तथा कुठार (handaxes) दोनों प्रकार के उपकरण मिलते हैं सौराष्ट्र क्षेत्र में रोजड़ी (Rojdi) एक महत्वपूर्ण स्थल है। कच्छ में भुज समीप भी नखराणा (Nakhrana) से इस संस्कृति के प्रमाण मिले हैं।

उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर (Mirzapur) जिले की बेलन घाटी, रीवा जिले में लेखाइया (Lekhaya) कौशाम्बी जिले में बरियारी (Bariyari) में इलाहाबाद जिले के बतौबीर (Bataubir) स्थलों से इस संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। यमुना नदी पर देहरादून जिले में कलगी (Kalgi), झांसी जिले में ललितपुर (Lalitpur) इत्यादि भी महत्वपूर्ण स्थल हैं।

बिहार तथा झारखंड के बहुत से स्थलों पर तथा कोटा नागपुर पठार के अनेक स्थलों से इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी बंगाल के बंकुश, पुर्लिया, सिंहभूम, मेवाकुई, बीरभूम बर्दवान इत्यादि जिलों से इस संस्कृति के प्रमाण मिले हैं।

उड़ीसा में कुलियाना (स्यूरभंज) स्थल से इस संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रमाण मिले। इसके अतिरिक्त बहुमानी, महानदी, बैतर्णी, स्वर्णलोवा नदी घाटियों से धनेकनाल (Dhenkanal) स्यूरभंज, सुन्दरगढ़, क्यौंझार इत्यादि से इस काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं।

आसाम तथा मेघालय की गारो, खासी तथा जयन्तिया पहाड़ियों से इस संस्कृति के उपकरण जिनमें हथ कुठार, चापर, खुरचनी इत्यादि प्राप्त हुए हैं।

### मानव

विश्व में विभिन्न स्थलों से निम्न पुरापाषाण काल के मानव के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। परन्तु हाल ही तक भारत में ये प्रमाण उपलब्ध नहीं थे, 1982 में मध्य प्रदेश में नर्मदा घाटी में हथनोरा (Hathnora) नामक स्थल से होमोइरैक्टस (Homo-erectus) की खोपड़ी तथा 1997 में इसी प्रकार के मानव के कन्धे की हड्डियाँ (Clavicle) प्राप्त हुई। मात्र यही प्रमाण हमें इस काल के मानव के भारत को प्राप्त है।

### जीवन

इस काल के मानव का निवास स्थल नदी घाटियाँ शिलाश्रय तथा गुफा इत्यादि थे। स्टुअर्ट पिगंट के अनुसार इस युग के मानव के जीवन का आधार शिकार करना तथा भोजन एकत्रित करना था, इनका जीवन अस्थायी और खतरों से भरा से भरा एवम् अलग-अलग था। इस काल का मानव उपकरणों की सहायता से जंगली जानवरों का शिकार करता था। भोजन के तौर पर उनका मांस कच्चा था कई स्थानों पर पकाने के भी प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त कन्दमूल, जंगली फल तथा खाने वालद जड़े भी उसके भोजन में शामिल था। इस काल का मानव विलेचैन्थियन प्रकार के पशुओं के अलावा हाथी, गैंडा, घोड़ा, पानी की भैंस, बारहसिंगे, कछुए, मछली, पक्षी, मेंढक, कई प्रकार के मगरमच्छ इत्यादि का शिकार करता था।

### तिथिक्रम

तिथिक्रम के हिसाब से निम्न पुरापाषाण काल के अवशेषों को मध्य अभिनूतन काल (Mid pleistocene period) के द्वितीय अन्तर हिम युग (Second interglacial period) में रखा जा सकता है। डी. टेश तथा टी.टी. पैटरसन ने इस काल की सोहन संस्कृति को 4,35,000

## पुरापाषाण काल

वर्ष पूर्व की माना है जबकि एच. डी. संकालिया इसे 5 लाख सवा लाख वर्ष पूर्व के मध्य रखा जाता है। परन्तु हाल ही में 1957 में पर वैज्ञानिक तिथिक्रम से कुछ तिथियां प्राप्त हुई हैं जो कि निम्नलिखित हैं :-

महाराष्ट्र में बोरी से 5,37,000 वर्ष पूर्व, नेवासा से 3,50,000 वर्ष पूर्व कर्नाटक के तेरगीहल्ली जा कि बैचबल घाटी में से 3,50,000 से 2,87,333 वर्ष पूर्व, राजस्थान में डिडवाना से 3,90,000 से 2,90,000 वर्ष पूर्व गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र के उमरेठी नामक स्थान से 1,90,000 वर्ष पूर्व, कर्नाटक में हुन्सी घाटी के कालदेवनहल्ली स्थल से 1,66,000 वर्ष पूर्व इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सभी तिथियां साढ़ पाय लाख से डेढ़ लाख वर्ष के बीच की हैं। यदि इन में कुछ त्रुटियां भी मान लेता भी यह 5 लाख से सवा लाख के मध्य की ही है।

## उदगम (Origin)

इस संस्कृति का प्रारम्भ अफ्रीका में ओल्डुवई गर्त (Olduvai gorge) जो कि तन्जानिया में हुआ था। यहीं से मानव न अलग-अलग स्थलों पर जा कर इस संस्कृति का विकास किया। कुछ विद्वानों का मत है कि इस काल में अफ्रीका भारत से जुड़ा हुआ था इसलिए इन काल का मानव स्थल मार्ग से ही सीधा भारत आ गया। परन्तु महाद्वीप तो इस काल से बहुत पहले ही अलग हसे चुक था। इसलिए यह मत संभव नहीं है। दूसरा मत है कि इस काल का मानव ओल्डुवई से उत्तरी अफ्रीका होता हुआ माउंट कार्मेल (Mount Carmel) के स्थान आया यहां से एक शाखा ने पश्चिम की ओर जा यूरोप में तथा दूसरी शाखा ने पूर्व की ओर जा एशिया में इस संस्कृति को फैलाया।

## मध्य पुरापाषाण काल (Middle Paleolithic Period)

मध्य पुरापाषाण में नियडरस्थल मानव के अवशेष मिलने शुरू हुए और इन्होंने अपनी संस्कृति का विकास किया। पूर्व पुरापाषाणकाल के औजार कोर निर्मित थे, जिसमें फलकों का प्रयोग औजारों में नहीं किया गया था। लेकिन इस काल के मियंडर स्थल मानव ने अपने उपकरणों को फलक पर बनाना प्रारंभ किया, जो अपेक्षाकृत आकार में छोटे थे जो अच्छे बने हुए थे। इनके अलावा फलक निर्मित औजारों में हस्तकुठार, बेधक, कुल्हाड़ियों और विदारणी प्रमुख थे।

## औजार बनाने की तकनीक

इस काल के फलक उपकरण दो तकनीकों द्वारा बनाए जाते थे। इस विधि में सर्वप्रथम पत्थर से फलक उतारी जाती थी फिर उस फलक को दोबारा तीखा कर (retouching) आवश्यकतानुसार आकार का उपकरण बना लिया जाता था। दूसरी विधि को लवलेवा विधि (Lavelloisian technique) का नाम दिया गया। इस विधि द्वारा निर्मित औजार सर्वप्रथम फ्रांस के तावलवा नामक स्थान से प्राप्त हुए इसलिए इसे लवलेवा तकनीक का नाम दिया गया। इस विधि द्वारा पत्थर से जो फलक अलग किया तीखे उपकरण से जिस प्रकार का औजार बनाना होता था उसकी रूपरेखा दी जाती थी। दूसरे चरण में उसके भीतरी हिस्से को ऊपर से छील देया जाता था इसे Tortoise Ore कहा जाता था। तृतीय चरण में एक छोटा प्लेट फार्म तैयार किया जाता था। जहां तीखी रखकर पत्थर पर हथौड़े से आघात किया जाता था। इस प्रकार मनचाहे आकार का उपकरण बनाया जा सकता था।

पुरापाषाण का मानव (Australopithicus) का अन्त हो गया तथा इसका स्थान एक नई किस्म के मानव ने ले लिया। प्रकृतिक मानव (Neanderthal man) या (Homo Neanderthalis) कहा जाता है।

## विस्तार

भारत में मध्य पुरापाषाण के स्तर विन्दास पर आधारित प्रमाण सर्वप्रथम नेवासा नामक स्थल से प्राप्त हुए। यद्यपि इससे पहले भी डी. टेरा तथा पैटरसन ने इन्हें नर्मदा घाटी में नरसिंहपुर (Narsinghpur) तथा होसान्गाबाद (Hoshangabad) से प्राप्त किए। परन्तु इस समय इसे काली मिट्टी की संस्कृति (Black soil industry) सा प्राग नवपाषाणीय संस्कृति की सजा दी गई। परन्तु मध्य पुरापाषाण काल के एक अलग संस्कृति के रूप में प्रमाण नेवासा से प्राप्त हुए, जो कि तिथिक्रम, स्तरविन्दास तथा उपकरण प्रकार तथा तकनीक के आधार पर मध्यपुरापाषाण संस्कृति को माने गए। तथा तभी से इसे अलग संस्कृति के रूप में लिया जाता है। पूरे महाराष्ट्र में यह संस्कृति पनप रही थी परन्तु प्रवर नदी पर स्थित नेवासा (Nevasa) तथा गोदावरी पर स्थित बेल पन्धापी, मुंगगाव, कालेगांव नान्दूर तथा मध्यमेश्वर महत्वपूर्ण हैं। तापती नदी की सह नदी रंका नाला (Ranka Nala) भी एक महत्वपूर्ण स्थल है। मुम्बई क्षेत्र में बोरीवली तथा खांडीवली (Borivli and Khandivli) से भी बहुत से फलक उपकरण चर्ट (Chert), जैसपर (Jaspal) तथा बसाल्ट (Basalt) पर बने प्राप्त हुए हैं।

कर्नाटक के तटीय क्षेत्र के दो महत्वपूर्ण स्थलों तमिनहल (Taminhal) तथा अलमट्टी (Alamatti) से काफी मात्रा में उपकरण प्राप्त होते हैं। गुलबर्ग के शोरापुर दोआब तथा कोवल्ली (Kovalli) तथा अनगवाडी (Anagwadi) महत्वपूर्ण हैं। हरगुन्डर्ग (Haragund) से तो जंगली हाथी तथा भैंसे के प्रमाण (fossils) भी प्राप्त हुए हैं।

आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल से मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त नाजगांडा तथा कृष्णा नदी पर स्थित रामतीर्थअपय तथा रयगीरवगु से भी उपकरण प्राप्त हुए हैं।

तमिलनाडु में इस संस्कृति के प्रमाण उत्तरी क्षेत्र में अतिरमपक्कम तथा वादमदुराई उत्खननों से इस काल का उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त गुडियम कान्दरा उत्खनन से भी स्तर विन्यास के आधार पर मध्यपाषाण काल के छोटे उपकरणों के पहले के फलक उपकरण प्राप्त हुए हैं।

उड़ीसा से म्यूरभंज, क्योन्झार, सुन्दरगढ़ टोनकनाल जिलों से फलक उपकरण क्वार्टज जैसपर तथा क्वार्टजाइट नामक पत्थरों पर बने प्राप्त हुए हैं।

पश्चिमी बंगाल में बंकुरा, बीरभूम, मिदनापुर, पूर्णिया जिलों से फलक उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त 24 परगना, जलपाइगुडी जिलों से तथा असम में गारो पहाड़ियों से भी इस संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। बिहार में पटना, गया, भागलपुर, मुंगेर जिलों तथा झारखंड के छोटा नागपुर पठार, पलमाऊ सिंहभूम इत्यादि से फलक उपकरण जिनमें अधिकतर पेंवाइन्टस तथा बोरर से प्राप्त हुए हैं।

उत्तर प्रदेश में टोनस घाटी तथा इलाहाबाद जिले के बेलन घाटी में यह उपकरण प्राप्त हुए हैं। परन्तु गंगा घाटी में अभी तक इस काल के उपकरण प्राप्त नहीं हुए हैं। मध्य प्रदेश में नर्मदा घाटी में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, महेश्वर, सिहोर (सागर जिला) गोंची जो बेतवा नदी पर स्थित है इस काल के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त दामोह जिले तथा सोन घाटी से भी उपकरण प्राप्त हुए हैं। नर्मदा नदी पर महादेव पिपरिया, शिवना नदी पर मन्दसौर, बाहरगढ़ भी महत्वपूर्ण स्थल हैं। यही खरकी माता स्थल से उस काल के उपकरण बनाने की वर्कशाप भी खोजी गई है।

गुजरात के सौराष्ट्र की नदी भादर पर रोजडी तथा जेतपुर महत्वपूर्ण स्थल हैं इसके अतिरिक्त बुलसर जिले दक्षिण कच्छ के कई स्थलों से मध्य पुरापाषाण कालीन फलक उपकरण मिलते हैं।

राजस्थान के पश्चिमी तथा दक्षिण पूर्वी क्षेत्रों से इस काल के उपकरण मिलते हैं। यहां चम्बल, गम्भीरी लूनी इत्यादि नदी घाटियों में इस संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। लूनी घाटी में तो फलक उपकरणों के साथ कुछ फलक पर बने छोटे हस्थ कुठार तथा क्लीवर भी प्राप्त होते हैं। राजस्थान में अधिकतर फ्लिंट, चर्ट तथा जैसपर पत्थरों का प्रयोग उपकरण बनाने के लिए किया गया है।

कश्मीर में पहलगवाव के समीप मन्दिर टीले से तथा गणेशपुर से इस काल के उपकरण प्राप्त होते हैं। पाकिस्तान में पेशावर के समीप संघाओं कान्दरा से इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त सोहन संस्कृति के उपकरण भी मध्य पुरापाषाण काल के हैं। पंजाब में कई स्थलों दिल्ली तथा हरियाणा के अरावली पर्वत श्रृंखला में अनेक स्थलों से भी इस काल के उपकरण मिले हैं।

### काल

राजस्थान, गुजरात के कई स्थलों से हाल ही में कुछ वैज्ञानिक ढंग से इस काल के तिथिक्रम के प्रमाण प्राप्त हुए हैं जो कि 150000 से 20,000 वर्ष पूर्व के मध्य हैं। राजस्थान में डिडवाना से मध्य पुरापाषाण काल की दो तिथियां 1,50,000 तथा 1,40,000 वर्ष पूर्व की हैं। जबकि गुजरात के सौराष्ट्र से ये तिथियां 56,800 वर्ष पूर्व आई हैं। इससे पूर्व महाराष्ट्र में प्रवर-गोदावरी घाटी से प्राप्त अर्जुन वृक्ष के अवशेष की तिथि 39,000 वर्ष पूर्व अंकित हुई थी। इसके अतिरिक्त पैठन, इनामगांव तथा टोन बांध से भी मध्य पुरापाषाणकाल की तिथि 30,000 वर्ष के आसपास ही निर्धारित रेडियो कार्बन विधि से निश्चित हुई है। इस तरह हम इस संस्कृति को सुरक्षित रूप से 1,25,000 से 20,000 वर्ष पूर्व तो रख ही सकते हैं।

### उद्भव

मध्य पुरापाषाणकाल के उद्भव के बारे में विद्वान एक ही मत नहीं है। एच. डी. संकालिया तथा ए.पी. खत्री का विचार है कि भारत में इस संस्कृति के उद्भवकर्ता अफ्रीका से आए थे। एलचिन महोदय का विचार है कि प्रारम्भ में इस संस्कृति के लोग इसी प्रकार की मध्य एशिया की संस्कृति के सम्पर्क में आए तथा बाद में इन्होंने अलग थलग रूप में सिन्ध के मरूस्थल के दक्षिण पूर्व में इस संस्कृति का उत्थान किया। परन्तु जब तक इस काल के मानव के अवशेष हमें प्राप्त नहीं होते तब तक इस बारे में अधिक कह पाना संभव नहीं है। दूसरी ओर कुछ विद्वान इसे भारत में ही उद्भव मानते हैं। के.डी. बैनर्जी ने नेवासा तथा उत्तरी कर्नाटक से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर दर्शाने की कोशिश की है कि यह संस्कृति यहां पर पहले की हस्थ कुठार, क्लीवर संस्कृति से ही सौन्दर राजन भी इसे भारत में ही प्रारम्भ हुई संस्कृति मानते हैं।

### उत्तर पुरापाषाण संस्कृति (Upper Palaeolithic Culture)

उत्तर पुरापाषाण काल संस्कृति अभिनूतन काल की अन्तिम संस्कृति है। इस काल में मानव ने अपने उपकरण क्रोड या फलक के स्थान पर ब्लेड पर बनाने प्रारम्भ कर दिए। साथ ही हड्डी का प्रयोग भी औजार बनाने के लिए होने लगा। इस काल की विशेषता ब्लेड तथा ब्यूरिन, बोरर नामक उपकरण हैं। इसके अतिरिक्त विलो तथा लारेल नामक पेड़ के पत्तों के आधार के प्वाइंट, हड्डी के तीराग्र हारपून, तीर सीधे करने का उपकरण, डार्ट इत्यादि हैं।



## पुरापाषाण काल

भारत में यद्यपि इस संस्कृति के उपकरण यदा कदा मिलते रहे हैं जैसे कि राबर्ट ब्रूस फुटे को कर्नूल जिले के बिल्लासुरगम नामक स्थल से उत्तर पुरापाषाण कालीन उपकरण, जो कि पश्चिमी यूरोप के मैगडलेनियन प्रकार के मिले। इसी प्रकार भारत के पश्चिमी पूर्वी क्षेत्र में भी यह उपकरण मिले। नेवासा से भी ब्लेड तथा ब्यूरीन प्राप्त हुए। परन्तु 1970 के दशक तक भारत में इस संस्कृति की अलग पहचान नहीं थी। परन्तु आन्ध्र प्रदेश में चित्तूर तथा कर्नूल नामक स्थलों से हमें इस संस्कृति के अलग स्वरूप के पुरातात्विक स्तर-विस्थापिक प्रमाण मिलने शुरू हुए। हाल में तो बहुत से स्थानों से इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए।

## विस्तार

आन्ध्र में चित्तूर जिलों से इस संस्कृति के ब्लेड तथा ब्यूरीन प्राप्त हुए हैं। बिस्लासुरगम गुफा से तथा रेनिगुन्ता के अतिरिक्त मल्लागुड्डु तथा प्रकाशन जिले की येशगोण्डा पल्लम, नागार्जुनकोण्डा भी महत्वपूर्ण स्थल हैं। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण है मुच्चन्त चिन्तामणि गांव जहां से 90% से अधिक उपकरण हड्डियों पर बने हैं।

कर्नाटक में सल्वादगी तथा मेरलमवी क्षेत्र (शोरापुर दोआब) महत्वपूर्ण है। यहां एक फैक्ट्री उस काल के उपकरण बनाने की 'मेली' बिहार में सिंहभूम से प्राप्त हुए हैं, उत्तरप्रदेश में मिर्जापुर जिले के लेखाहिया तथा राजपूत नामक स्थलों से उत्तरपुरापाषाण कालीन उपकरण मिले हैं परन्तु ये विशुद्ध उत्तर पाषाण कालीन पश्चिमी यूरोप एवं पश्चिमी एशिया प्रकार के नहीं हैं। बलन घाटी के स्तरविन्यास संदर्भ में ये उपकरण प्राप्त हुए हैं।

मध्यप्रदेश में सर्वप्रथम सोन घाटी में सिंधि तथा शाहडोल जिलों में उत्तरपाषाणीय उपकरण प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त रायसीन जिले की भीमबेटका गुफा तथा चट्टान आश्रय से औरगनेशियन प्रकार के उत्तर पाषाणीय उपकरण प्राप्त हुए हैं।

महाराष्ट्र बोरिवली तथा कान्डीवली से टाड नामक विपणन ने ब्लेड तथा ब्यूरीन प्रकार के उपकरण खोजे थे। इसके अतिरिक्त नेवासा तथा टूलिया जिले के भदने स्थल से इस काल के उपकरण प्राप्त हुए। इस राज्य में सबसे महत्वपूर्ण है पटने का स्थल जहां उत्खनन में इस काल के उपकरण तथा अन्य वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। जलगांव जिले के चालिस गांव तालुक के स्थित इस स्थल से प्रथम दो कालों में जैस्पर पर बने उपकरण प्राप्त हुए तथा अन्तिम दो चालसीडोनी का प्रयोग किया गया प्रथम काल में उत्तरपाषाण कालीन उपकरणों के साथ कुछ फलक उपकरण भी मिले जबकि दूसरा काल इस संस्कृति का सर्वप्रथम काल है। तीसरे काल में उपकरण छोटे बनने लगे तथा शर्तुमर्ग के अंडे के खोल का डिस्क प्रकार का मनका भी प्राप्त हुआ। जो कि भारत का सबसे प्राचीन अलंकरण है। चौथे काल इस संस्कृति का अन्तिम काल है। जिसमें मध्य पाषाण कालीन लघु उपकरण मिलने शुरू हो गए।

गुजरात में मध्य गुजरात के पावगढ़ क्षेत्र में इस काल के प्रमाण विसादि से प्राप्त हुए हैं जिन्हें 40000 से 12000 वर्ष पूर्व माना जा सकता है।

## तिथि

पश्चिमी यूरोप तथा पश्चिमी एशिया के स्थलों से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथिक्रम के अनुसार इस संस्कृति को 30000-10000 वर्ष पूर्व माना जाता है। भारत में भी कई स्थलों से वैज्ञानिक तिथियां प्राप्त हुई हैं। पाकिस्तान की संघाओं गुफा से इस काल की तिथि 20800 से 20660 वर्ष पूर्व आई है राजस्थान की डिडवाना से 26210 वर्ष पूर्व। मध्य प्रदेश के स्थलों से प्राप्त शतुरवमर्ग के अंडे की तिथि 36550 से 30680 वर्ष पूर्व महाराष्ट्र से 27000-25000 वर्ष पूर्व तथा बलन घाटी से 25000 से 9000 वर्ष पूर्व तिथि आई है। इस प्रकार हमें इस संस्कृति को 35000-10000 वर्ष पूर्व के बीच राव सकता है।

## मानव का जीवन तथा निवास

इस काल में मानव गुफाओं तथा चट्टान आश्रयों में रहा करता था। नदी के किनारों तथा खुले क्षेत्रों में रहने के प्रमाण भी इस काल में मछली पकड़कर वह अपना निर्वाह करता था तथा फल, जड़ें इत्यादि भी उसके भोजन का अंग थी।

## कला

इस काल में यूरोप तथा पश्चिमी एशिया में मानव ने कला का विकास कर लिया था। भारत में भी मानव ने कला कृतियां जैसे कलम कुरेद कर बनाए चित्र कला प्रारम्भ किया था या नहीं इसे बारे में विद्वानों के मत एक नहीं हैं। डा. वाकंकर भीमटेका के III.A-28 से प्राप्त हुए चित्र को उत्तर पाषाण कालीन मानते हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र के पटने से शतुरवमर्ग के अंडे के खोल पर कुरेद बनाई लाइन तथा बलन घाटी में लोहन्डा नाला से प्राप्त एक हड्डी की प्रतिमा, जिसे कतिपय विद्वान मातृदेवी मानते हैं, इस काल की कला के प्रमाण हैं।

## उद्भव

भारत में इस काल के मानव के कोई अवशेष न मिलने के कारण इस संस्कृति के उद्भव एवं निर्माताओं के बारे में कुछ राय नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान इस संस्कृति का उद्भव पश्चिमी एशिया के मांडूट अफ्रीका से मानते हैं जबकि कुछ विद्वान रेनिगुन्ता से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर इस संस्कृति का उद्भव स्थानीय ही मानते हैं।

## मध्य पाषाण कालीन संस्कृति शिकार एवं भोजन संग्रहण का काल

लगभग 10000 वर्ष पूर्व अभिनूतन काल का अंत हो गया और जलवायु भी आजकल के समान हो गई। हिमयुग के दौरान जमी बर्फ की परत पिघलने लगी तथा अधिकतर निचले इलाकों में पानी भर गया। पानी के जमाव के साथ जमी मिट्टी की तहों की गिनती से स्कन्देनेनिया में इस काल की शुरुआत 7900 ई. पू. रखी जा सकती है जबकि रेडियों कार्बन तिथि से हिम युग काल का अंत 8300 ई. पू. निर्धारित किया जा सकता है। बर्फ पिघलने से समुद्र के जलस्तर में बढ़ोतरी हुई जिस कार उतरी समुद्र से अधिक पानी फैल गया। जलवायु में हुए परिवर्तन का असर वनस्पति तथा पशु-पक्षियों पर भी हुआ। यूरोप में चौड़ी पत्ती वाले पेड़-पौधे होने लगे और साथ ही रेडियर, घोड़े, बिसन आदि के स्थान पर हिरण, जंगली सूअर, बारहसींगा इत्यादि पशु अधिक पाए जाने लगे। पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों में इस प्रकार की वनस्पति के पौधे पाए गए जो आजकल के गेहूं और जौ के जंगली प्रकार थे। इस प्रकार की वनस्पति को प्रयोग में लाने तथा शिकार में जानवरों को मारने के लिए इस काल के मानव को अपने औजारों में भी परिवर्तन करना पड़ा। इस काल में अत्यंत सूक्ष्म पाषाण औजारों का निर्माण किया गया। ये औजार इतने सूक्ष्म थे कि इन्हें अकेले प्रयोग में नहीं लाया जा सकता था बल्कि किसी अन्य चीज के साथ जोड़कर ही वन औजारों को प्रयोग किया जा सकता था। इन उपकरणों में प्वाइंट, तीर का अग्र भाग, सूक्ष्म ब्यूरिन, खुरचनियां, हस्त कुल्हाडियां, त्रिकोण, ट्रॉपे, चन्द्राकार और अर्द्धचन्द्रकार इत्यादि प्रमुख हैं। ये उपकरण दो भागों में बांटे जा सकते हैं। दोनों प्रकार के औजारों को प्रकार के आधार पर बांटा गया है।

### तकनीक

अत्यधिक सूक्ष्म औजारों के छोटे-छोटे फलक पत्थर से निकालने के लिए प्रैसर तकनीक (Pressure Technique) का प्रयोग किया जाता था। इस तकनीक में एक विशेष आकार का फलक किसी नुकीले उपकरण को पत्थर पर रख उस पर ऊपर से दबाव डालकर फलक अलग किया जाता था। इस उपकरणों को किसी लकड़ी के आगे लगाकर तीराग्र (Points) का तीर बनाते थे। कुछ प्वाइंट अथवा ब्लेड्स को किसी जानवर की हड्डी या लकड़ी में फिट करके दरांती (Sickle) बनायी जा सकती थी। इनके उपकरणों के उपयोग से ही पता चलता है कि इस काल में मानव में जंगली रूप से उगे पौधों को काट कर उनके दाने अलग करना सीख लिया था। कई स्थानों से तो सिल-बट्टे भी प्राप्त हुए हैं EI-wad जैसे गुफा से, जो इसी प्रमाण की घोटक है।

### विस्तार

भारत में कुछ ही क्षेत्रों को छोड़ सभी क्षेत्रों में इस संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। केवल आसाम, पंजाब केरल तथा उत्तर प्रदेश की गंगा-यमुना घाटियों से अभी तक इसके प्रमाण नहीं मिले।

पश्चिमी बंगाल में यद्यपि कई स्थलों से हमें इस संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। परन्तु दामोदर नदी पर स्थित बीरभानपुर महत्वपूर्ण है जहां से ज्यामिति उपकरणों के रहित उपकरण तथा मृदु-भांड रहित संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। जिन्हें 4000 ई. पू. रखा जा सकता है। बिहार से ज्यामिति तथा गैर ज्यामिति दोनों प्रकार प्रकार के उपकरण जिनके नवचन्द्राकार ब्लेड, समलम्ब औजार, समलम्बनुमा, त्रिभुज, नुकीले औजार, बोरर, ब्यूरिन, खुरचनी इत्यादि प्राप्त हुए हैं। झारखंड के पलमाऊ सन्थाल परगना इत्यादि से इस प्रकार के उपकरण प्राप्त हुई हैं।

उत्तरप्रदेश में सबसे महत्वपूर्ण लघुपाषाण का स्थल सराय नाहर राय है जो प्रताप गढ़ जिले में है। यहां से मृदुभांड से पूर्व की संस्कृति के उपकरण, मानव के खाद्यान्न रहने के फर्स चुल्हे इत्यादि के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं। सराय नाहर राय के लघु पाषाण उपकरण अज्यामितीय। ये अपने मृतकों का पश्चिम-पूर्व की दिशा में दबाते थे। हिरण, बारहसिंगा, गैंडा, मछली, कछुआ इत्यादि का मांस खाते थे। भारत में इस संस्कृति की सबसे पुरानी तिथि 8395 ई. पू. यही से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त लेखाहिया, जिला मिर्जापुर उत्तर प्रदेश से उत्खन्न से प्रथम चरण में अज्यामितीय उपकरण बिना मृदुभांडो के प्राप्त हुए। द्वितीय चरण में बिना मृदुभांडो के ज्यामितीय उपकरण, तृतीय तथा चौथे चरण में ज्यामितीय उपकरणों के साथ मृदुभांडो के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। संग्रौली घाटी तथा मिर्जापुर में बरकचा तथा रौन्य से भी इसे अज्यामितीय उपकरण प्राप्त हुए हैं।

उड़ीसा में भी कुछ जिलों में अज्यामितीय उपकरण बिना मृदुभांड के प्रमाण के प्राप्त हुए हैं। आन्ध्र में नागार्जनकोंडा, गिड्डलूर तथर संगनकल्लु इत्यादि से इस काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं। कर्नाटक में बहुत से स्थलों से इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। जलाहली से लघुपाषाण उपकरण बिना मृदुभांड के प्रमाण के दोनों ज्यामितीय तथा अज्यामितीय प्रकार के हैं। ब्रह्मगिरी भी एक अन्य महत्वपूर्ण स्थल है। तमिलनाडु में तिन्नीवैली जिले में तेरी स्थलों से बहुत से स्थलों से लघुपाषाण उपकरण मिले हैं। इनमें मैगनानापुरम सबसे प्राचीन है तथा अज्यामितीय उपकरण यहां से प्राप्त हुए जबकि कुलात्तूर सबसे बाद का स्थल है। यहां मानव उस समय रहता था जग समुद्र का स्तर आज से 20-30 फुट ऊंचा था। जहां उस समय रेत के टीले जमा हो गए जिन पर उस समय मानव रहता था। बाद में मौसम के बदलाव के कारण इन टीलों पर लाल काई जम गई जिस कारण से एक स्थान पर जम गए।

## पुरापाषाण काल

महाराष्ट्र में पूना के समीप दीधी, इलोरा करला गुफाओं के आस पास इस काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त नाद वर प्रवर नदियों के किनारों एवं कोंकण क्षेत्र से भी इसी तरह के प्रमाण मिले हैं। गुजरात में सबसे महत्वपूर्ण स्थल लघनाज है जहाँ उपर सतहों में लघुपाषाण उपकरण मृदभांडों सहित प्राप्त हुए तथा निचली सतहों में बिना मृदभांडों के उपकरणों के साथ पशु तथा मानव अवशेष भी प्राप्त हुए। इस काल का मानव फिलीस्तीन के नाटूफियनों जैसा था। यहाँ की संस्कृति 2500 ई.पू. के आस पास की है।

मध्य प्रदेश में चम्बल घाटी तथा नर्मदा घाटी में बहुम से स्थलों पर इस संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें आदमगढ़ महर इ पाट तो प्रमुख हैं परन्तु सबसे महत्वपूर्ण है भोपाल के समीप भीमबेटका जहाँ बहुत सी गुफाएं तथा शिलाश्रय मिले हैं। जिनके उत्खनन से मध्य पाषाण कालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं जो कि अज्यामितीय तथा मृदभांड रहित से बाद में ज्यामितीय तथा मृदभांड सहित प्राप्त होते हैं। इन्हीं स्थलों पर बहुत सी पेंटिंग तथा कुरेद कर बनी चित्रकारी भी इसी काल की प्राप्त हुई हैं। रंगों में सफेद काल तथा पीला, हरा, लाल, भूरा गहरा बैंगनी रंग का प्रयोग है। गुफाओं की दिवारों तथा छत्रों, दोनों स्थलों पर चित्रकारी प्राप्त होती है। विभिन्न खनिजों को मिला रंग बनाते थे। इन चित्रों में उस समय की सांस्कृतिक का पता चलता है। मुख्यतः पशु उनका विषय थे साथ ही मनुष्य भी दर्शाए गए हैं। शिकार के दृश्य विभिन्न पशुपक्षी, तीर कमान का प्रयोग, संगीत नृत्य, सीढ़ी पर चढ़ शहर के छत्ते से शहद निकालती स्त्री इत्यादि महत्वपूर्ण विषय है। राजस्थान में बागोर एक महत्वपूर्ण स्थल है यहाँ उत्खनन से इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त निम्बाहेडा मन्दाजिया भी महत्वपूर्ण है ये दोनों स्थल बागोर से पहले के हैं

### रहने के स्थान

चूंकि इस काल में मौसम आजकल जैसा हो गया था इसका असर उस समय के मानव के रहने के स्थल पर भी पड़ा। अब वह ने केवल गुफा, चट्टानआश्रयों तथा नदियों के किनारों पर रहता था परन्तु समुद्र के किनारे, खुले मैदानों, पहाड़ों के ऋपर, रेतीला या पथरीले सभी प्रकार के स्थलों पर रह सकता था।

### मानव जीवन

जलवायु के बदलाव से इस काल के जीव जन्तुओं तथा वनस्पति पर भी पड़ा। इस का प्रभाव मानव के उपकरण बनाने पर भी पड़ा। अब वह लघुपाषाण उपकरण बनाने लगा जिन्हें वह तीर, भाले, दराती, चाकू इत्यादि में प्रयोग कर सकता था। शिकार का प्रमुख कार्य इस समय मानव का था ही परन्तु अब शिकार में उसे अधिक भेड़ बकरिया तथा पशुओं का सहारा था। जंगली जानवरों का शिकार भी वह किया करता था। इसके अतिरिक्त फल, कन्दमूल के साथ-2 जंगली दानों को इकट्ठा कर भोजन के रूप में प्रयोग करता था। इसके लिए वह छोटे-2 प्वाइंटों का लकड़ी या हड्डी में जड़ कर दराती बना लेता था तथा सिलबटों से वह आटा भी बना लेता था। मृदभांडों का प्रचलन अनाज रखने इत्यादि के लिए होने लगा था। जंगलों से शहद इकट्ठा करने के प्रमाण भी इस समय के हैं। सामुहिक रूप से शिकार करने के साथ मानव इस समय नृत्य इत्यादि से अपना मनोरंजन भी करता था। साथ ही अपने रहने की गुफाओं चट्टान आश्रयों में चित्रकारी इत्यादि भी करने लगा था। अपने मृतक का वह संस्कार जमीन में कर करता था तथा साथ कुछ उपकरण भी रख दिया करता था।

### तिथि

इस काल की बहुत से रेडियों कार्बन तिथियां हमें प्राप्त हुई हैं। जिनमें सबसे पहले की 8395 ई.पू. सराय नाहर राय से है। मध्य प्रदेश में आदमगढ़ से 5500 ई.पू., बागोर से 4480 ई.पू. उत्तर प्रदेश में लेखाहिया से 2410 ई.पू. तथा गुजरात में लघनाज से 2040 ई.पू. है, इस प्रकार हम देखते हैं कि यह संस्कृति 8000-2000 ई. पूर्व के मध्य में पनपी।

### उद्भव

भारत में युरोप, अफ्रीका, एशिया के अन्य भागों की तरह यह संस्कृति पनपी। परन्तु यह पश्चिमी एशिया फिलीस्तीन, मध्य एशिया की संस्कृति से अधिक मिलती है जिससे प्रतीत होता है कि इस संस्कृति बनाने वाले लोग यहाँ से उत्तर पश्चिम हात हुए भारत में आए। दूसरी ओर कुछ विद्वान ऐसी भी हैं जो यह मानते हैं कि यह संस्कृति यही पर ब्लेड तथा ब्यूरिन संस्कृति से बनी। इसके लिए कुर्नल तथा संगनकल्लु स्थलों का प्रमाण देते हैं। जहाँ मध्यपुरापाषाण संस्कृति, उत्तर पुरापाषाण से मध्य पुरापाषाण में परिवर्तित हुई।

## नवपाषाण कालीन संस्कृतियाँ

### नवपाषाण कालीन संस्कृतियाँ

नवपाषाण शब्द उस काल को सूचित करता है जब मनुष्य को धातु के बारे में जानकारी नहीं थी। परन्तु उसने स्थायी निवास, पशु-पालन, कृषि कर्म, चाक पर निर्मित मृदभांड बनाने शुरू कर दिए थे। इस काल की जलवायु लगभग आज कल के समान थी इसलिए ऐसे पौधे पैदा हुए जो लगभग आज गेहूँ तथा जौ के समान थे। मानव ने उनमें से दाने निकालकर भोजन के रूप में प्रयुक्त करना शुरू कर दिया और पकने के विषय में भी जानकारी एकत्रित की। इस प्रकार स्थाई निवास की शुरुआत हुई। जिस कारण पशुपालन और कृषि कर्म को प्रोत्साहन मिला। कृषि और पशुपालन दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

#### तकनीकी विकास और औजार

नवपाषाण संस्कृति समाज में हुए निम्न परिवर्तन को दर्शाता है। तकनीकी तौर पर मुख्य परिवर्तन यह हुआ कि इस काल के मानव ने औजार को घर्षित कर उन्हें पालिश करके चमकदार बना दिया। आर्थिक तौर पर परिवर्तन यह हुआ कि इस काल का मानव खाद्य संग्रहकर्ता से खाद्य उत्पादनकर्ता बन गया। नवपाषाण स्तर पर धातुकर्म के व्यापक संकेत नहीं मिलते, वास्तविक नवपाषाण काल धातुरहित माना जाता है। जहाँ कहीं नवपाषाण स्तर पर धातु की सीमित मात्रा दिखाई दी उस काल को पुरातत्वेताओं ने ताम्रपाषाण काल की संज्ञा दी है।

इस काल के मानव ने नई तकनीक से औजार का विकास किया जिन्हें घिसकर तथा पालिश करके चमकदार बना दिया गया। औजार बनाने के लिए सर्वप्रथम पत्थर के फलक उतारे जाते थे, दूसरी अवस्था में उसके ऊबड़-खाबड़ उभारों को साफ किया जाता था इसमें पैकिंग कहा जाता था। तृतीय अवस्था में उस औजार को किसी बड़े पत्थर या चट्टान से घिसकर साफ किया जाता था तथा उसके किनारों को घर्षित कर तीखा किया जाता था। अंतिम अवस्था में उन पर पशुओं की चर्बी या वनस्पति के तेल से पालिश करके चिकना किया जाता था। इस प्रकार नवपाषाणकाल के मानव में चिकने-चमकदार तथा सुडौल औजार बनाए। जिनमें कुल्हाड़ियाँ, छैनियाँ, हथौड़े, बसौले, इत्यादि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त हल, दाने अलग करने का औजार (गिरडी) तथा ब्लेड इत्यादि थे। ये औजार कृषि कर्म में उपयुक्त होने के अतिरिक्त गृहकार्यों में भी प्रयोग किए जाते थे। इस काल में आए मानव के जीवन ने इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों को कई विद्वानों जैसे कि गार्डन चाइल्ड ने नवपाषाण क्रांति की संज्ञा दी है। क्योंकि पाषाण काल के मानव की अपेक्षा इस काल के मानव में मूलभूत परिवर्तन हुए। पहले के काल में वह घुमक्कड़ था। इस काल में उसके जीवन में स्थायित्व आ गया। पहले वह खाद्य सामग्री के लिए प्रकृति पर निर्भर था इस काल में स्वयं अन्न उत्पादन करने लगा। मानव के जीवन में ये परिवर्तन अचानक से नहीं हुए बल्कि इन परिवर्तनों के प्रारंभिक स्वरूपों के शुरुआत हम पुरापाषाण काल एवम् नवपाषाण काल के बीच देखने को मिलती है।

इस काल से पूर्व पुरापाषाण काल तक की संस्कृतियों का स्वरूप जिस प्रकार अफ्रीका, यूरोप और एशिया के विभिन्न स्थलों पर एक समान दिखाई देता है, वैसा हमें नवपाषाण काल में देखने को नहीं मिलता। नवपाषाण संस्कृति के विकास की प्रक्रिया विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग समयों पर हुई। इस काल की पहली अवस्था को मृदभांड रहित नवपाषाण कहा गया क्योंकि इस काल में मृदभांड कला की शुरुआत नहीं हुई थी। मृदभांड रहित नवपाषाण के प्रमाण हमें जार्डन घाटी स्थित जेरिको, ऐन-गजल, हसिलियार मेरेयबिर, बीघा, मेहरगढ़ (पाकिस्तान) तथा गुफकराल (कश्मीर, भारत) इत्यादि से मिलते हैं। इस संस्कृति का प्रारंभ ई० पू० के आसपास हुआ। इनमें सबसे महत्वपूर्ण स्थल जेरिको था, जहाँ सर्वप्रथम इस संस्कृति का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त मृदभांड सहित नवपाषाण काल के प्रमाण भी इन्हीं क्षेत्रों से मिलते हैं; जो अपेक्षाकृत पहले के हैं।

तृतीय अवस्था के प्रमाण हमें सियालक, फायूम तथा (जो कैरो के समीप मिस्र में स्थित है, जारमों मेसोपोटामिया) इत्यादि से मिलते हैं। यूरोप में अल्प्स पर्वत श्रृंखला के उत्तर में नवपाषाण संस्कृति के प्रमाण बाद के काल के हैं और यह संस्कृति भी निम्न स्तर की है। मध्य यूरोप में ड्रेवे से बाल्टिक तथा डेन्यूब और विस्तुला के मध्य क्षेत्र में इस संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। यहाँ से गेहूँ और जौ की कृषि एवम् पत्थर के औजार तथा पशुपालन के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जर्मनी के राइनलैंड में शंख के बने आभूषण प्राप्त हुए हैं। कोल्न लिन्डस्थल के समीप एक विशाल घर के प्रमाण मिले हैं संभवतः यह पूरे समुदाय के लिए था। डेन्यूब से प्राप्त मृदभांडों पर चित्रकारी के प्रमाण मिलते हैं। इसी प्रकार स्विटजरलैंड, बेल्जियम तथा ब्रिटेन में रेशेदार पौधे और अन्न पैदा किए जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। स्विजरलैंड स्थित नवपाषाण कालीन मानव झील में लकड़ी के खंबे गाड़कर उन पर अपना निवास स्थान बनाता था।



उपकरणों जैसे कुल्हाड़ियों, बसलों, छैनियों, हथौड़ों के साथ-साथ लघु पाषाणीय उपकरण भी प्रयोग करता था। काल IA न ईपू से बनी टोकरी से बने मृदभांड बनने शुरू हो गए II-C में चाक पर बने बर्तन बनने शुरू हो गए जिन पर काली धारिया वाला डिजाइन बनने लगे। कृषि के लिए इस काल में सिंचाई का प्रारम्भ भी होने लगा।

### उत्तरपश्चिमी भारत

भारत में नवपाषाण काल के कई क्षेत्र हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है उत्तरपश्चिमी भारत के गुफाकराल तथा बुर्जहोम (कार्मर)। इन दोनों स्थलों पर मानव जमीन में गड़े खोद कर रहता था पालिश दार पाषाण उपकरणों के साथ—2 हड्डियों के बने सुए (aws), सुइयाँ (needles), तीराग्र, छैनियाँ, हारपून (Harpoon) इत्यादि प्रयोग करता था। मृदभांड कला का प्रारम्भ इस काल में हो गया था। इन काल के दूसरे उपकाल में मानव ने गड्डों (Pit dwellings) में रहना छोड़ कर मिट्टी तथा मिट्टी की ईंटों के घर बनाने प्रारम्भ कर दिए। चाक का प्रारम्भ होने से चाक पर बने बर्तन बनने लगे। बुर्जहोम से मिले एक बर्तन पर तो बैल के सिर वाले देव का चित्रण है जिस तरह का गुमला (Gumla) तथा कोटदीजी (Kot Diji) से प्राप्त हुआ है। खेती इस काल में पहले से अधिक होने लगी थी। मुख्य फसलों में जौ, गेहूँ, मटर, मसूर इत्यादि थे। पशु में भेड़, बकरी, गाय, भैंस, बटेर (fowl) थे। परन्तु अब भी कुछ शिकारी जानवरों को मार कर भोजन के लिए प्रयुक्त किया जाता था।

इस काल में मानव अपने मृतकों को दबाता था तथा इनके साथ कभी-2 कुत्ते, बकरी इत्यादि भी दबाए जाते थे पशुओं का अलग से दबाने के प्रमाण भी मिलते हैं। बुर्जहोम से एक स्थान पर 5 जंगली कुत्ते, एक बाराहसिंगा दबा मिला। पशु एवं मानव दोनों ही रिहाइसी क्षेत्रों में दफनाए जाते थे।

बुर्जहोम में पाषाण काल की इस अवस्था की तिथि 2400-1400 ई. पूर्व मिलती है। जबकि गुफाकराल Gufkral में भी यह काल इसी के आसपास का है।

उत्तर पूर्वी भारत में नवपाषाण के प्रमाण हमें आसाम मेघालय इत्यादि की गारो, खासी तथा जयनतिया पर्वत क्षेत्रों से प्राप्त होत हैं। इसके अतिरिक्त देवजली हडिंग (Deojali Hading) थे उत्खनन से भी नवपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त सर्वक्षण से भी पालिशदार नवपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। उत्तरी पूर्वी भारत में नवपाषाण दक्षिणी पूर्वी एशिया तथा चीन के नवपाषाण से प्रभावित है। इसकी तिथि 4000-2000 ई. पूर्व आंकी गई है।

### पूर्वी भारत

पूर्वी भारत में बंगाल बिहार उड़िसा से हमें न केवल सर्वक्षण से बल्कि उत्खननों से भी नवपाषाण काल के प्रमाण मिले हैं। पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर (Midnapur) जिले के तमलुक (Tamluk) उड़िसा के म्युरभंज जिले के कुचई (Kuchai) तथा बिहार के चौरादे के उत्खनन से हमें इस काल के प्रमाण मिले हैं इनमें सबसे महत्वपूर्ण चिराद है जहां यह काल 2500 ई. पूर्व से 1650 ई. पूर्व के मध्य आंका गया है। यहां पर इस काल में लाल, काले, काले तथा लाल एवं पीले तथा गहरे धूसर मृदभांड प्रयुक्त होते थे। पाषाण उपकरणों में पालिशदार हथौड़, छैनियाँ, बसोसे, तीराग्र, भेदनिया, ड्रिल (Drill) खुरचनिया (Scrappens), तीर सीधान वाला उपकरण इत्यादि प्रयुक्त होते थे। तीरकमान में तीराग्र तथा पकी मिट्टी के फेंक कर मारने वाली गोलियों (balls) का प्रयोग होता था। कृषि कर्म यहां अधिक मात्रा में नहीं होता था क्योंकि अधिकतर जंगली जानवरों के शिकार पर आधारित थी। परन्तु गेहूँ, मूंग, चावल इत्यादि पैदा करने के प्रमाण हैं। ये लोग सुन्दर मणके तथा हार (pendants) इत्यादि बनाते थे जिनके लिए लोमड़ी पत्थरों का प्रयोग होता था साथ ही फियांस (faience) तथा पकी मिट्टी की चूड़िया भी बनाई जाती थी। पकी मिट्टी के खिलानों में बैल तथा पक्षि आकृतियाँ बनाई जाती थी। यहां सांप की पूजा भी की जाती थी क्योंकि यहां से बहुत सी पकी मिट्टी का उप आकृतियाँ मिली हैं जिनके सिर (hood) पर फूल इत्यादि रखने के लिए छेद बने थे। पाकिस्तान के गुमला तथा हथाला (Hathala) से भी प्रकार की आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं जिससे हमें सर्प की पूजा के प्रमाण नवपाषाण काल से ही मिलते हैं।

### दक्षिण भारत

दक्षिण भारत में नवपाषाण काल में मानव कृषि तथा पशुपालन करता था। भारत के सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक उत्खनन करने वाले हैं इनमें आंध्र के कोडेकाल, उत्तूर, नार्गाजुनीकोंडा, पलवाय, कर्नाटक के टेरेडल, टेकलकोटा, हल्लूर, टी. नरसिंहपुर, ब्रह्मगीर पिकलीहल, तमिलनाडू के पैयम्पल्ली इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। यहां से नवपाषाण की तिथि 2500-1000 ई. पूर्व के मध्य आंकी गई है। दक्षिणी भारत की नवपाषाण संस्कृति का विशेष स्वरूप है इसमें तीखे पिछले भाग वाली (Pointed Butt end), पालिशदार कुद छैनियों के साथ हड्डियों के उपकरणों का पाया जाना। मृदभांडों में हाथ के बने धूसर बर्तन जोकि पिकलीहल (Pikalihal) संगनकल्लु (Sangaukaliu) तथा ब्रह्मगीर (Brahmagiri) से प्राप्त हुए हैं मारकी से अधिकतर चाक पर बने बर्तन मिलते हैं। जो कि बाद के ही हैं।

## विस्तार

### प्रथम चरण

भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि पर आधारित जीवन, जिसमें गेहूँ, जौ, भेड़ बकरी, पशु इत्यादि की भूमिका हो, सर्वप्रथम ब्लूचिस्तान के कूच्ची मैदान में बोलन नदी (Bolan river) पर प्राप्त हुए हैं जिन्हें हम 7000 ई. पूर्व मान सकते हैं। इसके बाद भी अगली दो या तीन सहस्राब्दियों में यह प्रमाण ब्लूचिस्तान तक ही सीमित रहे। परन्तु इसके बाद प्रमाण झोब घाटी (Zhub Valley), क्वेटा घाटी (Quetta Valley) कलात पठार (Kalat plateau), लास बेला (Las Bela) मैदान इत्यादि में सीमित रहे। मेहरगढ़ के काल प्रथम (7000-6000 ई. पूर्व) में जौ जंगली तथा पैदा किए गए प्राप्त होते हैं। जबकि गेहूँ के कम प्रमाण मात्रा में प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त जंगली भेड़ बकरी गधा, हिरण, साभर तथा चितल, पानी की भैंस इत्यादि के साथ-2 इन्हें पालने के प्रमाण इन में भेड़ तथा पशुओं से घटते आधार से मिलते हैं। इस काल में मृदभांड बनाने का प्रमाण नहीं है (Aceramic Neolithic)। मृदभांड यहां काल II A में उपलब्ध होने शुरू होते हैं तो हाथ से बने हैं। मेहरगढ़ जैसी इस संस्कृति के प्रमाण हमें क्वेटा घाटी में किले गुल मुहम्मद (Kile Gul Mohammad) के काल प्रथा (5000-4500 ई. पूर्व)। झोब घाटी में राणा घुण्डाई (Rana Ghundai) के काल प्रथम से (4500-4300 ई. पूर्व कलात पठार में अंजीरा के काल प्रथम से भी हमें अर्द्धघुम्कड़) लोगों के प्रमाण मिलते हैं। जो पशु इत्यादि पालते थे।

**उत्तर पश्चिमी भारत :-** जहां तक भारत का प्रश्न है यहां पर उत्तर पश्चिमी भारत में काश्मीर के पुलवामा (Pulwama) जिले के गुफकराल (Gufkral) नामक स्थान से सर्व प्रथम हमें नवपाषाण काल के प्रारम्भिक काल के प्रमाण मिलते हैं। यहां से प्राप्त काल-IA मृदभांड रहित नवपाषाण है जिसमें उस काल में जमीन में गड्ढे खोद कर रहता था (Pit dwellings)। जो ऊपर से 150 मीटर से 3.80 मीटर व्यास के थे। प्रारम्भिक काल में ये अधिक गहरे नहीं थे तथा इनके आसपास अनाज संग्रहण के गड्ढे (Pits) तथा चुल्हे थे। इन पर घास फूस की छत बनाई जाती थी। जबकि इसके अगले चरण में दो चैम्बर (Two Chambered) रहने के गड्ढे भी बनने लगे थे। इस काल के चुल्हे आयताकार तथा वृताकार दोनों प्रकार के थे।

**उपकरण :-** इस काल में गुफकराल में रहने वाले पत्थर के पालिश दास उपकरणों का प्रयोग करते थे जिनमें कुल्हाड़ियां, प्वाइंट्स (Points), एक टूटा हुआ छेद वाला गोलाकार (ringstone) उपकरण, बड़ी सिल जो कि बट्टे के घिसने से बीच से घिस चुकी थी। इसके अतिरिक्त हड्डी पर बने प्वाइंटज (Points) तीराग्र, सूए, खुरचनीयां (Sirapers) के साथ-2 आंख वाली एक सूई इत्यादि प्राप्त हुई। आलंकरणों में यहां से सिलिन्डरनुमा हड्डी का मणका (bead), दो सेलखडी के जिनमें एक बैरल आकार का (barrel shaped) तथा एक सिलिन्डरनुमा था, प्राप्त हुए हैं।

**पशु :-** इस काल में मानव मुख्यतः जंगली शिकार पर आश्रित था तथा पालतु प्रजाति के पशुओं का केवल प्रारम्भ ही हुआ था। जंगली जानवरों में भेड़, बकरी, पशु (Cattle) बारासिंगा, लोमड़ी, हिरण की कई प्रजातियां थी। पालतु जानवरों में केवल भेड़ तथा बकरी के प्रमाण मिलते हैं।

**अनाज :-** इस काल में मानव जंगली जौ तथा गेहूँ इकट्ठा करता था तथा कुछ सीमित स्तर पर इन्हें उगाना भी प्रारम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त मसूर के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं।

इसके अतिरिक्त उत्तरप्रदेश की बेलन घाटी (Belan Valley) के कोल्डीहवा (Koldihwa) नामक स्थान से भी नवपाषाण से पहले मध्य पाषाण काल जंगली चावल के प्रमाण प्राप्त हुए बताए गए हैं। इसी तरह नवपाषाण में भी यहां चावल उपजाए जाने के प्रमाण हैं। यद्यपि यहां की तिथियों के बारे में तो विद्वानों में मतभेद है। परन्तु एक अन्य स्थल चोपानी मान्डो (Chopani Mando) से भी जंगली चावल के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसी तरह विन्ध्य क्षेत्र के एक अन्य स्थल कुन्जुन (Kunjhun) से नवपाषाण के कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं। इस से यह तो तय है कि इस क्षेत्र में सर्वप्रथम चावल जंगली अवस्था में स्वयं उगे मिलते थे तथा बाद में उनकी पैदावार शुरू कर दी गई क्योंकि कोल्डीहवा के धातु रहित (Metal free) स्तर से इस तरह के प्रमाण प्राप्त हुए हैं जबकि यहां मानव घास फूस पर गारा लगी दिवारों (Wattle and daub) वाले घरों में रहता था। पालिशवार कुल्हाड़ियों के साथ लष्पाषाण उपकरण प्रयोग करता था। यहां हाथ से बनाई मृदभांड (Pottery) के प्रमाण हैं जो कि ताम्राष्पीय संस्कृति से पहले के हैं।

### द्वितीय चरण

नवपाषाण काल की द्वितीय अवस्था में मानव ने कृषि कर्म पूरी तरह से शुरू कर दिया था तथा एक स्थान पर रहना, पशु पालना, मृदभांड कला का विकास इत्यादि प्रारम्भ को गया था। इस काल में मानव भोजन उत्पादक हो चुका था परन्तु इसके साथ-2 वह थोड़ा बहुत जंगली जानवरों का शिकार भी करने लगा था। भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण की यह अवस्था सबसे प्राचीन मेहरगढ़ में ही प्राप्त होती है। यहां के काल I में मानव ने कच्ची ईंटों के घरों में रहना प्रारम्भ कर दिया था, नवपाषाण कालीन पालिशदार

इस काल में मानव पशु पालन भलीभांति करता था भैंस, भेड़, बकरी के पालने के प्रमाण हमें मिलते हैं। कृषि का काइ साधन यहाँ नहीं मिलता परन्तु, सिलबट्टे, के दाने निकालने वाले मूसलों (Pounders) इत्यादि से इसका प्रमाण मिलता है। इसके अतिरिक्त नरकंकालों के घिसे दान भी इसी ओर प्रमाण करते हैं। कुछ बर्तनों में भूसे तथा दानों के निशानों से यहाँ गेहूँ, कुलथी, मूँग इत्यादि के प्रमाण मिलते हैं। परन्तु अधिकतर आर्थिकता पशुपालन पर आधारित थी। उत्तूर कोडेकाल, कुपगल से राख के अनेक टीले प्राप्त हुए हैं कुछ तो बस्तियों से दूर भी हैं। विद्वानों का मत है कि ये नवपाषाण कालीन पशुओं के बाड़ों के स्थल हैं जो कि गाबर के ढेरों को आग लगने से राख में परिवर्तित हो गए होंगे।

इस काल के लोग झोपड़ियों तथा घरों में रहते थे ब्रह्मगिरी, मास्की, पिकलीहल से लकड़ी के खम्बों से बनी गोलाकार झोपड़ियों के प्रमाण हैं जबकि पिकलीहल से आयताकार या वर्गाकार झोपड़ियों की दीवारे बांस के स्क्रीन (Screen) दोनों आर गारा लगाकर बनी है। फर्स गोबर या गारे से लीपे जाते थे यहाँ से चूने का प्रयोग होने के प्रमाण भी हैं। बाद में नवपाषाण कालीन मानव ने मिट्टी की या मिट्टी की ईंटों की दिवारों का भी प्रयोग घर बनाने के लिए किया। परन्तु प्राचीनतम घर या केवल फर्स इत्यादि थे जो कि चट्टान या कान्दराओं के सामुख बनाएगा।

पकी मिट्टी की आकृतियों में कूबडदार बैल नवपाषाण काल के प्रथम चरण से ही मिलने लगते हैं जो कि हाथ से बने थे, इनकी कूबड (hump) तथा नाक अलग मिट्टी लगा कर बने थे। क्योंकि बैल का इनकी आर्थिकता में काफी योगदान था इसी कारण यह उनका धर्म का भी रहा। जिसकी शायद वे पूजा करते थे। मानव आकृतियों में एक काले धूसर रंग की अर्धनारीश्वर जैसी आकृति महत्त्वपूर्ण है। नवपाषाण काल के तीन मानव कंकाल, जिनमें एक पुरुष, एक महिला तथा एक बच्चे का कंकाल है, से हमें उनके दफनाए जाने की प्रक्रिया का पता चलता है। पुरुष तथा स्त्री सीधे लिटाए गए थे जबकि बच्चा इनके साथ दफनाया गया था। इनके अध्ययन से पता चलता है कि इस काल के मानव लम्बे, हृष्ट पुष्ट, मध्य आकार के सिर वाले तथा जिनका उपरी जबड़ा थोड़ा बाहर के था। ये आज काल के दक्षिण भारतीय द्रविड़ लोग के समान ही थे।

### उपरीमध्य तथा पश्चिमी दक्कन क्षेत्र

इस क्षेत्र में कृष्णा तथा गोदावरी के अतिरिक्त इनकी सहायक नदियों से मुहाने से इस काल के प्रमाण अलग से तो नहीं मिलत बल्कि धातुक प्रारम्भिक चरण वाले काल या ताम्राभिय संस्कृति के साथ के हैं। परन्तु बीना की घाटी में ऐरण तथा दक्षिणी गुजरात में जोरखा से दक्षिणी भारतीय नवपाषाण कालीन नुकीले कुंदा सिरों वाली (butt ended) त्रिभुजाकार कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं।

उत्तरप्रदेश, में कोल्डीहवा के उत्तवनन से नवपाषाण संस्कृति का पता चलता है तथा इसी प्रकार महागरा भी एक महत्त्वपूर्ण स्थल है। इन दोनों स्थलों से स्थाई निवास, कृषि उत्पादन (चावल इत्यादि) तथा पशु पालन (भेड़, बकरी आदि) के प्रमाण मिलते हैं। रस्सी के चिन्ह वाले मृदभांड, पत्थर की कुल्हाड़ियाँ, छैनियाँ, बसौले इत्यादि अन्य प्रमाण भी प्राप्त होते हैं।

## नवपाषाण काल की विशेषताएँ (Characteristics of Neolithic Age)

### कृषि

नवपाषाण काल में सर्वाधिक क्रांतिकारी परिवर्तन कृषि की शुरुआत था। इस काल में मानव ने मिट्टी में बीज डालकर फसल उगाना शुरू कर दी। मानव ने इस काल में गेहूँ और जौ की खेती के अतिरिक्त चावल, बाजरे और मक्की के प्रमाण मिलते हैं। कपास की खेती के भी प्रमाण इस काल में मिलने शुरू हो गए। इस काल में सिंचाई व्यवस्था की शुरुआत भी हो गई थी। इस काल में कृषि के लिए उपर्युक्त फसलें और उनके अनुरूप कृषि के तरीके ही नहीं बल्कि भूमि की खुदाई के लिए और फसलों की कटाई, संध तथा अनाज पीसने के लिए सिलबट्टे तथा भोजन बनाने के लिए विशेष औजार, बर्तन तथा तकनीक प्रयोग में लाई गई। हलडी के बने उपकरणों का भी प्रयोग इस काल में हो चुका था जैसे :- मछली पकड़ने का काँटा इत्यादि। अनाज की अगली फसल पकन तक भण्डारण किए जाने के भी प्रमाण यहाँ से मिलते हैं। अन्न भण्डारण बर्तनों में किया जाता था।

मिश्र और मेसेपोटामिया के कुछ स्थलों से प्राप्त बर्तनों में लगी हुई चीजों के रसायनिक परीक्षण से पता चलता है कि यहाँ पर दूध के रूप में जौ को पेय बनाना भी इस काल के मानव के रूप में जौ की कर पेय बनाना भी इस काल के मानव ने सीखा लिया था।

### औजार बनाने की विशेष तकनीक

नवपाषाणकाल के मानव का बौद्धिक स्तर पूर्वपाषाणकाल स्तर से काफी विकसित हो गया था। इस समय जो औजार बनाए जा रहे थे उनमें से एक विशेष तकनीक अपनाई गई, उन्हें घिसकर और पॉलिश करके बनाया जाता था। सबसे पहले पत्थर को पलक उतारें जाती थी। फिर उबड़-खाबड़ हिस्सों को ठी किया जाता था। तत्पश्चात् उसकी घिसाई की जाती थी फिर उस पर Abrasive या कुछ तेल वाले वनस्पति पदार्थों आदि को लगाकर पॉलिश की जाती थी।

## औजार

इस प्रकार मानव ने चिकने चमकदार तथा सुडौल हथियार बनाने की विधि का अविष्कार किया इसमें कठोर पत्थर की पालिशदार कुल्हाड़ी प्रमुख है। इस काल में हथौड़े, छैनी, खुर्पा, कुदाल, हल, हसिया तथा सिलकर का प्रयोग किया जाने लगा। ये औजार कृषि और शिकार में प्रयोग किए जाने लगे। कम और ज्यादा मात्रा में प्रत्येक site से प्रमाण मिले हैं। भूमि खोदने के लिए सामान्यतः नुकीली छड़ी जिसके सिरे पर सुराख करके पत्थर लगा होता था, का प्रयोग होता था। परन्तु अधिकतर अफ्रीकी कबीले जमीन को खोदने में हल का प्रयोग करते थे। यूरोपीय तथा एशियाई जातियाँ भी ऐसा करती थीं।

## अन्य उपकरण

नव पाषाणकालीन मानव ने अपनी सुख-सुविधानुसार और भी उपकरणों का अविष्कार किया। उसने ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाई झीलों और नदियों को पार करने के लिए नाव का अविष्कार किया। फसल काटने के लिए दंराती, सूत कातने के लिए तकली तथा चरखा, कपड़ा बुनने के लिए करघों का निर्माण किया। इस काल के मानव को नरकूल की शाखाओं से सीढ़ियाँ बनाने की कला के बारे में भी जानकारी थी।

## कातने या बुनने की कला

इस काल में कपड़ा बुनने की कला का भी अविष्कार हो गया था। अब वे लोग खाल व पत्तियों के वस्त्र पहनने लगे थे। करघे का अविष्कार एशिया में नव-पाषाण काल में हुआ था। यह अविष्कार अवशेष मिस्त्र तथा पश्चिमी एशिया में मिलते हैं। इस युग के मानव ने चरखे, तकले तथा करघे की सहायता से कपड़ा बनाना शुरू कर दिया था। स्विटजरलैंड से कुछ कपड़े के अवशेष, मछली पकड़ने के जाल का एक टुकड़ा तथा टोकरी प्राप्त हुई है। नव-पाषाण गाँवों में कपास के प्रमाण मिले हैं। यहाँ कपास की खेती और भेड़-पालन होता था। अतः कपड़ों का व्यापक प्रयोग इस काल में शुरू हो गया था। सुईयों से वस्त्र सीले जाते थे।

## बर्तन निर्माण

यद्यपि मृदभांड कला के प्रचलन से पूर्व भी नवपाषाण काल का एक उपकाल अवश्य था तथापि मृदभांड होने की नवपाषाण काल की एक उपलब्धि माना जाता है। प्रारम्भ में तो ये बर्तन हाथ से, टोकरी की सहायता से बनाए जाते थे परन्तु बाद में चाक का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। इस काल में मानव अपनी आवश्यकतानुसार बर्तन बनाने लगा था। बर्तन चाँक पर भी बनाए जाते थे। अवशेषों में इस काल के पॉलिशदार मृदभांड भी मिली है जो पकाने पर Pate या Pink रंग की हो जाती थी। पाकिस्तान के मेहरगढ़ से भी इसके प्रमाण मिले हैं।

## पशुपालन

इस काल में कृषि के साथ-साथ मानव ने पशु पालन की आवश्यकताओं का अनुभव किया। पशु कृषि में तो सहायक होते ही थे, साथ ही इनसे दूध तथा मांस की प्रप्ति भी होती थी। इस काल में कुत्ता, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर तथा बैल आदि पाले जाने लगे। ये पशु उस समय के मानव की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक, अर्थात् मांस और दूध का स्रोत भी ये पशु ही बने, सिलाई-बुनाई के लिए भेड़ों से प्राप्त होने वाले रेशों का इस्तेमाल किया जाता था। पहिए के अविष्कार के परिणामस्वरूप पहले-पहले बोझ को ढोने या आवागमन के लिए पशु का ही प्रयोग किया गया। सम्भवतः इस काल का पहला पालतु जानवर कुत्ता था। इस काल में मनुष्य पशुओं से काफी परिचित हो चुका था। वह यह समझने लगा था कि अगर पशु उनके समीप रहेंगे तो हव जब चाहेगा इनका शिकार कर सकेगा। इसलिए वह अपने खेतों से उत्पन्न चारा उन्हें देने लगा था। धीरे-धीरे आवश्यकता एवम् उपयोगिता के अनुसार पशुओं की संख्या बढ़ती चली गई।

## उद्योग धंधे

इस युग में कृषि अविष्कार हो जाने से मानव भोजन की तलाश में इधर-उधर नहीं भटकता था। उसके जीवन में स्थिरता और वह अपना भरण पोषण एक की स्थान पर रहकर करने लगा। समय की उपलब्धता ने उसे उद्योगों एवं व्यवसायों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस युग में चाक का अविष्कार हुआ जिससे मिट्टी के बर्तन बनाए जाने लगे। पहिए के अविष्कार से यातायात के साधनों का विकास हुआ। मानव ने घोड़ों तथा बैलों की सहायता से खींची जाने वाली गाड़ियाँ बनाई। कृषि के विकास से कपास उगाई जाने लगी जिससे वस्त्र निर्माण उद्योग भी विकसित हुआ। इस काल में मछली मकड़ने के लिए जाल प्रयोग में लाया जाता था। इसके प्रमाण मिले हैं, इससे स्पष्ट होता है कि मछली उत्पादन करने लगे थे। जलमार्ग से यातायात के लिए नाव का निर्माण किया।

## व्यापार एवं दूरस्थ क्षेत्रों से सम्पर्क

देखा जाए तो ऐसा लगता है नवपाषाणकालीन गांव आत्मनिर्भर थे। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वे स्थानीय क्षेत्रों से ही पूरी कर



नवपाषाण कालीन संस्कृतियों

लेते थे। किंतु शायद कोई भी नवपाषाण समुदाय पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं था। आरम्भिक नवपाषाण गाँव और कब्रों में पत्थर का प्रयोग मिलता है जो दूरस्थ स्थानों से आया जैसा कि सीप, जो कि भूमध्यसागर या लाल सागर से लाई गई थी। जिन्हें अच्छे किस्म का काटने वाला पत्थर, बढ़िया किस्म का चकमक पत्थर आदि दूर-दूर से लाए जाते थे। यातायात के साधनों के विकास ने व्यापार में प्रोत्साहित किया। व्यापार वस्तु विनिमय पद्धति पर आधारित था। इस प्रकार हम देखते हैं कि नव-पाषाण कालीन समुदाय की आत्मनिर्भरता वास्तविक नहीं थी। इस काल में दूर दराज के क्षेत्रों से सम्पर्क शुरू हो गया था जैसे बिहार की चिरान्द नामक स्थल से प्राप्त नाग मूर्तियाँ पाकिस्तान के गुमला, हथियाला से प्राप्त मूर्तियाँ जैसी ही है। काश्मीर के बुर्जहोम से प्राप्त एक बलन पर चित्र सिंग वाले बैल का चित्रण भी गुमला से प्राप्त चित्र के सर्दृश है इससे इन क्षेत्रों के आपस के सम्पर्क का पता चलता है।

### आर्थिक व्यवस्था

नवपाषाण काल में नए-नए अविष्कार के परिणामस्वरूप मनुष्य का आर्थिक जीवन सुदृढ़ हो गया था। स्थाई कृषि व्यवस्था से उत्पादन में वृद्धि हुई। अब मनुष्य का सम्पत्ति के प्रति लगाव बढ़ने लगा था। अपने परिवार के लिए उपयोग की वस्तुओं के संग्रह में व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना को जागृत किया। नव पाषाण काल में विनिमय व्यापारिक अर्थव्यवस्था प्रचलित थी। इस काल में मनुष्य ने रेशदार फलों का उत्पादन आरम्भ कर दिया था। नवपाषाण अर्थव्यवस्था में विशेषकरण में चिन्ह प्रारम्भ हो गए। नवपाषाण कालीन समुदाय चकमक को खदानों से निकालने लगे थे। ये खान खोदने वाले वास्तव में खान खोदने के विशेषज्ञ थे।

### श्रम विभाजन

इन नवपाषाण कालीन समाजों में किसी प्रकार का औद्योगिक श्रम विभाजन नहीं था। श्रम विभाजन था तो केवल श्रम स्त्री-पुरुषों के बीच था। स्त्रियाँ खेत जोतती थीं। अनाज पीसती थीं और पकाती थीं कातकर और बुनकर कपड़ा तैयार करती थीं। बर्तन बनतीं और उन्हें पकाती थीं। दूसरी तरफ पुरुष शायद खेत साफ करते झोपड़ी बनाते, जानवर पालते, शिकार करते और औजार व हथियार बनाते थे। समाज में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी और प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि समाज मातृप्रधान था।

### स्थायी जीवन को प्रोत्साहन

पूर्व पाषाण काल में मनुष्य अपनी उदरपूर्ती के लिए इधर-उधर घूमता रहता था। परन्तु नवपाषाण काल में कृषि कार्य पशुपालन तथा नए-नए अविष्कारों के कारण स्थाई रूप से रहना आरम्भ कर दिया। स्थायी रूप से रहने के लिए उसे घर की आवश्यकता महसूस होने लगी। प्रारम्भ में वह झाड़ों, घास-फूस व पत्तों का घर बनाकर रहता था। Pit-houses और Mud-houses के प्रमाण लगभग सभी नवपाषाण कालीन स्थानों पर मिले हैं नवपाषाणकालीन यूरोप और एशिया की जनसंख्या छोटे-छोटे समुदायों के रूप में गाँवों में रहती थी। नवपाषाण काल में सुरक्षा के लिए बस्तियाँ ऊँचे स्थानों पर बसाई जाती थीं।

### सामाजिक व्यवस्था

नवीन अविष्कारों से मानव जीवन सामाजिक व्यवस्था में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। एक स्थान पर इकट्ठा रहने से उनमें समूह के संगठन आया जिसमें सब सदस्य मिल जुलकर कार्य करते थे। अनुमान है कि सामाजिक संगठन की इकाई कबीला था। इस कबीले के अपने-अपने चिन्ह होते थे। जिन्हें कबीले के सदस्य अपना आदि-पूर्वज मानते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार इस काल में राज का अस्तित्व आरम्भ हो गया था। परन्तु इसके बारे में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

सामाजिक व्यवस्था में विवाह की नियमित व्यवस्था चल पड़ी। व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रथा से आपसी संघर्ष को बढ़ावा मिला। आपसी संघर्ष तथा युद्ध में जो शत्रु पकड़े जाते थे। उनसे दबाव देकर काम कराया जाता था। इस प्रकार गुलाम की प्रथा भी चल पड़ी। कालान्तर में नगरों की भी स्थापना होने लगी।

इस प्रकार नव-पाषाण कालीन सामाजिक व्यवस्था पूर्व-पाषाण काल की व्यवस्था से काफी विकसित थी।

### धर्म

नवपाषाण काल में मानव अपने मृतकों को दफनाया करता था जिसके प्रमाण सभी क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। कब्रों में मृतकों के साथ कुछ पालतु पशु जैसे कुत्ता, बिल्ली इत्यादि को भी दफनाया जाता था जिसका प्रमाण हमें उत्तरपश्चिमी भारत के कई स्थानों (गुफकराल तथा बुर्जहोम) से प्राप्त होता है। मृतकों के साथ अन्य काम में आने वाली चीजों औजारों को रख देना आम बात थी। इस जन्म से दूसरे जन्म की आस्था इन लोगों को थी इसीलिए मृतकों के साथ भाजन भी रखा जाता था।

बैल की आकृतियाँ तथा चित्रण इस काल में काफी मिलने लगा था। क्योंकि इनकी आर्थिकता में इस पशु का काफी महत्व था। इसलिए इसकी पूजा भी की जाती थी। मातृदेवी की पूजा का द्योतक नवपाषाण के स्थलों से पाई गई। पकी मिट्टी की रक्षा आकृतियों से लगाया जा सकता है। दक्षिण भारत के एक स्थल से एक ऐसी आकृति भी मिली है जो अर्धनारीश्वर जैसी प्रतीत होता है।

## कला

इस काल में कला का विकास हो चुका था जो उन द्वारा बनाई गई मृन्मूर्तियों तथा मृदभांडों पर बने चित्रणों से होता है।

## ज्ञान विज्ञान

इस काल के मानव का ज्ञान-विज्ञान पूर्व-पाषाण कालीन मानव के ज्ञान-विज्ञान से बहुत ही उन्नत था। उन्होंने शताब्दियों के प्रयोगों और अनुभवों द्वारा बहुत सी नई जानकारियां प्राप्त कर दी थीं। नवपाषाण कालीन समुदायों के पास नए विज्ञान जैसे बर्तन बनाने का रसायन विज्ञान, पेय पदार्थ बनाने का विज्ञान या कृषि से सम्बन्धित वनस्पति विज्ञान और अनेकों ऐसे विज्ञान थे जो पुरापाषाण काल में अनजाने थे। उन्हें इस बात की भी जानकारी थी कि कृषि का जलवायु से घनिष्ठ संबंध होता है।

नवपाषाण काल वास्तव में एक क्रांतिकारी और युग प्रवर्तक काल था। इसे प्रगति का महान युग कहा जाता इस युग में बड़े की क्रांति अविष्कार हुए। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए मानव ने इस युग में प्रयास किए मनुष्य ने प्राकृति साधनों का प्रयोग करना इसी काल में सीखा, जिससे उसमें नई आशा उत्साह तथा उपलब्धि का संचार हुआ। इस काल में मानव सभ्यता का आधार वास्तव में स्थापित हो चुका था। इसी कारण इतिहासकारों ने इस युग को मानव सभ्यता का प्रथम क्रांतिकारी चरण माना है। इस काल के मानव में मनुष्यता तथा विवेक की जागृति हो चुकी थी।

## ताम्रपाषाणीय ग्रामीण संस्कृतियां

नवपाषाण काल में कृषि की शुरुआत के साथ ही मानव के जीवन में स्थायित्व आ गया था और साथ ही उसने पशुपालन की भी शुरुआत कर दी थी। इस काल का मानव अब खाद्य संग्रहकर्ता से खाद्य-उत्पादनकर्ता बन गया था। कृषि कर्म में प्रायः स्त्रियां संलिप्त रहती थी तथा शिकार में पुरुष संलग्न थे। हालांकि कृषिकर्म अभी विस्तृत पैमाने पर नहीं था। चाक पर निर्मित मृदभांडों की शुरुआत हो चुकी थी, लेकिन अधिकतर टोकरी पर बने, हाथ निर्मित और घुमावदार तरीके से बनाए जाते थे। यह कार्य इस काल के मानव में अन्य कार्यों के साथ ही किए। मिश्र में फायूम तथा मेरिमदे नामक स्थलों पर तरीके से कृषि करने के प्रमाण नवपाषाण में मिलने शुरू हुए। सिंचाई व्यवस्था की भी शुरुआत हो चुकी थी। लेकिन इन सभी उपलब्धियों के लिए किसी प्रकार के विशेषीकरण की अभी आवश्यकता नहीं थी।

कालान्तर में जब मानव स्थायी तौर पर बसने लगा तथा जनसंख्या की वृद्धि के कारण उनके भरण-पोषण के लिए जब अतिरिक्त अन्न की आवश्यकता पड़ी, तो इस जरूरत को पूरा करने के लिए नई तकनीक के विकास पर जोर दिया गया। तकनीकी क्षेत्र में यह परिवर्तन लाने में धातुओं के अविष्कार का बड़ा योगदान है। जिसके कारण इस समय के समाज में आमूल परिवर्तन आए। सर्वप्रथम मानव में जिस धातु का प्रयोग करना सीखा वह तांबा था। इसके पीछे कारण यह था कि तांबे तथा अन्य अलोह धातुओं से निकालना आसान है। क्योंकि इनकी गलाने की मात्रा कम है। तांबे को प्रयोग में लाने के लिए उसे उसके धातुज्ञान का होना आवश्यक था। पहले उसे अलग करना या इससे पूर्व उसे जैसे ही पीट-पीट कर द्वारा औजार बनाए जाने थे या तांबे को गलाकर धातु अलग करना इसे तरीका कहते हैं। इसके लिए पर्याप्त तापमान का होना आवश्यक है। यह समस्त कार्य एक विशेषज्ञ ही कर सकता है। इस प्रकार समाज के ऐसे निपुण वर्ग की उत्पत्ति हुई जो अन्न उत्पादन की प्रक्रिया में लगा हुआ था। इस वर्ग की खाद्य जरूरतों की पूर्ति कृषक वर्ग करता था तथा कृषकों के लिए औजार तथा वस्तुओं की पूर्ति यह कारीगर वर्ग करता था। दूसरे शब्दों में समाज के वे दोनों वर्ग एक-दूसरे पर आश्रित हो गए थे।

इस प्रकार इस काल में जब पाषाण के औजारों के साथ-साथ तांबे के औजारों का भी प्रयोग किया जाने लगा तो यह काल ताम्रपाषाण काल कहलाया। तांबे से निर्मित औजार पत्थरों के औजारों से ज्यादा प्रभावशाली थे, क्योंकि ये उनकी अपेक्षा तीखे थे और इन्हें किसी भी आकार में आसानी से ढाला जा सकता था। दूसरा तांबे से औजारों का निर्माण करना भी आसान था क्योंकि इसे पिघलाना आसान था और बाद में इसे कोई भी आकार देना भी सरल था।

तांबे के ज्ञान तथा इसके औजारों के प्रयोग से समाज में न केवल एक नए वर्ग का उदय हुआ हालांकि इसके साथ ही नवपाषाणकालीन समाज की आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन की आर्थिकता का उदय हुआ। क्योंकि समाज के इस विशेष कारीगर वर्ग को उसी अतिरिक्त उत्पादन में से ही अनाज दिया जाता था। दूसरे, तांबा सभी स्थानों से मंगवाया जाता था। इस कारण इस काल में व्यापारिक गतिविधियों की भी शुरुआत हुई। प्रारंभ में यह विनिमय प्रणाली (वस्तुओं के आदान-प्रदान) पर आधारित थी। वन गति-विधियों को बढ़ावा देने में घुमकड़ कबीलों या जातियों का विशेष योगदान रहा क्योंकि एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में घुमते रहने के कारण इन्हें विभिन्न प्रदेशों के प्राकृतिक संसाधनों की पूरी जानकारी रहती थी।

ताम्रपाषाणीय युग में धातु ज्ञान के अतिरिक्त और भी बहुत चीजों का अविष्कार हुआ जैसे कुम्हार की भट्टियां और चाक इत्यादि। इससे बर्तनों को अच्छी तरह बनाया तथा पकाया जा सका। इस कार्य को भी निपुण व्यक्ति या वर्ग ही सम्पन्न कर सकता था साधारण

नवपाषाण कालीन संस्कृतियाँ

व्यक्ति नहीं। इसलिए मृदभांडों का निर्माण करने वाला एक अन्य वर्ग (कुम्हार वर्ग) भी इस काल में अस्तित्व में आया, जो अन्य उत्पादन गतिविधियों में किस्स नहीं लेता था।

इस काल में चूंकि कृषि से अधिक अन्न उत्पादन की आवश्यकता थी तो इसके लिए भी कृषि में नए-नए तरिकों का अविष्कार हुआ। अभी तक कृषि का कार्य अधितर स्त्रियां ही करती थी परन्तु अन्न उत्पादन की मांग में वृद्धि होने के कारण मानव ने बला द्वारा हल खींच कर खेती करना आरंभ कर दिया। इस प्रकार उसने पशु शक्ति को काबू कर अपना प्रभुत्व भी बढ़ा लिया। इस काल के मानव ने व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा को अपना लिया। जिसके पास ज्यादा धन उसका ज्यादा महत्व। इसके साथ-साथ ईंटों का घा बनाना, मुद्रांक का प्रचलन भी इस काल में शुरू हुआ जो व्यक्तिगत संपत्ति तथा शक्ति का द्योतक था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ताम्रपाषाण युग विशेषीकरण का काल था। इसके अतिरिक्त पहिए वाली गाड़ी की शुरुआत हो गई जिसमें एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना आसान हो गया।

### सामाजिक जीवन (Social Life)

यद्यपि इस काल में लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था लेकिन इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शिल्प उद्योग भी अस्तित्व में आ गए थे। जैसे: धातु विशेषज्ञ, कुम्हार, कारीगर इत्यादि। इस प्रकार वर्ग की कार्य निपुणता इस काल में देखने को मिलती है समाज के विभिन्न वर्ग एक-दूसरे पर आश्रित थे। प्रत्येक वर्ग का प्रत्येक काम के लिए विशेषीकरण देखने को मिलता है। इस काल में लोगों ने विशेषीकरण में अत्यधिक विकास किया जिसकी भरपाई कृषकों द्वारा अतिरिक्त उत्पादन करके की गई। यहाँ भी पितृसत्तात्मक समाज देखने को मिलता है। इस काल कुम्हारों तथा अन्य शिल्पियों के प्रशिक्षण कार्य में शिक्षा पुत्र का या शिष्य को दी जाती थी तथा लोगों के स्थानतरण के प्रमाण मिलते हैं। ये लोग प्रायः व्यापार विनिमय द्वारा ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि था। भारतीय स्थलों में इनाम गांव प्रमुख है जो कृषि पर ही आधारित ग्रामिण व्यवस्था में रहते थे। यहाँ पर जातीयता के प्रमाण सरदार के घर के प्रमाण बस्ती के केंद्र में होने से मिलते हैं। यहाँ पर अन्न संग्रह के लिए भी स्थान मिले हैं।

### घर निर्माण

इस काल में लोग मुख्यतः स्थायी रूप से कच्ची ईंटों या सूर्य की रोशनी में सुखाई ईंटों के बने घरों में रहते थे। लोग गावा में रहते थे जो खंडहरों के ऊपर बसाए जाते थे। यहाँ पर घर खांचे में तली सूर्य की धूप में पकी ईंटों से बनाए जाते थे। परन्तु कुछ स्थानों पर जैसे राजस्थान के क्षेत्र में कुछ घरों में पत्थरों के भी दीवारों के प्रमाण मिलते हैं। इसके विपरीत दक्कन क्षेत्र में घरों के प्रमाण जमीन के नीचे मिलते हैं जिनके छोटे कमरे होते थे। ये लोग चूने से निर्मित फर्श तथा दीवारों पर प्लास्टर करते थे। इनाम गांव में चूल्हा सहित बड़ी-बड़ी कच्ची मिट्टी के मकान और गोलाकाट गढ़दों के मकान मिले हैं। यहाँ पर एक घर ऐसा मिला है जहाँ पर चार कमरे आयताकार एवं एक कमरा वर्गाकार है। यहाँ पर अन्न संग्रह तथा राजस्व के एग्रीकरण के लिए अलग से व्यवस्था देखने को मिलती है।

### औजार

इस समय जो सबसे अधिक एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है वह है इस काल के औजारों में आया परिवर्तन, क्योंकि अनेक विभिन्न आकृतियों में सुगमता से ढाल कर तथा पीटकर अधिक प्रभावशाली तथा मजबूत औजार बनाए जाते थे। हल्क में तांबे के साथ पत्थर तथा हड्डियों से बनाए गए औजारों के भी प्रमाण मिलते हैं। तांबे के औजारों में मुख्यतः चाकू तथा छुरी प्राप्त हुए हैं। स्थल में युद्ध अन्न के प्रमाण मिलते हैं क्योंकि यहाँ पर मछली पकड़ने का कांटा, बरछी, तलवार जोकि तेज धार वाले तांबे से बनाए गए औजार थे। ये औजार एक बार टूटने पर दोबारा ढाले जा सकते थे। इस प्रकार सभी स्थलों से प्राप्त औजारों में अधिकता तांबे के औजारों की मिलती है।

### कला

इस काल के मृदभांडों में विशेष रूप से परिवर्तन देखने को मिलते हैं। सभी स्थलों पर तेज गति से घूमने वाले चाक पर बनाई गई मृदभांड के प्रमाण मिलते हैं। जोरवे (Jorwe) में कुम्हार द्वारा पहिए पर सुंदर बर्तन के बारे में प्रमाण मिलते हैं। यहाँ पर शिल्प के बारे में भी प्रमाण मिलते हैं। यहाँ पर चरखें व तकलियाँ मिली हैं जिनसे इनके सूत कातने तथा वस्त्र निर्माण के प्रमाण मिलते हैं। ये चाकों पर मृदभांड भी बनाते थे। इन्होंने कला के क्षेत्र में विशेषीकरण प्राप्त था। इस काल में सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र तथा बट ईंटों के भी प्रमाण मिलते हैं तथा ये काफी डिजाइन की मिलती है। यहाँ पर हाथी दाँत से वस्तुएं तथा पकी मिट्टी की मूर्तियाँ भी प्रमाण होती है। इसी तरह लगभग सभी स्थलों पर बैलगाड़ियों के प्रमाण मिलते हैं। इनामगांव के शिल्पकार अधिक कुशल थे, यहाँ पर विशेषतः कार्नेलियन, स्टेटाइट, क्वार्टज, क्रिस्टल जैसे महंगे पत्थरों के मोती मिलते हैं।

### आर्थिक स्थिति (Economic Condition)

इनके आर्थिक जीवन में मुख्यतः व्यापार कृषि तथा पशुओं के बारे में जानकारी मिलती है।

1. कृषि: ताम्रपाषाण काल की लगभग सभी स्थलों की अर्थ व्यवस्था कृषि पर निर्भर थी। कुछ स्थलों पर अतिरिक्त उत्पादन का

लिए विभिन्न उपायों का प्रयोग किया गया। ये प्रायः कृषि को जोतने के लिए पशुओं का प्रयोग करते थे। इनकी मुख्य फसलें जौ, गेहूँ, बाजरा, चावल, मसूर तथा दालें तथा तिलहन थी इसके अलावा कुछ स्थलों पर सब्जियों के उत्पादन के प्रमाण मिलते हैं। कुछ स्थलों जैसे इनाम गांव से सूत के भी प्रमाण मिले हैं।

क्योंकि इस काल में कृषि करने के लिए बधिय कर जूले (yoke) की साथ बैलों का प्रयोग कृषि में करने लग गए थे इस लिए इन पशुओं को विशेष बाड़ों में रख अच्छी तरह खिलाया जाता था इन का गोबर इक्कठा कर खेतों में खाद के रूप प्रयोगों कर अधिक फसल ऊगाई जाने लगी।

2. **पशुपालन:** काफी मात्रा में पशुओं का पालतू बनाया जाना नवपाषाण में ही गया था परंतु अब यह और भी अधिक देखने को मिलता है। स्थालक में गाय, भेड़, बकरी इत्यादि को पालतू बनाया जाना देखने को मिलता जिनका प्रयोग दूध एवं मांस के लिए किया जाता था। बैल तथा ऊँट को भी पालने के प्रमाण मिलते हैं जिनकी सहायता से कृषि की जाती थी। ये इनका प्रयोग स्थलों से ताम्बे तथा हड्डी के बने मछली पकड़ने के कांटे प्राप्त हुए हैं जो मछली इत्यादि के शिकार के प्रमाण मिलते हैं। हल जोतने में काम लाने के लिए इस काल में बैलों को बधिया करने का काम शुरू किया गया तथा जूलो (Yoke) का प्रयोग इस काल में ही हुआ और भार वाहक के रूप में बैलों का प्रयोग दो तथा चार पहिए की (Wheeled) ढकी हुई गाड़ियों में किया जाने लगा।
3. **व्यापार:** ताम्राष्पीय काल में व्यापार का अत्यधिक प्रचलन देखने को मिलता है। लगभग सभी स्थलों पर अतिरिक्त उत्पादन किया जाता था जिसका मुख्य उद्देश्य व्यापार करना था। कीमती पत्थरों, धातुओं इत्यादि के आयात के लिए कृषि उपजों को दिया जाता था। जिन्हें इन लोगों को जरूरत से अधिक उपजाना पड़ता था ताकि वस्तु विनिमय के आधार पर व्यापार में इन्हें प्रयुक्त किया जा सके। बैल गाड़ियों का प्रयोग व्यापार के लिए किया जाता था।
4. **धर्म:** यहां पर लगभग सभी स्थलों से लोगों की धार्मिक आस्था का पता चलता है लोग मृतकों का संस्कार एक विशेष विधि द्वारा करते थे। मृतकों के साथ खाने पीने की चीजें, आंगन में दबाते थे। इस काल में बैल की भी पूजा की जाती थी। उनका प्रयोग मांस, दूध तथा भारवाहक के रूप में मिलता है यहां ऊँट का प्रयोग मरुस्थल को पार करने के लिए किया जाता था। परन्तु इनामगांव में ये लोग विशेष रूप से उत्तर दक्षिण की ओर गाड़ते थे। यहां पर सभी स्थानों से किसी अराध्य देवी की पूजा के प्रमाण मिलते हैं।

### भारत में ताम्राष्पीय संस्कृतियां (1750-1000 ई. पूर्व)

भारत में हड़प्पा सभ्यता की नगरीय संस्कृति के पश्चात् स्थानीय तथा ग्रामीण ताम्राष्पीय संस्कृतियों का उद्भव हुआ जब मान गांवों में मिट्टी के बने घरों में रहता था। यहां के कृषक अपनी जमीन जोतते थे तथा पशुपालन करते थे। मृदभांडों से साथ ताम्बे की वस्तुओं का प्रयोग होना इस काल की विशेषता है। क्योंकि ये कृषक आवश्यकता से अधिक अन्न उपजा नहीं सकते हैं इस कारण न तो विकसित धातु क्रम ही प्रारम्भ हो सका न ही शहरीकरण हुआ। भारत में अलग-2 स्थानों पर ताम्राष्पीय संस्कृतियां विकसित हुई। यद्यपि उनका भोजन उत्पादन तथा तकनीक का स्तर तो एक समान ही रहा परन्तु अलग-2 के मृदभांडों के प्रयोग के कारण वे एक दूसरे से भिन्न की जा सकती है तथा तिथिक्रम में 1750 से 1000 ई. पूर्व के मध्य में इन्हें रखा जा सकता है।

विभिन्न नदियों की घाटियों में हजारों की संख्या में भारत में ताम्राष्पीय स्थल प्राप्त हुए हैं तथा इनमें से बहुत से उत्खनित भी हो चुका है। इस कारण उनके जीवन शैली का ज्ञान हमें भली भांति हो जाता है। भारत की ताम्राष्पीय संस्कृति 6 मुख्य क्षेत्रों में पनपी। इन में राजस्थान की आहाड या बनास संस्कृति (2) मध्य प्रदेश की ताम्राष्पीय संस्कृति (3) उत्तरी दक्कन की संस्कृति (4) दक्कन की ताम्राष्पीय संस्कृति (5) गंगा दोआब की ताम्राष्पीय संस्कृति तथा (6) पूर्व की ताम्राष्पीय संस्कृति।

राजस्थान की ताम्राष्पीय संस्कृति के मुख्य स्थल अहाड बागोर तथा गिलुण्ड हैं जो कि 2000 ई. पूर्व के आसपास की तथा सफेद चित्रों वाली काले तथा लाल (Black & Red) मृदभांड प्रमुखता मिलते हैं जिनमें कुछ बर्तन हड़प्पा संस्कृति से प्रभावित है तथा सौराष्ट्र तथा मालवा की संस्कृतियों के अतिरिक्त इस संस्कृति के ब्लूचि स्थलों से भी सम्पर्क रहे। उत्खनन में पत्थर की नींव वाले मिट्टी के घरों के प्रमाण मिले। इनके गेहूँ पैदा करने के प्रमाण हैं तथा गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर इत्यादि पालते थे। जो इनके भोजन का अंग थे इसके अतिरिक्त मछली, कछुआ, बटेर इत्यादि वे खाते थे ताम्बे की कुल्हाड़ियां, बलेड, आदि औजारों के अतिरिक्त ताम्बे के गहने, जैसे अंगूठियां, चूड़ियां इत्यादि भी मिलती हैं।

मध्य प्रदेश की ताम्राष्पीय संस्कृति के महत्वपूर्ण स्थल कायथा महेश्वर, नावदातोली, नागदा, अवरा, मनोटी, ऐरण, बेसनगर इत्यादि हैं जहां के उत्खनन से इस संस्कृति का ज्ञान होता है। यहां पर समुहों में (clusters) में झोंपड़ियां बनाई जाती थी तथा कच्ची ईंटों के घर तथा नागदा, ऐरण इत्यादि में सुरक्षा दिवार के भी प्रमाण है। मृदभांडों में कायथा प्रकार के मृदभांड, लाल तथा काले मृदभांड, काले डिजाइन वाली लाल मृदभांड जिसे मालवा मृदभांड (Malwa ware) के अतिरिक्त सफेद लेप वाली (नावदा तोली) मृदभांड कला महत्वपूर्ण है तथा धूसर रंग थी जोरवे मृदभांड कला (Jorwe ware), धूसर मृदभांड इत्यादि हैं। इन मृदभांड कलाओं के बने कप,



नवपाषाण कालीन संस्कृतियाँ

कटोरे, धालियाँ, चाय का बर्तन (Tea Pot) काफी सुन्दर थे। यहां पर बहुत से प्रकार के अनाज तिलहन, दाले तथा फल पदार्थों के प्रमाण हैं। पशुओं में बैल, गाय, सूअर, भेड़, बकरी, हिरण तथा घोड़ा इत्यादि पालते तथा खाते थे। मछली पकड़ने का भी यहाँ प्रमाण था। ताम्बा तथा कांसे के औजारों तथा गहनों के अतिरिक्त सोने के गहने, बहुमूल्य पत्थरों के मणके का प्रयोग करते थे। पकी मिट्टी के खिलौने काफी मात्रा में इन स्थानों पर मिलते हैं जिनमें बैल, पक्षी इत्यादि प्रमुख हैं।

उत्तरी दक्कन क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थल अहमदनगर जिले के जोरवे (Jorve), नेवासा तथा दैमाबाद, पूर्ण के चन्दोली, सानगाव तथा इनामगाव (Inamgaon) के अतिरिक्त प्रकाश तथा बहल इत्यादि हैं जिससे यहां की संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। इनामगाव तथा नेवासा में गड्ढे खोद कर बने घर (Pit houses) के प्रमाण हैं बाद में आयताकार घर भी बनने लगे जिनकी छतें घास फूस की बनी थी। इनामगाव में पत्थरों तथा मिट्टी से बनी किले की दिवार भी मिली है। मृदभांड में सर्वप्रथम पीले धूसर रंग के सफेद डिजाइन वाले बर्तन प्रकाश तथा नेवासा से प्राप्त हुए। उसके बाद मालवा प्रकार के काले रंग से चित्रित लाल मृदभांड जिनमें टोटीदार लोटे महत्त्वपूर्ण हैं मिलने शुरू हुए। परन्तु दैमाबाद (Daimabad) से सुन्दर बर्तन मिले हैं परन्तु प्रमुख प्रकार थी जोरवे (Jorve), प्रायः मृदभांड जिनमें लोटे, कटोरे, टोटीदार बर्तन प्रमुख हैं जिन पर स्वस्तिक पशु आकृतियाँ तथा जामितिय (Geometric) डिजाइन बने हैं। ये लोग कपास, सण (flax) तथा रेशमी कपड़े पहनते थे तथा ताम्बे, हाथी दांत, कीमती पत्थरों के मणके के साथ—2 हड्डी तथा पकी मिट्टी के गहने भी पहनते थे ताम्बे का प्रयोग औजार बनाने के लिए होता था जिनमें कुल्हाड़ियाँ, छैनियाँ, छुरे, मछली पकड़ने के कट इत्यादि प्रमुख थे। यहां के कृषक गेहूँ, जौ, बाजरा, तिलहन, चना, मटर पैदा करते थे। बेर, खजूर के प्रमाण भी मिले हैं पशुओं में भेड़ बकरी, गाय, भैंस, गधा, घोड़ा पालते थे तथा बराहसिंग, नीलगाय, हिरण, साम्भर, तीतर, बटेर का शिकार तथा मछली इत्यादि पकड़ते थे। अपने मृतकों के साथ बर्तन, भोजन इत्यादि रखते थे।

दक्षिण भारत में बहुत से स्थानों से ताम्राष्पीय संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। इनमें ब्रह्मगिरी, मास्की, पिकलिहल, सगनकल्लु, टैकलकोटा हल्लूर, उत्तूर, कुपगल, टीनरसिंहपुर इत्यादि से इस संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। जिसकी विशेषता यह है कि यहां नवपाषाणीय उपकरण भी प्राप्त होते हैं जिस कारण इस संस्कृति को नवपाषाण—ताम्राष्पीय संस्कृति कहा जाता है।

गंगा दोआब में भाद्राबाद, बड़गांव, अम्बाखेड़ी, बरिछत्रा, अतरंजीखेड़ा, आलमगीरपुर नोह इत्यादि से ताम्राष्पीय संस्कृति के प्रमाण हैं। यहां गेरु रंग के बर्तनों के साथ ताम्बे की निधियाँ भी प्राप्त हुई हैं। गेरु रंग के बर्तन उत्तर हड़प्पा संस्कृति से मिलते जुलते हैं इसी कारण कई विद्वान इन्हे हड़प्पायी रफूजी (Refugee) भी कहते हैं। ताम्बे के औजारों में कुल्हाड़ियाँ, हारपून, हुकवाला भाला मूठे वाली तलवार, पुरुष आकृति (anthropomorphic figure) इत्यादि हैं।

पूर्व की ताम्राष्पीय संस्कृति के प्रमुख उत्खनित स्थल बिहार के चिरान्द, सोनपुर, वैशाली, मनेर, ओरपूप, बंगाल के पांडुराजर धीबी महिस्दाल, ननुर, हरईपुर (बीरभूम जिला) बंकुरा का थुसीपुर इत्यादि हैं। यहां पर सामान्यता काली तथा लाल मृदभांड कला के प्रचलन था जो 1700 ई. पूर्व के आसपास की है। मिट्टी की इंटों का प्रयोग घर बनाने तथा चूने और मिट्टी मिला फर्स बनाए जाते थे। अन्न उगाना, पशुपालन, शिकार, मछली पकड़ना लोगों के व्यवसाय थे चावल का प्रमाण पांडुराजर धीबी से मिलता है ताम्बे के औजार, मछली पकड़ने के कांटे, गहनों का प्रयोग होता था। कीमती पत्थरों के मणके, हड्डी के कंधे, ताम्बे की सुत्ता कलन व सलाई इत्यादि का प्रयोग होता था। कातने बुनने की कला में भी ये दक्ष थे।

## सारांश

इस प्रकार ताम्रपाषाणीय युग जिसने नवपाषाण संस्कृति का स्थान लिया, समाज में अब आत्म—निर्भर अर्धव्यवस्था का स्थान अतिरिक्त उत्पादन प्रणाली ने ले लिया। इस प्रक्रिया में विशेषज्ञों का योगदान काफी रहा इन विशेष वर्गों में कारीगर धातुकार, कुम्हार इत्यादि शामिल थे। धातु प्रचलन में आने से पाषाण उपकरणों की संख्या में कमी आई। इसके बाद के काल में तो धीरे—धीरे पाषाण उपकरण प्रायः लुप्त से हो गए। तांबे धातु के ज्ञान से ही धीरे—धीरे मिश्रित धातुओं को बनाने की कला का विकास हुआ। कालान्तर में ताँबे और टीन को मिलाकर कांस्य धातु का निर्माण किया गया, जिस काल में संस्कृति के स्थान पर सभ्यताओं का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल में शुरू हुई सिंचाई व्यवस्था, मुद्राओं का प्रचलन बड़े—बड़े सार्वजनिक भवनों और मन्दिरो के निर्माण इत्यादि ने सभ्यताओं के विकास में अपना एक अनुठा योगदान दिया।

## हड़प्पा सभ्यता (Harappan Civilization)

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में (1922-23) में जब राखलदास बैनर्जी मोहन जोदड़ो नामक स्थल पर एक बौद्ध स्तूप का उत्खनन कर रहे थे तो उन्हें चित्राकृति लेख वाली मुहरें प्राप्त हुईं जिससे एकाएक भारत की सभ्यता हजारों वर्ष पहले प्रागैतिहास काल में आंकी जाने लगी। इससे पहले केवल पाषाण काल तथा नवपाषाण काल के उपकरणों तथा पाँचवीं सदी ई.पू. की पिपरावा लेख ही प्राचीन माने जाते थे। जबकि आर्य या वैदिक सभ्यता को ई.पू. से पहले नहीं माना जा सकता था। सर जॉन मार्शल ने, जो सिन्धु सभ्यता के मुख्य उत्खनकर्ता थे उन्होंने इस सभ्यता को उस समय 3250-2750 ई.पू. रखा। प्रारम्भ में इस सभ्यता के प्रमाण सिन्धु तथा इसकी सहायक नदियों के आस-पास से प्राप्त हुए थे। इसलिए विद्वानों ने इसे सिन्धु घाटी सभ्यता का नाम दिया गया था हड़प्पा से सबसे पहले प्राप्त होने के कारण इसे हड़प्पा सभ्यता भी कहा जाने लगा। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रमुख सिन्धु स्थल पाकिस्तान चले गए उस समय भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने भारतीय क्षेत्र में इस सभ्यता के अवशेष ढूँढने शुरू किए। सर्वप्रथम रोपड़ कोटला निहेंग खान आदि स्थलों से इस सभ्यता के प्रमाण मिले लेकिन अब तो इसके अवशेष पंजाब, हरियाणा, जम्मूक्षेत्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र इत्यादि से भी प्राप्त हुए हैं। इसके बहुत से क्षेत्र सिन्धु या इसकी सहायक नदियों पर स्थित न होकर अन्य नदियों पर स्थित थे इसलिए अब इस संस्कृति को सिन्धु घाटी की सभ्यता न कहकर सिन्धु सभ्यता या हड़प्पा सभ्यता के नाम से जाना जाता है।

### उद्गम (Origin)

हड़प्पा सभ्यता के अस्तित्व में आने से पूर्व इस क्षेत्र में कृषि समुदायों के विकास की एक लंबी अवधि रही है। इस क्षेत्र में प्रारम्भिक कृषि समुदायों के प्रमाण बोलने दर्रे के पास महरगढ़ नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं। रेडियों कार्बन तिथि तक स्पष्ट होता है कि ईसा से 5000 वर्ष पूर्व इस क्षेत्र के निवासी गेहूँ तथा जौ की खेती से परिचित थे। धीरे-धीरे इन्होंने सिन्धु के मैदानों में कृषि कार्यों को बढ़ाया और सिन्धु नदी की बाढ़ पर नियंत्रण करना सीखा। सिन्धु, राजस्थान और बलूचिस्तान के क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण कर बस्तियाँ स्थापित कीं। इन क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न कृषि समुदायों में सांस्कृतिक परम्पराओं की समानता थी। जैसे :- एक ही प्रकार के मृदभाण्डों का प्रयोग, मातृदेवी की मिट्टी की मूर्तियाँ, सांग वाला बैल देवता आदि प्रमाण इस बात की ओर इंगित करते हैं कि किस प्रकार इस समूचे क्षेत्र में एक सम्मिश्रित परम्परा का उदय हुआ। कृषि विकास की यह प्रक्रिया जो संभवतः ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में बलूचिस्तान से शुरू हुई वह ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के आसपास सिन्धु घाटी के सिन्धु और पंजाब तक प्रचलित हो गयी। आगे यही प्रक्रिया पूर्व की ओर बढ़ती हुई प्राचीन सरस्वती घाटी की परिधि तक फैल गई। पुरातात्विक अध्ययन से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में परस्पर-क्रियाएँ होती थीं। बलूचिस्तान और सिन्धु घाटी में प्रारंभ के कृषि विकास तथा बाद में इसी क्षेत्र में पनपी हड़प्पा सभ्यता के बीच निकट संबंध रहे हैं।

हड़प्पा सभ्यता के उद्गम का विषय लंबे अरसे से विवादास्पद विषय रहा है। यूरोपिय विद्वान खासतौर से सर मोर्टिमेर व्हीलर ने सन् 1968 में हड़प्पा सभ्यता की उत्पत्ति के विषय में लिखा कि प्राचीन विश्व के अन्य क्षेत्रों की तुलना में भारत में नगरीय संस्कृति का उदय देर से हुआ। इनके अनुसार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य में सिन्धु क्षेत्र में हड़प्पा संस्कृति अचानक प्रकट हुई अर्थात् इनके अनुसार हड़प्पा सभ्यता अपने सबसे प्रथम चरण में ही पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी और इस संस्कृति का इससे पूर्व समय में रहने वाले व्यक्तियों में कोई समानता नहीं थी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस सभ्यता की स्थापना में बाहरी तत्वों का समावेश था। इनके अनुसार मेसोपोटोनिया तथा पश्चिमी एशिया से आई जातियों में इस क्षेत्र को जीतकर यहाँ नगरों की स्थापना की। इनका अभिप्राय यह था कि सभ्यता के उदय का विचार विदेश से संभवतः मेसोपोटोनिया से आया, क्योंकि विचार पक्षियों की भाँति उड़ते हैं। पुरातात्विक अनुसंधानों द्वारा इस सभ्यता की जाति के विषय में अब यह स्वीकार किया जाने लगा कि इस सभ्यता की उत्पत्ति और विकास धीरे-धीरे स्थानीय संसाधनों द्वारा ही संभव हुआ है। इस क्षेत्र में मानव शिकारी-संग्रहकर्ता से कृषि समाज की ओर कैसे अग्रसर हुआ इस प्रक्रिया के स्पष्ट चिन्ह मौजूद हैं। इस प्रक्रिया को समझने में महरगढ़ बलूचिस्तान, रहमान डेरी-उत्तर-पश्चिमी सिन्धु प्रान्त, अमरी-सिन्धु घाटी के निचले मैदान कोटदीजी तथा कालीकंगा - राजस्थान तथा पंजाब की आरंभिक हड़प्पाकालीन बस्तियों से विशेष जानकारी प्राप्त होती है। इन क्षेत्रों की (बलूचिस्तान, सिंध, पंजाब, राजस्थान आदि) बस्तियों में एकरूपता के प्रमाण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। जैसे मृण्यमूर्तियों, मृदभाण्ड, घर-दिवारें, परकोटे, नगर-निर्माण तथा हस्तशिल्प में समानता स्पष्ट दिखाई देती है। इस क्षेत्र में हुआ यही विकास क्रम हड़प्पा सभ्यता को विकसित स्वरूपी ओर ले जाता है।

## हड़प्पा सभ्यता

सिन्धु सभ्यता के उद्गम के बारे में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं इसका कारण यह है कि जब इस सभ्यता का पता चला तो दुनिया के सामने यह एक फली-फूली अवस्था में ही दिखाई दी तथा इसी कारण अनेक विद्वानों ने इसे कहीं बाहर से आए लोगों द्वारा बनाई सभ्यता माना। सर जॉन मार्शल ने तो शुरू में हड़प्पा तथा मोहन जो दड़ो से प्राप्त सभ्यता को इण्डो सुमेरियन सभ्यता (Indo-Sumerian civilization) का नाम दिया। परन्तु कुछ वर्षों बाद उन्होंने इसे केवल सिन्धु सभ्यता (Indus civilization) का नाम दिया क्योंकि उनका मत अनुसार इण्डो-सुमेरियन सभ्यता नाम इसे सुमेरियन सभ्यता का भारतीय प्रारूप होने का भ्रम देता था। जी.आर. हटर इस सभ्यता को आध-भारतीय (Proto Indian) मानते थे। हाल ही में कुछ विद्वान इसके पूर्णतया भारतीय उद्भव का मान इस सरस्वती नदी का आसपास उद्भव हुई मान कर सिन्धु सरस्वती या केवल सरस्वती सभ्यता ही नाम देते हैं।

इसके अतिरिक्त बहुत से विद्वान इस सभ्यता के जन्मदाताओं को द्रविड, ब्रहुई, असुर, ब्राह्य, वाहिक, दास, नाग तथा आर्य इत्यादि भी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सिन्धु सभ्यता को बनाने वाले द्रविड भाषी थे। परन्तु सिन्धु सभ्यता के लोग तो अपने मृतकों को गाड़ते थे जबकि द्रविड ऐसा नहीं करते थे तथा न ही दक्षिण भारत में हमें इस सभ्यता का कोई प्रारूप देख सकते हैं। इसी तरह पणि, ब्राह्य, वाहिक, असुरो, दासो, नागो से इस सभ्यता का कोई प्रमाण है। जहां तक आर्यों का इस सभ्यता के सृजनकर्ता होने का प्रश्न है इसके भी प्रमाण हमें नहीं मिलते क्योंकि ऋग्वेद जो आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ है, की संस्कृति तो गडरियों तथा कृषकता की ग्रामीण संस्कृति थी जबकि सिन्धु सभ्यता नगरीय सभ्यता थी। आर्यों के भारत में आने के प्रमाण के 1500 ई०पू० के नहीं हैं जबकि यह सभ्यता इससे कम से कम हजार वर्ष पूर्व की है। सर जॉन मार्शल ने सिन्धु सभ्यता को आर्यों की सभ्यता होने को नकारते हुए कहा है कि सिन्धु सभ्यता के देव शिव को वैदिक आर्यों ने अपनाया तथा न ही सिन्धु सभ्यता के लोगों की संस्कृति आर्यों की तरह अश्व केन्द्रित ही थी। यद्यपि उन्हें घोड़े का ज्ञान अवश्य था। हाल ही में श्री० आर० एस० विष्ट महोदय ने सिन्धु सभ्यता तथा आर्य संस्कृति की सम्बन्धिताओं पर एक लम्बा लेख लिखा। इसी तरह डा० भगवान सिंह तथा कुछ अन्य विद्वान सिन्धु सभ्यता का आर्यों से मिलाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु वास्तविकता अलग ही है। आर्य संस्कृति सिन्धु सभ्यता से काफी बाद की है। हाल ही में श्री अनामिका जोशी ने कुछ स्थलों के उत्खनन के आधार पर यह दर्शाने की चेष्टा की है कि उत्तर हड़प्पा संस्कृति (Late Harappan Culture) के समय में चित्रित धूसर मृदभांड (Painted Gray Ware) प्रयोग करने वाले लोग, जिन्हें कुछ विद्वान आर्यों से सम्बन्धित मानते हैं बाद के काल में इकट्ठे भी रहे। इस प्रमाण के आधार पर भी यदि चित्रित धूसर मृदभांड प्रयोग करने वाले आर्य ही थे। मान भी न तो भी इस सभ्यता को आर्यों से सम्बन्धित नहीं मिलाया जा सकता है।

पिछले कुछ दशकों में हुए उत्खननों के आधार पर हमें सिन्धु सभ्यता के उद्भव के बारे में महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं। श्री ब्रज बारी लाल ने सिन्धु सभ्यता के निम्नलिखित (Features) बताए हैं।

(1) एक सुनियोजित नगर व्यवस्था (2) घरों का मुख्य दिशाओं की बनना (3) नगरों में किला बन्दी की व्यवस्था (4) गद्दी तथा सिन्धु नगर शहर अलग-2 होना (5) ईंटों का माप 4:2:1 अनुपात में होना (6) पक्की ईंटों का प्रयोग (7) बड़ी सार्वजनिक इमारतें जैसे अन्नगार, सभागार, स्नानागार इत्यादि का होना (8) सुनियोजित नालियों की व्यवस्था (9) कुछ विशेष प्रकार के के लाल रंग के बर्तन जैसे अंग्रेजी शब्द 'S' आकार के बर्तन (10) कुछ विशेष चित्रित डिजाइन जैसे पीपल, केले का पत्ता, एक दूसरे को काटते हुए इत्यादि का पाया जाना (11) भेद कर बने (etched) कारनीलियन (Carnelian) के मणते तथा फ्यांस (faience) की चूड़ियां (12) दूर-दराज के क्षेत्रों से व्यापार का होना (13) विशेष प्रकार के बाट-बटखरे तथा माप का होना (14) धातु एवं प्रस्तर की मूर्तियां का पाया जाना (15) लिपि का होना, मुद्राओं (Seals) का पाया जाना इत्यादि।

सिन्धु सभ्यता के उद्गम को जानने के लिए हमें इन सभी प्रमाणों को देखना जरूरी है। पिछले कुछ दशकों में हुए उत्खननों के अग यह प्रमाणित हो गया है कि ये सभी प्रमाण सिन्धु सभ्यता पूर्व की संस्कृतियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान ह तथा इन्हीं के इकट्ठा होने (Culmination) से इस सभ्यता का विकास हुआ है।

पाकिस्तान में मेहरगढ़ से काल-III से अन्नागार के प्रमाण मिले हैं। ब्लूचिस्तान में किसी गुल मुहम्मद (Kile Ghul Mohammad) से मेहर गढ़ जैसे प्रमाण मिले हैं तथा यहाँ के काल-B से 4:2:1 अनुपात वाली ईंटों के प्रमाण, लैपिज लजूली (Lapiz lazuli) के प्रमाण का हड़प्पा सभ्यता के पूर्व का मिला है।

यहाँ के काल-III में अन्नगार जैसे भवन के प्रमाण भी मिले हैं। काल-IV जोकि 3500-3000 ई०पू० का है में मृदभांड पर चित्रित (Graffiti) के प्रमाण मिले मेहरगढ़ के समीप नौशरो (Nausharo) से विशेष प्रकार की सिन्धु सभ्यता वाली मृदभांड का प्रमाण। इस पर पीपल, फिश स्केल (Fish scale), कुबड़दार बैल चित्रित है, लैपिज लजूली का प्रयोग तथा एक कच्ची ईंटों के बटखरे के प्रमाण मिले हैं। सिन्धु के पश्चिम में बसे गुमला (Gumla) तथा रेहमान डेरी (Rehman Dheri) से भी सिन्धु सभ्यता से पहल 4:2:1 अनुपात वाली ईंटों का प्रयोग, विशेष मृदभांड प्रकार स्टैड-पर-प्लेट (Dish-on-stand) इत्यादि प्राप्त हुए हैं। रेहमान डेरी के काल-3500



ई०पू०) से लिखाई के प्रमाण इसके काल-II से सिन्धु सभ्यता के चित्रित डिजाइन, किले की दिवार के प्रमाण इत्यादि प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त अमरी (Amri), कोट दिजी (Kot Diji), जलीलपुर, हडप्पा, राजस्थान में स्थित कालिबंगा, हरियाणा के बन्नावली तथा कुणाल (Kunal) से भी सिन्धु सभ्यता के उदभव पर विशेष प्रकाश पड़ता है। अमरी के काल-II (3500 ई०पू०) में भी चौपट या शतरंज (Chess board) डिजाइन का पाया जाना, विशेष चित्रित डिजाइनो का होना, विशेष प्रकार के मृदभांड तथा लेखन कला के प्रमाण प्राप्त होने प्रारम्भ हो गये। कोटदिजी (Kot Diji) के काल प्रथम (3000 ई०पू०) में चर्ट (Chert) ब्लेड का प्रयोग पक्की मिट्टी के केक (Terracotta Cakes), सिन्धु सभ्यता के विशेष आकार एवं चित्रित डिजाइन के बर्तन सींग वाला देव, घरों का मुख्य दिशाओं की ओर बनाया जाना, 4:2:1 अनुपात की ईंटों का मिलता है।

जलीलपुर जाकि कोटदिजी के समकालीन है, से विशेष प्रकार के बर्तन, चित्रण पक्की मिट्टी के खिलौना गाड़ी (Terracotta toy-cart) चर्ट के ब्लेड, फ्यांस (faience) की चूड़ियाँ इत्यादि प्राप्त होती है।

हडप्पा से हमें सिन्धु सभ्यता से पूर्व काल प्रथम में ही घरों तथा अन्य भवनों का मुख्य दिशाओं की ओर बनाये जाने के प्रमाण, 4 : 2 : 1 अनुपात की कच्ची ईंटें, किला होने के प्रमाण विशेष प्रकार के मृदभांड तथा चित्रित डिजाइन पक्की मिट्टी के केक (terracotta cakes) इत्यादि मिलने लगते हैं जो सभी चीजे काल-II में भी मिलती है तथा यहाँ पर काल-III सिन्धु सभ्यता का काल है।

राजस्थान में घग्गर पर स्थित कालीबंगा (जंसपइंदहंद) ने भी सिन्धु स उदगम में विशेष योगदान दिया है। यहाँ सिन्धु सभ्यता से पूर्व ~~का प्रमाण प्राप्त हुआ है जो सिन्धु सभ्यता के चित्रित डिजाइन, किले की दिवार के प्रमाण इत्यादि प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त अमरी (Amri), कोट दिजी (Kot Diji), जलीलपुर, हडप्पा, राजस्थान में स्थित कालिबंगा, हरियाणा के बन्नावली तथा कुणाल (Kunal) से भी सिन्धु सभ्यता के उदभव पर विशेष प्रकाश पड़ता है। अमरी के काल-II (3500 ई०पू०) में भी चौपट या शतरंज (Chess board) डिजाइन का पाया जाना, विशेष चित्रित डिजाइनो का होना, विशेष प्रकार के मृदभांड तथा लेखन कला के प्रमाण प्राप्त होने प्रारम्भ हो गये। कोटदिजी (Kot Diji) के काल प्रथम (3000 ई०पू०) में चर्ट (Chert) ब्लेड का प्रयोग पक्की मिट्टी के केक (Terracotta Cakes), सिन्धु सभ्यता के विशेष आकार एवं चित्रित डिजाइन के बर्तन सींग वाला देव, घरों का मुख्य दिशाओं की ओर बनाया जाना, 4:2:1 अनुपात की ईंटों का मिलता है।~~  
 (Dish-on-stand or Cup-on-stand) इत्यादि मिलते हैं जो सिन्धु सभ्यता के प्रमाण के रूप में प्रदर्शित हैं।

हरियाणा के हिंसा जिले में स्थित बनावली (Banawali) से घरों गलियों के मुख्य दिशाओं में होने के प्रमाण (काल 1-अ), काल 1-ब में किले बन्दी के प्रमाण काल 1-स में गढ़ी तथा निचली शहरों के प्रमाण तथा पत्थर के बाटों (weights) के प्रमाण मिलते हैं। इसी तरह कुणाल नामक स्थल के काल 1-c से 4:2:1 अनुपात की ईंटों, नालियों की व्यवस्था सेलेखेडी के मुद्रांक (Stearite) तथा डिस्क (Disc) प्रकार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता से पूर्व की संस्कृतियों में ऐसी बहुत सी चीजें थी जिन के आधार पर सिन्धु सभ्यता एक अपनी पहचान है। सिन्धु सभ्यता के विशेष लक्षणों का कोई न कोई प्रारम्भिक रूप यहाँ प्राप्त हो जाता है। जैसे सिन्धु लिपि के प्रमाण चाहे न मिले हो परन्तु उसी प्रकार के कुरेद कर बनाए अक्षर नुमा चिन्ह मिल जाते हैं। एक आध जगह से बाट तो मिले लेकिन लकड़ी के प्रमाण अभी नहीं मिले। इसी तरह धातु तथा प्रस्तर की मूर्तियों के प्रमाण अभी मिलने बाकी हैं। संभव है कि भविष्य में शायद यह प्रमाण भी मिल पाएं।

### विस्तार (Extent)

पुरातात्विक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हुआ कि भौगोलिक दृष्टिकोण से हडप्पा सभ्यता का विस्तार क्षेत्र काफी दूर तक फैला हुआ था। यह सिन्धु नदी की घाटी तक ही सीमित नहीं थी बल्कि समुद्री सिंध तथा बलूचिस्तान में और लगभग पूरे पंजाब (पूर्वी और पश्चिमी), हरियाणा, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, जम्मू, उत्तरी राजस्थान, गुजरात तथा उत्तरी महाराष्ट्र के क्षेत्रों में फैली हुई थी। विस्तार की दृष्टि से यह क्षेत्र मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताओं से भी अधिक विस्तृत था। इस सभ्यता के प्रमुख केन्द्र निम्न हैं :- बलूचिस्तान में (पाकिस्तान), डाबरकोट, सुत्क मेण्डोर और सोत्काकोह। सिंध में (पाकिस्तान), मोहन जो दड़ो, चन्हुदड़ों और अलीमुशद। पंजाब में (पाकिस्तान), हडप्पा। पंजाब में (भारत) रोपड़ बाडा, संघोल। हरियाणा में भीताथल, बनावली, राखीगढ़ी। राजस्थान में- कालीबंगा। उत्तर प्रदेश में- आलमगीर पुर। गुजरात में- रंगपुर, लोथल, घौलावीरा, सुरकोटडा तथा रोजदी। जम्मू में- माण्डा आदि।

निष्कर्षतः हडप्पा सभ्यता का विस्तार दक्षिण बलूचिस्तान में सूलकागेनदोर से 1550 कि०मी० दूर पूर्व में मेरठ में आलमगीर तक तथा उत्तर प्रदेश में रोपड़ से 1100 कि०मी० दूर भगत राव तक फैला हुआ था। यह समूचा क्षेत्र त्रिभुजाकार का है और इसका क्षेत्रफल लगभग 1,29,966 वर्ग कि०मी० का है।

### उत्खनन कार्य (Archaeological Work)

हडप्पा के स्थल पर किसी प्राचीन सभ्यता के अवशेष होने का उल्लेख सर्वप्रथम 1826 में चार्ल्स मेसे ने किया था। 1853 तथा 1856 में कनिंघम (भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक) ने हडप्पा के टीले के नीचे किसी प्राचीन सभ्यता के दबे होने की पुष्टि की और यहाँ उत्खनन कार्य भी करवाया। 1921 में दयाराम साहनी ने हडप्पा और 1922 में राखल दास बनर्जी द्वारा मोहन जो दड़ों में किए गए उत्खनन कार्यों में इस सभ्यता का अस्तित्व पूर्ण तौर पर सिद्ध हो गया। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्कालीन महानिदेशक सर जॉन मार्शल ने इन उत्खनन कार्यों में गहन दिलचस्पी ली और 1924 में लंदन से प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्र में



इस सभ्यता के बारे में सारी दुनिया को जानकारी दी। इन क्षेत्रों में हुए उत्खनन कार्यों से एक बात सामने आई कि यह एक 'वोशष्ट' सभ्यता थी और मिस्र तथा मेसोपोटामिया की सभ्यताओं के समकालीन थी। बाद के दशकों में खुदाई के दौरान अनेक महत्वपूर्ण स्थल प्रकाश में आए। अनुसंधान कार्यों में बाद में मार्टिन व्हीलर, वत्स, एन०जी० मजुमदार, सर स्टार्इन, एस०आर०राव आदि पुरातत्वियों ने महत्वपूर्ण जानकारीएँ एकत्रित की।

## नगर विन्यास (Town Planning)

सर मार्टिन व्हीलर और स्टूर्अर्ट पिग्ट जैसे पुरातत्वियों का मत था कि हडप्पा-सभ्यता के नगरों की संरचना और बनावट में असाधारण प्रकार की एक रूपता थी। प्रत्येक नगर सामान्यतः दो भागों में विभाजित होता था, ऊपरि भाग तथा निचला भाग (शहर) ऊपरी भाग जिसे पश्चिमी भाग भी कहा जाता था ये शासक, राजघराने और उच्चवर्ग के लोग निवास थे जबकि पूर्वी भाग में नगर के शासित और निम्न वर्ग के लोग निवास करते थे। नगर में गढ़ी के चारों ओर सुरक्षा प्राचीर हुआ करती थी तथा निचला शहर (पूर्वी हिस्सा) सामान्यतः बिना सुरक्षा प्राचीर के होता था। परन्तु इसमें कुछ अपवाद भी हैं जैसे : मोहन जो दड़ों में गढ़ी पश्चिम की ओर तथा निचला शहर पूर्व में है हडप्पा में निचला शहर दुर्ग या गढ़ी के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। गुजरात के सुरकोवड़ा नामक स्थल में यह दोनो एक-दूसरे के साथ सटे हुए हैं। हरियाणा स्थित बनावली में यह दोनो अलग ना होकर एक ही साथ हैं जबकि गुजरात स्थित लोथल में भी यह दक्षिण पूर्व कोनों पर स्थित है।

सामान्यतः दुर्ग या गढ़ी ऊँचे स्थल पर बनी होती थी, जो कि धूप में सूखी ईंटों के चबूतरे पर पक्की ईंटों से बनी सुरक्षा दीवार के बीच स्थित थी। मोहन जो दड़ों में यह आसपास के क्षेत्र से 12 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ पर निचला शहर सुरक्षा प्राचीर रहित है। यहाँ किले के भीतर पुरोहित-आवास, सभा-भवन, अन्नागार और विशाल स्नानागार स्थित थे। हडप्पा के दुर्ग के बाहर उत्तर दिशा में स्थित 'एफ' टीले पर अन्नागार, अन्न कुटने के वृताकार चबूतरे और श्रमिक आवास के प्रमाण मिले हैं। लोथल का दक्षिणी-पूर्वी भाग दुर्ग क्षेत्र था जिसमें अन्नागार स्थित था। यहीं कुछ अन्य महत्वपूर्ण भवन भी रहें होंगे क्योंकि एक कतार में बाहर स्नानागार और ढकी हुई नालियाँ मिली हैं।

हडप्पा, मोहन जो दड़ों और कालीबेगेन के दुर्ग मजबूत सुरक्षा-प्राचीर युक्त थे तथा इनके आकार समलम्ब चतुर्भुज की तरह थे। गुजरात में घैलावीरा नामक स्थान पर तो पत्थर के टुकड़ों की बाहरी दीवार के भीतर तीन अलग-अलग सुरक्षा प्राचीरों वाले तीन भाग थे, जिसे उत्खननकर्ता ने नगरगढ़ी, मध्य नगर तथा निचले नगर की संज्ञा दी है। नगर दुर्ग तथा मध्य नगर के चारों ओर दीवार थी, दीवार में सामान्य दूरी पर नगर द्वार और बुर्ज बने हुए थे इस सभ्यता के नगर दुर्गों में पुरोहित और शासकीय वर्ग निवास करते थे जबकि निचले नगर में दस्तकार, व्यापारी, शिल्पकार एवम् अन्य वर्ग के लोग निवास करते थे। सुरकोवड़ा में दो अलग-अलग द्वार हैं, जिनमें एक द्वार गढ़ी को जाता था तथा दूसरा रिहायसी क्षेत्र की तरफ। चूंकि इस सभ्यता के सभी स्थलों पर समरूपता पाई गई है तथा मोहनजोदड़ों का विस्तृत पैमाने पर उमखनन किया जा चुका है, इसलिए सामान्यतः वही की नगर योजना का एक भू-रेखा के रूप में सिन्धु सभ्यता का नगर विन्यास माना जाता है। अधिकांश नगरों में विशेषकर दुर्ग-नगर के चारों ओर मोटी दीवार परकट होती थी। इस परकोटे में स्थान-स्थान पर प्रवेश द्वार बने होते थे। घैलावीरा तथा सुरकोवड़ा के नगर प्रवेश काफी विशाल और सुंदर थे जबकि अन्य स्थलों के इनकी तुलना में साधारण थे। कुछ नगर द्वारों के करीब सुरक्षाकर्मियों के छोटे कक्ष बने हुए थे। हडप्पा सभ्यता के नगरों के चारों ओर परकोटों तथा नगर द्वारों के निर्माण का उद्देश्य संभवतः बाहरी आक्रमणकारियों से सुरक्षा करना रहा।

### सड़कें और गलियाँ

हडप्पाकालीन नगर पूर्व नियोजित योजना के आधार पर बसाए गए थे। इस सभ्यता की वास्तुकला में सड़कों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सड़कें एक-दूसरे को समकोण को पर काटती थी। इस तरह शहर कई हिस्सों में बँटा हुआ था। इस काल में निर्मित सड़कें और गलियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ निर्मित थी। नगरों में सामान्य रूप से उत्तर दिशा से प्रवेश किया जाता था और मुख्य सड़क (मार्ग) उत्तर से दक्षिण दिशा में थी जो काफी चौड़ी थी और इसमें पहिए वाले वाहन आसानी से प्रवेश कर सकते थे। पूर्वी सड़क शहर का मुख्य मार्ग था जो काफी चौड़ी थी। सड़कों के अतिरिक्त नगरों में गलियाँ थी जो मुख्य दिशाओं एक-दूसरे को काटती थी। मोहनजोदड़ों की सगसे चौड़ी गली (मार्ग) 9.15 मीटर तथा छोटी गलियाँ करीब 3 मीटर चौड़ी थी। कालीबेगेन में प्रमुख मार्ग 7.20 मीटर अन्य गलियाँ 5.4, 3.6 तथा 1.80 मीटर चौड़ी थी। यहाँ गलियों का माप हडप्पा सभ्यता के प्रसिद्ध अनुपात 4:2:1 पर आधारित था। सड़कों की स्वच्छता और सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कूड़ा-करकट फेंकने के लिए सड़कों के किनारे या तो गड्ढे बने होते थे अथवा कूड़ेदान रखे जाते थे। सड़कों और गलियों पर कहीं कोई अतिक्रमण देखने को नहीं मिलता।

### नालियाँ (Drainage System)

नगरों में जल निकासी प्रणाली इस सभ्यता की अद्वितीय विशेषता थी, जो किसी अन्य समकालीन सभ्यता में देखने को नहीं मिलती।

प्रत्येक घर का पानी इन्हीं नालियों द्वारा बाहर जाता था। मुख्य सड़कों और गलियों के नीचे 23 से०मी० चौड़ी तथा 50 से०मी० तक गहरी पक्की ईंटों से निर्मित नालियाँ थी जो बड़े-बड़े पत्थरों से ढकी होती थी। चूने और ईंटों से निर्मित गली की नाली का पानी एक बड़ी नाली में जाता था, जो आगे एक नाले में गिरती थी और शहर का पानी बाहर पहुँचाया जाता था। इनकी नियमित सफाई का प्रबन्ध था क्योंकि स्थान-स्थान पर अवरोध लगाए गए थे ताकि कचरे रहित पानी आगे जा सके। यानि मुख्य नालियों में कचरा छानने की भी व्यवस्था होती थी, नालियों में व्यवस्था करने के लिए बड़े गद्दे (शोषगर्त) होते थे जिन्हें सफाई करने के लिए आसानी से हटाया जा सकता था।

### भवन निर्माण

हडप्पा सभ्यता के नगरों में उत्खनन के दौरान प्रकार के भवनावशेष प्राप्त हुए हैं; आवासीय भवन और सामुदायिक भवन। सामुदायिक भवन दुर्ग या गद्दी में थे तथा आवासीय भवन निचले नगर में। हडप्पा और मोहनजोदड़ों में सामान्य भवन योजनाबद्ध तरीके से निर्मित थे। प्रत्येक आवासीय भवन के बीच में एक आंगन होता था, जिसके चारों ओर चार-पाँच कमरे, एक रसोईघर और एक स्नानागार बना होता था। अधिकांश घरों में एक कुआँ भी होता था। सम्पन्न लोगों के घरों में शैचालय भी होते थे। बड़े आकार के भवनों में तीस कमरे तक होते थे। भवनों में मिली सीढ़ियों से पता चलता है कि दुमजिले भवन भी होते थे। घरों के दरवाजे मुख्य मार्ग में न खुलकर पिछवाड़े की ओर गली में खुलते थे। सड़क की तरफ खिड़की और रोशदान भी नहीं बने होते थे। भवनों के फर्श ईंटें बिछाकर बनाए जाते थे। कुछ भवनों की दीवारों पर पलस्तर के भी साक्ष्य मिले हैं। छतों के विषय में साक्ष्यों का स्पष्ट अभाव है अनुमानतः छतें समतल होती थी। छतों पर घास-फूस बिछाकर ऊपर से मिट्टी छाप दी जाती थी।

हडप्पा और मोहनजोदड़ों में पकी हुई ईंटों का प्रयोग भवनों के निर्माण के लिए किया गया है। लोथेल, रंगपुर तथा कालीबंगा में भवनों के निर्माण के लिए कच्ची ईंटों का ही प्रायः उपयोग किया गया है। कालीबंगा में पक्की ईंटों का ही प्रायः उपयोग किया गया है। कालीबंगा में पक्की ईंटों का प्रयोग केवल नालियों, कुआँ तथा दहलीजों के निर्माण के लिए किया गया है। कई आकार प्रकार की ईंटों का उपयोग होता था किन्तु प्रचलित आकार 28×14×7 से०मी० अथवा लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई में 4:2:1 का अनुपात था। कालीबंगा में 40×20×10 से०मी० के साथ-साथ 30×15×7½ से०मी० की ईंटों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। हरियाणा स्थित बनावली में 24×12×6, 32×16×8 से०मी० की छोटी ईंटों के साथ-साथ बड़े आकार की 40×20×10 तथा 50×25×12½ से०मी० की ईंटों का भी प्रयोग मिलता है। घौलावीरा में 36×18×9 से०मी० के आकार की ईंटों का प्रयोग मिलता है। भवनों की नींव गहराई तक खोदी जाती थी ईंटों को जोड़ने में मिट्टी के गारे तथा विशेष प्रकार की चिनाई में चूने का भी प्रयोग किया जाता था।

### सार्वजनिक भवन

मुख्यनगर के गद्दी वाले क्षेत्र में सार्वजनिक भवन निर्मित थे। हडप्पा और मोहनजोदड़ों से ऐसे अनेक विशाल भवन मिले हैं। हडप्पा में पश्चिमी टीले पर एक समानान्तर चतुर्भुजाकार दुर्ग था जो उत्तर-दक्षिण में 460 गज तथा पूर्व-पश्चिम में 215 गज चौड़ा था और इसकी ऊँचाई 45.50 फीट थी। यहाँ से प्राप्त सार्वजनिक भवनों में भडांगार उल्लेखनीय है इसके बीच में 7 मीटर चौड़ा गलियारा था। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस भवन को विशाल अन्नागार बताया है जो अन्न, कपास और व्यापारिक वस्तुओं के गोदाम के काम आता था। इसके पास चबूतरे हैं जहाँ अनाज कूटा जाता था। यहाँ पर गेंहु और जौ के कूटे हुए अन्नकण प्राप्त हुए हैं। इसके समीप ही कारीगरों के लिए छोटे-छोटे घर बने हुए थे।

मोहनजोदड़ो स्थित महत्वपूर्ण भवन विशाल स्नानागार था जो आयताकार का था। ईंटों से निर्मित इस विशाल स्नान कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई 12 मी०×7 मी० और गहराई 3 मी० है। इसमें नीचे उतरने के लिए दोनो तरफ सीढ़ियाँ हैं, जो दक्षिण और उत्तर की ओर बनी हुई थी। स्नानकुण्ड के तल को डामर से जलरोधी बनाया गया था। इसके लिए पानी निकालने के लिए भी एक ढलवाँ नाली थी। कुण्ड के चारों तरफ मण्डप और कमरे बने हुए थे, प्रत्येक कमरे की अपनी एक सीढ़ी थी। विद्वानों का अनुमान है कि यहाँ पर राजा या पुरोहित धार्मिक स्नान के लिए आते थे।

### अन्नभण्डार (Granary)

मोहनजोदड़ो से प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण इमारत है। इसमें ईंटों से निर्मित स्लाईस खण्ड (Blocks) हैं जिनमें प्रकाश के लिए आडे-तिरछे रोशानदान बने हुए हैं। अन्नभण्डार के नीचे ईंटों से निर्मित खांचे थे जिनसे अनाज का भण्डारण के लिए ऊपर पहुँचाया जाता था।

### सभागार

स्नानागार के समीप स्तम्भ युक्त एक बड़े हाल के प्रमाण मिले हैं जो कि 80×30 फुट चौड़ा था। यहाँ से 20 स्तम्भ प्रकाश में आए हैं। इस सभागार में पाँच-पाँच ईंटों की ऊँचाई की चार चबूतरों की पक्तियाँ थी। यह ऊँचे चबूतरे ईंटों के बने हुए थे और उन पर लकड़ी के खब्रे खड़े किए गए थे। इसके पश्चिम की तरफ कमरों की एक कतार में एक पुरुष की प्रतिमा बैठी हुई मुद्रा में पाई गई है।

घौलावीरा से उत्खनन के दौरान काले रंग के पालिशदार स्तम्भ प्राप्त हुए हैं जो किसी स्तम्भ युक्त बड़े भवन के अवशेष प्रतीत होते हैं। इसके बाद इस प्रकार के स्तम्भों का प्रयोग केवल मौर्यकाल में ही देखने को मिलता है।

## आर्थिक जीवन (Economic Life)

### कृषि (Agriculture)

सिन्धु प्रदेश की भूमि आज की अपेक्षा पहले अधिक उपजाऊ थी। इस क्षेत्र की उर्वरता का विशेष कारण सिन्धु नदी में आने वाला बाढ़ें थी, जो इन मैदानों को उपजाऊ मिट्टी भर देती थी। जिस तरह मिस्र निवासियों के लिए नील नदी एक वरदान थी वैसे ही इस क्षेत्र के निवासियों के लिए सिन्धु नदी थी। खाद्यान्नों का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन इस सभ्यता के विकास का मुख्य आधार था क्योंकि शहरी जनसंख्या के खाद्यान्न की आपूर्ति गाँवों से ही होती थी। खुदाई के दौरान विभिन्न क्षेत्रों से गेहूँ उत्पादन के प्रमाण मिले हैं। यहाँ दो किस्मों के गेहूँ (क्लब गांठदार गेहूँ तथा लघु आकार का गेहूँ) की पैदावार की जाती थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों दोनों ही स्थलों से छोटे-2 दानों वाले जौ की खेती के प्रमाण मिले हैं। गेहूँ तथा जौ की खेती के प्रमाण कालीबंगा से भी प्राप्त हुए हैं। गुजरात से रागी की फसल और छोटी ज्वार के प्रमाण मिले हैं। बालाकोट से बाजरा और ज्वार की खेती के प्रमाण मिले हैं। इनके अतिरिक्त खजूर, मटर, राई, तरबूज तथा तिल और सरसों की खेती के भी मिले हैं। तिल तथा सरसों का उत्पादन संभवतः तेल प्राप्ति के लिए किया जाता था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों से धान की खेती का कोई प्रमाण नहीं मिलता लेकिन लोथल और रंगपूर से धान की खेती के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदड़ों से सूती वस्त्र के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जिससे सिद्ध होता है कि ये कपास की भी खेती करते थे। मृदभांड और मूर्तियों से भी कपड़े की छाप के चिन्ह मिले हैं। कृषि में प्रयुक्त होने वाले उपकरण कम संख्या में प्राप्त हुए हैं। संभवतः कृषि करने का पुराना तरीका ही प्रचलन में था। कृषि में लकड़ी के हल का प्रयोग किया जाता था। कालीबंगा से जुते हुए खेत के प्रमाण मिले हैं। हड़प्पा सभ्यता के निवासी नहरों द्वारा सिंचाई करते थे। पंजाब और सिन्धु की नदियों में अक्सर आने वाली बाढ़ों से खेती की सिंचाई की जाती थी। यद्यपि बलूचिस्तान और घौलावीरा से बड़े-गड़े जलाशयों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। संभवतः इनका उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता होगा। अनाज पीसने के लिए चक्कियों और कूटने के लिए ओखलियों का प्रयोग किया जाता था। लोथल से चक्की के दोनों पाट मिले हैं, ऊपरि पाट में अनाज डालने के लिए एक छेद भी होता था। विभिन्न स्थलों से बड़े-बड़े घड़े भी मिले हैं। अनुमान है कि इनमें अनाज को संग्रहित किया जाता था। हड़प्पा से कृषि-कर्म अतिरिक्त पशुपालन भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था। हड़प्पाकालीन मोहरों पर अंकित बैलों से विदित होता है कि दो काटि के बैल थे, प्रथम काटि वाले बैल कूबड़ और बड़े सींग वाले थे, द्वितीय कूगड़रहित और छोटे सींग वाले थे। अनेक मोहरों पर हाथी को भी चित्रित किया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि इन्होंने हाथी को पालतु बना लिया था। बकरी, भैंस, गधे, ऊँट तथा हाथी की हड्डियाँ विभिन्न स्थलों से प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई हैं। ऊँट की हड्डियाँ कालीबंगा से प्राप्त हुई हैं। हड़प्पावासियों के पालतु पशुओं में कुत्ता, बिल्ली, सुअर, खरगोश, बन्दर, और मूर्गा विशेष उल्लेखनीय हैं। भोजन के लिए जंगली जानवरों का शिकार भी किया जाता था जिनमें कछुआ, साभर, चितकबरा हिरण और प्रियक हिरण (Hog Dear) शामिल थे, रनघुन्डई (बलूचिस्तान) और मोहनजोदड़ों से घाड़ के अस्थिपिंजर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। सुरकाटड़ा, लोथल और घौलावीरा से घोड़े की हड्डियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। लेकिन घोड़े की सम्पूर्ण अस्थियाँ अभी किसी स्थल से प्राप्त नहीं हुई हैं। घोड़े से ये परिचित थे या नहीं यह विषय अभी विवादास्पद बना हुआ है। अनेक पशु, पक्षियों की मूष्यमूर्तियाँ तथा खिलौने भी मिले हैं, इनका भोजन के अतिरिक्त संभवतः कुद का धार्मिक महत्व भी रहा होगा।

हड़प्पा सभ्यता के नगरीकरण को देखते हुए यह स्वाभाविक है कि आर्थिक ढाँचे में उन द्वारा विकसित शिल्प उद्योग, तकनीकी तथा अन्य व्यवसायों का विशेष महत्व था। इस सभ्यता की प्रौद्योगिकी शिल्प और कला की अपनी अलग विशेषता थी। यहाँ के निवासियों को विभिन्न धातुओं की जानकारी थी। हालांकि यह कांस्ययुगीन सभ्यता थी यद्यपि कांस्य की बहुत कम वस्तुओं का पता चला है। ताँबे का प्रयोग बहुतायत मात्रा में किया जाता था। इससे विस्तृत पैमाने पर उपकरण- (ताम्र निर्मित कुल्हाड़ियाँ, छेनियाँ, धूरियाँ, छाटी आरियाँ, तीर व भाले का अग्रभाग, मछली पकड़ने कांटा और चाकू आदि) बनाए जाते थे। ताँबा तथा टीन को मिलाकर कासा तैयार किया जाता था। ताँबा और कांस्य निर्मित बर्तन प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदड़ों से कांस्य की नर्तकी की मूर्ति एक उत्कृष्ट उदाहरण है। ये धातु को गलाने की विधि से भी परिचित थे। मोहनजोदड़ों से ताँबे का गला हुआ एक ढेर भी प्राप्त हुआ है। धातुओं के गले हुए द्रव को साचों में भरकर विभिन्न आकार दिए जाते थे। धातु की विभिन्न आकृतियों के पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ भी बनाई जाती थी। लोहे से अपरिचित थे, इससे निर्मित कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं हुई है। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा से विस्तृत पैमाने पर प्राप्त हुए हैं, जिन्हें देखने से पता चलता है कि स्वर्णकारों ने अपने काम में काफी निपुणता हासिल कर ली थी। चादी प्रचलन आने का अंश ज्यादा था। चांदी के आभूषण और बर्तन बनाए जाते थे।

इस काल में धातु के अतिरिक्त पत्थर के उपकरण भी बनाए जाते थे जिनमें दरांती, खुरचनियाँ, बरमे तथा फलक आदि मुख्य थे।



इन उपकरणों का प्रयोग मणिकारी, कृषि, दस्तकारी और नक्काशी इत्यादि में किया जाता था। पत्थर की अनेक मूर्तियाँ भी विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कला-कौशल के क्षेत्र में हडप्पा सभ्यता के लोगों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि वे कीमती पत्थरों के मनके और आभूषण बनाने की कला से परिचित थे। हडप्पा तथा लोथल और चान्हुदड़ों से मनके बनाने की कार्यशालाएँ मिली हैं। मनकों का व्यापार मेसोपोटामिया के साथ विस्तृत पैमाने पर होता था। सीपी (समुंद्री शंख) का प्रयोग मनकों और चूड़ियों और छोटी-छोटी सजावट की आकृतियाँ गनाने में किया जाता था। इसके लिए कच्चा माल लोथल, बालाकोट और कुतांसी से प्राप्त किया जाता था। मृदभांड कला से भी हडप्पावासी अच्छी तरह परिचित थे। मिट्टी की अधिकांश वस्तुएँ चाक पर बनाई जाती थीं। सजावट के लिए बर्तनों को अंकित किया जाता था। जिनमें ज्योमितिय डिजाइन, वृक्ष तथा पशु-पक्षियों की आकृतियों, आडी-तिरछी रेखाएँ तथा स्वास्तिक के डिजाइन प्रमुख थे। मृदभांडों के अतिरिक्त मिट्टी की मूर्तियाँ, चूड़ियाँ, मनके, खिलौने तथा विभिन्न पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ का भी निर्माण किया जाता था। विभिन्न स्थलों से प्राप्त अनेक विशाल भवनों को देखकर पता चलता है कि विस्तृत पैमाने पर ईंटों के निर्माण करने का भी उद्योग रहा होगा। खुदाई के दौरान घरों से ताकुओं और तकलियों की प्राप्ति से प्रकट होता है कि इनका प्रयोग वस्त्रों की कताई-बुनाई में कियर जाता था। मोहनजोदड़ों से दो ताम पात्र सूती वस्त्र में लिपटे मिले हैं। लोथल से कुछ मुद्रा-छापों पर कपड़े के चिन्ह प्राप्त हुए हैं तथा मोहनजोदड़ों से दो ताम पात्र सुती वस्त्र में लिपटे मिले हैं। लोथल से कुछ मुद्रा-छापों पर कपड़े के चिन्ह प्राप्त हुए हैं तथा कालीबंगा में कुछ मृदभांडों के टुकड़ों पर भी वस्त्रों के चिन्ह मिले हैं। इस सभ्यता के सभी स्थलों से सेलखड़ी से निर्मित वर्गाकार और आयताकार मोहरें प्राप्त हुई हैं। जिन पर लेख भी अंकित थे। मुद्राओं पर बैल, सिंह, हाथी, गैंडे आदि पशु चित्रित थे। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय पशुपति वाली मोहर है। बड़े पैमाने पर इन मोहरों की प्राप्ति इस ओर इंगित करती है कि इनका निर्माण एक विशेष व्यवसाय रहा होगा।

इस सभ्यता के नगरीकरण स्वरूप में व्यापार का विशेष योगदान रहा होगा। हडप्पा सभ्यता के प्रायः सभी नगर उन्नत औद्योगिक गतिविधियों के केन्द्र थे। जिनमें व्यापारी वर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। व्यापारिक गतिविधियों से संलिप्त नगर नदी के किनारे, समुन्द्री तटों तथा मुख्य व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। विभिन्न प्रकार के कला-कौशल से अवगत होने के कारण ये माल उत्पादन के कार्यों में संलग्न रहते थे। जिसके लिए ये कच्चा माल बाहर से प्राप्त करते थे। आन्तरिक व्यापार के अतिरिक्त विदेशों से भी इनके व्यापारिक संबंध कायम थे।

आन्तरिक व्यापार में पत्थर और धातु के उपकरण दैनिक उपभोग की वस्तुएँ, कलात्मक वस्तुएँ, मोहरें, मनके, अनाज और कपास व अन्य उपभोग का वस्तुएँ शामिल थीं। जिन्हें एक स्थान से उत्पादित कर दूरे स्थानों पर वितरित किया जाता था। जैसे सूक्कूर से चकमक पत्थर और फलक प्राप्त कर इनके औजार और हथियार बनाए जाते थे। हडप्पा, मोहनजोदड़ों, कालीबंगा तथा लोथल विभिन्न कलात्मक वस्तु निर्माण के प्रसिद्ध केन्द्र थे। जहाँ से तैयार माल को अन्य नगरों और गाँवों में भेजा जाता था। चावल, कपास, बाट, मोहरें, सीपियों का सामान, ताबें की वस्तुएँ, उपकरण और अनाज एक स्थान से दूसरे स्थानों पर नदी मार्गों द्वारा भेजे जाते थे। हडप्पा और मोहनजोदड़ों से प्राप्त अन्नागारों से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न क्षेत्रों में एकत्रित अनाज को नदी मार्गों द्वारा यहाँ संग्रहित किया जाता था, आन्तरिक व्यापार में सोना सभवतः दक्षिण भारत में, खासकर मैसूर से प्राप्त करते थे, यहाँ साने का विशाल भण्डार था और अब भी है। महाराष्ट्र से जुंबली तथा सौराष्ट्र और पश्चिमी भारत में गोमेद और मूंगा लाया जाता था। तांबा खेतड़ी से लाया जाता था।

हडप्पा सभ्यता के उन्नत व्यापार आन्तरिक के अतिरिक्त विदेशी व्यापार के भी प्रमाण मिलते हैं। इनका व्यापार मेसोपोटामिया के नगरों तक फैला हुआ था, जहाँ हडप्पा युग की दो दर्जन से भी अधिक मोहरें प्राप्त हुई हैं। हडप्पा क्षेत्र से भी मेसोपोटामिया की बेलनाकार मोहरें मिली हैं। मोहरों के अतिरिक्त कीमती पत्थर बाट और मूण्यमूर्तियाँ इत्यादि भी मिली हैं। पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार के अधिक पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलते हैं। मेसोपोटामिया साहित्य में इस बात का उल्लेख है कि ऊर (मेसोपोटामिया का शहर) के सौदागरों के विदेशी व्यापारियों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस संदर्भ में तिलमुन या दिलमुन, मगन और मेलुहा के नाम उल्लेखनीय हैं। मेसोपोटामिया के सम्राट सरगॉन (२३५० ई०पू०) का कहना था कि दिलमुन, मगन और मेलुहा के जहाज उसकी राजधानी में लांगर डालते थे। उपरोक्त तीनों नामों का विद्वान हडप्पा के नगरों से जोड़ते हैं। दिलमुन अधिकांशतः फारस की खाड़ी में स्थित बकरैन द्वीप के नाम से जाना जाता है। ओमन अथवा दक्षिण अरब का कोई दूसरा भू-भाग मगन कहलाता है। मेलुहा का सम्बन्ध भारत और मुख्यतः सिन्धु क्षेत्र तथा सौराष्ट्र से जोड़ा जाता है। हडप्पाकालीन मनके, हाथी दाँत से निर्मित कलात्मक वस्तुएँ, ताबें से निर्मित और सीपी से बनी हुई चीजें इन देशों का निर्यात करते थे। मेसोपोटामिया के नगर निपुर से हडप्पाकालीन मूण्यमूर्तियाँ तथा बाट मिले हैं। व्यापारी निर्यात के अलावा आयात भी करते थे। आयात की जाने वाली वस्तुओं में कीमती धातुएँ प्रमुख थीं। जिनमें मुख्य निम्नस्थानों से आयात की जाती थी। जैसे :- अफगानिस्तान और कर्नाटक से सोना, अफगानिस्तान और ईरान से चाँदी, ईरान, मध्यएशिया और अफगानिस्तान से टिन, नीलम अफगानिस्तान में बदख्शान से, सेलखड़ी ब्लूचिस्तान से आयात किए जाते थे। अफगानिस्तान से कीमती पत्थरों का व्यापार करने के लिए हडप्पा व्यापारियों ने शोर्टघड़ नामक स्थान पर अपनी बस्ती बना रखी



थी। यह व्यापार जल तथा स्थल दोनों मार्गों से होता था। समुद्री व्यापार लोथल, सुरकोटड़ा और बालाकोट जैसे तटीय नगरों से होता था। इस काल की नाप-तौल प्रणाली में समरूपता देखने को मिलती है। माप-तौल की जो प्रणाली हड़प्पा और मोहनजोदड़ों में थी। अन्य क्षेत्रों उसी रूप से लागू थी। इनकी नाप-तौल प्रणाली दो के अंक पर आधारित थी। जैसे: 1,2,4,8,16,64 तथा बाद में 10 और 16 के गुणा होने वाली प्रणाली भी प्रयोग में लाई जाने लगी। माप में 37.6 से०मी० की एक फूट की इकाई थी। तौल व्यापार सेलखड़ी पत्थर के घनाकार (Square) बने होते थे। विभिन्न स्थलों से प्राप्त बहुतायत मोहरों और मुद्रांकन इनके उन्नत व्यापार दर्शाते हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों से प्राप्त मोहरों पर जहाज और नावों के चित्र अंकित हैं। लोथल से पकी मिट्टी से बना जहाज का नमूना मिला है जिसमें मसतुल के लिए एक लकड़ी और उसे लगाने के लिए एक छेद बना है। लोथल से गोदयार्ड के भी प्रमाण मिले हैं। इससे प्रमाणित होता है कि परिवहन के साधनों में नाव और जहाज प्रमुख थे। लोथल, रंगपुर और बालाकोट नगरों में अनेक बन्दरगाहें थी जहाँ इनकी व्यापारिक गतिविधियाँ विदेशों में होती थी। आन्तरिक व्यापार में बैलगाड़ियाँ परिवहन का मुख्य साधन थी। विभिन्न क्षेत्रों से पकी मिट्टी से बने बैलगाड़ियों के नमूने प्राप्त हुए हैं।

### सामाजिक जीवन एवं सामाजिक स्तरीकरण (Social Life & Social Stratification)

हड़प्पा सभ्यता की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है इसलिए इसके सामाजिक स्तरीकरण पर अधिक जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी है। लेकिन उत्खनन से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर इस काल के समाज की रूपरेखा स्पष्ट की जा सकती है। उत्खनन से प्राप्त अनेक साक्ष्य सामाजिक वर्गीकरण को दर्शाते हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि समाज के विभिन्न वर्गों में स्तरीकरण और जटिलता विकसित हो गई होगी। बी०वी० लाल ने कालीबंगा में उत्खनन के बाद दर्शाया कि यहाँ पर तत्कालीन समाज तीन भागों में विभाजित था। पुजारी वर्ग, जो उस काल का शासकीय वर्ग था वह गढ़ी पर निवास करता था। किसान तथा व्यापारी वर्ग निचले शहर में निवास करता था क्योंकि यहाँ से कई आवासीय भवनों से अनाज संग्रहित करने वाले बड़े-बड़े मृदभाण्ड तथा मुद्रांक इत्यादि प्राप्त हुए हैं। तीसरा वर्ग जो कारीगर अथवा श्रमिक वर्ग था। वह नगर की सुरक्षा प्राचीर से बाहर निवास करता था। इस सभ्यता के आवासीय भवनों के आकार और बनावट में अनेक असमानताएँ विद्यमान थी। शिल्पियों और दस्तकारों में विभिन्नता और विशिष्टता थी। समाज में फैली इन विभिन्नताओं के आधार पर लोगों की वेश-भूषा, खान-पान, व्यापार, शिल्प कलाएँ तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के प्रति जानकारी प्राप्त होती है।

मोहनजोदड़ों के गढ़ी क्षेत्र से भी पुजारी वर्ग के निवास करने के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ पर स्नानागार के आस-पास कमर बने हुए थे जहाँ स्नान के बाद पुजारी अपने वस्त्र बदलते थे। यहीं से एक मुख्य पुजारी के भवन के भी अवशेष प्राप्त हुए हैं। अन्नागार, स्नानागार के पश्चिम में स्थित जहाँ दुर्ग के लोग निवास करते थे। निचले शहर में व्यापारी और कृषक वर्ग रहता था। यही पर दवा-दा कमरों वाले गरीब वर्ग के आवासीय भवन भी मिले हैं। इस प्रकार गढ़ी या दुर्ग क्षेत्र में पुजारी या शासकीय वर्ग का निवास था तथा दुर्ग के बाहर गरीब वर्ग निवास करता था। इन्हें कर के रूप में अन्न देना पड़ता था जो यहाँ बड़े-बड़े अन्नागारों में इकट्ठा किया जाता था। हड़प्पा से भी इसी तरह के अवशेष प्राप्त हुए हैं। घौलावीरा में गढ़ी, मध्यनगर तथा निचले नगर के अलग-अलग प्रमाण प्राप्त हुए हैं। जैसे :- अभिजात वर्ग गढ़ी में, व्यापारी और कृषक मध्य शहर में तथा गरीब वर्ग निचले शहर में निवास करता था। समाज में इसी प्रकार के वर्गीकरण के प्रमाण हमें अन्य स्थलों से भी प्राप्त होते हैं।

हड़प्पाकालीन विभिन्न स्थलों से जैसे मोहनजोदड़ों, हड़प्पा तथा अन्य नगरों से उत्खनन के दौरान अनेक नरककाल के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जिनके अध्ययन से पता चलता है कि मुख्य रूप से यहाँ क चार जातियों में विभक्त थे :-

- (i) प्रोटो - आस्ट्रेलायड अथवा काकेशियन (Proto Anstroloid)
- (ii) भूमध्य सागरीय (Mediterranean)
- (iii) मंगालियन (Mongoloid)
- (iv) अल्पाइन (Alpine)

इससे यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इस सभ्यता में मिश्रित जातियों के लोग सम्मिलित थे। जिनमें यूरोप, मध्यएशिया की नस्लों के साथ-साथ मंगोल प्रजाति के लोग भी सम्मिलित थे। हाल ही में किए गए शोध कार्यों से पता चलता है कि मोहनजोदड़ में आजकल के सिंधी जाति के लोग निवास करते थे जबकि हड़प्पा में आज के पंजाब जैसे तथा लोथल में आज के गुजरात के लोगों के समान ही लोग सिन्धु सभ्यता के समय में निवास करते थे।

इस काल की शिल्प कला और पकी मिट्टी की बनी मूर्तियों के अध्ययन से यहाँ के निवासियों के पहनावे का पता चलता है। पुरुष और स्त्रियों शरीर के निचले भाग पर एक वस्त्र लपेटते थे। पुरुष और महिलाएँ दोनों लंबे बाल रखते थे, स्त्री और पुरुष दोनों आभूषण धारण करते थे। हड़प्पावासी शाकाहारी और मांसाहारी भोजन का सेवन करते थे। विभिन्न क्षेत्रों से मिट्टी की बनी अनेक

मातृदेवी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। धरती की उर्वरता से मातृदेवी का सम्बन्ध था और लोग इसकी पूजा करते थे। मोहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सबसे प्रसिद्ध देवता की पहचान आदि-शिव के रूप में की गयी है। एक मोहर पर एक योगी ध्यानमग्न मुद्रा में बैठा हुआ है, जिसके सिर पर सींग का मुकुट है और वह बकरी, हाथी, शेर और मृग से घिरा हुआ है। इसकी पहचान पशुपति के रूप में की गई है। अनेक हडप्पा क्षेत्रों से लिंग और योनि प्राप्त हुए हैं। संभवतः शिव हडप्पा का सबसे महत्वपूर्ण देवता था। कई मोहरों पर पीपल और कुछ अन्य वृक्षों का चित्रण है। कहीं पर संयुक्त पशुओं का चित्रण है। जिनमें एक श्रृंगी, सांड और हाथी या मनुष्य और व्याघ्र शामिल हैं ये सभी अपने-अपने मत के प्रतीक लगते हैं। कालीबंगा और लोथल से अनेक अग्निवेदियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें पशुओं की हड्डियाँ और राख हैं। यह स्थान पुजा-क्रिया का केन्द्र रहा होगा। इनसे पता चलता है कि हडप्पा सभ्यता में भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मों का आचरण होता था। नगरों के समीप प्राप्त कब्रिस्तानों से हडप्पावासियों के मृतक संस्कारों की जानकारी मिलती है। शय साधारणतः उत्तर-दक्षिण दिशा में दफनाए जाते थे। कब्र में मिट्टी के बर्तन, गहनें, घर का सामान और खाद्य सामग्री भी रखे हुए प्राप्त हुए हैं। कब्रों पर किसी प्रकार का कोई स्मारक प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि मिस्र तथा मेसोपोटामिया से मिला है। कुछ बड़ी इमारतें सामूहिक पुजा अथवा धार्मिक संस्कारों की संकेत करती हैं जैसे हडप्पा का विशाल स्नानागार। नगर बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकी, शिल्प और केन्द्र थे। समाज के अधिकतर लोग कृषि कार्य से जुड़े हुए थे लेकिन दस्तकारी समूहों के पत्थरों के कारीगर, कुम्हार, सुनार, मणिकार, कासें और ताबें का कार्य करने वाले, राजमिस्त्री, मोहर बनाने वाले मूर्तिकार, चूड़ियाँ बनाने वाले और नाव बनाने वाले शिल्पी इस वर्ग में मौजूद थे।

### राज्य संरचना (State Structure)

हडप्पा सभ्यता की राजनैतिक के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि मद्राकों पर अंकित लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। सिन्धु सभ्यता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक था लेकिन नगर-नियोजन और बस्तियों के निर्माण में किंचित क्षेत्रिय अन्तर हाते हुए भी प्रायः एकरूपता देखने को मिलती है। पात्र-परम्परा, उपकरण निर्माण, बाट एवम् माप-तौल प्रणाली आदि के सन्दर्भ में मानकीकरण एवम् समरूपता देखने को मिलती है। हडप्पा, मोहनजोदड़ों तथा कालीबंगा आदि क्षेत्रों से पश्चिम में दुर्ग तथा पूर्व दिशा में नगर की स्थिति से हडप्पा सभ्यता के एक सुदृढ़ प्रशासनतन्त्र के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। इस प्रशासन के नियंत्रण का क्या स्वरूप था, क्या छोटे-छोटे राज्यों का गठन हो चुका था या समस्त सभ्यता एक विशाल साम्राज्य के रूप में विद्यमान थी। इनके बारे में विद्वानों ने अपने अलग-अलग मत रखे हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव होते हुए भी यह अनुमान करना संभवतः बहुत असंगत नहीं होगा कि सिन्धु सभ्यता की प्रशासनिक व्यवस्था में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी अधिकांश विद्वानों के अनुसार सिन्धु सभ्यता का प्रशासन हडप्पा तथा मोहनजोदड़ों नामक नगरों की दो राजधानियों से होता था। हंपर महोदय का मत है कि सिन्धु सभ्यता का प्रशासन राजतन्त्रात्मक पर आधारित ना होकर जनतन्त्रात्मक था; उनके अनुसार केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो चुका था कदाचित् केन्द्रीय शासन की ओर से अनेक पदाधिकारी भिन्न-भिन्न नगरों में शासन करते थे। मैं के महोदय का अनुमान है कि इस सभ्यता की दो राजधानियाँ थीं ताकि सम्पूर्ण प्रदेश की शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित रूप से चल सके। उनके अनुसार उत्तर में हडप्पा तथा दक्षिण में मोहनजोदड़ों राजधानी के रूप में स्थित थे। दोनों नगरों में दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुए हैं जहाँ पर उच्चाधिकारी निवास करते थे। स्टुअर्ट पिगोट महोदय का विचार है कि सिन्धु सभ्यता के प्रशासन का संचालन हडप्पा तथा मोहनजोदड़ों में स्थित दो राजधानियों से उसी प्रकार होता होगा जैसा बाद के कुषण काल के दौरान उत्तर में पेशावर तथा दक्षिण में मथुरा से प्रशासन का संचालन होता था। जैकोबसन नामक विद्वान के अनुसार सिन्धु सभ्यता एक प्रारंभिक राज्य का स्वरूप था। जबकि रत्नागार इसे एक साम्राज्य मानती है। ये दोनों विद्वान अपने विचारों को मध्य तथा पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों की सभ्यताओं को आधार मानकर अपने मत प्रकट करते हैं। बी०बी० लाल तथा पौशल सिन्धु सभ्यता के अलग-अलग राज्यों तथा उनकी राजधानियों का अनुमान लगाते हैं। बी०बी० लाल के अनुसार जिस प्रकार छठी श०ई०पू० का समय महाजनपदों का उदय था संभवतः उसी तरह का स्वरूप सिन्धु सभ्यता का पाकिस्तान स्थित पंजाब के आसपास का उत्तरी क्षेत्र एक अलग राज्य था और हडप्पा उसकी राजधानी थी। इसी तरह दक्षिण स्थित क्षेत्र सिन्धु की राजधानी मोहनजोदड़ों रही होगी। गुजरात स्थित लोथल प्रमुख नगर या राजधानी था जबकि राजस्थान स्थित कालीबंगा तथा पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश क्षेत्रों की राजधानी संभवतः राखीगढ़ी रही होगी। परन्तु मात्र क्षेत्रों तथा उनके बड़े शहरों के आधार पर पूर्ण रूप से यह भी कहा जा सकता है कि क्या सिन्धु सभ्यता एक साम्राज्य थी, अर्थात् छोटे-छोटे राज्यों वाला इसका कोई स्वरूप था। इस काल में कोई राजा या शासक था यह भी कहना कठिन है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त पत्थर की एक पुजारी की प्रतिमा के आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पुजारी वर्ग शासक रहा होगा तथा विशाल स्नानागार के आधार पर भी पुजारी वर्ग के राज्य कार्य प्रमुख भूमिका होने पर भी विद्वानों ने अपने मत दिए हैं।

कुछ विद्वानों ने मोहनजोदड़ों के गढ़ी क्षेत्र में स्थित एक बड़े स्तम्भों वाले महल की संज्ञा दी है लेकिन यह मत सर्वमान्य नहीं है क्योंकि

उत्खनन के दौरान कोई मकबरा प्राप्त नहीं हुआ है जैसे कि पश्चिमी एशिया तथा मिस्र की सभ्यताओं में प्राप्त हुए हैं। परन्तु यदि हम राजाओं, महलों, मकबरों इत्यादि के होने को नकार दें तो क्या यह मान सकते हैं कि किसी प्रकार के मिलों, गुलों, मन्त्रों या प्रशासन रहा होगा या पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष प्रशासन था। इन सभी प्रश्नों का उत्तर तो पूर्ण रूप से तभी मिल पाएगा जबकि सभ्यता की लिपि को पढ़ लिया जाएगा और विभिन्न क्षेत्रों से होने वाले उत्खननों से कुछ और महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आएगी। डॉ. श्री लाल के विचार ही अभी ज्यादा उपर्युक्त होते हैं कि जिस प्रकार छठी शताब्दी के आस-पास भारत सालह महान-पर्व का मनाया जाता था उसी प्रकार सिन्धु सभ्यता के भी अलग-अलग राज्य तथा उनके प्रमुख शहर या राजधानियाँ थीं।

### धर्म (Religion)

हडप्पा सभ्यता के निवासी किसका पूजा करते थे, यह प्रश्न विद्वानों के बीच चर्चा का विषय रहा है। लिखित स्रोतों के अभाव में उनकी धार्मिक मान्यताओं को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। लेकिन पुरातात्विक सामग्री के आधार पर इनके लौकिक और परलौकिक विश्वासों के बारे में जानकारी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुदेववादी होते हुए भी सिन्धु निवासी एक ईश्वरीय सभ्यता से परिचित थे। इसी सत्ता को विश्व कली सृजनात्मक शक्ति समझते थे। इसके प्रतीक के रूप में उन्होंने परम पुरुष और परम नारी के द्वन्द्वात्मक धर्म का विकास किया था।

### पूजा विधि (Worship)

विभिन्न सिन्धु क्षेत्रों से स्नानकुण्ड, स्नानागारों, कुओं और इमारतों के अस्तित्व से अनुमान लगाया जाता है कि पूजा शुद्धि के लिए आवश्यक मानी जाती थी। मोहनजोदड़ो की कई बड़ी इमारतों की पहचान मन्दिरों के रूप में की गयी है। क्योंकि ज्यादातर पथर की मूर्तियाँ इन्हीं इमारतों से मिली हैं। मोहनजोदड़ो के निचले नगर में एक बड़ी इमारत मिली है। इसमें एक द्वार तथा मंच पर 16½ इंच ऊँची एक पाषाण शिल्प कृति मिली है। इसमें घुटनों पर हाथ रखे हुए एक पुरुष बैठा है, जिसके चेहरे पर ढाढी है इसलिए विद्वानों ने इस इमारत को मन्दिर माना है।

हडप्पा के पवित्र स्थलों में संभवतः विशाल स्नानागृह सबसे प्रसिद्ध है इसके चारों ओर नीचे जाने के लिए सीढियों बनाई गईं हैं तथा चारों ओर पुरोहितों के रहने के कमरे बने हुए हैं बाद के काल में भारत में इस प्रकार के धार्मिक स्थलों का निर्माण होता रहा है। इस विशाल स्नानागार के समीप एक अन्य विशाल इमारत (230x78 फुट) मिली है जिसे विद्वानों ने मुख्य पुरोहित का निवास स्थल माना है। इस प्रकार किले बंद क्षेत्र में एक सभागार मिला है इसके पश्चिम की ओर एक साथ कई कमरे बने मिले हैं। जिनमें एक के एक बैठे हुए योगी की मूर्ति मिली है। इसे भी धार्मिक इमारत के रूप में देखा गया है।

पूजनीय वस्तुओं के प्रमाण के तौर पर हमें हडप्पा की मोहरों और पक्की मिट्टी की मूर्तियाँ विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई हैं। मुहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता की पहचान आदि शिव के रूप में की गई है। कई मोहरों पर एक देवता जिसके सिर पर सींग का मुकुट है, योगी की मुद्रा में बैठा हुआ है। इसके चारों ओर बकरी, हाथी, शेर तथा मृग खड़े हुए हैं। माशुल ने इस पशुपति माना है। कई स्थलों पर देवता के सींग के बीच एक पौधा उगता दिखाया गया है। एक अन्य मोहर पर योगी नग्न बदन पीपल की शाखाओं के बीच खड़ा है। एक उपासक उसके सामने झुका हुआ है इसमें योगी के साथ सर्प की आकृति भी है। बाद में इस शिव का रूप मान लिया गया। अनेक हडप्पाई स्थलों से शिव लिंग भी प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने शिव को हडप्पा का सबसे प्रमुख देवता माना है।

### मातृदेवी (Mother Goddess)

अनेक हडप्पा बस्तियों से काफी मात्रा से पक्की की मातृदेवी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अनेक मूर्तियाँ सिरों पर पख के रूप में मुकुट पहने हुए हैं। कभी-कभी उनके साथ शिशु भी दिखाए गए हैं। मातृदेवी की मूर्तियों को गर्भधारण के विभिन्न रूपा में भी चित्रित किया गया है। इन प्रमाणों से हडप्पा सभ्यता में अभिजनन पंथ के प्रति विश्वास और मातृदेवी की पूजा के प्रमाण मिलते हैं।

### वृक्ष आत्माएं

संभवतः ये लोग वृक्ष आत्माओं की भी पूजा करते थे। कई जगत वृक्षों की शाखाओं के बीच से झाकती हुई आकृतियाँ देखी गई हैं। विद्वानों के अनुसार ये आकृतियाँ वृक्ष आत्माओं को दर्शाती हैं। कई चित्रों में आराधक पेड़ के सामने खड़े दिखाए गए हैं। पेड़ों पर किसी जानवर को वृक्ष के समक्ष दर्शाया गया है। एक स्थान पर वृक्ष के सामने 7 मानवीय आकृतियाँ खड़ी दर्शाया गया है। इनके अन्दर एक आकृति, जिसके सिर पर सींग है, दिखायी गई है। यह संभवतः शिव की है। पीपल की पूजा महात्माओं की हो रही है। कहीं-कहीं शिव और पीपल की पूजा साथ-साथ होती है। सात आकृतियों प्रायः 6 महान ऋषियों के रूप में माने जाते हैं। सात जनकी मानी गई हैं।

### प्रतीक-पूजा

अनेक स्थलों पर सींग स्तम्भ और स्वास्तिक के चित्र प्राप्त हुए हैं संभवतः इनका धार्मिक महत्व था। इनकी पूजा होती थी और शायद ये अन्धविश्वास के प्रमाण थे। मुदालों पर अंकित कुछ स्तम्भों के ऊपर दीप-धूप जलते दिखाए गए हैं। खुदाई में अनेक स्वास्तिक चक्र तथा क्रॉस के चिन्ह अंकित मिलते हैं। हिन्दू धर्म में स्वास्तिक आज भी शुभ और पवित्र माना जाता है। संभवतः इस भावना की शुरुआत हड़प्पा काल में हो चुकी थी।

### लिंग व योनि पूजा

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से असंख्य लिंग और योनि प्राप्त हुई है। जो साधारणतः पत्थर, लाल पत्थर अथवा सीप के बने होते थे। संभवतः इन्हें कल्याणकारी माना जाता था। हड़प्पावासी इन्हें सदा अपने हाथ में ही रखते थे। मैके महोदय का मानना है कि लिंगों के निचले हिस्से घिसे हुए हैं इसलिए संभवतः ये कूटने-पीसने के उपकरण थे। इनहीं के अनुसार जो बहुसंख्यक छल्ले मिले हैं वे योनियां नहीं हैं। लेकिन भारत में आज भी अनेक स्थानों पर लिंग और योनि की पूजा साथ-साथ होती है। जो उस काल में भी प्रचलित थी।

### जानवरों की पूजा

हड़प्पा के लोग कई प्रकार के जानवरों की भी पूजा करते थे। इसके प्रमाण मुहरों तथा पक्की मिट्टी की मूर्तियों से मिलते हैं। चन्हुदड़ों से प्राप्त एक मुहर में लिंग बाहर किए हुए एक सांड एक झुकी हुई मानव आकृति के साथ संभोग कर रहा है। यह निश्चित रूप से अभिजनन के प्रति विश्वास का सूचक है। मुहरों पर ज्यादातर बैल चित्रित किया गया है। संभवतः वर्तमान सभ्यता के बैलों एवम् गायों के प्रति आदर के भाव हड़प्पा काल में रहे हैं।

मुहरों पर विभिन्न समष्टि आकृति वाले जानवर भी अंकित किए गए हैं। मुहरों पर ऐसा जानवर रूप जीव मिलता है जिनका अगला हिस्सा मानव जैसा है, पिदला हिस्सा शेर जैसा है। इसी प्रकार भेड़ों, बैलों तथा हाथियों की मिली-जुली समष्टि प्राप्त हुई है। ये निश्चय ही पूजनीय आकृतियाँ रही होंगी। हड़प्पा की मुहरों पर एक अन्य महत्वपूर्ण जानवर एक चित्रित Unicom मिलता है। यह एक घोड़े जैसा जानवर है जिसके सिर के बीच एक सींग है। संभवतः इसकी भी उपासना की जाती होगी।

### अग्नि-वेदिका

प्रतीत होता है कि कालीबंगा और लोथल के हड़प्पा वासी अलग-अलग धार्मिक संस्कारों के अनुयायी थे। कालीबंगा के किले में उभरी ईंटों के मंच मिले हैं जिनके ऊपर अग्नि-वेदियां बनी हुई हैं। जिनमें पशुओं की हड्डियां तथा राख मिली है, इस स्थान पर भी कुआँ और स्नानगृह मिले हैं। संभवतः यह पूजा स्थल रहा होगा जहाँ पशुओं की बलि धार्मिक पवित्रीकरण तथा अग्नि की पूजा की जाती होगी। निचले नगर में भी कई मकानों में अग्नि वेदी मिली हैं। लोथल से भी अनेक अग्नि वेदिकाएं प्राप्त हुई हैं ये प्रमाण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे यह संकेत मिलता है कि विभिन्न पात्रों के हड़प्पा निवासी अलग-अलग धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे तथा वैदिक युग के धर्म में अग्नि पूजा के विरोध का विशेष महत्व था। वैदिक काल में आर्य भिन्न प्रकार के लोग थे, कालीबंगा से प्राप्त प्रमाणों से पता चलता है कि आर्यों ने हड़प्पा क्षेत्रों में बसने के बाद हड़प्पावासियों की ही धार्मिक रीतियों को अपनाया। उपर्युक्त विवरण से यह संकेत मिलते हैं कि हड़प्पा सभ्यता के भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मों का आचरण प्रचलित था।

### पतन/ह्रास (Decline)

पुरातत्ववेत्ता पिछले कई दशकों से इस अध्ययन में कार्यरत हैं कि हड़प्पा सभ्यता का विघटन कैसे हुआ। इनके अनुसार 1900-1700 ई०पू० के मध्य इस सभ्यता के नगरों का स्वरूप बिगड़ने लग गया था। क्योंकि इस काल में पक्की ईंटों के योजनाबद्ध तरीके से घर बनने बंद हो गए, औद्योगिक गतिविधियाँ समाप्त हो गईं, मोहरें बननी बंद हो गईं दसके अतिरिक्त शहरों से जनसंख्या का पलायन शुरू हो गया। पुरातत्त्वियों को मिले ये प्रमाण इस सभ्यता के विघटन की ओर संकेत करते हैं। विद्वानों ने इस विषय में अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं।

गोर्डन चाइल्ड और मार्टिन व्हीलर के अनुसार इस सभ्यता का विनाश आर्यों के आक्रमण के कारण हुआ। आर्य अफगानिस्तान के रास्ते से आए, उन्होंने उत्तर-पश्चिमी भारत पर आक्रमण किया और प्राचीनों वाले नगरों को नष्ट कर दिया। अनेक भारतीय साहित्यिक सूत्रों के अनुसार यह घटना 1500 ई०पू० में घटित हुई। अप्रत्यक्ष रूप से इसी तरह के साक्ष्यों के संकेत हड़प्पा और मोहनजोदड़ों से पाए गए हैं और उन्हें ऋग्वेद में वर्णित कथाओं और पात्रों से जोड़ा जाता है। ऋग्वेद में आर्यों के देवता इन्द्र को 'पुसदर' कहा गया है अर्थात् किलों को नष्ट करने वाला। यानि हड़प्पा में जो किले थे उन्हें आर्यों ने नरुट किया ऋग्वेद में एक स्थान पर 'हरियूपिया' स्थान का जिक्र है। व्हीलर ने इसे हड़प्पा से जोड़ा है। इनके अनुसार आर्यों ने इस जगह युद्ध लड़ा और आक्रमण कर इसे जला कर नष्ट कर दिया। अनेक विद्वान इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार हड़प्पा सभ्यता के ह्रास का अनुमानित समय 1800



ई०पू० माना जाता है। इसका विपरीत आर्य यहाँ 1500 ई०पू० में आए। दूसरा हडप्पा और मोहनजोदड़ो से किसी अन्य सभ्यता का कोई साक्ष्य नहीं मिला है। मोहनजोदड़ो की सड़कों पर जाँ मनुष्यों के शव पड मिलन का जाँ साक्ष्य है यह आसपास के क्षेत्रों पर स. आए लुटरों कं हमलों से हो सकता है।

मार्शल और मैके ने अपने अध्ययन क बाद यह टिप्पणी की थी कि सिन्धु नदी में बार-बार आने वाली भयंकर बाढ़ें इस सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी थीं। मोहनजोदड़ो से मकानों और सड़कों पर गाद की चड़युक्त मिट्टी भरी पडा थी। बाढ़ मानवों को बाढ़ पलों के निवारसी पुराने मलबे के ऊपर फिर मकान बना लेते थे; खुदाई के दौरान पता चला कि 70 फुट गहराई तक मकान बन चुके थे। बार-बार आने वाली बाढ़ों से परेशान होकर नगरवासी कहीं ओर पलायन कर गए। बाद में आर०एल० रायक्स/रइक्स ने 1965 में अपने लेख में स्पष्ट किया इस सभ्यता के पतन का कारण भयंकर बाढ़ थी, जिससे तीस फुट तक पानी नगरो में भर गया था। इन्होंने आगे बताया कि बाढ़ के साथ भूकंप भी आया। जिससे अदी का मार्ग भी अवरूद्ध हो गया और यह सभ्यता नष्ट हो गयी। इनके अनुसार बालाकोट, सुत्काजनदोर और सतकान्कोह जो समुन्द्र तट पर स्थित थे, भूकम्प के कारण जमीन ऊपर उठन से समुन्द्र तट से दूर हो गए, जिससे व्यापारिक गतिविधियाँ प्रभावित हुई और इस सभ्यता का विनाश हो गया लेकिन पुरातत्वियों ने इनके मत का कड़ा विरोध किया। आलोचकों के अनुसार यदि भूकम्प से नदी का मार्ग अवरूद्ध हो गया होता तो कुछ समय बाद जल के दबाव से टूट भी जाता। लेकिन ऐसा हुआ होगा इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है।

सर व्हीलर, पिगॉट महोदय और डी.पी. अग्रवाल तथा अन्य विद्वान इस सिन्द्धात के समर्थक थे कि हडप्पाई क्षेत्र की जलवायु में शुष्कता बढ़ने के कारण और हाकडा क्षेत्र (घग्घर नदी) के सुखने के कारण इस सभ्यता का ह्रास हुआ। इस क्षेत्र की जलवायु अज के मुकाबले काफी नम या गीली थी लेकिन दूसरी शताब्दी ई०पू० के मध्य में इसकी जलवायु शुष्कता बढ़ रही थी। जिस कारण इस अर्ध-शुष्क क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पडा होगा, जैसे कृषि की पैदावार में कमी हुई जिसका सीधा असर नगरीय अर्थव्यवस्था पर भी पडा। इसके साथ यह तर्क भी दिया जाता कि इन आन्तरिक परिवर्तनों के कारण इस क्षेत्र के नदी मार्गों पर भी असर पडा। इनके मत का पुरातत्वियों ने समर्थन नहीं किया क्योंकि एक तो यह कम सूचनाओं पर आधारित हो और जिनके स्पष्ट परिणाम नहीं निकाले गए थे। इसके अतिरिक्त घग्घर नदी के सूखने का काल अभी निर्धारित नहीं हो सका है।

फेयर सर्विस ने हडप्पा सभ्यता के ह्रास के लिए पारिस्थितिकी असंतुलन को मुख्य कारण माना है उन्होंने हडप्पा नगर में निवास करने वाली जनसंख्या की खाद्य जरूरतों का आकलन किया। इनके अनुसार ग्रामीण जनसंख्या अपनी उपज की लगभग 80% खर्च स्वयं करते थे और 20% मण्डियों में बेचते थे। यदि कृषि का सही प्रतिमान पहले भी विद्यमान रहा होता तो मोहनजोदड़ो जैसे नगरो का, जिनकी जनसंख्या करीब 35 हजार थी, खाद्यान्न आपूर्ति के लिए बड़ी संख्या में ग्राम निवासियों की जरूरत थी। इनके अनुसार इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों का पर्यावरण असंतुलन इसलिए बिगड़ रहा था क्योंकि इन क्षेत्रों में मनुष्यों और मवेशियों की आबादी अत्यंत जंगलों, खाद्यान्न और ईंधन के स्रोतों को तेजी से खत्म कर रही थी। इन क्षेत्रों की सीमित उत्पादन क्षमताएँ निवासियों के लिए पर्याप्त नहीं थी। धीरे-धीरे जंगल और घास के मैदान लुप्त होने के कारण बाढ़ अधिक आने लगी और अधिक सूखा पड़ने लगा। जीविका मूलभूत आधार नष्ट होने के कारण यहाँ की अर्थव्यवस्था पर भी इसका अनुकूल प्रभाव पडा। इसलिए यहाँ के निवासी उन क्षेत्रों की ओर पलायन करने लगे जहाँ पर्यावरण असंतुलन का यह सिन्द्धात मानने में भी कुछ कठिनाईयाँ हैं जैसे :- हडप्पा जनसंख्या की जीविका संबंधी जरूरतों की गणना अल्प सूचनाओं पर आधारित है। उचित आकड़े एकत्रित करने के लिए अधिक साक्ष्यों की आवश्यकता है।

डा०आर०एस० शर्मा का विचार है कि विदेशी व्यापार में गिरावट इस सभ्यता के ह्रास का मुख्य कारण था। विदेशी व्यापार में आई गिरावट के लिए दो कारण उत्तरदायी थे। प्रथम, कृषि तथा उद्योग-धन्धे में उत्पादन की कमी, दूसरा 1700 ई०पू० के आसपास न देशों में राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई जिसके साथ हडप्पा सभ्यता के व्यापारिक संबन्ध थे। इसका परिणाम यह हुआ कि पगरीय सभ्यता का अर्थव्यवस्था में काफी गिरावट आ गई जो इसके पतन का कारण सिद्ध हुई।

कुद विद्वानों के अनुसार इस सभ्यता का पतन किसी महामारी-प्लेग या मलेरिया के कारण हुआ। महामारी के कारण बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हो गई और जो जीवित रहे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। जिस कारण इस सभ्यता के विकास में अवरोध उत्पन्न हो गया। यदि हम विभिन्न उत्खनित स्थलों से प्राप्त प्रमाणों को देखे तो पाएंगे कि सिन्धु सभ्यता का अन्त नहीं बल्कि ह्रास हुआ। इसके एक लम्बे अरसे में हुआ। यही नहीं इस सभ्यता की बहुत सी चीजे तो बाद की ताम्रपाषाणीय एव अन्य संस्कृतिया में भी नकल के रूप में आज भी पाई जाती हैं। पश्चिम एशिया में सुमेरियन सभ्यता के अन्त के कारण व्यापार समाप्त होने से इस सभ्यता के पतन का शुरु हो गया। पहले घर जो बड़-बड़े हुआ करते थे वे अब छोटे होने लगे, बड़े-बड़े भवन लुप्त होन लगे, गालिया में अतिप्रमाण में मृदभाडों का न पाया जाना जैसे बाद के काल में 'S' प्रकार के बर्तन, छेददार (Perforated) बर्तन बड़े स्टैंड वाली प्लेटों का न पाया जाना कई विशेष चित्रित डिजाइनों का न पाया जाना, कीमती पत्थरों की चीजें कम होना मुद्रांको (Seals) का न पाया जाना, पत्थर के

का लुप्त होना, घरों में समृद्धि के कम प्रमाण, पक्की ईंटों के स्थान पर ईंटों या रोड़ों (Brick-lats) का प्रयोग या कच्ची ईंटों का प्रयोग इत्यादि आर्थिक समृद्धि के कम होने तथा इस सभ्यता के ह्रास का द्योतक है। यह सभ्यता एक दम से समाप्त नहीं हुई बल्कि काफी समय तक चलती रही जिसके प्रमाण हमें निम्न लिखित स्थलों से मिलते हैं :-

चुन्हुदड़ो (Chunhudaro) में बाद के काल में झूखर तथा झांगर (Jhukhar and Jhangar) संस्कृति मिलती है जो कि सिन्धु सभ्यता का ही ह्रास का रूप है।

हडप्पा में सभ्यता के काल के बाद में इसी से मिलती जुलती 'श्वधाम-एच' (Cemetery 'H') संस्कृति मिलती है। अमरी (Amri) में भी काल III-D झूखर संस्कृति तथा काल-IV झांगर संस्कृति का है। यद्यपि कालीबंगा में हमें सिन्धु सभ्यता के बाद के प्रमाण नहीं मिलते। हरियाणा में सीसवाल के मीताथल, राखीगढ़ी, बालू से इस सभ्यता के बाद के प्रमाण मिलते हैं। पंजाब में रोहिड़ा, रोपड़ से सभ्यता के बाद की ह्रास संस्कृति के प्रमाण हैं। संकोल, बाड़ा इत्यादि से तो बाड़ा संस्कृति जो कि सभ्यता के बाद की है, के प्रमाण मिलते हैं। बाद के काल (Late Harappan) काल में बड़े-बड़े नगर समाप्त हो गए तथा छोटे-छोटे गाँव मिलने लगे। रफीक मुगल ने पाकिस्तान के चोलीस्तान में दर्शाया है कि ज्यादातर स्थल अब 5 हेक्टेयर के हैं। केवल एक स्थल कुडवाला, जो कि यजमान के समीप स्थित है 31 हेक्टेयर का है जिसे हम बड़े शहर की संज्ञा दे सकते हैं। यही हाल पंजाब, हरियाणा के स्थलों का है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र के कुछ इलाकों में तो हडप्पा संस्कृति के बाद (Late Harappan) के ही प्रमाण हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सिन्धु सभ्यता का अन्त आकस्मिक नहीं हुआ अपितु आर्थिक समृद्धि कम होने के कारण यह दिन-प्रतिदिन क्षीण होती चली गई तथा समृद्ध सभ्यता के बाद में क्षीण अवस्था में यह काफी समय तक चलती रही।



# इकाई-II

## अध्याय-1

### वैदिक सभ्यता (Vedic Civilization)

वेदों से प्राप्त समाज एवं उनकी आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन को हम दो प्रमुख भागों में बांट सकते हैं। प्रथम ऋग्वेदिक संस्कृति का भाग है प्रारम्भिक वैदिक संस्कृति, जिसको जानने का स्रोत ऋग्वेद है जो कि आर्यों का प्राचीनतम ग्रंथ है। उत्तरवैदिक संस्कृति का ज्ञान हमें यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इत्यादि से होता है। परन्तु सर्वप्रथम हमें यह जान लेना आवश्यक है कि क्या आर्य भारत के ही मूल निवासी थे या कहीं दूसरे देश से प्रस्थान कर भारत में बस गए थे। इस विवाद की शुरुआत तब हुई जब कलारेंस के एक व्यापारी ने, जो कि गोआ में 5 वर्ष तक निवास कर (1583-88), वापिस जाते समय यह खोज कर सका कि संस्कृत तथा यूरोप की महत्वपूर्ण भाषाओं में कोई सम्बन्ध है। 1786 ई. में सर विलियम जोनस ने सुझाव दिया कि संस्कृत तथा यूरोप की महत्वपूर्ण भाषाओं में संबंध का कारण है कि इन भाषाओं को बोलने वाले कभी एक समय में इकट्ठे रहे होंगे। उन्होंने ग्रीक, लैटिन, गोथिक, सैल्टिक, संस्कृत, पार्शियन आदि भाषाओं का उद्गम केन्द्र एक ही माना तथा इन भाषाओं को इण्डो यूरोपीयन नाम दिया।

आर्यों के मूल देश के बारे में विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वान आर्यों को भारत का मूल निवासी मानते हैं तो कुछ इन्हें विदेशी मानते हैं जो मूलतः दूसरे देश से आकर भारत में बस गए। अविनाश चन्द्र दास आर्यों को सप्त सैन्धव प्रदेश, महामहोष्पाय गंगावाहिनी का इन्हें ब्रह्मर्षि देश, राजबली पांडे के विचारों अनुसार मध्य प्रदेश, श्री एल. डी. कब्ला आर्यों को कश्मीर या हिमाचल प्रदेश, श्री डी एस त्रिवेदी के मतानुसार देविका प्रदेश आदि का मूलनिवासी मानते हैं। गाइलण महोदय के मतानुसार आर्यों का मूल निवास स्थान हर्गरा श्री बालगंगाधर तिलक आर्यों का आदि देश उत्तरी ध्रुव मानते हैं। पैका नामक विद्वान के विचारों से इनका मूल निवास जर्मनी है जो मय के अनुसार पश्चिमी बाल्टिक क्षेत्र, नेहरिंग के अनुसार रूस आर्यों का मूल निवास स्थान मानते हैं। परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि आर्य मध्य एशिया से भारत आए हैं। क्योंकि इसी क्षेत्र से हमें आर्यों के देवताओं इन्द्र, वरुण, मित्र तथा नस्त्य इत्यादि के प्रमाण एलामरणा तथा बोगाजकोई नामक स्थलों से मिलते हैं। इसके अलावा आर्यों के अधिकतर धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रमाण भी इसी तर्ज से मिलते हैं। जैसे - मृतकों का दाहसंस्कार, अश्व केन्द्रित अल्पतंत्र, अग्नि पूजा, रथगाड़ी, छोड़ों का प्रथम प्रयोग इत्यादि का प्रमाण मध्य एशिया के स्थलों पर देखने को मिलता है। गांधार श्वाधान संस्कृति के घूसर मृदभांडों पर आर्य मृदभांडों की छाप मिलती है। आर्य भारत में सर्वप्रथम सरस्वती नदी एवं तथा उसके आस-पास के क्षेत्र तक सीमित थे। इस काल में वे अपने मवेशियों का साथ विभिन्न कबिलों में बंटे हुए थे और इन्हें पूर्वी भारत के बारे में अधिक जानकारी नहीं थी, क्योंकि ऋग्वेद में सरयु गंगा नदी के उल्लेख मात्र एक या दो बार हुआ है। इस काल में पुरु, युद्ध और तुर्वसु आदि महत्वपूर्ण कबिले थे। लेकिन उत्तरवैदिक काल में आर्यों ने गंगा-यमुना दोआब के क्षेत्र में अपना प्रसार किया और बड़े-2 नगरों एवं जनपदों की स्थापना की।

### आर्य समस्या

फ्लोरिन्टाइन व्यापारी फिलियों सस्सेत्ती 1583 से 1588 तक गोवा में अपने निवास के पश्चात् जब अपने देश जा रहा रहा तो उसने सर्वप्रथम यह मत प्रतिपादित किया कि संस्कृत तथा यूरोप की प्रमुख भाषाओं में काफी समानता है। परन्तु इन भाषाओं का समान उद्भव का प्रतिपादन सर्वप्रथम 1786 में सर विलियम जोनस ने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल में किया। उन्होंने बताया कि युनानी, लीतीनी, गोथिक, सैल्टिक संस्कृत तथा फारसी में काफी समानताएं हैं। आर्य समस्या के तृतीय चरण में जर्मन विद्वान मैक्स मूलर ने बताया कि आर्य एक वैज्ञानिक भाषा है जिसे किसी नस्ल से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता तथा यह एक कपल भाषा वैज्ञानिक मसला है परन्तु भाषा के इस फार्मूले को विद्वानों ने कभी स्वीकार नहीं किया तथा आर्य भाषा को आर्य नस्ल के ही एक रूप से बना एक समस्या पैदा कर दी।

आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ अथवा श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न। व्यापक अर्थ में आर्य को मनुष्य की उस जाति को कहते हैं जिसकी शरीर रचना, रंग रूप तथा प्राकृति एक विशेष प्रकार की होती है। जैसे गोरा रंग, लम्बी नाक, ऊंचा माथा, हृष्ट-पुष्ट, लम्बे शरीर वाला इत्यादि। वेदों में आर्य उसे कहा गया है जो ऊपर लिखे विवरण वाला तो हो तथा इन्द्र, वरुण मित्र आदि की पूजा करने वाला हो। दूसरी ओर अन्य लोगों को अनार्य, दास या दस्यु इत्यादि संज्ञा दी गई।

यूरोप के विभिन्न देशों, ईरान और भारत के निवासी अपने आप को आर्य संस्कृति प्रजाति की सन्तान मानते हैं या यह प्रश्न उठता

है कि इन प्रदेशों के लोग आदि ये कही एक स्थान पर रहते होंगे तथा वही से वे अन्य स्थानों पर चले गए। इस तरह आर्यों के आदि देश की समस्या खड़ी हो गई।

### आर्यों का आदि देश

आर्यों के आदि देश के बारे में विद्वान एक मत नहीं है। इन के आदि देश के बारे में कई सिद्धान्त तथा मत हैं। इनमें प्रमुख हैं — भारतीय मूल का मत, दूसरा युरोप मूल तीसरा, मध्य एशिया का सिद्धान्त। इसके अतिरिक्त बाल गंगाधर तिलक ने आर्कटिक प्रदेश को आर्यों का आदि देश माना है। तिब्बत के पामीर क्षेत्र को भी कतिपय विद्वान आर्यों का आदि देश मानते हैं। इन विचारों में प्रमुख निम्नलिखित हैं।

### आर्यों का आदि देश — यूरोप

यूरोप को आर्यों का आदि देश मानने वाले विद्वानों के तर्क दो आधारों पर निर्भर हैं —

- (1) आज भी इन्डो-यूरोपीय भाषा-परिवार के शब्द और मुहाविरें जितने यूरोप की भाषाओं में विद्यमान हैं उतनी एशिया की भाषाओं में नहीं। इनसे अनुमान यही होता है कि कदाचित् यूरोप का ही देश आर्यों का आदि-देश था, एशिया का नहीं।
- (2) यूरोप की लिथ्यूनियन भाषा ही समस्त इन्डो-यूरोपीयन भाषा-परिवार अत्यधिक अपरिष्कृत है और इसलिए अत्यधिक प्राचीन लगती है। अतः लिथ्यूनिया अथवा उसके समीप का कोई यूरोपीय देश आर्यों का आदि देश रहा होगा।

- (1) **हंगरी** — गाइल्स महोदय का मत है कि आर्यों का आदि निवास-स्थान हंगरी अथवा डेन्यूब नदी की घाटी था। उनका यह मत भाषा विज्ञान के ऊपर है। उन्होंने इन्डो-यूरोपीय परिवार की विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निश्चित किया कि प्राचीनतम आर्यों के आदि देश की भौगोलिक अवस्था क्या थी, वे किन किन अन्तों, फलों, वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों से परिचित थे। इस आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि प्राचीनतम आर्य न तो किसी द्वीप पर रहते थे और न किसी समुद्रीय प्रदेश में। कदाचित् वे समुद्र से भलीभांति परिचित थे। अनुमानतः उनका आदि निवास-स्थान तो ऐसे देश में था जो पर्वतों, नदियों अथवा झीलों से घिरा था। आर्यों के परिचित पशुओं में गाय, बैल, भेड़, घोड़ा, कुत्ता, हिरन और भालू विशेष उल्लेखनीय हैं। हाथी, बाघ, गिद्ध और बतख से वे अपरिचित थे। गाइल्स महोदय का निष्कर्ष है कि हंगरी का देश अथवा डेन्यूब प्रदेश ही एक ऐसा भू-खण्ड है जिसमें ये सभी विशेषताएं विद्यमान हैं। अतः यही भूखण्ड आर्यों का आदि निवास स्थान रहा होगा। कालान्तर में ये आर्य डारडेनलीज के मार्ग से एशिया माइनर में प्रविष्ट हुए और वहां से मेसोपोटामिया तथा ईरान होते हुए भारत पहुंचे। यही कारण है कि समस्त देशों में आर्य-इतिहास के अति प्राचीन अवशेष मिले हैं।

- (2) **जर्मन प्रदेश** — कुछ विद्वानों ने सहज जातीय विशेषताओं के आधार पर आर्यों के आदि देश की समस्या को हल किया है। उनका मत है कि प्राचीनतम आर्यों की सर्वप्रमुख जातीय विशेषता थी उनके भूरे बाल। यूनानी पौराणिक परम्पराओं में उनके देवता अपोलो के बाल भूरे थे। इसी प्रकार प्लूटार्क कैटो और सुला नामक रोमन शासकों को भी भूरे बालों वाला बताया है। इन उदाहरणों से अनुमान होता है कि प्राचीन आर्यों के बाल भूरे होते हैं। यह विशेषता आज भी जर्मन-जाति में पायी जाती है। अतः कदाचित् प्राचीनतम आर्य जर्मनी के ही निवासी थे।

कुछ पूर्वमिहासिक मृद्भाण्ड मध्य जर्मनी में मिले हैं। कुछ विद्वान इन्हें प्राचीनतम आर्यों की कृतियां मानते हैं और इन्हीं के आधार पर मध्य जर्मनी को आर्यों का आदि देश बताते हैं।

पेन्का नामक विद्वान की धारणा है कि भूरे बालों के अतिरिक्त प्राचीनतम आर्यों की जो अन्य शारीरिक विशेषताएं थीं वे जर्मनी-प्रदेश के निवासी स्कैंडिनेवियन्स में पाई जाती हैं। अतः स्कैंडिनेविया को ही आर्यों का आदि देश माना है, परन्तु उनके तर्क का आधार भाषा सम्बन्धी है। उनका कथन है कि स्कैंडिनेविया के ऊपर कभी भी विदेशी जाति का आधिपत्य नहीं रहा और तो भी उनके निवासी इन्डो-यूरोपीय भाषा बोलते हैं। अतः यह देश प्राचीनतम आर्यों का आदि-देश रहा होगा।

कुछ अन्य विद्वानों ने पुरातत्व के आधार पर पश्चिमी बाल्टिक समुद्र-तट को आर्यों का आदि देश माना है। इनका कथन है कि इस तट पर पूर्व-पाषाणकाल के अनुगामी काल की अति प्राचीन और सरल वस्तुएं मिली हैं। कदाचित् ये प्राचीनतम आर्यों की होंगी। इस मत के प्रतिपादकों में विशेष उल्लेखनीय हैं मच महोदय।

- (3) **दक्षिणी रूस** — नेहरिंग महोदय ने त्रिपोल्जे (दक्षिणी रूस) यूक्रेन में प्राप्त कुछ मृद्भाण्डों का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि ये 300 ई. पू. के हैं। आर्यों का आदि देश कदाचित् रूस ही था।

पोकोर्नी महोदय का अनुमान है कि प्राचीनतम आर्य स्टेप्स अथवा विस्तृत मैदानों में निवास करते थे। इस प्रकार के मैदान रूस में वेजर और विश्चुला नदियों के बीच में और उसके आगे श्वेत रूस तक हैं। अतः यही प्रदेश आर्यों का आदि-प्रदेश रहा होगा।

### मध्य एशिया का सिद्धान्त

आर्यों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में मध्य एशिया का सिद्धान्त एक दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। एक ईरानी अनुश्रुति के आधार



पर कुछ विद्वानों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि आर्य मध्य एशिया के मूल निवासी थे। प्राचीन ईरानियों के नाम संख्या तथा वैदिक साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि ईरानियों की भाषा और धर्म में घानेष्ट सम्बन्ध था। अवेस्ता की भाषा वेदों की भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। एक लेखक का तो यहां तक कहना है कि "केवल एक-आधा शब्द का वाक्य-खंड ही नहीं, वरन् एक सम्पूर्ण पद्यांश को बिना शब्दावली परिवर्तित किये ही भारतीय से ईरानी भाषा में लाया जा सकता है।" ईरानियों के देवता भी आर्यों के देवता के सृदश थे। इन समानताओं के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ईरानिया और वैदिक आर्यों के पूर्वज एक ही थे और इन दोनों जातियों का मूल निवास-स्थान एक ही रहा होगा।

मध्य एशिया में आर्यों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में कुछ प्रसिद्ध विद्वानों के मत इस प्रकार हैं -

एडुअर्ट मेयर के मतानुसार पामीर प्रदेश आर्यों का आदि-देश था। उनका कथन है कि इंडो-ईरानी लोग पामीर प्लेटो के आसपास कहीं रहते थे। ऋग्वेद और अवेस्ता आर्यों की दो पुरानी पुस्तकें हैं जिनमें भाषा सम्बन्धी उनके बातें मिलती हैं। इन दोनों ग्रन्थों में कई समान वस्तुओं का उल्लेख आया है। उदाहरणार्थ, इनमें घोड़ों, प्राचीन गांवों, नाव खेने तथा कई वृक्षों का वर्णन आया है जिसमें पीपल मुख्य है। अतएव आर्यों की जन्मभूमि ऐसे स्थान में होनी चाहिए जहां घोड़ों और गायों की अधिकता है, नाव चलाने के लिए झीलें हों, पीपल के वृक्ष खूब होते हों और सर्दी भी पड़ती है। ऐसी भूमि पामीर प्रदेश ही है, क्योंकि यहां ये सारी चीजें पायी जाती हैं।

रेहार्ड ने कहा है कि आर्यों का मूल स्थान मध्य एशिया ही था। उसने कहा है प्रारम्भ में आर्य वैक्ट्रिया और उसके आसपास के नूभाग पर निवास करते थे। इस स्थान में जनसंख्या अधिक हो जाने के कारण उन लोगों ने पूर्व-पश्चिम और उत्तर की ओर प्रस्थान किया। उसके इस मत का आधार ईरानी प्राचीन अनुश्रुतियां हैं।

मध्य एशिया के सिद्धान्त के वास्तविक प्रवर्तक जर्मन विद्वान प्रोफेसर मैक्समूलर माने जाते हैं। उनका कहना है कि आर्य जाति और उसकी सभ्यता का ज्ञान हमें वेदों और अवेस्ता से होता है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय तथा ईरानी आर्य बहुत दिनों तक एक साथ निवास करते थे। अतएव इनका आदि देश भारत तथा ईरान के निकट किसी स्थान पर रहा होगा। वहीं से एक शाखा ईरान को, दूसरी भारत को तथा तीसरी यूरोप को गयी होगी। उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों से यह पता लगता है कि प्राचीन आर्य पशु-पालन और कृषि-कार्य करते थे। अतएव वे एक लम्बे मैदान में रहते होंगे। इन तथ्यों के आधार पर मैक्समूलर और अन्य विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मध्य एशिया ही आर्यों का मूल देश था।

कुछ विद्वानों ने रूसी और तुर्किस्तान को आर्यों का आदि-देश माना है। इस मत के प्रमुख समर्थक हर्जफेल्ड महादय है। बड-स्टीन का कहना है कि प्रारम्भिक, इण्डो-यूरोपीयों के शब्द-कोष से यह पता चलता है कि पर्वत के निकट स्टेप्स के मैदान में रहने वाले प्रोफेसर चाइल्ड तथा अन्य कई यूरोपीय विद्वान कहते हैं कि एशिया माइनर के बोगाजकोई नामक स्थान में खुदाई होने पर कुछ ऐसे लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें ऋग्वैदिक काल के आर्यों के देवता इन्द्र, वरुण आदि के नाम अंकित हैं। इन लेखों के अतिरिक्त बर्तन और कोई अन्य अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वहां कोई ऐसी जाति रहा होगी जो अकार, भेड़, गाय, बैल और घोड़े आदि पशु पालती है, खेती करती और गांव बसाकर रहती थी। ये सारी बातें आर्यों की सभ्यता के स्वरूप को दर्शाती हैं और यही से वे ईरान, भारत, अफगानिस्तान तथा यूरोप में फैले थे। इन विद्वानों का यह मत है कि ऋग्वेद में वर्णित पशु-पालन का फल फूल, पशु एवं भौगोलिक स्थिति केवल एशिया के इसी भाग में ही सम्भव था। अतः मध्य एशिया ही आर्यों की जन्मभूमि है।

**आर्यों का आदि देश - भारत -** कुछ विद्वानों का यह मत है कि आर्य भारतवर्ष में बाहर से नहीं आये थे, इसी देश के मूल निवासी थे।

(1) सप्तसैन्धव - डॉ. अविनाशचन्द्र दास ने सप्तसैन्धव-प्रदेश को आर्यों का आदि देश माना है। इस प्रदेश में सिन्धु, विन्दा, असिनी, परुष्णी, बिपासा शतुद्रि और सरस्वती नामक सात नदियां बहती थीं। इन्हीं के द्वारा सींचा गया उर्वर प्रदेश प्राचीन काल में सप्तसैन्धव प्रदेश के नाम से प्रख्यात था और यही प्रदेश आर्यों का आदि प्रदेश था। कालान्तर में इनके बीच धार्मिक मतभेद उत्पन्न हो गये। आर्यों का एक वर्ग देवों का उपासक रहा और दूसरा वर्ग असुरों का उपासक हो गया। दोनों वर्गों में भयंकर युद्ध हुआ, जो वैदिक साहित्य में देवासुर-संग्राम के नाम से उल्लिखित है। इस संग्राम में अअसुर-उपासक परास्त हुए और सप्तसैन्धव प्रदेश को छोड़कर पश्चिम की ओर चल पड़े तथा ईरान में जाकर बस गये। पारसीकों के प्राचीनतम ग्रन्थ जेन्द-अवेस्ता में जिस अहुर-मज्दा का वर्णन है वह ईरान में नवागत विरोधी 'आर्य-वर्ग' का ही देवता था। डॉ. सम्पूर्णानन्द ने भी सप्तसैन्धव को ही आर्यों का आदि देश माना है।

(2) ब्रह्मर्षि-देश - महामहोपाध्याय पं. गंगानाथ झा का मत है कि आर्यों का आदि-देश भारतवर्ष का ब्रह्मर्षि-देश था।

(3) मध्यदेश - डॉ. राजबली पाण्डेव भारतवर्ष के मध्य देश को आर्यों का मूल निवास-स्थान मानते हैं। यहीं से वे पश्चिमी भारतवर्ष, मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया पहुंचे थे। ऋग्वेद में सप्त-सैन्धव का वर्णन अवश्य है, परन्तु इसकी रचना जो इस समय हुई थी जब आर्य अपने मूल निवास मध्य देश को छोड़कर पंजाब में आ गये थे।

- (4) कश्मीर — श्री एल.डी. कल्ल ने मतानुसार कश्मीर अथवा हिमालय-प्रदेश को आर्यों का आदि देश समझना चाहिए।
- (5) देविका प्रदेश — मुल्तान में देविका नामक नदी है। श्री डी. एस. त्रिदेव इसी नदी के समीपवर्ती प्रदेश को आर्यों का आदि निवास-स्थान मानते हैं। वैदिक संस्कृति को जानने के हमारे पास मुख्यतः चार वैदिक ग्रन्थ हैं जिनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है तथा अन्य तीन उससे बाद के हैं। 'वेद' शब्द को संस्कृत के 'विद' से लिया गया है जिसका अर्थ है 'ज्ञान' वेदों में प्रार्थनाओं और श्लोकों का संकलन है जिनकी रचना ऋषियों के परिवारों ने देवताओं के सम्मान में की थी। ऋग्वेद को भाषा विज्ञान के आधार पर 1500-1000 ई. पूर्व माना जा सकता है। इसके 10 सर्ग या मंडल हैं जिनमें दूसरे और सातवें को सबसे पहले की रचना माना जाता है।

वैदिक संस्कृति को दो भागों में बाटा जाता है प्रथम ऋग्वैदिक संस्कृति जिसमें ऋग्वेद पर आधारित उस काल के समाज का वर्णन है जबकि आर्य लोग छोटे-2 कबीलों में रहते थे तथा मुख्यतः पशुपालक थे। इस समय वे हरियाणा में सरस्वती तक ही बसे थे। दूसरे काल को उत्तर वैदिक काल कहा जाता है जिसका मुख्य स्रोत बाद के तीनों वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थ इत्यादि है। इस समय उनका प्रसार पूर्वी भारत तथा विन्ध्य पर्वत तक के क्षेत्र में हो चुका था।

### ऋग्वैदिक संस्कृति

ऋग्वैदिक काल में आर्य लोग छोटे-2 बहुत से कबीलों में बंटे हुए थे तथा हमेशा ही नए क्षेत्रों की तलाश में आए बढ़ रहे थे। ये कबीले न केवल गैर आर्य लोगों से निरन्तर युद्धरत रह बल्कि आपस में भी उनका हमेशा संघर्ष चलता रहता था।

पंचजन — भारतीय आर्य अनेक वर्गों में विभक्त थे। इनमें 'पंचजन' विशेष प्रसिद्ध थे। इनके नाम हैं — अनु, द्रह्यु, यदु, तुर्वसु तथा पुरु इनके अतिरिक्त अन्यान्य गण भी थे। इनमें भरत, क्रिवि और त्रिसु विशेष उल्लेखनीय हैं।

पारस्परिक युद्ध — पारस्परिक युद्धों में सर्वप्रमुख युद्ध है दश राजाओं का युद्ध। आर्यों के भारतवर्ष का राजा सुदास था। यह अत्यन्त वीर और साम्राज्यवादी नरेश था। बहुत दिनों से विश्वामित्र भरत-वर्ग का पुरोहित था। वह बड़ा योग्य व्यक्ति था। परन्तु कुछ समय के पश्चात् वह पुरोहित-पद से हटा दिया गया और उसके स्थान पर वशिष्ठ को पुरोहित-पद दिया गया। विश्वामित्र इस अपमान से बड़ा क्षुब्ध हुआ। उसने निकटवर्ती दस राजाओं का एक संघ बनाया और उसकी सहायता से भरत-नरेश सुदास के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। परुष्णी (रावी) के तट पर दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ। इसमें सुदास की विजय हुई और पंजाब में उसकी प्रतिष्ठा अभूतपूर्व हो गई।

दस राजाओं के इस संघ के अतिरिक्त सुदास ने शिवों, अलिनों, विषणियों और पक्थों के संघों को भी भिन्न-भिन्न कालों में पराजित किया था। सुदास अपने काल का एक प्रमुख वीर और साम्राज्यवादी था।

अनार्यों से युद्ध — पारस्परिक युद्धों के अतिरिक्त आर्यों को अनार्यों के साथ भी युद्ध करने पड़े थे। ये अनार्य भारतवर्ष कि निवासी थे। ऋग्वेद में इनकी जातियों और इनके नरेशों के नामोल्लेख मिलते हैं। अनार्य जातियों में अज, यक्षु, किकट, पिशाच और शिगु आदि के नाम आते हैं। अनार्य राजाओं में विशेष उल्लेखनीय हैं मेद। इसे सुदास ने पराजित किया था। इन नरेशों के अतिरिक्त सम्बर, धुनि और चुमुरि आदि अन्यान्य अनार्य-नरेश भी थे। आर्यों को अपने भूमि-विस्तार के लिए पग-पग पर इन्हीं अनार्यों से युद्ध करना पड़ा। अपने उत्कृष्ट सैनिक संगठन और प्रबल अश्वारोहियों के कारण इस आर्य-अनार्य युद्ध में आर्यों की विजय हुई और उन्होंने शनैः शनैः अनार्य-प्रदेशों को अधिकृत कर लिया तथा अनार्यों को 'दास' अथवा 'दस्यु' की संज्ञा दी।

ऋग्वेद के वर्णनों से प्रकट होता है कि आर्यों और अनार्यों में मौलिक रूप से शारीरिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक भेद थे। अनार्य काले थे और उनकी नाक चपटी होती थी। ऋग्वेद में उन्हें 'अनासा' (बिना नाक वाले) कहा गया है। उनकी भाषा भी भिन्न थी। इसी से आर्य अनार्यों को 'मृधबाक्' कहते थे। इन भेदों के अतिरिक्त आर्यों और अनार्यों में प्रबल धार्मिक भेद था। इसी तथ्य को प्रदर्शित करते हुए आर्यों के लिए 'देवपीयु' (देवताओं को अपवित्र करने वाले), अदेवयुः (देवताहीन), अन्यव्रत (अन्य प्रकार की क्रियायें करने वाले), अयज्वन् (यज्ञ न करने वाले) और 'अकर्मन्' (कर्महीन) आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

युद्ध प्रणाली — आक्रमण अथवा उसकी सम्भावना होने पर वे अपने धन-जन की रक्षा के हेतु विशिष्ट प्रकार से बने हुए दुर्गों में शरण लेते थे। इन्हें 'पुर' कहते थे। ये पाषाण-निर्मित अथवा धातु निर्मित होते थे। इनके चारों ओर प्रायः लकड़ी की चारदिवारी बनी रहती थी। इन दुर्गों के अतिरिक्त आर्यों के ग्राम भी कभी-कभी चारदिवारी अथवा खाइयों से संरक्षित होते थे। आग लगाकर इन चारदिवारी को नष्ट करना आक्रमणकारियों की सर्वप्रथम योजना होती थी। युद्ध करने के लिए राजा के पास सेना होती थी। राजा और राजन्य (उसके उच्चवर्गीय सहायक) रथों पर चढ़कर लड़ते थे और साधारण मनुष्य पैदल। आर्य अश्वारोहण से परिचित थे। अतः उनकी सेना में पदाति के साथ-साथ अश्वारोही भी होते होंगे। परन्तु ऋग्वेद में रथारोहियों का उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेद में शर्ध, व्रात और गण आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। बहुत सम्भव है कि ये सेना की इकाइयों के नाम हों। सेना का सर्वोच्च

पदाधिकारी स्वयं राजा होता था। युद्ध के अवसर पर वह सेना का नेतृत्व करता था। सैनिक कार्यों में राजा की सहायता के लिए सेनापति को नियुक्त की जाती थी। वह राजा के परामर्श से सेना का संगठन करता और युद्ध का याजना बनाता था। राजा और सेनापति के अतिरिक्त सेना के साथ राजपुरोहित भी होता था। वह अपने देश और नरेश की विजय के लिए स्वयं युद्ध करता था और सैनिकों को उत्साहित करता था। युद्ध प्रमुखतया धनुष-बाण से होता था। बाणों की नाकें प्रायः नुकीले लाह की लकीरें थीं। कभी-कभी बाणों के सिरों पर नुकीले और विशाक्त सींग भी लगे रहते थे। ऋग्वैदिक काल के अन्यान्य आयुधों में ब्रश्ट्र, माला, फरसा और तलवार उल्लेखनीय हैं। ऋग्वेद में कहीं-कहीं पर 'पुरचरिष्णु' का उल्लेख हुआ है। कदाचित् दुर्गों के भिस्त्रण के लिए विशेष प्रकार के इंजिन थे। युद्धों में आत्मरक्षा के लिए प्रधान योद्धा कवच और शिरस्त्राण धारण करते थे। कभी-कभी बाहुत्राण और अंगुलित्राण के प्रयोग के उदाहरण भी मिलते हैं। सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिए रण-वाद्य का भी उपयोग होता था। जनक साथ पताकाएं भी रहती थीं।

## ऋग्वैदिक कालीन राज्य संरचना (Rigvedic State Structure)

इस काल में हमें राज्य की संरचना का अधिक ज्ञान, साक्ष्यों के अभाव में नहीं है। प्रारंभिक वैदिक काल में राज्य का पूर्ण स्वरूप सामने नहीं आया था। इसकी जानकारी हमें प्राचीन स्त्रोतों से मिलती है। प्रसिद्ध सप्ताहंग सिद्धांत के आधार पर यदि हम देखें तो इस काल में ये सातों अंग 1. राजा 2. मंत्री 3. क्षेत्र 4. संसाधन 5. किले 6. सेना 7. सहयोगी, में से अधिकतर अंग नहीं थे। प्रारंभिक वैदिक समाल अलग-अलग कबीलों में विभजित था, जिन्हें जन या विश कहते थे। इन कबीलों के अनार्यों से परस्पर संघर्ष चलता रहता था इसके अलावा ये आपस में भी युद्ध करते रहते थे। इस काल के प्रमुख कबील युद्ध, तुरकसु, द्रह्यु, अनु और पुरु इत्यादि थे। ये एक स्थान पर टिक कर निवास नहीं करते थे बल्कि जगह-जगह घूमते रहते थे। यानि लंबे अरसे तक कहीं स्थायी निवास नहीं करते थे। इस प्रकार क्षेत्र, जो राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग होता है इस काल में नहीं था। इस काल में ना कोई महत्वपूर्ण शासक था बल्कि प्रत्येक कबीले (जन) का अपना अलग मुखिया होता था जो राजन कहलाता था। यद्यपि यह पद वंशानुपात होता था जिसका प्रमाण हमें दिवोदास तथा सुदास राजाओं से मिलता है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी उदाहरण हैं जब सर्वसम्भती से राजा का चुनाव किया हो तथा आवश्यकता पड़ने पर जनता ने राजा को पदच्युत कर दिया। वंशानुगत राज्याधिकार तभी तक वैध था जब तक जनता उसको अनुमोदित करती। इस काल में राज्य के कोई संसाधन नहीं थे तथा लोगों की सम्पत्ति उनके मवेशी होते थे। जिसके पास ज्यादा गाय होती वह ज्यादा सम्पन्न माना जाता था। राजकोष जो राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग होता है इस काल में नहीं था। इस काल में किले और सैनिकों का महत्व था। सेना स्थायी नहीं थी, आवश्यकता पड़ने पर आम जनता सैनिक कार्य भी करती थी। सेना में पैदल और घुड़सवार दोनों शामिल थे। राजा या राज्य के सहयोगी राज्य का अन्तिम सातवां अंग माना जाता है इस काल में सभी जन आपस में झगड़ते रहते थे यद्यपि दश राजाओं के संघ का संयुक्त युद्ध करने का प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है। उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काल में राज्य संरचना अभी नहीं हुई थी। इस काल में राज्य का स्वरूप कबीलाई संरचना पर आधारित था। जिसमें कबीलों के लोगों के आपसी संबंध थे। इस काल के जनो का कोई स्थाई क्षेत्रीय आधार नहीं था तथा राजन या कबीले का मुखिया अपने कबीले के साथ हर समय घूमता रहता था। इस काल में अश्व केन्द्रित राजतंत्र का काफी महत्व था जिनके पास घोड़े थे उन्हें उच्च माना जाता था। राज्य सत्ता के सूचक संघटनों के प्रमाण हमें ऋग्वेद से नहीं मिलते। ऋग्वेद में वर्णित वृ, वृता, जन, विश, गण, गृह, व्रजा तथा ग्राम इत्यादि शब्दों का उल्लेख जनसमूह अथवा योद्धा समूह के लिए हुआ है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि ऋग्वैदिक समाज अस्थायी और घुमक्कड़ जनसमुदाय था तथा रक्त संबंध पर आधारित जन-जातिय समाज संगठित था।

## राजनैतिक इकाइयां (Political Units)

ऋग्वैदिक काल में सामान्यतः राजतन्त्रात्मक सरकार थी। राजन शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक बार हुआ है। ऋग्वेद की एक ऋचा में सिन्धु प्रदेश के राजा का उल्लेख है तथा अन्य में सरस्वती पर निवास कर रहे राजा चित्र का उल्लेख है। सुदास का दस राजाओं के संगठन से युद्ध के प्रमाण मिलते हैं। दान-स्तुतियों में भी राजाओं का उल्लेख मिलता है। ये प्रमाण राजतंत्र की ओर इशारा करते हैं। इसके अतिरिक्त गण, गणपति तथा ज्येष्ठ का उल्लेख गणतन्त्रात्मक स्वरूप होने की ओर इशारा करता है। ऋग्वैदिक काल में राज्य जनो में विभक्त था और प्रत्येक जन में एक ही कबीले के लोग निवास करते थे जिनका आपस में रक्त संबंध था। सूपास के साथ युद्ध करने वाले दस राजाओं के संगठन का राजनैतिक स्वरूप कैसा था, इसकी जानकारी हमें प्राप्त नहीं है। इस काल में राजा की स्थिति काफी महत्वपूर्ण थी हालांकि वह अपने कबीले का मुखिया ही था। लेकिन कुछ राजा कबीले के मुखिया की स्थिति से उपर थे। सामान्यतः वंशानुगत राजतंत्र के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु ऐसे भी प्रमाण हैं कि 'केन्हीं पक्षों में राजा का भी विशेष (जो राष्ट्र की एक इकाई थी) राजपरिवार या राजसदस्या में स राजा का भी चुनाव कर सकते थे।



## सभा एवम् समिति

ऋग्वेद में सभा और समिति का अनेक बार उल्लेख हुआ है। सभा और समिति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। हिलब्रेण्ड का कथन है कि समिति एक राजनैतिक संस्था थी तथा सभा उसका अधिवेशन स्थल। लुडविग सभा को उच्चतर सदन तथा समिति को निम्न सदन का नाम देते हैं। परन्तु ऋग्वेद में इस बात का प्रमाणित करने के उल्लेख कहीं नहीं मिलता। जिमर महोदय का कहना है कि सभा ग्राम संस्था थी तथा समिति केन्द्रीय संस्था। ऋग्वेद में समय शब्द के उल्लेख (सभा के योग्य) से पता चलता है कि सभा का कोई प्रशासनिक उद्देश्य था तथा समिति को वैदिक कबीलों की एक संस्था के रूप में माना जा सकता है। लुडविग के अनुसार समिति में विश के लोग ब्राह्मण तथा अन्य उच्चवर्ग के व्यक्ति शामिल थे। यद्यपि सभा और समिति के कार्यों में अंतर स्पष्ट करना कठिन है लेकिन प्रतीत होता है कि समिति एक ऐसी संस्था थी, जिसमें कबीलों के प्रमुख कार्य सम्पन्न किए जाते थे तथा राजा उनका अध्यक्ष होता था। तथा सभा समिति की तुलना में कम महत्व की संस्था था जिसमें समाल के सभी वर्ग शामिल थे। यद्यपि हमें सभा और समिति के कार्यों एवम् अधिकारों का अधिक ब्यौरा ऋग्वेद में नहीं मिलता। लेकिन इन दोनों संस्थाओं का समाल में काफी महत्व था तथा ये इस काल में राजा की शक्तियों पर नियंत्रण रखती थी।

इन दोनों राजनैतिक संस्थाओं के अतिरिक्त राजा पर पुरोहित का भी काफी प्रभाव था। यह राजा के साथ ने केवल युद्धों में जाता था। बल्कि यज्ञ और प्रार्थनाएं भी सम्पन्न करता था। इस काल के शक्तिशाली पुरोहितों में वशिष्ठ तथा विश्वामित्र के नाम उल्लेखनीय हैं जिनका राजा पर काफी नियंत्रण था।

## प्रशासनिक संस्थाएं (Administrative Institutions)

इस काल में सम्पूर्ण कार्य अनेक जनों में विभक्त थे। ऋग्वेद में उल्लिखित पंचजन उस काल के पंच महत्वपूर्ण कबीले थे। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे कबीले भी थे। ऋग्वेदि में विश शब्द का उल्लेख अनेक बार हुआ है जिसका उस काल की राजनैतिक संस्था में महत्वपूर्ण स्थान था। सभी कबीले के सदस्य मिलकर राष्ट्र या कबीले के मुखिया का निर्माण करते थे। विश, जन तथा गांव में विभक्त थे। सुरक्षा के लिए पुर का निर्माण करते थे। सुरक्षा के लिए पुर का निर्माण किया जाता था जो पत्थरों से निर्मित थे। ग्राम एक ही कुल की अलग-अलग इकाइयों के बने थे। जिसमें कुल का प्रशासनिक संगठन में महत्व था। एक स्थान पर कुलपा या कुल का संरक्षक का वाजपति जो शायद ग्रामणी ही था के साथ एक झण्डे तले लड़ने का वर्णन है। यह वर्णन हमें कुलपा के ग्रामीण के साथ सिविल और सैनिक कार्यों के महत्व को दर्शाता है। सेनानी उस समय का सैनिक अधिकारी था, तथा पुरोहित के समान ही यह महत्वपूर्ण स्थान रखता था। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में हमें स्पश का भी उल्लेख मिलता है। दूत या संदेशवाहक का कार्य इस काल ने राजा के संदेश लोगों तक या अन्य कबीलों तक पहुंचाना था।

## प्रारंभिक वैदिक कालीन समाज (Rigvedic Society)

प्रारंभिक वैदिक काल के समाज का आधार सगोत्रीय और मुख्यतः कबीलाई संरचना पर आधारित था। जिसमें विभेदीकरण की प्रक्रिया के चिन्ह स्पष्ट रूप से उभर कर सामने नहीं आए थे। इस काल का समाल कई अर्थों में प्रायः समानतावादी था जिसमें एक ओर पदों के आधार पर अनेक विभिन्नताएं थी, जो विशेषकर पशुओं की संख्या के आधार पर निर्धारित की जाती थी, इसके अतिरिक्त लिंग और आयु भेद के आधार पर भी सामाजिक स्तर पर असमानताएं थी। लेकिन दूसरी ओर मनुष्यों के लिए उत्पादक संसाधनों को प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऋग्वेद में वर्णित इकाइयां - विश, जन, गण-वात आदि कबीलाई संगठन की ओर संकेत करती हैं। जन और विश सामूहिक उत्पादन की महत्वपूर्ण इकाइयां थी। ऋग्वेद में जन और विश शब्दों का कई बार प्रयोग हुआ है, जन विश के रूप में विभक्त था, उनमें से एक का संबंध संपूर्ण कबीले से था तथा दूसरे का गोत्र से। ऋग्वेद में जन का उल्लेख 275 बार तथा विश का 171 बार हुआ है।

## परिवारिक जीवन (Family Life)

इस काल में परिवार का आधार पितृसत्तात्मक था, उसमें तीन या चार पीढ़ियों का समावेश था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में वर्णित शुनहशेप कहानी से हमें बच्चों पर पिता के पूरे नियंत्रण का पता चलता है। परिवार में अनुशासन बहुत कठोर था तथा इसे तोड़ने वाले को सजा देने का अधिकार भी पिता को था। जैसा कि उल्लेख है एक जुआरी पुत्र को उसके पिता तथा भाइयों ने दण्ड स्वरूप उसे बेच दिया था। इस सन्दर्भ का तात्पर्य यह नहीं है कि इस काल में माता-पिता तथा संतान के इसी प्रकार के सम्बन्ध हुआ करते थे, अपितु पिता को एक अच्छा तथा दयालु हृदय बताया गया है। एक ही परिवार के कई पीढ़ियों के इक्ठे रहने के भी प्रमाण मिले हैं। पारस्थितिवश परिवार में पत्नी की मां क भी रहने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दसवें अध्याय में एक जुआरी यह शिकायत करता बताया गया है कि घर में उसकी सास उससे नफरत करती थी। अतिथि सत्कार घर में एक धार्मिक कार्य माना जाता था



ऋग्वेद में माता-पिता, भाई बहन, पुत्र और पुत्री के लिए अलग-अलग शब्दावली थी, लेकिन भतीजों, पोत्रों और वरर भाइयों के लिए मात्र एक शब्द नाप्तु/नपत् का प्रयोग किया जाता था। परिवार में पुत्र प्राप्ति के लिए ऋग्वेद में विभिन्न स्तुतियाँ, प्रार्थनाओं का उल्लेख मिलता है।

### विवाह एवम् महिलाओं की स्थिति (Marriage & condition of Women)

ऋग्वेद से हमें विवाह संबंधी जानकारीयों का वर्णन मिलता है। सामान्यतः वयः सन्धि के बाद लड़की का शादा का जाता था और उन्हें अपने पति के चुनाव के अधिकार की भी स्वतंत्रता थी। अविवाहित लड़कियों का भी वर्णन मिलता है, घोषा इसी की तरह का एक अविवाहित लड़की थी। इसके अतिरिक्त अपने प्रेमियों का लुभाने के लिए कन्याओं का उत्सवों पर गहने पहनने का वर्णन तथा युवकों के अपनी प्रेमिकाओं को भेंट इत्यादि देने के अनेक मंत्रों का वर्णन है। इनका विवाह दस्यु वर्ग या अनार्य जागम नहीं हो सकता था तथा आर्यों में भाई-बहन तथा पिता-पुत्री के विवाह पर प्रतिबन्ध था। विवाह में व्यस्कों को अपने पति और पत्नी चुनने की काफी स्वतंत्रता थी ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं कि माता-पिता या भाई की सहमति आवश्यक थी। विवाह के दौरान इनकी उपस्थिति अनिवार्य थी। विवाह में मंत्रों से नता चलता है कि एक नवविवाहित स्त्री किस प्रकार अपने सास-ससुर, देवर और ज्यष्ट पर अपने प्यार और स्नेह से राज्य करती थी तथा उनका आदर भी करती थी। वधु विवाह भोज में भी सम्मिलित रहती थी। दारारिया का स्वागत इस काल में गाय का मांस खिला कर किया जाता था। वर-वधु का हाथ पकड़ कर अग्नि के पास-पास बक्कर लगाकर प्रणय सूत्र में बंधते थे। सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की जाती थी, ऋग्वेद में जो प्रार्थनाएँ की गई हैं वे पति और पत्नी दोनों की तरफ से हैं। परिवार में पुत्र और पौत्र प्राप्ति की कामना के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की जाती थी। वधु का अपने घर में सम्मान का दर्जा प्राप्त था, ऐसा वर्णन है कि वह अपने पति के पिता, भाई तथा बहनों पर राज करती थी, यह संदर्भ सभ्यतः उस स्थिति का है जब बड़े पुत्र की शादी हो गई हो तथा लड़के का पिता जीवन से मुक्त हो, चुका हो। परन्तु प्रतीत होता है कि यह अधिकार प्रेम के कारण ज्यादा था। यज्ञ, विवाह आदि अवसरों पर पति-पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। इस काल में विवाह मुख्य रूप से सन्तानोत्पत्ति (पुत्र की प्राप्ति) के लिए किया जाता था, पुत्री प्राप्ति की कामना के प्रमाण ऋग्वेद में कहीं नहीं मिलते। संभवतः पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र की प्राप्ति ही आवश्यक थी। केवल पुत्र ही पिता का अंतिम संस्कार कर सकता था तथा उसी से वंश आगे बढ़ता था। यद्यपि पुत्र ना होने की स्थिति में पुत्र गोद लेने के भी प्रमाण हैं परन्तु यह अधिक प्रचलित नहीं था।

पितृ सत्तात्मक समाज के बावजूद स्त्रियों की स्थिति उतरकालीन महिलाओं की अपेक्षा बहुत अच्छी थी। ऋग्वेद में पत्नी का यज्ञ करने और अग्नि में आहुतियाँ देने का स्पष्ट प्रमाण है। वे सभाओं में भाग लेने के लिए स्वतंत्र थी ऋग्वेद थी। ऋग्वेद में ऐसी महिलाओं का जिक्र है जिन्होंने वेद मंत्रों की रचनाएँ की, जिनमें अपाला और विश्वआरा उल्लेखनीय हैं। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र थी। ऋग्वेद के मंत्रों में पुत्र प्राप्ति के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई हैं लेकिन पुत्री के जन्म का कहीं भी दुःखद नहीं माना गया है। इस काल में सती प्रथा का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है ऋग्वेद में एक स्थान पर एक विधवा को अपने पति की चिता से नीचे उतर आने का कहे जाने के प्रमाण तो है लेकिन यह सतीप्रथा का स्पष्ट प्रभाव नहीं है। यदि विधवा स्त्री का पुत्र नहीं है, तो वह अपने देवर के साथ सहवास कर पुत्र प्राप्त कर सकती थी। यह बाद की नियोग प्रथा का ही एक प्रारूप है। इसके अतिरिक्त विधवा पुनःविवाह भी कर सकती थी। साधारणतः हमें एक पत्नी विवाह के प्रमाण मिलते हैं लेकिन एक पुरुष को एक से ज्यादा पत्नियों के भी प्रमाण हैं। यह शायद राजभ्य वर्ग में ज्यादा प्रचलित था, साध्य प्रमाण है। इसके अतिरिक्त प्रजापति की कहानी में पिता-पुत्री तथा यम-यमी की कहानी में बहन-भाई के शारीरिक संबंधों का उल्लेख मिलता है, लेकिन ज्यादातर विद्वान इसे मिथ्या मानते हैं। स्त्रियों को विवाह तक अपने पिता की सुरक्षा में, विवाहोपरान्त पति की, यदि अविवाहित है तो अपने भाई की सुरक्षा में रहना पड़ता था। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे बाहर स्वेच्छा से घूमने, भोज, नृत्य और उत्सवों से भाग लेने के लिए स्वतंत्र ना हो। उनकी स्वतंत्रता पर कोई बंधन नहीं था।

### भोजन और पहनावा (Attire & Food)

प्रारंभिक वैदिक काल में आर्य मांसाहारी दोनों प्रकार का आहार लेते थे। मुख्यतः पशुपालन पर आधारित अर्थव्यवस्था के कारण दूध और उससे बनी वस्तुओं का वे अधिक सेवन करते थे। घी या घृत का प्रयोग, जौ के आटे को दूध या मक्खन में मिलाकर रातों रात न के प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है। बैल, भेड़ और बकरी का मांस इनके भोजन का मुख्य अंग था। अश्वमघ सम्पन्न होने पर पशुओं का मांस सामान्य रूप से खाया जाता था ताकि घोड़े जैसी तेजी प्राप्त कर सकें। यद्यपि गाय को अधन्य माना गया है फिर भी गाय का मांस का सेवन भोजन के रूप में किया जाता था। इसके अतिरिक्त अतिथियों को विशेष अवसर पर गाय का मांस खाया जाता था। ऋग्वेद में सोमरस पेय का भी वर्णन है। सुरा व शराब पीने का भी उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त शहतूत, काला आदि में प्रयोग करते थे।

इस काल में पहनावा साधारण था और आर्य मुख्यतः तीन वस्त्र धारण करते थे। नीची शरीर के निचले हिस्से में पहनने वाला वस्त्र, वास मध्यभाग में पहनने वाला वस्त्र तथा अधिवास ऊपरी हिस्से पर पहनने वाला वस्त्र था। स्त्री और पुरुष के पहनावे में ज्यादा अन्तर नहीं था। खाल या चमड़े का भी प्रयोग वस्त्र के रूप में किया जाता था। मारुत को मृग छाल पहने हुए बताया गया है। इस काल में अटक भी एक प्रकार का बुना हुआ वस्त्र था। ऊनी वस्त्रों का भी प्रयोग करते थे। कढ़ाई किए गए वस्त्र को पहने नतुकी का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। विवाह के अवसर पर वष्पु विशेष वस्त्र धारण करती थी। सुन्दर वस्त्रों के लिए सुवासस् तथा सुवसन शब्दों का उल्लेख मिलता है। समाज में स्त्री और पुरुष दोनों वर्ग आभूषण धारण करते थे। सोने का कर्णशोभन संभवतः पुरुषों के लिए पहनने वाला आभूषण था। हिरण्यकर्ण सोने का आभूषण था जो देवताओं को पहने दर्शाया गया है। कुरीर वधु के सिर पर पहनने वाला गहना था। हार के रूप में सोने का आभूषण निष्क इस काल में प्रचलित था। मोती और हीरे में निर्मित आभूषण गले में पहने जाते थे। एक ऋचा में अश्विनों को कमल के फूलों से ढका बताया गया है। केश श्रंगार के भी शौकीन थे। तेल लगाकर कंधी निकाले हुए बताया गया है। पुरुषों को दाढ़ी और मूछ रखने का शौक था।

### चिकित्सक और दवाईयां

ऋग्वेद में इस काल में चिकित्सा पद्धति का भी प्रमाण है। बिमारियों में दक्षम का भी यदा-कदा वर्णन मिलता है। ऋचाओं में अनेक औषधियों तथा उनके गुणों का वर्णन है। इस काल में दूटी हुई हड्डियों को जोड़ने की कला से ये परिचित थे। आंखों की रोशनी पुनः प्राप्त करने, अन्धेपन का इलाज, तथा अंगहीनता ठीक करने के प्रमाण इस काल में मिलते हैं।

### शिक्षा एवम् मनोरंजन (Amusement & Education)

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में शिक्षा प्रणाली पर विशेष जोर दिया गया है, कि शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास कर सकता है। ऋग्वेद में उपनयन संस्कार को कोई प्रमाण नहीं है। ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त में हमें शिक्षा प्रणाली के बारे में जानकारी मिलती है, इसमें वर्णन है कि विद्यार्थी अपने गुरु से मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे और विद्यार्थी उस सामूहिक रूप से दोहराते थे। इस काल के विद्यार्थी के लिए ब्रह्मचारी शब्द प्रयुक्त किया जाता था। शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी। इस काल में महिला शिक्षिकाओं का भी उल्लेख है, मैत्रेयी और गार्गी इस काल की विदुषियां थीं।

संगीत का ऋग्वैदिक काल में विशेष महत्व था। वैदिक ऋचाओं का एक संगीतमयी लय में उच्चारण किया जाता था। इसके अतिरिक्त वीणा और ढोला बजाने वालों का भी उल्लेख मिलता है। अविवाहित कन्याओं द्वारा किए जाने वाले नृत्य का भी वर्णन मिलता है। सामाजिक समारोह और उत्सवों में पुरुष और स्त्री दोनों की नृत्य में भाग लेते थे। कीथ नामक विद्वान के अनुसार इस काल में धार्मिक नाटकों का भी प्रचलन था। इसके अतिरिक्त रथदौड़ और घुड़दौड़ मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन था। चौपट तथा जुआ खेलने के प्रमाण भी ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं से मिलते हैं। आखेट भी मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन था।

### वर्णव्यवस्था

वर्णसमाज की रूपरेखा ऋग्वैदिक काल के अंतिम चरण में आरम्भ हो गई थी जिसे पुरुष सूक्त (x.60) में देखा जा सकता है। इसमें उल्लेख है कि देवताओं ने आदि पुरुष के 4 भाग किए; ब्राह्मण उसका मुख, राजन्य बाहु तथा जंघा वैश्य हो और शुद्र की उत्पत्ति उसके पैरों से हुई। प्रथम तीनों वर्णों की उत्पत्ति आदि पुरुष से नहीं हुई बल्कि वे उसके मुख, बाहु और जंघा के समान बताए गए हैं जबकि शुद्र की उत्पत्ति पैरों से होने का अर्थ यह हुआ कि उसका जन्म तीनों वर्णों की सेवा करने के लिए हुआ है। प्रारंभ में शायद वर्ग विभाजन मुख्यतः आर्य और अनार्यों के बीच हुआ होगा क्योंकि दोनों की संस्कृतियां भिन्न थीं। ऋग्वेद में 'दास' और 'दस्यु' वर्ग का उल्लेख भी मिलता है जिनके साथ आर्यों के संघर्ष का भी उल्लेख मिलता है। दास और दस्यु इस क्षेत्र में आदिम निवासी थे जिनसे आर्यों का संघर्ष हुआ। संभवतः युद्ध में हारे जाने पर अनार्यों का बंदी बना कर सेवा कार्य लिया जाता होगा। संस्कृत में वर्ग लिए वर्ण शब्द का प्रयोग किया जाता है। यही वर्ण शब्द विभिन्न रूप-रंगों और विजातीय संस्कृतियों के लोगों के साथ आर्यों के संपर्क के परिणामस्वरूप चार वर्णों के उद्भव की ओर इशारा करता है। इस काल के अंतिम दौर में समाज चार वर्णों में बट गया था, लेकिन जात-पात का बखेड़ा खड़ा नहीं हुआ था इस व्यवस्था में लचीलापन था। ऋग्वेद में एक उदाहरण मिलता है कि एक व्यक्ति कहता है। मेरे पिता पुरोहित है माता अनाज पीसती है और पुत्र चिकित्सक है। इससे पता चलता है कि व्यवसायों को अपनाने की स्वतंत्रता थी।

### आर्थिक स्थिति (Economic Condition)

वैदिक युग में भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, क्योंकि इस काल में लोहे के प्रयोग ने भारत के उत्तरी मैदानों को कृषि योग्य बना दिया जिसके परिणामस्वरूप कृषि प्रणाली एवम् उससे जुड़ी स्थायी जीवन व्यवस्था स्पष्ट तौर पर उभर कर सामने आई

जिसने अन्य पहलूओं - (सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक) को भी प्रभावित किया। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्रागैतियुग को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; प्रथम जिसमें मुख्यतः पशुपालन पर आधारित आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान दिया गया तथा द्वितीय जिसमें कृषि की ओर झुकाव प्रदर्शित होता है।

### प्रारंभिक वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था (Rig Vedic Economy)

इस काल की अर्थव्यवस्था में पशु-पालन का सर्वाधिक महत्व था और पशु उनके स्वत्व और संपत्ति के सर्वाधिक मूल्यवान संपत्ति थे। पशुधन की महत्ता की जानकारी पशुओं के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं से मिलती है। पशुओं के लिए बहुधा विभिन्न कबीलों में युद्ध होते थे, युद्ध के लिए विशिष्ट शब्द का प्रयोग किया जाता था जिसका अभिप्राय है गायों की खाज। ऋग्वेद में कई स्थानों पर गाय के लिए अधन्या शब्द का प्रयोग किया गया है, यानि गाय का वध नहीं करना चाहिए, इससे उसका आर्थिक महत्व का बोध होता है। गाय और बैल की इस काल में महत्वपूर्ण पालतू पशु थे, यहीं इस काल का धन था तथा यज्ञ समापन के बाद दक्षिण के रूप में इन्हें पुरोहितों का दिया जाता था। गायों को रात के समय तथा दिन की धूप में बाड़ों में रखा जाता था। जबकि अन्य समय में वे स्वतः चरागाहों में चरती रहती थी। शाम के समय गायों को वापिस बाड़ों में लाया जाता था। इन कार्यों के लिए विशेष शब्दों का प्रयोग हमें ऋग्वेद में मिलता है। स्वसर का अभिप्राय सुबह चरागाहों में घास चरने जाने का है जबकि सम्गाव का अर्थ भ्रमण का दूध दोहने के लिए वापिस लाने के लिए प्रयुक्त होता था। लड़कियों के लिए दुहिता शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि दूध दोहने का कार्य वे ही किया करती थी। ऋग्वेद में गायों पर आने वाले खतरों का भी उल्लेख मिलता है जैसे गाय का खो जाना, गौरी हो जाना, पैर टूट जाना इत्यादि। इस काल में पशुओं के कानों पर निशान दाग दिए जाते थे। जिससे उनके स्वामित्व की भासानी से पहचान की जा सकती थी। गाय को इस काल में पवित्र नहीं माना गया क्योंकि भोजन के लिए गाय और बैल दोनों का वध किया जाता था। गाय के अतिरिक्त भेड़, बकरियां तथा घोड़े पालतू पशुओं की श्रेणियों में आते थे। पशुओं का पालन-पोषण सामूहिक रूप से किया जाता था यानि कबीले के सभी सदस्यों का उन पर समान अधिकार था। पशुओं के महत्व का इस बात से भी पता चलता है कि मुखिया का गोपति अर्थात् पशुओं का स्वामी या संरक्षक कहा जाता था।

इस काल में सीमित कृषि का प्रमाण मिलता है और संभवतः इसका प्रचलन और महत्व अधिक नहीं था। क्योंकि इस काल में यह पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई थी। ऋग्वेद के प्रथम और दशम मण्डल से कृषि का उल्लेख मिलता है। प्रथम मण्डल में वर्णन है कि देवताओं ने मनु को हल चलाना और जौ की खेती करना सीखाया। ऋग्वेद के परवर्ती भाग में जुताई, बुआई, कटाई तथा असाइ और दवाईयों का उल्लेख मिलता है। संभवतः इस काल में यव काल में अर्थात् जौ नामक एक ही प्रकार का अन्न पैदा किया जाता था और जमीन पर कबीले के सदस्यों का समान अधिकार नहीं था। ऋग्वेद में जमीन तथा उसकी माप-प्रणाली के बारे में विस्तृत वर्णन है, लेकिन कहीं भी किसी व्यक्ति द्वारा जमीन की ब्रिकी, हस्तांतरण, गिरवी अथवा दान का उल्लेख नहीं मिलता। इससे स्पष्ट पता चलता है कि जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिक प्रचलन नहीं था। कृषि सामान्यतः वर्षा पर ही निर्भर थी। पशुधन का अभाव सिंचाई व्यवस्था का विकास हो चुका था। ऋग्वेद में कुल्या तथा खानितृमा आप शब्दों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि कृषि के लिए सिंचाई व्यवस्था का ज्ञान उन्हें था। इसके अतिरिक्त कृपा द्वारा भी सिंचाई व्यवस्था का विकास हुआ है। खेतों में हल जोतने के लिए तथा गाड़ियां खींचने के लिए बैल उपर्युक्त साधन थे।

ऋग्वेद में शिल्प विशेषज्ञों का अपेक्षाकृत कम उल्लेख हुआ है जबकि चर्मकार, बढ़ई, कुम्हार, धातुकर्मियों तथा शिल्पियों का वर्णन मिलता है। शिल्पी कार्यों से जुड़े इन समूहों में से किसी को भी निम्न स्तर का नहीं माना जाता था इसका कारण संभवतः यह था कि इनमें से कुछ जैसे :- बढ़ई, धातुकर्मी, चर्मकार आदि की रथों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका थी, जो युद्ध में सफलता के लिए उत्तरदायी होते थे। ऋग्वेद में वर्णित अयस, धातु विवादग्रस्त है जिसे तांबे या कांस्य से जोड़ा गया है हालांकि इसका अर्थ लोहा से भी लगाया जाता है। यह स्पष्ट है कि वे धातु गलाने की कला से परिचित थे। इस काल में बुनाई एक घरेलु शिल्प था, जो महिलाओं द्वारा किया जाता था। इस काल में जुलाहे भी थे तथा कुम्हार के लिए 'कुलान' शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद कपास का उल्लेख नहीं होने से संभवतः ऊनी वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। स्पष्टतः इस काल में हस्तशिल्प छोटे स्तर का था जिसका प्रभाव उत्तर वैदिक काल में बढ़ गया था।

प्रारंभिक काल की व्यापारिक गतिविधियों का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। इसमें हमें व्यापारियों द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों में जाकर व्यापार कर लाभ कमाने के कई संदर्भ मिलते हैं। व्यापार में मुनाफे के लिए अनेक प्रार्थनाएं और आहुतियां देने के प्रमाण हैं। ऋग्वेद से आन्तरिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती है। इस काल में होने वाली समुद्री व्यापार के संदर्भ में विद्वान मानते हैं कि व्यापारियों समुद्र तथा समुद्री व्यापार से अनभिज्ञ थे जबकि मैक्समूलर, जिमर तथा लासेन का मत है कि इन्हें समुद्र का पूरा ज्ञान था। इस काज में सरस्वती नदी को समुद्र में गिरने वाली बताया गया है। ऋग्वेद के दसवें मंडल में पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र का उल्लेख है।



तथा इसमें वर्णित भुज्यु की कहानी से हमें समुद्री व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी मिलती है। इस काल के लोगों को न केवल समुद्री यातायात की जानकारी थी। अपितु उनके दूसरे देश से व्यापारिक सम्बन्ध भी थे। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में नाव, चप्पुओं, वाली नावों एवम् हजार चप्पुओं वाले जहाज का भी वर्णन मिलता है। इन्हें समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे की भी जानकारी थी। ऋग्वेद में उल्लेखित बातें इनकी समुद्री व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी देते हैं।

प्रारंभिक वैदिक कालीन चरण में आर्थिक व्यवस्था विस्तृत पैमाने वाली अर्थव्यवस्था नहीं थी। कबीलाई अर्थप्रणाली थी जिसमें विनिमय-प्रणाली कीमती वस्तुओं के आदान-प्रदान पर आधारित थी। गाय विनिमय की प्रमुख इकाई थी। संभवतः इसके अतिरिक्त भी कई अन्य इकाइयाँ रही होंगी। इस काल के निष्क का प्रचलन भी व्यापार में होने लगा था। विद्वानों के अनुसार प्रारंभ में निष्क उस काल में गले में पहनने वाला सोने का आभूषण रहा होगा। कई स्थानों पर रूद्र द्वारा निष्क पहनने का संदर्भ मिलता है। ऋग्वेद में इस बात का भी उल्लेख है कि एक कवि ने अपने राजा से 100 निष्क और 100 घोड़े दान स्वरूप प्राप्त किए। इस काल में पणि वर्ग द्वारा ऋण लेने और देने की प्रथा का प्रचलन था, जिसकी ऋग्वेद में निन्दा की गई है। लेकिन इस काल की आर्थिक उन्नति में इनके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। प्रारंभिक चरण में बलि कर शक्तिशाली वर्ग के लिए स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर था हालांकि शत्रु समुदायों के लिए यह स्पष्टतः एक उपहार था जो बलपूर्वक वसूल किया जाता था, इसमें पशु तथा अन्न शामिल थे।

### ऋग्वैदिक काल की धार्मिक स्थिति (Religions Condition of Rigvedic Period)

ऋग्वेद में देव अथवा देवता शब्द का अनेक बार उल्लेख हुआ है। इस काल के प्रारंभ में 'बहुदेववाद' के दर्शन होते हैं। ऋग्वेद में जिन देवताओं की पूजा की गई है, वे प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं, जिनका मानवीकरण किया गया है। ऋग्वैदिक देवताओं का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया: (1) पृथ्वी के देवता - पृथ्वी अग्नि, सोम, हस्पति तथा नदियों के देवता, (2) अंतरिक्ष के देवता - इन्द्र, रूद्र, वायु, पर्जन्य मातरिश्वन आदि, (3) द्युस्थान (आकाश) के देवता - द्यौस, वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषन, विष्णु, उषा आदि। इस काल में ऋषियों ने जिस देवता की प्रार्थना की है, उसे ही सर्वोच्च मानकर उसमें सम्पूर्ण गुणों, ज्ञान और सत्य का आरोपण कर दिया। उन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेक रचनाएँ लिखी गईं। विद्वान मैसमूलर ने इस प्रकृति को 'डीनोथीज्म' कहा है। ऋग्वेद से प्रसिद्ध देवता निम्न थे। जैसे ऋग्वेद में सर्वाधिक सूक्त (250) इन्द्र को समर्पित है। इन्द्र को पुरंदर (किले को ध्वस्त करने वाला), जितेन्द्र (विजयी), रथयोद्धा, मधवान तथा शांति का देवता बताया गया है। यह आकाशीय देवता युद्ध, शांति और मौसम का देवता था। इन्द्र के पश्चात् सर्वाधिक सूक्त (200) अग्नि को समर्पित हैं यज्ञों के दौरान अग्नि का विशेष महत्त्व था। जहाँ तक कि ऋग्वेद में उसे पुरोहित, यज्ञिय और होता भी कहा गया है। अग्नि के द्वारा यज्ञ में समर्पित आहुति देवताओं तक पहुंचाई जाती थी, इसलिए इसे देवताओं का मुख भी कहा गया है। अग्नि विवाह संस्कार, यज्ञों तथा दाह संस्कार आदि के लिए अनिवार्य थी। ऋग्वेद के मंत्रों में इसे पिता पथ-प्रदर्शक और मित्र भी कहा गया है।

नित्रावरुण ऋग्वेद में वरुण का वर्णन विभिन्न प्रकार से किया गया है। वरुण को आकाश, पृथ्वी और सूर्य का निर्माता माना गया है। सभी देवता उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, नदियाँ उसी के आदेश से प्रवाहित होती हैं। वरुण विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था का भी रक्षक था। सर्वशक्तिमान होने के बावजूद वह अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी नहीं है।

सूर्य को अंधकार दूर कर रोशनी फैलाने वाला माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार सूर्य देवों का अनीक, चर-अचर की आत्मक तथा उनका मित्र और वरुण एवम् अग्नि का नेत्र था। सवितृ भी सूर्य का ही एक रूप है, और प्रसिद्ध गायत्री मंत्र उसी को समर्पित है। सूर्य मनुष्यों के सत्-असत् कर्मों का दृष्टा है तथा वह विश्वकर्मा है।

रूद्र आंधी का प्रतीक है। ऋग्वेद में रूद्र से महामारी और महाविनाश से दूर रखने के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई हैं। यह अनेक जड़ी-बूटियों का भी संरक्षण कर्ता था।

इन्द्र शक्ति का स्वामी था जिसकी उपासना शत्रुओं को नष्ट करने के लिए की जाती थी। वह बादलों का देवता था, उससे समय-2 पर वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ की जाती थी। बादल और वर्षा शक्ति से संबंधित थे जिसको पुरुष के रूप में मानवीकरण किया गया और जिसका प्रतिनिधित्व इन्द्र करता था। युद्ध का मुखिया के रूप में भी इसका उल्लेख है। इन्द्र की स्तुति में ऋग्वेद में लगभग 250 रचनाएँ हैं। जिसका अभिप्राय है कि इस वेद की सम्पूर्ण रचनाओं का एक चौथाई भाग एकमण इन्द्र की स्तुति से ही भरा है।

ऋग्वेद में अन्य बहुत देवता थे जैसे सोम, वायु, विष्णु, द्यौस, मरुत। ऋग्वेद में पुरुष देवताओं के अलावा अनेक देवियों का भी उल्लेख है जैसे : उषा, पृथ्वी, अदिति अरण्यनी, सावित्री, अप्यरा और पुरामाधि आदि। इनको सम्बोधित करते हुए ऋग्वेद में अनेक प्रार्थनाएँ और श्लोक लिखे गए।

ऋग्वैदिक धर्म में बलि और यज्ञों का विशेष महत्त्व था जो प्रायः देवताओं की उपासना करने, युद्ध में विजय, पशुओं तथा पुत्र की प्राप्ति के लिए किए जाते थे। सामान्यतः पुरोहित यज्ञों के सम्पन्न कराते थे। इस काल में यज्ञों में बलि का विस्तृत उल्लेख है, जिस कारण पुरोहितों के महत्त्व में वृद्धि हुई। बलिदान अनुष्ठानों के कारण गणित और पशु शरीर संरचना ज्ञान के विकास में भी वृद्धि



हुई। यज्ञों के दौरान उसमें घी, दूध चावल और सोमरस आदि वस्तुओं की आहुति दह जाती थी। इस काल में देवताओं की पूजा किसी अर्भूत दार्शनिक अवधारणा के कारण नहीं बल्कि भौतिक लाभों के लिए की जाती थी इस काल के धर्म में बलिदान या यज्ञ के महत्व में काफी वृद्धि हुई।

## उत्तरवैदिक कालीन राज्य संरचना (Later Vedic State Structure)

उत्तरवैदिक काल ने आर्यों का प्रसार पूर्व में गंगा-यमुना दो आब के क्षेत्र में हो चुका था। अथर्ववेद में बहलीक प्रदेश से लेकर मगध तक का उल्लेख है इसके अतिरिक्त पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्री तट के बारे में भी उत्तरवैदिक साहित्य में वर्णन है। इस काल में क्षत्रीय राज्यों की स्थापना हो चुकी थी तथा कहीं-कहीं गणराज्यों का भी वर्णन मिलता है।

उत्तरवैदिक काल में राज्य और साम्राज्य अस्तित्व में आए क्योंकि इस काल में छोटे-2 कबीलें आपस में मिल गए थे। साम्राज्य का संस्थापक सम्राट कहलाता था, जिसके अधीन अन्य छोटे-2 राज्य भी थे। राजा शब्द का प्रयोग यद्यपि छोटे स्वतंत्र राज्य का द्योतक है। परन्तु इसे अधिकतर अधिन सामंत राजा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इस काल में राजा का दैवीक उत्पत्ति का सिद्धांत भी प्रचलन में आया क्योंकि एक स्थान पर पुरु राजा अपने आपको इन्द्र तथा वरुण के समान बताता है और उनके द्वारा प्रदान की गई शक्तियों का जिक्र करता है। संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में भी वाजपेय तथा राजसूय यज्ञ करने के उपरान्त राजा समीकरण प्रजापति से किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में इसी प्रकार का उल्लेख है। इस काल में अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ सम्पन्न करा कर राजा अपने विशाल राज्य का प्रमाण देता था। परन्तु कीथ नामक विद्वान का मत है कि यद्यपि इस काल में ऋग्वैदिक कालीन कुछ राज्य नहीं था। अथर्ववेद में राजा को अपने चचेरे भाइयों से लड़ते दिखाया गया है तथा अनार्यों से युद्धों का भी उल्लेख है।

परन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में पूर्व के शासकों का सम्राट, दक्षिण के शासकों को भोज, उत्तर के विराट तथा मध्य देश के शासकों का कवल राजन कहा गया है। इसी प्रकार ऐसरात तथा सार्वभौम राजा उसे कहा गया है जिसने चारों दिशाओं में शत्रुओं पर विजय हासिल की हो। विजय के उपलक्ष्य में बाद में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया जाता था। राजसूय यज्ञ के दौरान घोषणाओं द्वारा राजा की उपलब्धियों की जानकारी दी जाती थी। इन बातों से हमें इस काल में बड़े-बड़े साम्राज्य होने की जानकारी मिलती है।

उत्तरवैदिक कालीन साक्ष्यों से पता चलता है कि राजा का पद पैतृक या वंशानुगत था। शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण से पता चलता है कि कई राज्य दस पीढ़ियों से स्थापित थे। इसके अतिरिक्त राजपुत्र शब्द का अर्थ राजा के पुत्र के रूप में भी इस व्यवस्था का द्योतक है। परन्तु अथर्ववेद के एक पथ में राजा के चयन का भी उल्लेख है, जिसमें प्रजा राजा का चुनाव करती है विधा या क्षत्रीय इकाइयों की अपेक्षा। परन्तु यह चुनाव राजपुत्रों या राजपरिवार से ही अपातकाल में होता होगा। इस काल में हम जनता द्वारा कई अत्याचारी राजा को हटाने के भी प्रमाण मिलते हैं।

इस काल की समस्त रचनाओं में निरंकुश शासकों की घोर आलोचना की गई है। अथर्ववेद में अधार्मिक राजा के शासन के अन्त होने तथा उसे समिति और मित्रवर्ग का सहयोग न प्राप्त होने का उल्लेख है। जो राजा निरंकुशतापूर्वक राष्ट्र का साधना करता था उसे शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्री कहा गया है। इस काल में राजा को धर्मानुकूल व्यवहार करने वाला बताया गया है। इसके अतिरिक्त राजा को राज्याभिषेक के समय शपथ लेनी पड़ती थी, कि वह नियमों का पालन करेगा, कोई हिंसा नहीं करेगा, राजा का पालन करेगा इत्यादि। राजा इन सभी बातों का व्यवहार में पालन करता था। इस कारण भी राजा निरंकुश नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त उसे राज्य के एक महत्वपूर्ण अंग रत्नियों के प्रति भी सम्मान प्रकट करना पड़ता था और उनका सहयोग तथा अनुमोलन प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इनकी संख्या 11 दी गई है जो इस प्रकार है। 1. सन्तान 2. पुरोहित 3. युवराज 4. महिषी (प्रमुख रानी) 5. सूत (सारथी) 6. ग्रामणी 7. क्षता (प्रतिहारी) 8. समग्रहीता (काषाध्यक्ष) 9. भागद्वय (हर संग्रहकर्ता) 10. अक्षज्ञप (शंतरल खेल में राजा का साथी) तथा पालागल (राजा का मित्र)।

### सभा और समिति

अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की दो पुत्रियां कहा गया है। जो हमेशा राजा को मदद करती थी। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार राजा अपनी शक्तियों की प्राप्ति इन्हीं से करता है। इस प्रकार राजतंत्र तथा ये दैविक संस्थाएँ एक ही धरातल पर हैं। अथर्ववेद में इस बात का वर्णन है कि राजा इनकी सहायता लेने की कोशिश करता था। यदि इनका विश्वास राजा पर ना रहे तो राजा पर विपत्तियाँ पाने का उल्लेख है। लेकिन इस काल में राजा की शक्तियों में वृद्धि होने के कारण इस काल में सभा और समिति का महत्व कम हो गया था। इस काल में सभा के कार्य तथा कार्य शैली का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। अथर्ववेद के वर्णन से पता चलता है कि एक ही नाम संस्था थी तथा ग्राम के समस्त स्थानीय विषयों की देखभाल करती थी। एक स्थान पर इसे नरिष्ठा कहा गया है जिसका अभिप्राय है कि यहां वाद-विवाद के बाद निर्णय होते थे। मैत्रायणी संहिता के अनुसार स्त्रियाँ सभा की बैठकों में भाग नहीं लेती थी। पनापद समाचार इत्यादि शब्दों से सभा के सदस्यों का वर्णन मिलता है। सभा का अध्यक्ष सभापति होता था इस प्रकार हम देखते हैं कि



है। ऋग्वैदिक काल के अंतिम चरण में समाज ४ वर्णों में बंट गया था, लेकिन इस काल में वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर स्थापित हो गई। इस काल में अनेक उपजातियां तथा दूसरे जाति विभाजन होने लगे जैसे इस काल में विभिन्न श्रेणियां अपन पेशे व्यवसाय में वंशानुगत होने के कारण अलग जाति में विभक्त हो गए। इसी प्रकार रथकार, लोहे, चमड़े तथा लकड़ी का काम करने वाले भी अलग जातियां बन गईं। इस काल में परिवार में गोत्र का महत्व बढ़ा तथा सगोत्रीय और गोत्र से बाहर विवाह के नियम बनने लगे। इस काल में अपनी ही जाति में विवाह करने के नियम बनने लगे। इस काल में शूद्रों पर अनेक निरयोग्यताएं लगा दी गईं जैसे आर्य वर्ण के लोग शूद्र स्त्री से विवाह नहीं कर सकते थे। लेकिन शूद्र या दस्यु वर्ग के लोग आर्य स्त्री से विवाह नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार का नियम धीरे-धीरे तीन आर्य वर्णों पर भी लागू होने लगा। जिसमें एक ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य लकड़ी से शादी कर सकता था जबकि नीच जाति का पुरुष ऊंची जाति की महिला से शादी नहीं कर सकता था। इस काल में वैश्य वर्ण जाति कृषि तथा व्यापारिक गतिविधियों का संचालक था, चौथे वर्ण के अधिक सम्पर्क में आया और यह आर्यों की सांस्कृतिक श्रद्धा को सहेज कर नहीं रख सका।

इस काल में प्रत्येक जाति के काम और उनकी प्राथमिकताएं तथा सामाजिक स्तर निश्चित कर दिए गए। शतपथ ब्राह्मण में आर्य जातियों के वर्णानुसार अलग-2 आकार के शमशानों का भी उल्लेख है। शूद्रों की स्थिति सबसे दयनीय थी, उनका कार्य दूसरों की सेवा करना था और उन्हें भू-संपत्ति के अधिकारों से भी वंचित रखा गया।

वैश्य और शूद्र जो इस काल में वास्तविक उत्पादनकर्ता थे, को इन वर्गों को कर देना और इनके सेवा कार्य पड़ते थे। इस वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों ने उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था, क्योंकि इस काल में यज्ञों का महत्व बढ़ गया था। समाज में उच्चाधिकार के लिए हमें ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच परस्पर संघर्ष के प्रमाण मिलते हैं। इस काल में कई क्षत्रियों के ब्राह्मण बनने का भी प्रमाण मिलता है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सामान्यतः दूसरे दोनों वर्णों के मुकाबले प्रभावशाली थी। इस प्रकार का प्रमाण हमें वाजसेनीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण तथा पंचविश ब्राह्मण में मिलता है। जबकि शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर ऐसा भी वर्णन है कि ब्राह्मण राजा पर आश्रित है, तथा यह उसके साथ नीचे के आसन पर बैठता है। इसी तरह शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि क्षत्रिय अपनी शक्ति ब्राह्मण के ही कारण पाता है। दूसरी ओर ऐसे भी संदर्भ हैं, जो क्षत्रिय को सर्वोपरि मानते हैं जैसे कि काठक संहिता तथा इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण के एक सन्दर्भ में ब्राह्मण को क्षत्रिय से निम्न कहा गया है, जो राजा से दान लेने वाला, और सोम रस पीने वाला है जिस राजा भी हटा सकता है। इस काल में ऐसे भी संदर्भ मिले हैं, जिससे पता चलता है कि कई राजा पढ़े-लिखे थे तथा उन्होंने बहुत सी रचनाओं की रचना भी की थी तथा कई क्षत्रिय ब्राह्मणों के भी शिक्षक रहे थे। इस काल में ब्राह्मण पुरोहित होते थे तथा कुछ राजा के पुरोहित भी थे, जो वंशानुगत होते थे अथर्ववेद से हमें पता चलता है कि कई बार राजा ब्राह्मणों पर अत्याचार भी करते थे और ऐसा राजा कभी फल-फूल नहीं सकता था। परन्तु आमतौर पर ब्राह्मणों ने इस काल में अपनी प्रतिष्ठा कायम कर ली। इस काल में व्यापारिक गतिविधियों का प्रसार होने के कारण वैश्यों के अनेक वैश्यों के अनेक वर्ग बन गए जो पशुपालन, शिल्पकार इत्यादि गतिविधियों में शामिल थे, ये कर भी अदा करते थे। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है कि यज्ञ करने वाले वाक्मन् शूद्रों से बात नहीं करनी चाहिए। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि उच्चवर्ग के लोगों को शूद्रों को पीटने का अधिकार है। ऋग्वेद ग्रंथों में शूद्रों के स्पर्श से बचने लिए जो नियम बनाए थे, बाद में उन्हीं से समाज में अस्पृश्यता की शुरुआत हुई थी।

### विवाह एवम् महिलाओं का स्थिति

इस काल में जाति-प्रथा के उद्भव के साथ ही कई सामाजिक मानदंड प्रकट हो गईं। एक ही गोत्र के सदस्यों का विवाह पराक्रम लगा दी गई और यह बात विशेष तौर पर ब्राह्मण वर्ग पर लागू हुई, जो अब एक असगोत्रीय विवाह का समर्थन करने प्रारंभ करता था। इस काल में सामान्यतः ब्यस्क होने पर विवाह किया जाता था और विवाह गोत्र से बाहर किया जाता था। विधवा विवाह की अनुमति तथा बहुपत्नी विवाह भी प्रचलन में था। मैत्रायणी संहिता में मनु की दस पत्नियों का वर्णन है तथा एक राजा की भी चार पत्नियों का उल्लेख है। अथर्ववेद में ऐसी कन्याओं का उल्लेख है जो अविवाहित थीं और अपन माता-पिता के घर रहती थीं। परन्तु सामान्यतः अविवाहित रहने की प्रथा नहीं थी। अविवाहित पुरुष को यज्ञ करने की अनुमति नहीं थी बिना स्त्री के उसे स्वर्ग प्राप्ति नहीं थी। क्योंकि पुरुष को पत्नी के बिना पूर्ण नहीं माना गया। इन सबसे पता चलता है कि एक पुरुष को एक से ज्यादा पत्नी रखने का भी अधिकार था, लेकिन एक स्त्री के एक से ज्यादा पति नहीं हो सकते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में तो राजा हरीशचन्द्र की सौ पत्नियों का उल्लेख है। लेकिन बहु-पत्नी विवाह के सन्दर्भ ज्यादातर राजाओं तथा अन्य धार्मिक वर्ग तक ही सीमित थे। साधारणतः एक-पत्नी विवाह ही प्रचलन में था।

इस काल में पिता द्वारा पुत्री बेचने के भी प्रमाण हैं, जिन्हें अच्छा नहीं माना जाता था। विवाह के समय दहेज दान का प्रमाण है। ऋग्वैदिक काल की भांति इस काल में भी वधु परिवार से मधुर संबंध रखती थी। पत्नी शब्द का प्रयोग ब्राह्मण साहित्य में हुआ है।

जो उसके अपने पति के साथ सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में समान अधिकारों का द्योतक है। शतपथ ब्राह्मण में उसे पति की अर्धांगिनी भी कहा गया है। इस काल में पहले के काल की अपेक्षा स्त्री की स्थिति में गिरावट आई मैत्रायणी संहिता में तो स्त्री को जुआ और शराब के साथ तीसरी बुराई के रूप में गिना गया है। इसी तरह के संदर्भ तैत्तिरीय तथा काठक संहिताओं में भी मिलते हैं।

इस काल में स्त्रियों को राजनीतिक कार्यों में भाग लेने की आज्ञा नहीं थी। सभाओं और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में वे हिस्सा नहीं ले सकती थीं। स्त्रियों पर ऋग्वैदिक की काल की अपेक्षा ज्यादा अकुंश लगा दिए गए। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार अच्छी स्त्री वह है जो पलट कर जवाब ना दे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार स्त्री को अपने पति के बाद ही भोजन करना चाहिए। इस काल में लड़की के जन्म पर दुःख अभिव्यक्त किया जाने लगा तथा पुत्र कामना के लिए अनेक प्रार्थनाएं की गईं। अथर्ववेद में भी कन्या के जन्म को बुरा माना गया। इस काल के समाल में पर्दा-प्रथा नहीं थी, अथर्ववेद असंकृता नारी के सभा में जाने का उल्लेख करता है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्र वधु का अपने श्वसुर को समक्ष ना आने का उल्लेख है जिसे हम पर्दा प्रथा नहीं मान सकते। स्त्रियों के अधिकारों और उनकी स्थिति में पहले की अपेक्षा गिरावट आई। इस काल में गर्गी और मैत्रेयी जैसी मंत्र दृष्टा स्त्रियों का वर्णन यह दर्शाता है कि प्रारंभिक वैदिक काल में सभी संतो और ऋषियों की जो परम्परा चली वह कुछ हद तक इस काल में भी विद्यमान थी।

### शिक्षा

इस काल में रचित साहित्य यज्ञो, बालियों इत्यादि के मंत्रों से संबंधित है, जो श्रुति के रूप में था। शिष्य अपने गुरु से मौखिक रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। अथर्ववेद में ब्रह्मचारिन शब्द वैदिक विद्यार्थी का द्योतक है, जिसे अग्निपूजा के लिए लड़कियां तथा गुरु के लिए भीख मांग कर भोजन लाने वाला कहा गया है। इस काल में उपनयन संस्कार पद्धति के बाद शिक्षा शुरु की जाती थी। ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रियों की भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। राजा जनक न केवल वेदों के ज्ञाता थे बल्कि उस काल के प्रसिद्ध दार्शनिक भी थे। तीनों उच्च वर्णों को उपनयन संस्कार प्रणाली का अधिकार था, लेकिन शूद्र इस अधिकार से वंचित थे। शतपथ ब्राह्मण से हमें उपनयन संस्कार का वर्णन मिलता है। अन्य साहित्य में गुरु सेवा को धर्म माना गया है। तैत्तिरीय आरण्यक में विद्यार्थियों के अन्य कार्य भी बताए गए हैं जैसे बारिश में ना भागना तथा बिना वस्त्रों के स्नान ना करना आदि।

### स्त्री शिक्षा

इस काल में समाल के बौद्धिक में स्त्रियां भाग लेती थीं, यजुर्वेद में शिक्षित स्त्री-पुरुष के विवाह को उपयुक्त माना गया है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि ब्राह्मण्य द्वारा कन्या पति प्राप्ति करती है। इस विवरण से पता चलता है कि लड़कों की भांति कन्याएं भी ब्रह्मचर्याक्षय में रहकर शिक्षा प्राप्त करती थीं। संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में स्त्रियों द्वारा संगीत और नृत्य की शिक्षा प्राप्ति के प्रमाण मिलते हैं। तांड्य ब्राह्मण के अनुसार गणित, व्याकरण और काव्य इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी और भाषा के ज्ञान पर भी जोर दिया जाता था। अथर्ववेद में स्त्रियों का विशेष कार्य बताया गया है। ऋग्वेद, मान-विद्या के अतिरिक्त मंत्रों को भी स्त्रियों ही पढ़ाया जाता था। स्त्रियों को पुरुषों से अधिक भोजन मिलता था। अथर्ववेद में उल्लेख है कि स्त्रियां विदुषी स्त्रियां मंत्रों को पढ़ती थीं, प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेती थीं। उनके आरक्षण में शांत और याज्ञवल्क्य के वाद-विवाद का उल्लेख है। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी स्वयं एक विदुषी थी। इनके अतिरिक्त स्त्रियां गृहशिक्षा के प्रति भी जागरूक थीं। गृहस्थ जीवन में भोजन पकाना नारियों का विशेष कार्य था, शतपथ ब्राह्मण के एक संदर्भ से प्रकट होता है कि ऊन और सूत की कताई-बुनाई का कार्य मुख्यतः स्त्रियां करती थीं। इस काल में राज्य द्वारा शिक्षा व्यवस्था की सुविधा नहीं करती थी। ब्राह्मण ही ऊपरी तीन वर्णों के विद्यार्थियों को अपने घरों या गुरुकुलों में पढ़ाया करते थे। इसके बदले विद्यार्थी गुरु की सेवा करते तथा फीस के रूप में गुरुदक्षिणा देते थे। इस प्रकार की व्यवस्था में न केवल साहित्यक ज्ञान दिया जाता था बल्कि अस्त्र शस्त्र और शारीरिक शिक्षा व नैतिक ज्ञान भी दिया जाता था।

### मनोरंजन के साधन

इस काल में वाद्य तथा गायन दोनों तरह का संगीत प्रचलित था; सामवेद में गायन संगीत विज्ञान का एक ग्रन्थ माना जाता था। इस काल में बहुत से पेशेवर गायक थे जिनमें बांसुरी वादक, शंखवादक तथा ढोलकिए इत्यादि शामिल हों अथर्ववेद में अघाटी नामक यंत्र का उल्लेख है जिसे अन्य यंत्रों के साथ नृत्य में प्रयोग किया जाता था। स्टेज और ड्रामे का भी इस काल में प्रचलन था। सैलूश एक एक्टर तथा नृतक का रूप था। संगीत के अतिरिक्त रथदौड़ तथा घुड़दौड़ इस काल के मनोरंजन के मुख्य साधन थे। राजसूय यज्ञ के दौरान इस प्रकार की रथों तथा घुड़दौड़ों का आयोजन किया जाता था। जुआ खेलना भी इनके मनोरंजन में शामिल था। यजुर्वेद में नटों का भी उल्लेख मिलता है।

### खान-पान

इस काल में शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन का उल्लेख है। अपूप चावल या जौ की घी मिश्रित रोटी थी। ओदन



खिचड़ी या दलिया था, जिस दूध के साथ सेवन किया जाता था। यवागु जौं से बना भोजन था। करम्य एक प्रकार का घन मूत्र का दलिया था। सेतु खाने की जानकारी भी इस काल के लोगों को थी। दूध से निर्मित वस्तुओं में पनीर, दही, ताजा मक्खन का एक प्रकार के पेय जो फटे दूध में ताजा दूध मिलाकर बनाया जाता था जिसे पयस्थ कहा जाता था। इस काल में मासाहारी भोजन का लोकप्रिय था। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि अतिथि को बैल या बकरी का मीट खिलाना चाहिए।

सूरा एक प्रकार का नशीला पेय था जिसे समारोह के दौरान पीया जाता था। अथर्ववेद में इसे झगड़ों की जड़ तथा अच्छे लगाने को जुआ खेलने की आरंभ ले जाने के अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। विशेष अवसरों के लिए एक विशेष प्रकार की सुरा सोत्रामणी का वर्णन है, जो अनाज और पौधों के मिश्रण से बनाई जाती थी। यजुर्वेद में मासर नामक एक पेय का उल्लेख है जो चावल और भुने जौ से बनता था। इस काल में शहद का भी सेवन किया जाता था, लेकिन कुछ अवसरों पर इसका सेवन विद्याधियों और स्त्रियों के लिए वर्जित था।

## उत्तरवैदिक अर्थव्यवस्था (Later Vedic Economy)

उत्तरवैदिक काल में उत्पादन की ओर झुकाव की स्थिति स्पष्ट सामने आई, जिसमें खेती आजीविका का मुख्य साधन हो गई और धीरे-धीरे भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना मजबूत हो गयी। अथर्ववेद, वाजसेनिय, मैत्रयवी, तैत्तिरीय तथा काष्ठ संहिता और शतपथ ब्राह्मण में खेती के विभिन्न कार्यों से संबंधित अनुष्ठानों और हल द्वारा जुताई का विस्तृत विवरण दिया गया है। 6, 8, 12 और 24 बैलों द्वारा जुताई से पता चलता है कि हलों से गहरी जुताई की जाती थी। यद्यपि यह सन्दर्भ इसी रूप में हम न लेता भी यह स्पष्ट है कि कृषि विस्तृत और गहन दोनों तरह से की जाती थी। बैलों पर जूलों की सहायता से हल जोता जाता था। हल सम्भवतः लकड़ी के थे। जिनके नाम उदम्बर या खदीरा थे। हलों में लोहे के फाल का प्रयोग पहले की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी था। खेती के बढ़ते महत्व के कारण उत्तरी मैदानों को लोहे की कुल्हाड़ी एवम् अग्नि की सहायता से साफ किया गया और गंगा-यमुना दाआब का क्षेत्र कृषि के लिए अत्याधिक उपर्युक्त था। इस काल की साहित्यिक संहिता (शतपथ ब्राह्मण) में कृषि कर्म पर एक पूरा अध्याय लिखा गया है जिसमें इस बात का वर्णन है कि बीजों की बुवाई कितनी गहरी और किस प्रकार करनी चाहिए। कृषि की उपज बढ़ाने के लिए पशुओं से प्राप्त खाद का उल्लेख अथर्ववेद में है। शकृत् (गोबर), करीश (उपले) इत्यादि का उल्लेख साहित्य में यद्यपि कदा मिलता है। हल चलाने वाले के लिए कीनाश शब्द का उल्लेख हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में कृषि संबंधी कई कार्यों का उल्लेख है जैसे हल जोतना, बीज बोना, फसल काटना, दाने अलग करना इत्यादि पकी हुई फसल को दरती से काटा जाता था। तैत्तिरीय संहिता में वर्णन है कि जौ सर्दियों में बोए जाते थे और गर्मियों में पकाई के बाद उनकी कटाई की जाती थी। चावल बरसात के ऋतु में खेतों में बोए जाते थे तथा बीन और तथा तेल वाले पौधे गर्मियों में बोए जाते थे जो सर्दियों में पकते थे। अथर्ववेद में सिंघाव कृषि के लिए नरसिंघों और महर खडव का वर्णन है, तथा फसलों की विभिन्न बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए इनके प्रयोग का उल्लेख है। अथर्ववेद में अनाज की वृद्धि के लिए अनाक प्रार्थनाएँ की गई हैं। यव(जौ) का अतिरिक्त गहुँ इस काल की मुख्य फसल थी। ग्राही (चावल) का उल्लेख पहली बार हुआ है। इस प्रकार के धान ब्राह्मि तथा तण्डुल का वर्णन है। अथर्ववेद में उडद (माष), मूंग और मसूर की दालों का उल्लेख है इनके अतिरिक्त तिल और सरसों की भी खेती के प्रमाण मिलते हैं। कृषि कार्यों में वृद्धि होने से पूर्ववर्ती पशुपालन युग की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी, क्योंकि वह बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन को पूरा करने में असमर्थ थी।

पशुपालन भी कृषि-कर्म के साथ-साथ होता था। अथर्ववेद में गाय के प्रति आदर भाव का उल्लेख है तथा बलि वेदी के बाहर गाय को मारने पर मृत्यु दण्ड दिया जाता था, इस तरह इस काल में गाय की पवित्रता शुरू हुई और गाय को अदिति या दरती का क समान माना जाने लगा। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर स्पष्ट उल्लेख है कि गाय और बैल पृथ्वी का धारण करते हैं अतः उनका मांस न खाया जाए। अथर्ववेद में एक स्थान पर गाय, बैल और घेड़ों की प्राप्ति के लिए राजा इन्द्र का प्रार्थना करते हुए दिखाया गया है। इन पशुओं के अतिरिक्त भैंस, भेड़, बकरी, सूअर इत्यादि का उल्लेख है। अथर्ववेद में हाथी का भी उल्लेख है। गाड़ी खींचने के लिए कभी-कभी गधों को भी प्रयोग किया जाता था जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में अश्विन की गाड़ी को गध को द्वारा खींचना दर्शाता है। ऊँट गाड़ी के प्रमाण मिलते हैं। मछली एवम् मुर्गा पालन व्यवसाय भी था, इन्हें भोजन के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता था।

## उद्योग-धन्धे (Business)

कृषि क्षेत्र में विस्तार, जीवन में स्थायित्व और क्षेत्रीय राज्यों के उदय ने कला-कौशल के क्षेत्र को प्रभावित किया और अनाक शिल्प को जन्म दिया। संभवतः इस का सबसे महत्वपूर्ण लाहे का उपयोग है। अथर्ववेद में लाहे के लिए श्याम अयस शब्द का उल्लेख हुआ है तथा फसल काटने की दरती, लोहे के औजार जैसे तीर और भलों की नोकें, चाकू, कुल्हाड़ी, कांटे तथा एक फाल वाले हल इत्यादि विस्तृत पैमाने पर मिलते थे। लोहे के अतिरिक्त टीन, सीसा तथा तांबे का भी व्यापक पैमाने पर प्रयोग होता था। अर्थात् इस काल

में उन्हें अनेक धातुओं का ज्ञान था और उन्हें पिघलाने की कला से परिचित थे। धातुशिल्प के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर हस्तशिल्पियों के बारे में जानकारी मिलती है। धातुकर्मियों (सोना, चोदी, तांबा और लोहे का काम करने वाले) के अतिरिक्त बढ़ई, लौहार, मणिकार, रथकार, ज्योतिष, कुम्हार, सुराकार, नाई, धोबी, चर्मकार, कसाई, रंगारेज, मछुआरा तथा वास्तुकार आदि अनेक शिल्प/व्यवसायों की जानकारी मिलती है। इस प्रकार पहले के चरण की अपेक्षा उत्तरवैदिक काल में शिल्पों की विशेषज्ञता पर विशेष जोर दिया गया। इस काल में जाति प्रथा के आधार पर अलग-अलग वर्गों के अलग-अलग कार्य बंटे हुए थे, जैसे एवम् पशुपालन का कार्य वैश्यों के हाथों में था, पठन-पाठन, यज्ञ आदि ब्राह्मण, युद्ध एवम् राजम्य संबंधी कार्य क्षत्रिय और सेवा दास का कार्य चौथे वर्ग शुद्र के हाथों में था। परन्तु यह विभाजन इस काल में वंशानुपात अभी भी नहीं हुआ था, कभी-कभी एक वर्ग/जाति के लोग दूसरा कार्य भी अपना लेते थे। वाजसेनिय तथा तैत्तिरीय संहिता में पुरुषामेघ के उपलक्ष में विस्तृत वर्णन है। जिससे हमें विशेष प्रकार के द्वारपालों, रथकारों, अनुचरों, ढोल बजाने वालों, बूचड़, ज्योतिष इत्यादि का उल्लेख है। बढ़ई (तक्षण), चटाई बनाने वाले, पक्षी उड़ाने वाले, पशु चराने वाले, टोकरी बनाने एवम् कढ़ाई करने वाली स्त्रियाँ, सुरा बनाने वाले, हाथी पालक और स्वर्णकार इत्यादि का वर्णन है। अन्य व्यवसायों में नाविक, सूद पर पैसा देने वाले, धोबी (मलाग), कुम्हार, खाना बनाने वाला, दूत, रथों के साथ दौड़ने वालों का भी वर्णन है। उत्तरवैदिक काल में सोने का उल्लेख काफी मिलता है। आर्य हिरण्य को पवित्र मानते थे। अथर्ववेद तथा संहिताओं में सोने के गहनों का विस्तृत वर्णन है। वस्त्र-निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर होता था। कपास का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता लेकिन ऊन (ऊर्णा) तथा शण (सन) का प्रयोग वस्त्र और बोरियाँ बनाने के लिए किया जाता था। ब्राह्मवारी एवम् तपस्वी खाल और धर्म के वस्त्र धारण करते थे। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि सूत कातने का कार्य स्त्रियाँ करती थी। करघे के लिए 'वेमन' शब्द का उल्लेख हुआ है। वस्त्र बुनने वाली स्त्री को वयत्री कहा जाता था, वस्त्रों पर कढ़ाई का कार्य पेशाकारी स्त्रियाँ करती थी। अनेक शिल्पों के प्रसार से व्यापार और वाणिज्य का विकास हुआ और पहले की विनिमय और पूनर्वितरणकी पद्धति में भी परिवर्तन हुआ और व्यापार में विकास हुआ। इस काल के ब्राह्मण साहित्य और संहिताओं में 'वाणिज' शब्द का उल्लेख हुआ है जिसका अर्थ व्यापारी था। अथर्ववेद के अनुसार देश के व्यापारी साग्री लीकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे। साहित्य में (श्रेष्ठिन) अमीर वैश्यों का वर्णन है, जिन्होंने व्यापार और कृषि कर्म द्वारा संपत्ति एकत्रित की थी। व्यापार सामान्यतः विनिमय पद्धति पर आधारित था तथा गाय भी विनिमय का साधन थी। लेकिन मिष्क, शतनाम, कृष्णता पाद नामक सिक्कों के प्रचलन की जानकारी मिलती है। विद्वान इन्हे मुद्रा के रूप में लेते हैं, परन्तु यह सभी व्यापार में माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते थे। ब्याज देना भी इस काल का एक व्यवसाय था। शतपथ ब्राह्मण में कुसीदिन का उल्लेख ब्याज देने वाले तथा तैत्तिरीय संहिता में कुसीद ब्याज लेने वालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। लेकिन ब्याज दर का उल्लेख नहीं मिलता। व्यापारियों का व्यवसाय वंशानुगत था जोकि हमें वाणिज शब्द (जिसका अर्थ वाणिज का पुत्र था) के प्रयोग से मिलता है। व्यापारियों में चीजों के भव पर वाद-विवाद आम बात थी। इस काल में समुन्द्री व्यापार का स्पष्ट वर्णन मिलता है। वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए बैलों एवम् घोड़ों की गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। 'विषथ' शक का प्रयोग बुरे रास्तों के लिए प्रयुक्त हुआ है जिससे हम सड़कों या रास्तों का अन्दाजा लगा सकते हैं। किशती तथा जहाज नदी और समुद्र पार सामान ले जाने के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। छठी शताब्दी ई०पू० में मध्य भारत में कौशाबी, अहिधत्र, विदेह, काशी, वाराणसी और हस्तिनापुर से पुरातत्व के अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि नगरीय व्यवस्था की शुरुआत हो चुकी थी, जो शिल्प-निर्माण का केन्द्र हाने के साथ-साथ राजनीतिक केन्द्र भी रहे होंगे, जो निश्चय ही बढ़ती हुई सामाजिक आर्थिक असमानताओं को दर्शाते हैं।

### उत्तरवैदिक कालीन धर्म (Religions Condition of Later Vedic Period)

इस काल में हुए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण उत्तरवैदिक काल में भी परिवर्तन हुए। इस काल में एक तो ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित एवम् पोषित यज्ञ अनुष्ठान एवम् कर्मकांडीय व्यवस्था थी, तो दूसरी तरफ इसके खिलाफ उठाई गई उपनिषदों की आवाज। इस काल में यज्ञों का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ और इस काल के प्रमुख देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश थे क्योंकि ये लोगों की उत्पत्ति और उनके पालन-पोषण के लिए जिम्मेदार थे। हालांकि ब्राह्मण का इस काल में उत्तपादन व्यवस्था में कोई भूमिका नहीं थी, इसलिए समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पुरोहित और क्षत्रिय वर्ग ने बड़े-बड़े यज्ञ करने शुरू कर दिए जैसे : राजसूय, वाजपेय और अश्वमेघ आदि। जिस प्रकार के कर्मकाण्ड इस काल में उभरें, उनमें ब्राह्मणों का स्वार्थ निहित था। यज्ञों का जन कल्याणकारी अर्थात् कृषि उत्पादन बढ़ाने वाले तथा मोक्ष को प्राप्त करने का साधन माना जाने लगा। लेकिन यज्ञों के अवसर पर बलि प्रथा में आई तेजी के कारण लोगों में असंतोष के स्पष्ट प्रमाण उभरने लगे थे। इस फैले असंतोष को कम करने का कार्य उपनिषदों ने किया, जिन्होंने धर्म को सरल शैली से जोड़ कर्मकाण्डों का खण्डन किया। उत्तरवैदिक काल में यज्ञ मात्र उद्देश्य पूर्ति का साधन नहीं थे बल्कि यज्ञों के जरिए ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग के लोग समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को मजबूत करने लगे। इस काल में यज्ञों को बढ़ावा देने में शासकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन कर राजा जनता पर अपनी सत्ता की वैधता स्थापित करने का प्रयास करता था। ब्राह्म इन यज्ञों के माध्यम से राजा में दैवीय गुणों

का आरोपन करता था। जिसके बदले में राजा पुरोहितों को राजसम्मान और धन-सम्पदा देता था। इस काल के तीन प्रमुख यज्ञ थे: राजसूय, वाजपेय, तथा अश्वमेध आदि। ऐसे धार्मिक अनुष्ठान राजा के लिए भी महत्वपूर्ण थे। वस्तुतः ये सारी बातें राजा को अपने को वैधता प्रदान करने के लिए ही थी। इस काल की प्रसिद्ध रचना यजुर्वेद, से हमें यज्ञों की विधि और नियमों की विस्तृत जानकारी मिलती है। इस काल में सम्पन्न हुए धार्मिक अनुष्ठान पहले के काल की अपेक्षा अधिक पेचिदा और खर्चीले हो गए थे।

उत्तरवैदिक काल में होने वाले राजसूय यज्ञ का सम्बन्ध राजा के राज्यारोहण से था। जो कि प्रतिवर्ष चलता रहता था। इस यज्ञ के अवसर पर ही राजा की घोषणा की जाती थी और इसमें कई आनुषंगिक कर्मकांड हुआ करते थे। इस तरह ये बहुत प्रचलित होते थे क्योंकि प्रत्येक क्रिया की दक्षिणा देनी पड़ती थी। इस यज्ञ में पूरे वर्ष चलने वाले अनुष्ठानों का अंत ऐसे यज्ञ से होता था, जिसकी अध्यक्षता 'इन्द्रशुनासीर' अर्थात् हलयुक्त इन्द्र करता था और जिसका उद्देश्य 'पस्त प्रजनन शक्ति का पुनः प्राप्ति' का होता था। दूसरा महत्वपूर्ण यज्ञ वाजपेय था, जो सत्रह दिन से एक वर्ष की अवधि तक चलता था। राजा इस यज्ञ का आयोजन राजसूय यज्ञ के बाद करता था इस यज्ञ का लक्ष्य था, राज्य और शासक की समृद्धि। इस यज्ञ में रथों की दौड़ होती थी, जो एक प्रथा थी। इसका उपयोग शारीरिक शक्ति के आधार पर शासक का चुनाव करने के लिए किया जाता था। इस यज्ञ के दौरान जिन लगभग एक दर्जन रत्नियों के घर राजा जाता था, उनमें से चार स्त्रियां होती थीं। यह इस बात की संकेत करता है कि अनार्य जातियों के मातृकुलीय रिवाजों को नजरअंदाज नहीं किया गया था। इस प्रकार कमकांडो ने बृहतर समुदाय के संगठन में सहयोग दिया। अश्वमेध यज्ञ के लिए एक वर्ष पूर्व तैयारियां शुरू की जाती थी, लेकिन यह यज्ञ तीन दिन तक चलता था। इस यज्ञ में अवसर पर एक विशेष घोड़े का अभिषेक करके उस एक वर्ष घूमने के लिए छोड़ दिया जाता था। इसके साथ कुछ सैनिक भी होते थे। वर्ष के अंत में विधिपूर्वक यज्ञ करके उस घोड़े की बलि दी जाती थी। इसमें विशिष्ट लोगों की उपस्थिति के अलावा सामान्य जन भी हिस्सा लेते थे। अश्वमेध के अवसर पर पौराणिक गाथाओं का पाठ होता था। अश्वमेध यज्ञ का एक उद्देश्य शासक के प्रभुत्व को कायम रखना भी था। उपर्युक्त यज्ञों की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इनमें कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए भी अनुष्ठान होता था। जैसे वाजपेय यज्ञ तो खाद्य और पान से जुड़ा था और राजसूय यज्ञ के अंत में ऐसी ध्वन क्रिया थी जिसका उद्देश्य भूमि की कम हुई उर्वरा शक्ति का पुनः बढ़ाना था।

विशाल यज्ञों के अतिरिक्त अथर्ववेद में अन्य यज्ञों का भी उल्लेख है, जिन्हें लोग अपने घरों में ही विधिपूर्वक करते थे। इन यज्ञों का मुख्य उद्देश्य धन में वृद्धि तथा स्वर्ग की प्राप्ति था। यज्ञ सम्पन्न होने पर पुरोहित को दक्षिणा स्वरूप गाय, बैल, बछड़े, सोना तथा अनाज आदि दान दिया जाता था।

अथर्ववेद से पता चलता है कि यज्ञ विधि पहले के काल की अपेक्षा अधिक पेचिदा और जटिल हो गई थी और इनमें रहस्यवाद का भी समावेश हो गया था। ब्राह्मण इस काज में मनुष्यों और देवताओं के बीच मध्यस्थ बन गया, जो उनकी प्रार्थनाएं देवताओं तक पहुंचाने का कार्य करता था। इसलिए समाज में ब्राह्मण वर्ग का वर्चस्व कायम हो गया, क्योंकि कोई भी यज्ञ उनके बिना सम्पन्न नहीं हो सकता था। हालांकि ब्राह्मणों के बढ़ते प्रभुत्व के खिलाफ प्रतिक्रिया उपनिषदों में शुरू हो गई थी।

उत्तरवैदिक कालीन धर्म की दूसरी धारा उपनिषदीय अद्वैत सिद्धांत में स्पष्ट होती है। उस काल में यह ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड पर एक गहरा आघात था। उपनिषदीय विचारकों में नए रूप से सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। जिनमें कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष मुख्य थे। पुरोहितों की कर्मकाण्डिय व्यवस्था के विरोध का मुख्य कारण विस्तृत पैमाने पर होने वाली कृषि थी, क्योंकि यज्ञों में पशुबलि से कृषि को काफी नुकसान पहुंचता था। यज्ञ प्रक्रिया चूंकि काफी खर्चीली हो गई थी जो आम आदमी की पहुंच से बाहर थी इसलिए इस धार्मिक प्रक्रिया के खिलाफ आवाज उठनी शुरू हुई और यज्ञापी कर्मकाण्डों के खिलाफ पांचाल, विदेह और पूर्वी भारत में जबरदस्त प्रतिक्रिया भी हुई थी। इस काल में रचे गए उपनिषदों ने इन कर्मकाण्डों को नकार दिया और इन्होंने ब्रह्मा और आत्मा के बीच अद्वैत का मत प्रतिपादित किया। इन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए सद्कर्मों, चार पुरुषार्थों और आत्मिकज्ञान पर बल दिया। इसमें यद्याविद कर्मकाण्डों का कोई स्थान नहीं था। ज्ञान प्राप्ति के लिए नैतिकता पर गलत दिया गया। लेकिन यह इतना गूढ़ ज्ञान था कि उस काल की जनता इसे समझ नहीं सकी। छन्दोग्य उपनिषद और बृहदारण्यक उपनिषदों में जीवन, मरण, पुनर्जन्म के विषयों में दार्शनिक चिन्तन बहुत व्यापक और स्पष्ट है। इसमें मनुष्य और परमात्मा के बीच के संबंध को समझने की कोशिश थी। अज्ञान के परिणती अद्वैत में हुई, अर्थात् अस्तित्व की एकात्मकता में विश्वास व्यक्त किया गया।

अथर्ववेद से स्पष्ट प्रमाण है कि धर्म में स्थानीय लोक परम्पराओं और विश्वासों का समावेश किया गया। जैसे विभिन्न बिमारियां मृत्तिका और उन्हें दूर करने के लिए अथर्ववेद में मंत्र हैं, अपने शत्रु का नाश करने तथा स्वयं लाभ की प्राप्ति के लिए अलग-अलग मंत्र हैं। इस काल में प्रचलित विश्वासों और अधविश्वासों को भी धर्म में शामिल किया गया। देवताओं का इस काल में लोकिककरण के द्वारा सामान्य जनता के साथ इस काल के देवताओं को जोड़ा गया। जैसे सूर्य देवता इस काल में भूत-प्रेत भगाता था और कृष्ण देवता इस काल में कृषि का देवता था। इस काल में सौहार्दय की स्थापना और बच्चों के संरक्षित जन्म के लिए पूजा-आराधना का प्रारंभ हुआ।

स्पष्ट है कि उत्तरवैदिक काल में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। यह कृषि विस्तार सामाजिक विभेदाकरण के अंतर्गत सामाजिक तथा धार्मिक विश्वासों और कृत्यों में परिवर्तन से प्रमाणित होता है। यह वह काल था जब उत्तरी भारत में इतिहास में प्रथम बार धर्म की विकास की नींव डाली गयी थी जो इस पूर्व काली शताब्दी में स्पष्ट होनी है।



## जनपद एवं महाजनपद

2 A.

प्रारम्भिक वैदिक काल में लोह के प्रयोग का स्पष्ट वर्णन नहीं है परन्तु उत्तर वैदिक काल में कृष्ण अयस का संदर्भ निश्चय ही लोहे का द्योतक है। लोहे का प्रयोग औजार बनाने के लिए होता है जोकि पहले से प्रयुक्त ताम्बे से कहीं मजबूत है। प्रारम्भ में गंगा घाटी में लोहे के प्रयोग से हथियारों का निर्माण हुआ। इससे जंगलों की कटाई में सुविधा हुई तथा खेती के लिए नई भूमि उपलब्ध हुई। दूसरे हल के फालों (Plough Share) के रूप में इसके प्रयोग से न केवल जमीन को जोतना आसान हुआ अपितु गहराई तक खुदाई भी संभव हुई। गंगा प्रदेश के पानी की सुविधा के कारण चावल की खेती आसान हुई जो कि पारम्परिक गेहूँ, जौ इत्यादि से अधिक लाभकारी है। इस कृषि में परिवर्तन के कारण एक नए प्रकार के समाज का प्रारम्भ हुआ जो मूलभूत रूप में वैदिक समाज से भिन्न था। समकालीन ब्राह्मण, बौद्ध इत्यादि ग्रन्थों से हमें इस काल का ज्ञान होता है। इस काल में (1000 ई०पू० से 600 ई०पू०) में जनपद तथा महाजनपदों का वर्णन है। वैसे तो कुछ जनपदों का उत्तरवैदिक काल में भी वर्णन है। ये जनपद सामान्यतः वैदिक जनों के नाम पर थी जैसे कुरु जनपद, पांचाल जनपद, इत्यादि। पहली बार भिन्न प्रकार की मानव बस्तियों को क्षेत्र विशेष प्रकार के भौगोलिक नामों पर देखा गया है। इस काल के ग्रन्थों में विभिन्न क्षेत्र तथा भौगोलिक विभाजनों का स्पष्ट उल्लेख है जैसे अहिच्छत्रा, हरितनापुर, कौशान्दी, उज्जैन, श्रावस्ती, वैशाली इत्यादि क्योंकि जनपदों तथा महाजनपदों पर एक राजा के द्वारा शासन किया जाता था तथा उनके आधीन क्षेत्र में एक ही जन या कबीले के लोग न होकर विभिन्न जन समुदायों के लोग थे। आपस में इन जनपदों का अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाने के लिए संघर्ष चलता रहा तथा महाजनपदों के शक्तिशाली राजाओं के बीच दूसरे जनपदों को मिलाने की होड़ लगी रही जो अन्त में मगध साम्राज्य के उत्कर्ष में जाकर सम्पन्न हुई। दूसरी ओर इस काल में कुछ गणराज्यों की स्थापना भी इस काल में हो चुकी थी जो गणतन्त्र रूप में शासित के इन लच्छिवी, वज्जी इत्यादि थे। जहाँ पर राज्य एक शासक के हाथ में होकर पूरे समुदाय के अधिकार में थे। कभी-2 उन्हें राजा की उपाधि भी दी जाती थी। एक गणराज्य में 7007 राजा (सदस्य) थे।

इसके अतिरिक्त इस काल के समाज में एक अन्य मूलभूत परिवर्तन भी देखने को मिलता है वह है कि बहुत से लोगों का मूल रूप से कृषि पर आधारित न होना। वह संभव हुआ आवश्यकता से अधिक उत्पादन के कारण। इससे लोगों में कृषि उपज से अतिरिक्त अन्य चीजों की मांग बढ़ी। इससे एक नए वर्ग का उदय हुआ जो वस्तुओं के विनिमय करता था। विभिन्न व्यक्तियों एवं क्षेत्रों के बीच वस्तुओं के आदान प्रदान की प्रक्रिया के कारण व्यवसायिक मध्यस्थों और व्यापारियों का यह वर्ग श्रेष्ठिन (या सेठों) था जो काफी धनी भी हो गए थे। प्रथम बार इस काल में हमें न केवल पशुधन के अतिरिक्त अनाज का धन के रूप में देखा जाने लगा। इसी कारण धनी व्यापारियों का महत्व समाज में बढ़े-2 भूस्वामियों की भांति हो गया। व्यापार में अधिकता होने के कारण विनिमय की दिक्कतों को दूर करने के लिए धातु का विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग होने लगा। कालान्तर इनकी शुद्धता परखने के लिए इन पर व्यापारियों की इन श्रेणियों ने अपने चिन्ह लगाने शुरू कर दिए। इस तरह इस काल में धातु के सिक्कों की शुरुआत हो गई। भारत के प्रारम्भिक सिक्कों में 'नेगम' प्रकार के सिक्के इन्हीं व्यापारिक श्रेणियों के चलाए हुए थे। व्यापार के कारण ही कस्बों एवं नगरों का उदय हुआ तथा भारत का द्वितीय नगरीकरण भी इसी काल में हुए परन्तु अधिकतर लोग गांवों में रहते थे तथा कृषि कार्य में खाद्य उत्पादन में लगे थे। वैदिक चतुर्वर्ण व्यवस्था इस काल में भी सैद्धान्तिक रूप से चल रही थी परन्तु इस काल में सभी सामाजिक समूहों का वर्णन इस व्यवस्था में परिभाषित नहीं है जैसे दासों का होना, उनकी स्थिति इत्यादि। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का उदय गंगा घाटी में हुआ तथा यहीं पर जनपद, महाजनपद इत्यादि बने।

**स्रोत -**

इन जनपदों एवं महाजनपदों के बारे में हमें अधिकतर जानकारी वैदिक तथा बौद्ध साक्ष्यों से प्राप्त होती है। वैदिक ग्रन्थों में उस काल के उपनिषद् हैं। यद्यपि ये प्रमुखतः दार्शनिक (Philosophy) से सम्बन्धित है परन्तु इनमें जहाँ-तहाँ पर कृषक समुदायों की बस्तियों के बारे में विविध जानकारी है। इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों में विनयपिटक, सुत्तपिटक तथा जातक कथाएं इत्यादि भी हैं। इन ग्रन्थों में तथा अन्य साक्ष्यों में विभिन्न भौगोलिक विभाजनों जैसे अहिच्छत्र, हरितनापुर, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वैशाली इत्यादि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस काल के पुरातात्विक साक्ष्य उत्तरीय कृष्ण पालिशदार (North Black Polished Ware) मृदभांड तथा उनका संस्कृति के रूप में मिलती है। लोहकाल की इस मृदभांड संस्कृति में लाहे का प्रचुर प्रयोग, सिक्कों का प्रयोग तो मिलता ही है तथा साथ ही अन्य वस्तुओं, घरों, इमारतों, गाँवों, कस्बों, तथा शहरों के बारे में पता चलता है।

**जनपद -**

समकालीन साहित्य में हमें बहुत सी सूच्यपरिचित बस्तियाँ जैसे ग्राम, नगर, जनपद, महाजनपद इत्यादि का उल्लेख मिलता है। इनमें



जनपद तथा महाजनपद महत्वपूर्ण है। जनपद का शाब्दिक अर्थ है "जहाँ लोग पैर रखते हैं" वैदिक साहित्य में जनपद का अर्थ कुल के सदस्य के रूप में मिलता है। ऋग्वेदिक काल में तो जनपद के सदस्य मुख्यतः पशुपालक थे तथा थोड़ा बहुत कृषि कार्य भी करते थे। ये जन हमेशा ही घुमक्कड़ थे तथा चारागाहों की तलाश में घुमते थे परन्तु उत्तरवैदिक काल में जनपद के लोगों ने एक स्थान पर एक-एक कृषि कार्य शुरू कर दिया। इस तरह की कृषि बस्तियाँ जनपद कहलाई। प्रारम्भ में इनका नामकरण जना के नाम पर था जैसे कुल जनपद, पांचाल जनपद इत्यादि। परन्तु बाद में लोहे के प्रयोग, मध्य गंगा में धान की कृषि, जनसंख्या में वृद्धि इत्यादि के कारण जनपदों का आकार में बढ़ते चले गए। इसके साथ ही आपसी सघर्ष तथा दूसरे जनपदों को अपने जनपद में मिलाने में जनपदों का आकार ही बढ़ा बल्कि इसमें सामाजिक परिवर्तन भी हुए। अब जनपद में एक जन या वंश के लोग न हाकर विभिन्न जनपदों के लोग होने लगे। दूसरे कृषि उत्पाद के अतिरिक्त परस्पर युद्धों के दौरान लूटपाट से धन की प्राप्ति भी होने लगी। इस प्रारम्भिक काल के जनपदों में स्वेच्छा से राजा या मुखिया का भाग, भोग, बलि इत्यादि के अतिरिक्त जनपदों के दूसरे जनपदों को लाने का भी प्रारम्भ हो गया। इससे जनपदों में छोटी-छोटी जनजातियों का विलय हुआ जैसे पांचाल में अनेक छोटी-छोटी जनजातियाँ थीं। साथ ही इन जनपदों की आंतरिक सामाजिक, राजनैतिक संरचना में भी परिवर्तन हुए। आर्थिक क्षेत्र में अब पशु के साथ भूमि को भी सम्पत्ति के रूप में मान्यता मिली।

### नए समुदायों का उदय :-

इन मूलभूत परिवर्तनों के कारण तत्कालीन समाज में कई नई श्रेणियों एवं समुहों का उदय हुआ इनमें भूसम्पन्न पारिवारिक इकाइयों का मुखिया गृहपति था। कई गृहपति तो काफी समृद्ध हो गए थे जिनके पास अपार भूमि थी। भूमि इस काल में कुल की सम्पत्ति मानी जाती थी। प्रारम्भ में भूमि पर क्षत्रियों या शासक वर्ग तथा अन्य सामाजिक समुहों (जैसे ब्राह्मण) ने अपना कब्जा कर लिया। यद्यपि ये लोग उत्पादन कार्य में नहीं लगे थे इसलिए इन्हें उत्पादन का एक भाग प्राप्त होता था। इस प्रकार कर प्रणाली तथा संग्रहण कर सम्पत्ति बढ़ाने की प्रवृत्ति का उद्भव हुआ। इन समुहों से गृहपति का उदय हुआ जो अपनी भूमि पर शुद्रों, कर्मचारियों एवं वृद्धवन्दी दासों से कृषिकर्म करवाते थे। जिनके श्रम से अतिरिक्त खाद्य उत्पादन कर गृहपति बड़े व्यक्तिगत भूस्वामी बनने लगे।

### व्यापारी वर्ग :-

दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग इस काल में व्यापारी या श्रेष्ठिन (सेठ या सेठी) वर्ग का था। बौद्ध साहित्य में सेट्टी शब्द बहुत बार प्रयुक्त हुआ है। ये लोग व्यापार एवं विनियम लगे थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में सामान्यतः व्यापारिक वर्ग को वैश्य में रखा गया है परन्तु इस काल में व्यापारिक एवं आर्थिक गतिविधियों का एक अलग रूप बन चुका था। अपने व्यापार एवं श्रेणी के सदस्यों के लिए इन्होंने अपनी अलग-अलग श्रेणियों बना रखी थी तथा नियम बनाए हुए थे। जिनके नियमों को शासक वर्ग भी मान्यता देता था। ये स्वतन्त्र व्यापारी थे जो सामान्यतः शहरों में रहते थे। इस तरह इस काल में स्वतन्त्र व्यापार एवं कृषि के कारण निजी सम्पत्ति का अस्तित्व सामने आया।

### शासक एवं शासिक वर्ग :-

इस प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के कारण राजनैतिक परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। जनपदों के राजनैतिक स्वरूप में भी परिवर्तन हुए। पहले राजा शब्द एक कुल के मुखिया के लिए प्रयुक्त होता था अब वह एक विशेष स्थान पर राज्य करने वाला नियमित कर वसूलने वाला तथा अपनी स्वयं की सेना का मालिक था। इस सेना को वह कर से प्राप्त धन से वेतन देता था। कृषक से कर लिया जाता था। यही नहीं बल्कि कर वसूली के लिए नियुक्त कर्मचारियों का वर्णन भी इस काल में हमें मिलता है। कृषि उत्पादन से भाग वसूली के लिए भगदुध नाम से कर्मचारी होता था। एक अन्य अधिकारी राजगुहाहक था जो कृषि भूमि का सवक्षण करता था। जातकों में तो हमें राजा के गोदामों, वहाँ नियुक्त कर्मचारियों इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है।

इस काल में जनपद तथा महाजनपदों के नाम किसी कुल के नाम पर नहीं होते थे क्योंकि अब जनपदों का आपस में युद्ध के कारण एक बड़े जनपद या महाजनपद में अनेक जनपदों के विलय के कारण इस तरह के नाम तर्कसंगत नहीं थे। इस तरह काशी वंश में मगध, अवन्ती इत्यादि नाम किसी जनपद विशेष के कारण नहीं थे बल्कि क्षेत्रीय आधार पर थे। ये जनपद आपस में सघर्षरत थे तथा शत्रु पर आक्रमण कर लूटपाट करते थे तथा माल राजा के कोष में जाता था न कि उसका आपस में बंटवारा होता था। इसके अतिरिक्त कर वसूलने तथा एक सेना होने के कारण राजा का गौरव तथा शक्ति बढ़ने लगी। राजा किसानों एवं कर वसूलने वाले राजा उनकी सुरक्षा करता था। वह आन्तरिक एवं बाहरी दोनों तरह की हो सकती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे राजनैतिक साम्राज्य एक-एक इकाइयों बड़ी होती चली गई तथा महाजनपद बनीं। छठी शताब्दी ई०पू० तक पहुँचते-पहुँचते कई महाजनपद तो पूर्व काल के जनपदों को शक्ति से जीत कर मिलाने से बने।

### महाजनपद :-

छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक भारत में कोई भी सर्वभौम शक्ति नहीं थी अपितु पूरा भारत तथा विशेषकर उत्तर भारत में कापिलवास्तु में स्वतन्त्र शक्तियाँ राज्य कर रही थीं। इनमें चार तो बड़े शक्तिशाली महाजनपद थे जिनमें मगध, कोशल, वत्स तथा अजिमेर थे।

इसके अतिरिक्त बहुत से छोटे महाजनपद थे जिनमें काशी, कुरु, पांचाल, मिथिला, शूरसेन, अंग, कलिंग, अश्मक, गांधार, कम्बोज इत्यादि थे। पुराणा में हमें हैहेय तथा वितिहोत्र जनपद का भी वर्णन मिलता है परन्तु ये कहाँ स्थित थे इसकी जानकारी नहीं मिली है। प्राचीन भारतीय साहित्य में सोलह महाजनपदों का उल्लेख मिलता है इनमें बौद्ध ग्रन्थों में बार-बार इनका वर्णन मिलता है इसके अतिरिक्त जैन ग्रन्थ भी हमें इनके होने का प्रमाण देते हैं यद्यपि दोनों में दी गई सूची कुछ भिन्न है।

बौद्ध साक्ष्यों में हमें सोलह महाजनपदों (षोडस महाजनपद) का वर्णन मिलता है जो बुद्ध के काल में फल-फूल रहे थे। अंगुत्तरनिकाय (Anguttara Nikaya), जो कि सुत्तपिटक (Sutta Pitaka) का एक भाग है, में निम्नलिखित महाजनपदों का वर्णन है।

(1) अंग (2) मगध (3) काशी (4) कौशल (5) वृज्जि या वज्जि (6) मल्ल (7) चेदी या चेती (8) वत्स (वंश) (9) कुरु (10) पञ्चाल (11) मत्स्य (मच्छ) (12) शूरसेन (13) अश्वक (अश्मक या अस्सक) (14) अवन्ति (15) गांधार (16) काम्बोज महावस्तु में भी सोलह जनपदों की सूची है लेकिन इनमें गांधार तथा कम्बोज के नाम के स्थान पर सिन्धी तथा मध्य भारत का नाम जोड़ा गया है।

जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र या व्याख्या प्रज्ञापति में भी सोलह महाजनपदों का वर्णन है परन्तु इसमें कुछ भिन्न नाम दिए गए हैं:- (1) भंग (2) वंग (3) मगह (4) मलय (5) मालव (6) अच्छ (7) वच्छ (8) कोच्छ (9) पढ़ (10) लाढ (या राढ) (11) बज्जि, वज्जि (12) मोली (13) काशी (14) कोशल (15) अवाह तथा (16) सम्भुत्तर (Sambhuttara)

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हमें महाजनपदों का वर्णन है जैसे महागोविन्द सुत्तांत (Mahagovinda Suttanta) में राजा रेणु के साम्राज्य को सात अलग-अलग राज्यों बांटा गया है तथा उनकी राजधानियों के नाम भी दिए हुए हैं, ये हैं

1. कलिंग राजधानी दन्तपुर
2. अस्सक राजधानी पोतन या पोटन
3. अवन्ति राजधानी महिष्मति (महिस्सति)
4. सोवीर राजधानी रोरुक
5. विदेह राजधानी मिथिला
6. अंग राजधानी चम्पा
7. काशी राजधानी वाराणसी

यद्यपि पौराणिक तथा बौद्ध साक्ष्यों में काफी समानता है तथापि इनमें भेद भी है जिसका कारण है कि यह सूचियाँ अलग-अलग समय में बनाई गई थीं। इसके अतिरिक्त बहुत से गणतन्त्रात्मक राज्य भी इस काल में थे परन्तु पुराणों में इनका वर्णन नहीं है। बौद्ध साक्ष्यों से हमें इनका अच्छा वृत्तान्त मिलता है, ये निम्नलिखित हैं :-

1. कपिलवस्तु के साकिय या शाक्य
2. वैशाली के लिच्छवी
3. मिथिला के विदेह
4. पावा तथा कुशीनारा के मल्ल
5. रामगाम के कोलिय
6. अल्लकप्प के बुलि
7. केशपुत्त के कालाम
8. पिप्फलीवन के मोरिय
9. सुंसमार पर्वत क्षेत्र के भग्ग

बौद्ध साहित्य के इन गणराज्यों का प्रमाण हमें पाणिनी के व्याकरण से भी मिलता है जहां इन्हें संघ या गण का नाम दिया गया है। इनमें क्षुद्रक, मालव, अम्बस्थ, हास्तिनायन, प्रकण्व, माद्र, आप्रीत, वसाति, भग्ग, शिबी, आशवायन तथा आशवाकायन इत्यादि हैं। इनमें से कुछ तो सिकन्दर के आक्रमण के समय भी थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसा से छठी शताब्दी पूर्व न केवल राजतन्त्र (महाजनपद) विद्यमान थे साथ ही गणराज्य भी विद्यमान थे।

(1) अंग :-

अंग महाजनपद का, जैन ग्रन्थ प्रज्ञापना वंग के साथ आर्य लोगो की प्रथम श्रेणी में रखते हैं। महाभारत के विवरण के आधार पर अंग का भागलपुर तथा मुर्घेर जिले इसका क्षेत्र था। यह मगध के पूर्व में चम्पा नदी के बीच का क्षेत्र था जिसकी उत्तरी सीमा गंगा थी। इसकी राजधानी चम्पा उस काल के बड़े नगरों में से एक थी जो कि उस समय का व्यापारिक केंद्र थी तथा दिघ निकाय

के अनुसार यह उस समय के 6 व्यापारिक एवं वाणिज्यिक केन्द्रों में से एक थी। यहां के व्यापारी दूर-दराज स्वर्णभूमि तक समुन्द्री मार्ग से व्यापार करते थे। इसके अतिरिक्त दो अन्य महत्वपूर्ण नगर, भदिय (Bhaddiya) तथा अरसपुरा भी इस महाजनपद का अंग की मगध में भी राजनैतिक संघर्ष था तथा अंत में यह मगध साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। भागलपुर में वम्प नामक स्थल पर करवाई गई उत्खनन से भी इसके छठी शताब्दी ई०पूर्व में होने के प्रमाण मिलते हैं। यहां करवाए गए उत्खनन में उत्तरी कृष्ण पालिश वाले मृदभांड (Northern Black Polished Ware) संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

### (2) काशी :-

इस काल में काशी एक बहुत समृद्ध महाजनपद था। जातकों (Jatakas) में इसका क्षेत्रफल 300 लीग (Leagues) था। काशी का राजधानी के एक तरफ वरुणा तथा दूसरी तरफ असी नदी बहती थी। इसी कारण इसका नाम वाराणसी पत्र था। जातकों में काशी और कोशल में संघर्ष का वर्चस्व के लिए था। इसके अतिरिक्त काशी और अंग तथा काशी और मगध में भी खींचातानी रही है, जैसे महात्मा बुद्ध के काल में कोशल ने अपने राज्य में मिला लिया था।

वाराणसी जो काशी की राजधानी था सूती कपड़े तथा घोड़ों की मण्डी के रूप में विख्यात था। बुद्ध के समय इस शहर का अस्तित्व होने के प्रमाण हैं परन्तु राजघाट नामक स्थल से उत्खनन में तो इसके इतने बड़े व्यापारिक केन्द्र होने के प्रमाण नहीं मिले। परन्तु साहित्य में प्रमाण इसके विपरीत मिलते हैं। दशरथ जातक में दशरथ तथा राम के वंश को काशी का राजा बताया गया है। साधर ही जैन साक्ष्य श्री पार्श्वनाथ के पिता को बनारस का राजा बताते हैं। महात्मा बुद्ध ने भी अपना पहला उपदेश बनारस के पास सारनाथ में दिया था।

### (3) कोसल :-

कोसल महाजनपद आज के अवध क्षेत्र को ही माना जा सकता है जिसके पश्चिम में गोमती, पूर्व में सदानीरा, दक्षिण में स्यान्दका (साई) नदी थी जबकि उत्तर में नेपाल की पहाड़ियां थी। साहित्य में हमें प्रमाण मिलते हैं कि कोसल दो भागों में विभाजित था उत्तरी तथा दक्षिणी जिनके मध्य सरयु नदी बहती थी। दक्षिणी कोसल की राजधानी कुशवती तथा उत्तरी कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी। इसके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण नगर साकेत तथा आयोध्या थे। कुछ छोटे नगर सेतव्या, उक्कटटा तथा कीटागिरी थे।

काशी की विजय के पश्चात् कोसल एक शक्तिशाली राज्य बन गया था तथा इनका प्रभुत्व कपिलवस्तु के शाक्यों पर भी हुआ तथा साथ के क्षेत्र कसपुत (Kasaputta) के कालमों (Kalamas) इत्यादि पर भी हुआ। कोसल का राजा प्रसेनजित महात्मा बुद्ध के समकालीन था तथा अपने समय के चार प्रमुख राजाओं में से एक था। मगध के राजा अजातशत्रु के साथ इसका संघर्ष चलता रहा। कोसल के राजा ने ब्राह्मणवाद तथा बौद्ध दोनों को प्रोत्साहन दिया। यह तो स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि प्रसेनजित बौद्ध मतवाला मन्त्री हो गया था परन्तु वह महात्मा बुद्ध का प्रशंसक तथा मित्र था। बौद्ध साहित्य में दोनों के परस्पर वार्तालाप का वर्णन है। प्रसेनजित का शाक्यों से भी स्नेह था, जिस कुल में महात्मा बुद्ध पैदा हुए। एक बार उसने शाक्य राजकुमारी से विवाह करने की इच्छा की। शाक्य इतने शक्तिशाली राजा को न तो नाराज कर सकते थे और न ही अपने अपने स्वाभिमान से सन्भार कर सकते थे। उन्होंने चालाकी से एक दास लड़की को शाक्य प्रमुख की बेटी बताकर उसकी शादी प्रसेनजित से कर दी। इस विवाह से एक पुत्र का जन्म हुआ। विदुढाव जब अपने नाना के यहां गया तब उसे अपनी माता के बारे में सच्चाई का ज्ञान हुआ। प्रसेनजित ने अपनी रानी तथा पुत्र दोनों को घर से निकाल दिया परन्तु महात्मा बुद्ध के समझाने पर उसने उन दोनों को पुनः स्वीकार कर लिया। इस कहानी में कितनी सच्चाई है यह तो कहा नहीं जा सकता परन्तु इतना जरूर है कि उसके काल के अंत में उस आन्तरिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। एक बार जब वह महात्मा बुद्ध से इस बारे में बातचीत कर रहा था तो इसका मन्त्री ने विदुढाव को राजा घोषित कर दिया। उसकी खुद प्रजा ने उसका साथ नहीं दिया तो वह सहायता के लिए मगध के राजा अजातशत्रु से सहायता मांगने गया परन्तु शहर के द्वार पर ही उसकी मृत्यु हो गई।

महिम्न निकाय में यह वर्णन है कि विदुढाव ने शाक्यों को नष्ट कर दिया। इसके बाद कोसल का नियन्त्रण कई छोट-छोट राजाओं के हाथ में आया जिसके बाद मगध ने इस को अपने क्षेत्र में मिला लिया।

### (4) वज्जि :-

वज्जि या वज्जि आज के वैशाली क्षेत्र का एक महाजनपद था जिसमें आज के बसाढ़ तथा उत्तरी बिहार का क्षेत्र था। वज्जि शब्द का अर्थ है पशुपालक समुदाय। इसके संघ में आठ या नौ कुलों का समुह था जिनमें विदेह, लिच्छवी, ज्ञात्रिक तथा वज्जि प्रमुख थे। लिच्छवियों की राजधानी वैशाली इस संघ का प्रमुख केन्द्र थी। रामायण में इसे एक बहुत ही समृद्ध शहर बताया गया है। विदेह प्रारम्भ में राजतन्त्र था जिसकी राजधानी मिथिला थी, जिसके पूर्व में कौशिकी, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में सदानीरा तथा उत्तर में हिमाचल पर्वत थे। कर्निकम ने आज के जनकपुर (नेपाल स्थित) पुर का समीकरण मिथिला से किया है। जैन साहित्यों के अनुसार भगवान महावीर ज्ञात्रिक संघ से थे जिनकी राजधानी कण्डपुरा या कण्डग्राम थी जो वैशाली के समीप ही है। इसके अतिरिक्त जैन

अन्य गणराज्य इस संघ में सम्मिलित थे उनके बारे में हमें अधिक ज्ञान नहीं है। इन सभी गणराज्यों का संचालन लोगों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा होता था। ये लोग अपने मामले आपसी सभाओं में तय करते थे। एक जातक कथा के अनुसार वज्जियों पर अनेक वंशों के सरदार शासन करते थे। छठी शताब्दी में यह एक प्रमुख महाजनपद था परन्तु न तो इसके पास सेना थी तथा न ही कृषि राजस्व प्राप्त करने की कोई व्यवस्था थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि लिच्छवी विदेशी उत्पत्ति के थे परन्तु साक्ष्य इसके विपरीत हैं। भारतीय साहित्य में इन्हें क्षत्रिय माना गया है। छठी शताब्दी में इनके संघ को उनकी एकता, शक्ति तथा गणतन्त्रत्मक (Republican) ढांचे के कारण जाना जाता था। कोसल के राजा प्रसेनजित से इनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे तथा अपने पड़ोसी मल्लों के साथ भी अच्छे सम्बन्ध थे। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने बिम्बिसार (Bimbisara) के काल में अपनी सेना मगध पर आक्रमण करने को भेजी। निरयावली सूत्र (Nirayavali Sutra) के कथनानुसार बिम्बिसार ने लिच्छवी राजकुमारी चेल्लना से शादी की थी जो वैशाली के राजा चेटक (Chetaka) की पुत्री थी। डा० भण्डारकर के अनुसार यह वैवाहिक सम्बन्ध दोनों शक्तियों के बीच शान्ति समझौते के स्वरूप सम्पन्न हुआ परन्तु यही इस संघ के अन्त का कारण बना। बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने इस वज्जि संगठन को नष्ट कर दिया परन्तु इसमें उसे बहुत कठिनाई हुई क्योंकि इस संघ की आपसी एकता ही इसकी बड़ी शक्ति थी। इसलिए अजातशत्रु ने अपने मंत्री वस्सकार को इनमें बैर के बीज बो एकता खत्म करने का जुम्मा सौंपा। कई वर्षों की मेहनत के बाद ही यह कार्य संभव हुआ तब अजातशत्रु ने लिच्छवियों पर आक्रमण कर हराया।

#### (5) मल्ल :-

बौद्ध तथा जैन साहित्य में मल्ल का वर्णन पूर्वी भारत के एक शक्तिशाली संघ के रूप में दिया गया है। भीमसेन को मल्ल के प्रमुख पर विजय करने वाला बताया गया है। महाभारत की भीष्म पर्व में भी इसके पूर्वी भारत के अंग, वंग तथा कलिंग के साथ वर्णन किया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में मल्ल एक क्षत्रिय राजवंश के रूप में दर्शाया गया है। ऐसा कहा गया है कि मल्लों की नौ क्षेत्र तथा प्रत्येक का एक अलग क्षेत्र था। बुद्ध के काल में इनके दो प्रमुख केन्द्र थे। एक का प्रमुख केन्द्र कुशीनारा में तथा दूसरे का पावा में था। कुशीनगर उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले में कसिया क्षेत्र माना जाता है जबकि पावा के बारे में विद्वानों के मतभेद हैं। इन दो के अतिरिक्त कई अन्य शहर भी थे जैसे भोगनगर, जो जम्बुग्राम तथा पावा के बीच था, अनुपिया जो अरोमा नदी तथा उरुवेलकप्प के मध्य स्थित था।

लिच्छवियों की तरह ही मल्लों को भी मनु व्रात्य क्षत्रिय मानते हैं। महापरिनीबान सुत्तान्त (Mahaparinibbana Suttanta) में इन्हें वशिष्ठ या वासेट्ट कहा गया है। विदेहों के समान ये भी प्रारम्भ में एक राजतन्त्रात्मक प्रणाली वाले थे। कुस जातक में इक्ष्वाकु को मल्ल का राजा बताया गया है परन्तु बाद में मल्लों ने गणतन्त्रात्मक प्रणाली अपना ली जिसके प्रत्येक सदस्य को राजा कहा गया है। मल्ल तथा लिच्छवियों ने अपना एक संघ बना रखा था जबकि भद्रसाल जातक इनके मध्य लड़ाइयों के भी संदर्भ देता था। महात्मा बुद्ध के काल तक मल्ल एक स्वतन्त्र ईकाइ थे जिन्होंने महात्मा बुद्ध के अवशेषों में अपना अधिकार जताया था परन्तु बुद्ध की मृत्यु के कुछ समय बाद ही इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता खो दी तथा मगध ने इन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया।

#### (6) चेदी या चेती :-

इनकी दो अलग-अलग बस्तियां थी इनमें एक तो नेपाल की पहाड़ियों में तथा दूसरी आज के बुन्देलखण्ड में साक्ष्यों के अनुसार इनका क्षेत्र यमुना के समीप कुरु तथा वत्स महाजनपद के बीच स्थित था। इनकी राजधानी सोत्थिवतीनगर थी जिसको महाभारत की शुक्ती या शुक्तिमती से जोड़ा जा सकता है जो उत्तरप्रदेश के बान्दा जिले स्थित है। इनके अन्य प्रमुख नगर सहजाति तथा त्रिपुरी थे। चेदी एक बहुत ही प्राचीन गण था। इनकी एक शाखा ने कलिंग में साम्राज्य बनाया था जिनका बाद में हाथीगुम्फा अभिलेख में भी वर्णन है।

#### (7) वत्स :-

वत्स का क्षेत्र बहुत ही समृद्ध क्षेत्र था तथा उच्चकोटि के सूती कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी कोशाम्बी थी जो आज के इलाहाबाद जिले का गाँव कोसल है। महात्मा बुद्ध के समय में यहां का राजा उद्यन (Udayana) था जो कि एक शक्तिशाली राजा था। अवन्ति के राजा प्रद्योत (Pradyota) से इसका संघर्ष था। नाटककार भास ने अपने नाटकों के द्वारा वत्स के राजा उद्यन तथा अवन्ति की राजकुमारी वासवदत्ता के बीच प्रेम सम्बन्धों का वर्णन किया है। इनमें मगध, वत्स, अवन्ति जैसे शक्तिशाली तहाजनपदों के बीच संघर्ष का उल्लेख है। उद्यन की बहुत सी रानियां थी उनमें एक थी मगध के राजा दर्शक की बहन। कथासरितसागर में इसकी दिग्विजय का वर्णन है। प्रियदर्शिका (हर्ष द्वारा रचित) इसने कलिंग को जीता। अपने श्वसुर दधिवाहन को अंग जीतकर भेंट कर दिया।

बौद्ध साक्ष्यों के अनुसार प्रारम्भ में तो उद्यन बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं था। उसने बौद्ध संघ के एक सदस्य पिन्डोला को यातनाएं भी दी परन्तु बाद में इसी ने उसे बुद्ध का अनुयायी बनाया। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् भी उद्यन राज्य करता रहा। उसके पश्चात् उसका



पुत्र बोधीस्या राज्य करता रहा। इसके बारे में बौद्ध साहित्य में अधिक वर्णन नहीं है। एक जातक क अनुसार कीर्ति सम्भव-पर्वत पर विचरण करता बताया गया है जिससे पता चलता है कि उसके काल में भग्ग (या भर्ग) वत्स की आधीन क्षेत्र में मगध के साथ संघर्ष ने अन्त में वत्स की पराजय हुई क्योंकि बाद में वत्स मगध का अंग बन गया।

#### (8) कुरु :-

जातकों के अनुसार कुरु महाजनपद की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली के समीप) थी। युधिष्ठिर इसी परिवार से सम्बन्धित थे। अर्थशास्त्र तथा अन्य ग्रन्थों में इन्हे राजशब्दोंपजिविनह अर्थात् राजा की पदवी रखने वालों की संज्ञा दी गई है। लेकिन महायुद्ध बुद्ध के काल में कुरु जनपद कोई महत्वपूर्ण महाजनपद नहीं था और इस क्षेत्र में एक कम महत्व का नाममात्र का राजा था जिसका नाम कोरव्य था। जैन उत्तराध्ययन सूत्र में राजा इसुकार का संदर्भ है जो कि प्राचीन वैभवशाली सुन्दर शहर इसुकार(तीस बनाने वाले) का राजा था। कुरु राजवंश के यादवों से वैवाहिक सम्बन्ध थे तथा भोज एवं पांचालों से भी निकट सम्बन्ध थे। काफी स्थानों पर तो कुरु और पांचाल को इक्कठा भी सम्बोधन किया है जो इनकी घनिष्ठ निकटता या संघ का द्योतक है। जातकों में युधिष्ठिर के राजवंश के एक राजा का वर्णन है।

#### (9) पांचाल :-

प्रारम्भिक काल में पांचाल का क्षेत्र दिल्ली के उत्तर तथा पूर्व में था। जिसका विस्तार हिमालय की तलहटी से चम्बल नदी तक। गंगा नदी इसे उत्तर तथा दक्षिण पांचाल दो भागों में बांटती थी। इसका क्षेत्र आज के उत्तरप्रदेश के फरखाबाद तथा आस-पास के क्षेत्र में था। महाभारत, जातकों एवं दिव्यावदान में भी उत्तर तथा दक्षिण पांचाल का वर्णन है। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्रा थी तथा दक्षिण पांचाल की राजधानी काम्पिलय थी। पांचाल के राजा चूलनी ब्रह्मदत्त (Chulani Brahmadatta) का वर्णन रामायण एवं तहाउभग जातक, उत्तराध्ययन सूत्र एवं स्वप्नवासवदत्त में मिलता है। कान्यकुब्ज (कन्नौज) इसी पांचाल के राज्य में स्थित था। पहले यहां राजतन्त्रात्मिक शासन था परन्तु ईसा से छठी शताब्दी पूर्व यहां गणराज्य की स्थापना हो गई थी।

#### (10) मत्स्य :-

मत्स्य या मच्छ का क्षेत्र जयपुर, भरतपुर तथा अलवर क्षेत्र में था। इसकी राजधानी विराट नगर (आज का वेराट) थी जो इसका संस्थापक विराह के नाम पर रखा गया था। पाली साहित्य में मत्स्य का वर्णन शुरसेन के साथ किया गया है। अपर मत्स्य या पश्चिमी मत्स्य शायद चम्बल के आसपास का क्षेत्र था। इसी तरह रामायण में इस तरह के वीर मत्स्य का संदर्भ है। ऐसा माना जाता है कि इनकी एक शाखा बाद के दिनों में विशाखापट्टनम में बस गई। महात्मा बुद्ध के काल में इनका कोई राजनैतिक महत्व नहीं था। इस समय यह चेदी महाजनपद का अंग बन गया था क्योंकि राजा सहज को मत्स्य तथा चेदी दोनों पर राज करता बताया गया है।

#### (11) सूरसेन :-

सूरसेन जनपद की राजधानी यमुना पर स्थित मथुरा थी जिन्हें युनानी लेखक सौरसेनोइ (Sourasenoi) नाम से जाना है। कृष्ण प्रारम्भिक शिष्यों में यहां का राजा अवन्ति पुत्र था जिसने मथुरा क्षेत्र में बौद्ध धर्म को फैलाया। पाणिनी की अष्टाध्यायी में मगध तथा वृष्णि संघ को मथुरा में राज्य करते बताया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इन्हे संघ ही कहा गया है। इनका मुख्या वासुदेव कृष्ण था। मैगस्थनीज (Megasthenese) के समय में भी सूरसेन की राजधानी मथुरा कृष्ण की पूजा का केन्द्र था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व सूरसेन का राज्य मगध साम्राज्य में मिला लिया गया।

#### (12) अश्वक :-

अश्वक, अस्सक या अश्मक प्रारम्भ में सिन्धु नदी पर स्थित एक राज्य था। बौद्ध साहित्य में अस्सक को एक महाजनपद कहा गया है जिसकी राजधानी पोतन या पोताली (महाभारत का पौण्ड्य) था। बौद्ध साहित्य में इसे दक्षिण भारत का एक राज्य बताया गया है। गोदावरी नदी अस्सक तथा मूलक महाजनपदों को अलग करती थी। मूलकों की राजधानी प्रतिस्थान (आज का पठन) अस्सक के दक्षिण में थी। सुत्तनिपात के टीका के अनुसार अस्सक तथा मूलक दो आन्ध्र राज्य थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस महा राष्ट्र से समीकृत किया गया है। बौद्ध साक्ष्यों के अनुसार भी यह गोदावरी के आसपास स्थित था। अश्मक एवं मूलक इक्ष्वाकु वंश से सम्बन्धित थे। अस्सक राजा ब्रह्मदत्त, अंग तथा काशी के राजा धृतराष्ट्र (धृतरथ) का समकालीन था। अस्सक का एक अन्य राज अरून ने कलिग के राजा को हराया था। बुद्ध के काल में यहां पर जो राजा राज्य कर रहा था उसके का नाम सुजात था।

#### (13) अवन्ति :-

अवन्ति पश्चिमी भारत का एक महत्वपूर्ण महाजनपद था तथा ईसा से छठी शताब्दी पूर्व की चार महान शक्तियों में से एक था। वेतरावती नदी इसे उत्तर तथा दक्षिण दो भागों में बांटती थी। महिष्मति नामक नगर अवन्ति की राजधानी थी परन्तु माली साहेत्य

में यहां की राजधानी उज्जैनी (आज का उज्जैन) थी तथा महात्मा बुद्ध के काल में यहां का राजा चण्ड प्रद्योत था। डा० डी० आर० भंडारकर का कहना है कि ऊपरलिखित विवरण में इस कारण से दोष है कि अवन्ति दो भागों में बंटा था। एक दक्षिणापथ में जिसकी राजधानी महिष्मति थी तथा दूसरा उत्तरी साम्राज्य जिसकी राजधानी उज्जैनी थी। बौद्ध तथा जैन साक्ष्य ईसा से छठी शताब्दी में अवन्ति के दो अन्य नगरों का वर्णन करते हैं एक कुररघर तथा दूसरा सुदर्शनपुर।

पुराणों के अनुसार पुलिक (या पुणिक) ने अपने राजा की हत्या कर उसके स्थान पर अपने पुत्र प्रद्योत (Pradyota) को राजा बना दिया जो बुद्ध के समकालीन था। इस काल में वत्स मगध तथा कोशल से अवन्ति का संघर्ष चल रहा था। प्रद्योत (प्रद्योत) के कौशाम्बी के राजा उदयन से सम्बन्ध थे। बौद्ध साक्ष्य के अनुसार मगध नरेश अजातशत्रु को प्रद्योत के भय के कारण अपनी राजधानी राजगृह की किलाबन्दी करनी पड़ी थी। पुराणों के अनुसार प्रद्योत ने अपने आसपास के क्षेत्रों को विजित कर लिया तथा 23 वर्ष तक राज्य किया। बौद्ध साक्ष्य महावग्ग में प्रद्योत को बहुत निर्दयी राजा कह इसे चण्ड तथा महासेन की संज्ञा दी। पुराणों में भी इसे चण्ड प्रद्योत महासेन नाम दिया गया था। इसके बाद चार अन्य राजाओं पालक, विशाखयुज, अजक तथा नन्दिवर्धन ने क्रमशः 24,50,21 तथा 20 वर्ष तक राज्य किया। अन्तिम राजा को शिशुनाग ने पराजित कर राज्य को मगध साम्राज्य में मिला लिया।

#### (14) गांधार :-

गांधार (या गान्धर्व विषय) उत्तर पश्चिमी भारत में आज के पेशावर, रावलपिण्डी तथा काबुल के मध्य का क्षेत्र था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी जो कि व्यापार एवं शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। छठी शताब्दी ई०पूर्व यहां के राजा पुक्कुसाती (Pukkusati) या पुष्करसारिन ने मगध के राजा बिम्बिसार के पास एक दूत के हाथ पत्र भेज मित्रता का संदेश भेजा। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्ध में गांधार पर फारस ने विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

#### (15) कम्बोज :-

प्राचीन साहित्य में कम्बोज को गांधार के साथ वर्णित किया गया है। अशोक के अभिलेखों में भी ऐसा ही वर्णन है। इनका क्षेत्र पाकिस्तान के हजारा तथा उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में काफिरिस्तान तक था। इनकी राजधानी दवारिका थी। जिसके सही स्थान का पता नहीं चल सका है। सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में कम्बोजों को ब्राह्मण ग्रन्थों में असभ्य लोगों की संज्ञा दी गई है। अर्थशास्त्र में भी इन्हे वर्त्सशास्त्रपजीविन संघ अर्थात् कृषकों, घरवाहों, यौद्धाओं इत्यादि का संघ कहा गया है।

#### स्वशासी अथवा गणतन्त्रात्मक संघ (Autonomous Clays)

ईसा से छठी शताब्दी पूर्व में राजतन्त्रों के अतिरिक्त बहुत सी छोटी गैर राजतान्त्रिक, स्वशासी एवं अर्द्ध स्वतन्त्र राज्य भी थे। इनमें से बहुत से गणराज्य भी थे जिनका वर्णन हमें बौद्ध साक्ष्यों से प्राप्त होता है। महात्मा बुद्ध ने तो अपने संघ का संविधान भी इन्हीं गणतन्त्र संघों के संविधान पर ही आधारित बनाया था। इन राज्यों में से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :-

1. वलिकवन्त के गणराज्य
2. वशाली के लिच्छवी
3. पावा तथा कुशीनारा के मल्ल
4. रामग्राम के कोलीप
5. मिथिला के विदेह
6. पिप्प्लिवन के मोरिय
7. संसुमार पर्वत क्षेत्र के भग्ग
8. कोसपुत्त के कालाम
9. अलक्रप्प के बुलि

#### शाक्य :-

इनमें शाक्य सबसे महत्वपूर्ण थे। महात्मा बुद्ध का जन्म भी इसी कुल में हुआ था। राजनैतिक तौर पर उनका इस काल में इतना महत्व नहीं था। अन्त में विदुढाव ने इन्हे हरा कर इनका राजनैतिक वजूद समाप्त कर दिया। शाक्य अपने आप को सूर्य वंशी मानते थे तथा कोसल के निवासी मानते थे। इसी कारण से राजा प्रसेनजित भी अपने आप को गौतम बुद्ध की तरह ही शाक्य का नागरिक मानते थे। शाक्यों का राज्य उत्तर में हिमालय, पूर्व में रोहिणी नदी, पश्चिमी तथा दक्षिण में राप्ती नदी के बीच का क्षेत्र था। इनकी राजधानी कपिलवस्तु थी जिसे कुछ विद्यमान नेपाल तराई का आज का तिलौराकोट मानते हैं परन्तु आज कल इसे बिहार में स्थित माना जाता है। बौद्ध साहित्य में इनके कई नगरों का भी वर्णन है। ऐसा बताया गया है कि इनके 80,000 परिवार थे।

### शासन. व्यवस्था :-

शाक्य गण का संविधान गणतन्त्रात्मक या अगणतन्त्रात्मक था। इसमें सत्ता 80000 कुलीन परिवारों के प्रमुखों के हाथ में थी। इनमें से एक को अपना मुखिया चुना जाता था। महात्मा बुद्ध के पिता इसी तरह निर्वाचित एक मुखिया या राजा थे। इन्होंने अपने राज्य के संचालन के लिए एक परिषद का चुनाव किया हुआ था जो राजा या प्रमुख को महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श देती थी। यहां तक कि कोई भी कार्य इस परिषद की सहमति के बिना नहीं होता था। बौद्ध साक्ष्यों में वर्णित कपिलवस्तु की संथागार यही परिषद की ललितविस्तार में इसके सदस्यों की संख्या 500 दी गई है। राज्य के प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र सेवक माना जाता था तथा इसकी रक्षा के लिए वे हमेशा तत्पर रहते थे। इसी कारण महात्मा बुद्ध के काल में शाक्य गण एक मजबूत एवं स्वतन्त्र संघ था परन्तु प्रसेनजित के पुत्र विदुद्धक (विरुद्धक) ने इस पर आक्रमण कर इसे अपने राज्य में मिला लिया। इस आक्रमण के समय में भी इनकी संथागार में यह वाद-विवाद चलता रहा कि क्या आक्रमण के लिए नगर के द्वार खोले जाए या नहीं।

### लिच्छवी :-

इस संघ का क्षेत्र आज के उत्तरी बिहार में था तथा इनकी राजधानी वैशाली (बसाढ) थी। ललित विस्तार में इस नगर का एक वैभवशाली एवं समृद्ध नगर बताया गया है जो कि वज्जि संघ की भी राजधानी था। लिच्छवी संघ के शासक अपने आप को क्षत्रिय बताते हैं। महावीर के पिता सिद्धार्थ ने लिच्छवी कन्या से विवाह किया था। अपने क्षत्रिय होने के कारण ही इन्होंने महात्मा बुद्ध के अवशेषों में अपना हिस्सा मांगा था।

### शासन पद्धति :-

लिच्छवी संघ की राजनैतिक व्यवस्था भी शाक्यों की तरह गणतन्त्र थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस को राजशब्दोपजीवी संघ का नाम दिया गया है जिसका अर्थ ललित विस्तार में वर्णित है कि इस संघ के हर सदस्य को राजा कहा जाता था। यहां न कोई बड़ा था न छोटा तथा सब बराबर थे। इन्हीं में से योग्य व्यक्तियों का चुनाव इस संघ की सभा के लिए किया जाता था। इसी प्रतिनिधि सभा के प्रत्येक सदस्य को राजा की उपाधि दी गई थी। इनकी बैठक संथागार में होती थी ऐसा कहा जाता है कि यहां 7707 राजा थे। इसके अतिरिक्त उपराजाओं एवं सेनापतियों की संख्या भी इतनी ही थी। चुल्लकलिंग जातक तथा अट्ठकथा में ऐसा वर्णन है राज्य में इनका एक प्रमुख होता था जिसका चुनाव किया जाता था। राज्य में अपराधों के मुकद्दमों के लिए 8 न्यायालय थे तथा अपराधों के लिए सजा तथा नियम कठोर थे। राज्य में एक विनिश्चय महापात्र हुआ करता था जो अपराध की जांच करता था। इसके अतिरिक्त व्यवहारीक नामक अधिकारी था, जिसे हम आजकल के मैजिस्ट्रेट के समान मान सकते हैं, जिसके सामने अपराधी का प्रस्तुत किया जाता था। इसके बाद उसे सूत्रधार नामक कर्मचारी अभियुक्त को प्रस्तुत किया जाता था। यदि अपराध सिद्ध हो जाता था तो उसे अट्ठकुलक के सामने लाया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारियों, भाण्डागारीक, सेनापति, उपराजा तथा राजा के सामने प्रस्तुत होना पड़ता था। दण्ड केवल अपराध सिद्ध होने पर ही दिया जाता था जिसका आधार पवेणियोत्थक नामक एक पूर्व-दृष्टांत संहिता था।

गणराज्य के प्रशासन में राजसत्ता समस्त परिवारों के हाथों में थी जो कि यहां के मूल कुलीन परिवार थे। इनकी एक प्रतिनिधि सभा चुनी जाती थी जिसे संथागार कहा जाता था जो राज्य की व्यवस्थापिक सभा थी। इसकी मीटिंग के लिए एक निश्चित संख्या के सदस्यों का होना (Quorum) आवश्यक था। जो भी मामला सभा में लाया जाता था उस पर प्रत्येक सदस्य अपना मत व्यक्त करता था। जो सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में होते थे वे मौन रहते थे तथा जो विरोध करते थे वे बोलते थे। विवादाग्रस्त प्रश्न पर मत (छन्द) विभाजन होता था। एक अन्य समिति उव्वाहिक भी थी जो कभी-कभी विवादाग्रस्त प्रश्न पर निर्णय ले सकती थी। अधिवेशन की पूरी कार्यवाही को लिख लिया जाता था जो काम लिपिक किया करते थे। संथागार ही राजा, उपराजा, सेनापति एवं अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति करती थी। राजा की सहायता के लिए एक परिषद या मंत्रिमंडल होता था जिसकी संख्या नौ होती थी। इस तरह की शासन पद्धति अन्य गणराज्यों में भी थी।

### रामग्राम के कोलिय :-

ये शाक्यों के पूर्वी पड़ोसी थे जो रोहिणी नदी के दूसरी ओर रहते थे। बौद्ध साक्ष्यों के अनुसार इनका शाक्यों से निकट संबंध था। यद्यपि कभी-कभी आपस में इनके झगड़े भी हुआ करते थे। कोलियों की राजधानी तथा व्यग्रपज्ज (Vaggapajja) तथा कई नगर थे। इनका एक उपनाम था जैसे शाक्यों का गौतम था। कोलियों का पुलिस बल का हमें विशेष वर्णन मिलता है। अपनी एक गर्दी थी। आज की पुलिस के समान ये भी हिंसा पर उतर आते थे तथा लोगों से जबरन वसूली कर लेते थे। इनकी भी गणतन्त्रात्मक प्रणाली पर आधारित था।

**भग्ग :-**

इस काल की यह गौण शक्ति थी जो शायद एतरेय ब्राह्मण में वर्णित भार्गायण ही होगी। पाणिनी की अष्टाध्यायी (Astadhyayi) में भी इसका वर्णन है। महाभारत तथा हरिवंश के अनुसार इसका तथा वत्स का निकट का सम्बन्ध था।

**मोरिय :-**

इस काल के इस गणराज्य का क्षेत्र आज के कुशीपुत्र के आसपास था तथा इनकी राजधानी पिप्पलीवन थी।

इन छोटे-छोटे गणराज्यों का गणतन्त्रात्मक संविधान था तथा अपनी एक केन्द्रीय सभा हुआ करती थी जिसमें प्रत्येक सदस्य राज्य के कामों में भाग लेता था। शाक्य तथा लिच्छवी संविधान की तरह इनका संचालन होता था तथा केन्द्रीय सभागार के अतिरिक्त एक मंत्रिमंडल भी हुआ करता था जिसमें सदस्यों की संख्या गणराज्य के विस्तार पर हुआ करती थी जैसे लिच्छवियों के यहां यह संख्या नौ थी जबकि मल्लों के यहां यह संख्या केवल चार थी।

परन्तु ये गणराज्य अधिक देर तक राजतन्त्रात्मक शक्तियों के सामने टिक नहीं सके जिनमें एक कारण इनकी आन्तरिक कलह भी था क्योंकि निरन्तर वादविवाद से फूट पड़ना स्वाभाविक था। इसी कारण अजातशत्रु के मंत्री वस्सकार को सफलता प्राप्त हुई।

**(a) माघ साम्राज्य का उत्कर्ष (Rise of Magadha Imperialism)**

बिहार के दक्षिण भाग में पटना तथा गया के आसपास का क्षेत्र प्रारम्भिक मगध महाजनपद का क्षेत्र था। पूर्व में छोटा नागपुर पठार पश्चिम में सोन, पूर्व में गंगा के मध्य का क्षेत्र जो अंग जनपद से चम्पा नदी द्वारा बंटा था की राजधानी गिरीव्रज थी जिसे राजगृह भी कहा जाता था। पहड़ियों से घिरे इस क्षेत्र में आने का एक ही रास्ता था। यहां पर प्रारम्भिक काल में ही किसे बन्दी कर अमेद्य बना दिया था। क्योंकि इस क्षेत्र में बौद्ध मत का प्रचार अधिक हुआ इसी कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में मगध की जनता को मिश्रित और हीन बताया गया है। छठी शताब्दी ई. पूर्व में पाए गए सोलह महाजनपदों में मगध ही एक बड़ा साम्राज्य बनाने में सफल हुआ, इसकी शक्ति का वर्णन ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में तो यहां के आठ राजवंशों का न केवल वर्णन है बल्कि सभी राजाओं तथा उनके राज्यकालों का भी वर्णन किया गया है। परन्तु पुराणों में मगध के बार्हद्रथ (Barhadratha) वंश के पश्चात् का विवरण बहुत कम है। इनके अनुसार इस वंश के बाद प्रद्योत (Pradyota) वंश का राज्य रहा तथा इसके पश्चात् शिशुनाग तत्पश्चात् उसके तीन उत्तराधिकारी हुए। जिनके बाद बिम्बिसार (Bimbisara) का राज्य आया। इस तरह के इतिहास को कई विद्यवान तो मानते हैं परन्तु बहुत से विद्यवानों के अनुसार इसमें बहुत सी त्रुटियां हैं जैसे प्रद्योतो (Pradyotas) का राज्य अवन्ति में था मगध में नहीं तथा अन्तिम ब्रह्मद्रथ राजा रिपुञ्जय (Ripunjaya) के तुरन्त बाद हुआ। इसके अतिरिक्त शिशुनाग बिम्बिसार से कई पीढ़ियां (generations) बाद हुआ न कि पहले इसीलिए मगध का सही इतिहास जानने के लिए हमें बौद्ध साक्ष्यों का ही सहारा लेना पड़ता है।

बौद्ध ग्रन्थ महावंश से पहले हुए राजाओं में बिम्बिसार, अजातशत्रु, उदयमद्र, अनुरुद्ध, मुण्ड, नाग दर्शक, शिशुनाग, कालाशोक या काकवर्ण तथा उसके बाद इसके दस पुत्रों के नाम देते हैं जबकि पुराणों में हमें पहले शिशुनाग फिर काकवर्ण, क्षेमधर्मन, क्षत्रीजस्, बिम्बिसार, अजातशत्रु, दर्शक, उदायिन (Udayin), नन्दि वर्धन तथा महानन्दिन इत्यादि के नाम दिए गए हैं।

**बिम्बिसार (545-495 ई. पूर्व) :** बौद्ध ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि बिम्बिसार ने किसी नए वंश की स्थापना नहीं की। महावंश के अनुसार जब वह 15 वर्ष का था तब उसके पिता ने उसे राजा स्थापित किया। परन्तु इस ग्रन्थ में उसके पिता का नाम नहीं दिया गया जबकि कुछ साक्ष्यों में उसके नाम मद्रिय या महापदम दिया गया है। डा. भण्डारकर (Bhandarkar) उसे नाग वंश का मानते हैं परन्तु अश्वघोष के वैवाहिक सम्बंध बुद्धचरित में इसे हर्यक (Haryanka) कुल का बताया गया है। बिम्बिसार के राजनैतिक के उत्थान में उसके वैवाहिक सम्बंधों का काफी हाथ रहा। महावंश के अनुसार इसकी 500 पत्नियां थी। यह कहां तक सच है कहा नहीं जा सकता परन्तु इसकी पत्नी कोसल के राजा प्रसेनजित की बहन थी जिसने इसे दहेज में एक लाख के राजस्व वाला गांव काशी दिया। लिच्छवी प्रमुख चेटक (Chetaka) की पुत्री चेल्लना (Chellana) इसकी दूसरी पत्नी थी। इसकी तीसरी पत्नी का नाम वैदेही वासवी था जिसने अपने पति की सेवा उस समय की जब इसे अजातशत्रु ने कैद कर लिया था। इनकी चौथी पत्नी पंजाब के मद्र (Madra) के राजा की पुत्री रवेमा थी। इसकी कई पुत्र थे जिनके आपसी द्वेष के कारण इसे बहुत सी परेशानियों को झेलना पड़ा। जैन साहित्य से हमें इसके कई पुत्रों का नाम मिलता है जिनमें कूणिक अजातशत्रु (Kunika Ajatasatru), हल्ल तथा बेहल्ल (लिच्छवी राजकुमारी चेल्लना उत्पन्न), अभय (नगरवधु अम्बपाली से उत्पन्न), मेघकुमार इत्यादि। कई बौद्ध साक्ष्य अजातशत्रु के कोसल की राजकुमारी से उत्पन्न मानते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे पुत्र थे विमल कीण्डञ्ज (अम्बपाली का पुत्र) तथा वेहल्ल एवं सीलवत्। कई साक्ष्य तो अजातशत्रु का वेदही पुत्र मानते हैं।

**विजये.** गिरीव्रज या राजगृह पहले पहल बिम्बिसार की राजधानी था। यह पांच पर्वतों से घिरा हुआ था तथा यहां आने का एक



ही रास्ता था जिसके द्वार शाम को बन्द कर दिए जाते थे। ऐसा कहा जाता है कि इसके बाद राजा तक के लिए भी उन्हें यह खोजा जाता था। शहर तथा राजप्रसाद का डिजाइन एक प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री महागोविन्द ने किया था।

**अंग विजय :** कुछ साक्ष्यों के विवरण के अनुसार ऐसा माना जाता है कि बिम्बिसार के पिता ब्रह्मदत्त को अंग के राजा अजातशत्रु ने हरा दिया था तथा इसी हार का बदला लेने के लिए उसने सर्व प्रथम अंग पर आक्रमण किया जिसमें उसे सफलता मिली। उस बड़े शहर एवं समृद्ध महाजनपद को उसने अपने राज्य में मिला लिया। जिसकी राजधानी चम्पा, जो उस समय के छठे बड़े नगरों में से एक था, में उसने अपने पुत्र कूणिक को गवर्नर नियुक्त किया। काशी के विलय (दहेज उपरान्त) तथा अंग विजय के कारण बिम्बिसार का उत्कर्ष का प्रारम्भ हो गया तथा बाद में चल यह इतना बड़ा साम्राज्य बना जो सारे भारत में फैला था।

**कूटनीतिक सम्बन्ध :** बिम्बिसार ने अपनी सूझबूझ से अपने सम्बन्ध समीप तथा दूर की शक्तियों से बनाए रखे अवान्ते किए गए थे। उससे उसकी मैत्री थी जब वह बिमार पड़ा तो उसने अपने वैद्य जीवक को उसके उपचार के लिए भेजा। गंधार के राजा का दूत जीवक सातों अपने स्वामी के मित्रता का सन्देश लेकर बिम्बिसार के यहाँ आया था। पंजाब के मद्र नरेश से भी इसके वैवाहिक सम्बन्ध थे। इस तरह के सम्बन्धों के कारण उसकी आक्रमणकारी नीति काफी सफल भी रही तथा उसने एक बड़ा राज्य बना लिया।

**राज्य विस्तार :** मगध के राज्य में काशी तथा अंग के विलय के पश्चात् राज्य का विस्तार काफी हो गया। महावग्ग के अनुसार इसके राज्य में 80,000 गांव तथा शहर थे। बौद्ध साक्ष्यों के अनुसार इसके राज्य का विस्तार 300 लीग (leagues) का जिसमें अजातशत्रु ने 200 लीग अपनी विजयों से मिला एक और भी बड़ा साम्राज्य बना दिया। इसके साम्राज्य के कुछ महत्वपूर्ण गावों एवं नगरों का वर्णन भी मिलता है इनमें सेनानीग्राम, एकनाला (जहाँ के ब्राह्मण भारद्वाज को बुद्ध ने बौद्ध बनाया), रवानुमत (ब्राह्मण गाव) नालककाम (जहाँ सारिपुत्र ने दिया) इत्यादि इसके अतिरिक्त बहुत से गणराज्य तथा अद्वस्वतन्त्र समुदाय भी थे जिनके प्रमुख को राजकुमार कहा जाता था।

**शासन प्रबन्ध :** बिम्बिसार ने अपने साम्राज्य का प्रशासन बड़े सुचारु ढंग से किया। बौद्ध साहित्य के अनुसार गाव की अपनी एक सभी हुआ करती थी जिसका प्रमुख ग्रामक था। कभी-कभी इन सभी ग्रामकों का एक सम्मेलन भी हुआ करता। महावग्ग में ऐसे ही सम्मेलन का वर्णन है जहाँ सभी 80,000 गांवों के के प्रमुख एकत्रित हुए थे। राजधानी में महामात्रों की नियुक्ति की जाती थी जो तीन प्रकार के होते थे। प्रशासनिक कार्य करने वाले महामात्र सब्बात्थक (Sabbatthaka) थे जो सभी प्रशासनिक कार्य की निगरानी करते थे। न्याय सम्बन्धि कार्यों को देखने वाले महामात्र वोहारिक (Voharika) कहलाते थे जो आज के मैजिस्ट्रेट की तरह न्यायिक अधिकारी थे। इस काल में दण्ड विधान काफी कठोर था। विनय पिटिक के अनुसार सजा में कारावास, अंग काट देना इत्यादि थे। तीसरे प्रकार के महामात्र सेना सम्बन्धि काम करते थे जिन्हें सेनानायक कहा जाता था। विजित राज्य (अंग) का प्रशासन करने के लिए राजकुमार को गवर्नर नियुक्त किया गया था। राजा की सहायता के लिए उपराजा भी नियुक्त किया जाता था जैसे अजातशत्रु चम्पा का उपराजा था। माण्डलिक राजा संभवतः सामन्त इत्यादि थे जो राजाज्ञा से एक निश्चित मण्डल में राज्य करते थे।

**धर्म :** बौद्ध तथा दोनों ही बिम्बिसार को अनुयायी मानते थे। जैन ग्रन्थ उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार राजाओं में शर के समान बिम्बिसार अपने सम्बन्धियों, पत्नियों, नौकरों इत्यादि के साथ, एक अन्य अणगार सिंह (महावीर) को एक चैत्य में मिलाने गया तथा उनका अनुयायी बन गया उनका यह जैन धर्म के प्रति रुझान उसकी पत्नी चेल्लना के कारण। हेमचन्द्र का भी कहना है कि राजा अपनी पत्नी देवी चेल्लना के साथ महावीर की पूजा करने गया था।

दूसरी ओर बौद्ध साक्ष्य बिम्बिसार की बुद्ध के प्रति श्रद्धा को दर्शाते हैं। सुत्तनिपात (Sutta Nipata) के अनुसार राजा गौतम को बुद्ध बनने से 7 वर्ष पहले गिरी व्रज में मिला था तथा प्रभावित भी हुआ। इनका दूसरा मिलन राजगृह में हुआ जब गौतम पूर्ण बुद्ध बन गए थे जब उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया तथा इसके उनलक्ष्य में उसने स्वयं बुद्ध तथा उसके अनुयायियों को अपने महल में स्वयं भोजन करवाया तथा बुद्ध तथा संघ को एक पार्क, जिसका नाम वेलुवन था, भेंट किया। विनय पिटिक में कहा गया है कि इसकी पत्नी खेमा बौद्ध धर्म के नियमों की ज्ञाती थी तथा राजा को भी उनके बारे में ज्ञान देती थी। इसके अतिरिक्त बिम्बिसार ने अपने वैद्य जीवक को महात्मा बुद्ध तथा संघ के अन्य सदस्यों के उपचार के लिए भेजा। इसके अतिरिक्त उसने गंगा नदी पार करने के लिए बौद्ध संघ के सभी सदस्यों का किराया माफ कर दिया।

**शासन अवधि तथा अन्तिम दिन :** महावंश के अनुसार बिम्बिसार ने 52 वर्षों तक राज्य किया जबकि पुराणों में उसके राज्य काल 28 वर्ष दिया गया है। बौद्ध साहित्य के अनुसार बिम्बिसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु के हाथों जान गवाई जिसे उसमें चचेरे भाई ब्रह्मदत्त ने भडकाया था। प्रथम बार उसने तलवार वारा राजा की हत्या की चेष्टा की परन्तु उसका यह प्रयास एक मंत्री ने विफल कर दिया तथा अजातशत्रु ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। मंत्री के कहने पर अन्य षडयंत्रकारियों की तो हत्या कर दी गई परन्तु अजातशत्रु को माफ कर राजा बना दिया गया जिसके लिए वह बेताब था। परन्तु देवदत्त ने उसे बिम्बिसार को मारने का प्रयत्न करने के लिए उकसाया। ऐसा कहा जाता है कि अजातशत्रु अपना यह गुनाह महात्मा बुद्ध के सामने माना था परन्तु बुद्ध ने उसे पश्चाताप भी हुआ।

जैन साहित्य अजातशत्रु के प्रति काफी नरम है तथा इसे पितृहन्ता नहीं मानते। उनके अनुसार वह राजा बनने को आतुर था परन्तु बिम्बिसार ने कृणिक को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया तब अजातशत्रु ने अपने पिता को बन्दी बना जेल में डाल दिया। जहां रानी चेल्लना ने उनकी सेवा की तथा एक बार जब बन्दी राजा की सूजी जंगली के दर्द को रानी अपने ब्रूह से चूस कर कम कर रही थी तो यह दृश्य देख अजातशत्रु द्रवित हो उठा तथा लोहे के मूसल से वह राजा की बेड़िया तोड़ने भागा परन्तु बिम्बिसार समझा कि वह उसे मारने भागा आ रहा है इस डर से बिम्बिसार ने जहर खा आत्महत्या कर ली।

### अजातशत्रु (493-461 ई. पूर्व)

बिम्बिसार के पश्चात् अजातशत्रु राजा बना। बौद्ध ग्रन्थ संयुक्त निकाय के अनुसार वह कोसल नरेश प्रसेनजित की बहन का पुत्र था अपनी शक्ति एवं महत्त्वकांक्षा के कारण अजातशत्रु ने मगध के साम्राज्य में और भी वृद्धि की।

**कोसल से युद्ध:** चूंकि इसने अपने पिता की हत्या स्वयं राजा बनने के लिए की थी इसलिए कोसल के महाजनपद से इसका संघर्ष हुआ। कोसल की राजकुमारी बिम्बिसार की पत्नी थी जिसे इसने विधवा बना दिया था शोक में कुछ समय बाद जिसकी मृत्यु हो गई थी। कोसल के राजा प्रसेनजित ने दहेज में दिए गए क्षेत्रों काशी को वापिस ले लिए इस तरह दोनों राज्यों में युद्ध छिड़ गया। पहले पहल तब अजातशत्रु को विजय प्राप्त हुई तथा प्रसेनजित को श्रावस्ती तक खदेड़ दिया परन्तु शीघ्र ही पासा पलट गया तथा अजातशत्रु का एक लड़ाई में बन्धक बना लिया गया और उसकी सारी सेना को भी प्रसेनजित के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा। अन्त में दोनों में अप्रस में सन्धि हो गई। प्रसेनजित ने अजातशत्रु तथा उसकी सेना को स्वतन्त्र कर न केवल काशी क्षेत्र वापिस कर दिया गया अपितु प्रसेनजित ने अपनी पुत्री वजिरा की शादी अजातशत्रु से कर दी। इस तरह काशी अब अजातशत्रु को दहेज के रूप में भेंट हुआ।

**वैशाली से युद्ध:** जैन साक्ष्य भगवती सूत्र के अनुसार ने पूर्वी भारत की एक महत्त्वपूर्ण शक्ति जिसमें 36 गणराज्य नीहित थे को हराया। इनमें 9 मल्लकी, 9 लिच्छवी तथा 18 गणराज्य काशी और कोसल के थे। इस संघ को उसने लिच्छवी गणराज्य को हराने के बाद हराया था। वैशाली के लिच्छवियों के संघ के मगध के सम्बन्ध हमेशा ही सशंकित रहे थे। इस समय परस्पर संघर्ष के कारण विभिन्न साक्ष्य भिन्न-2 देते हैं। जैन साहित्य के अनुसार बिम्बिसार के वैशाली की राजकुमारी से हल्ल तथा बेहल्ल दो पुत्र उत्पन्न हुए। बिम्बिसार ने इन्हें अपने राज्य का हाथ तथा रत्न जड़ित कंठहार (necklace) उपहार में दिया। अजातशत्रु ने राजा बनते ही उसने ये उपहार वापिस पाने चाहे परन्तु राजकुमार हल्ल तथा बेहल्ल उन्हें लेकर अपने नाना चेटक के पास पहुँच गए तथा वहां सुरक्षा प्राप्त थी। इस लिए गुस्साए अजातशत्रु ने वैशाली पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर बौद्ध साक्ष्य इस लड़ाई का एक अन्य कारण बताते हैं। उनके अनुसार गंगा की नदी पर एक बन्दरगाह पर रत्न मणियों की एक खान (mine) प्राप्त हुई। क्योंकि गंगा नदी दोनों राज्यों के बीच बहती थी इसलिए यह समझौता हुआ कि अजातशत्रु तथा लिच्छवी दोनों को यहां से प्राप्त रत्न इत्यादि समान रूप से मिलेंगे। ऐसा कहा गया है कि इस समझौते का उल्लंघन लिच्छवियों ने किया इस तरह संघर्ष प्रारम्भ हुआ। लिच्छवियों के संघ को पराजित करना आसान नहीं था क्योंकि उनकी शक्ति वज्जि संघ की एकता थी। चेटक ने इस संघ की सभा बुलाई जिसमें काशी तथा कोसल के गणराज्य अध्यक्ष भी सम्मिलित हुए। यहां यह फैसला करना था कि क्या अजातशत्रु के सम्मुख आत्मसमर्पण कर चाहिए या युद्ध कर चाहिए। मगध नरेश पूर्वी भारत पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। इस समय महात्मा बुद्ध भी अपने धार्मिक कार्यों से हट कर राजनीति की ओर झुके क्योंकि वह स्वयं संघात्मक शासन में रहे थे तथा उन्होने बुद्ध संघ का संविधान भी इसी प्रकार का बनाया था। उन्होने लिच्छवियों को आश्वासित किया कि जब तक वे अपनी सभाओं का आयोजन कर शासन चलाते रहेंगे तथा अपने बजुर्गो पुरातन संस्थाओं, पुजा स्थलों (Shrives), साधु सन्तो तथा रित्रियों का आयर करते रहेंगे तब तक उन्हें कोई हरा नहीं सकता। इस युद्ध के लिए अजातशत्रु ने विवेश उपाय किए। प्रथम तो उसने वैशाली के निकट गंगा तट पर एक बड़ा दुर्ग बनाया जहां से लिच्छवियों पर आक्रमण किया जाए तथा उनके आक्रमण को विफल किया जा सके। अपनी सैनिक तैयारी ठीक प्रकार से की तथा दो नए प्रकार के युद्ध में प्रयोग होने वाले वाहनों को बनवाया। प्रथम रथमूसल जो रथ में लगे थे तथा पहिए के साथ घूम कर मूसलों से शत्रु सेना पर प्रहार करते थे। दूसरा महाशिलाकण्टक या बड़ी-2 शिलाओं को फेंकने वाला यंत्र।

दूसरी ओर इस संघ के प्रमुख ने काशी तथा कोसल के अतिरिक्त अपने अन्य साथियों को भी आमंत्रित किया। चेटक के सिन्धु सौ वीर, वत्स, अवन्ति इत्यादि से वैवाहिक सम्बन्ध थे जहां इसकी पुत्रियों की शादी कर रखी थी। संभवतः यहां से भी उसे सहायता प्राप्त हुई। जो सबसे महत्त्वपूर्ण काम अजातशत्रु ने किया था वह था इस संघ में फूट डालने का। इसके लिए उसने अपने महामन्त्री वस्साकार को भेजा। उसने वज्जि संघ में फूट उत्पन्न कर दी। जिससे वे अजातशत्रु के आक्रमण का सम्मिलित एवं संगठित हाकर न कर सके और वे पराजित हो गए। जैन साहित्य के अनुसार यह युद्ध 16 वर्ष तक चलता रहा। गोसाल जो उस समय के एक धार्मिक गुरु थे उनका महावीर के समकालीन थे न यह युद्ध होते केन्द्र दे। उनकी मृत्यु 484 ई. पूर्व हुई तथा महावीर की मृत्यु 468 ई. पूर्व में भी वज्जि संघ डर कर अजातशत्रु का मुकाबला कर रहा था जैन ग्रन्थ निरयावली सूत्र के अनुसार महावीर की मृत्यु के समय उन्होने

सामुहिक रूप से रौशनी प्रकाशितमान की जो महावीर रूपी रौशनी के उनके बीच के जाने के उपलक्ष में की गई थी। इससे हम देख सकते हैं कि यह युद्ध कम से कम सोलह साल तक चलता रहा। अन्त में अजातशत्रु ने विजय हासिल हुई पाण्ड्यामन्थरूप अजातशत्रु ने वैशाली को अपने राज्य में मिला लिया। काशी तथा अंग के बाद साम्राज्य विस्तार में उसका यह तीसरा कर्म था। आर्यमंजु श्री मूलकल्प के अनुसार अजातशत्रु के राज्य में मगध, काशी, अंग तथा वैशाली के प्रदेश थे।

इन विजयों के बाद अजातशत्रु ने अपना साम्राज्य पूर्वी भारत में फैला लिया इससे उसकाल के एक अन्य शक्तिशाली राजा अवन्ति के प्रद्योत (Pradyota) के में ईर्ष्या हुई। मज्झिम निकाय (Majjhim Nikaya) के अनुसार प्रद्योत राजगृह पर आक्रमण करने वाला था इस लिए अजातशत्रु ने यहां किलेबन्दी करवाई। परन्तु प्रद्योत अजातशत्रु के विरुद्ध कुछ भी करने में सफल नहीं हो पाया इस प्रकार अजातशत्रु ने एक बड़े साम्राज्य की नींव रखी।

**धर्म :** बिम्बिसार के समान ही अजातशत्रु का जैन साहित्य में इसे धर्मावलम्बी मानते हैं जब कि बौद्ध ग्रंथ इसे बौद्ध मानते हैं। जैन धर्म के प्रति इसके झुकाव के कई उदाहरण हैं प्रथम जैन साहित्य इसे बौद्ध साहित्य के अनुसार पितृहन्ता नहीं मानते। ऐसा भी कहा गया है कि वह अपनी रानियों के साथ अकासर महावीर को मिलने जाते थे। जैन ग्रन्थ औपपातिक सूत्र (Aupapatika Sutra) के अनुसार उसने महावीर के सम्मुख खुले रूप भी धर्म स्वीकार किया था। दूसरी ओर अपने चचेरे भाई देवदत्त के कारण प्रारम्भ में वह महात्मा बुद्ध से ईर्ष्या रखता बताया गया है परन्तु बाद में वह बौद्ध हो गया ऐसा बौद्ध ग्रन्थ मानते हैं। महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार महात्मा बुद्ध के दाह संस्कार के पश्चात् अजातशत्रु ने उनके अवशेष प्राप्त कर राजगृह में एक भव्य स्तूप बनवाया। भारतहुत से प्राप्त एक लेख से भी यह पता चलता है कि वह उसकी भेंट महात्मा बुद्ध से हुई थी।

### अजातशत्रु के उत्तराधिकारी

बौद्ध साहित्य के अनुसार अजातशत्रु के पश्चात् बनने वाले चारों राजा पितृहन्ता थे। पुराणों के अजातशत्रु के पश्चात् दशक मगध का राजा बना जबकि बौद्ध तथा जैन साक्ष्य उदायिन (461-45 ई. पूर्व) को उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी मानते हैं। जो कि अपने पिता के समय चम्पा का गवर्नर था महावंश के अनुसार इसने अपने पिता की हत्या कर राज्य प्राप्त किया। जैन साक्ष्य उदयमद्र या उदायिन को ऐसा नहीं मानते मार्गी संहिता, परिशिष्ट पर्वन तथा वायु पुराण के अनुसार उदायिन ने नई राजधानी पाटलीपुत्र बनवाई जो गंगा तथा सोन के संगम पर थी। दूसरे राजगृह की अपेक्षा यहां अवन्ती महाजनपद से यहां खतरा अपेक्षाकृत कम था। उदायिन भी अपने पिता के समान साम्राज्यवादी था। स्थविरावलिचरित के अनुसार उसने अपने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण कर वहां का राजा का वध कर दिया तथा राजकुमार ने अवन्ती की राजधानी उज्जैनी में शरण ली बाद में उस राजकुमार ने जैन साधु का वध करण कर पाटली पुत्र जाकर सोते हुए उदायिन की हत्या कर दी। दूसरी ओर अवन्ती के राजा पालक ने वत्स को अपने आधीन कर मगध के लिए खतरा खड़ा कर दिया। इस समय मगध और अवन्ति में कोई निर्णायक युद्ध नहीं हुआ। पुराणों के अनुसार उदायिन 33 वर्ष तक राज्य किया जबकि महावंश इसका काल 16 वर्ष बताते हैं। वह संभवतः जैन मतावलम्बी थी क्योंकि इसमें अवन्ति के जैन में एक जैन चैत्यगृह बनवाया था।

उदायिन के बाद के दो राजा अनुरुद्ध तथा मुण्ड थे। अंगुत्तर निकाय में मुण्ड को पाटलीपुत्र में रहता बताया गया है तथा कि उसका महारानी मद्दा की मृत्यु हुई तो सारा शहर शोक में डूब गया तथा उसका दाह संस्कार तब तक नहीं करने दिया गया जब तक कुक्कुटाराम नामक विहार में रहने वाले नारद नाम थेर उसे सात्वना देने नहीं आए।

अगले राजा नागदर्शक का समीकरण पुराणों में वर्णित दर्शक से किया जाता है। संस्कृत ड्रामा स्वप्न वासवदत्ता (भारु द्वारा लिखित) में इसे उदायिन का समकालीन माना है।

### शिशुनाग वंश (412-345 ई. पूर्व)

बौद्ध साहित्य की सूचि के अनुसार नागदर्शक के बाद शिशुनाग राजा बना। पुराणों के अनुसार शिशुनाग प्रद्योत का नष्ट कर राजा बना उसने गिरीव्रत पर निवास प्रारम्भ कर दिया तथा अपने पुत्र को वाराणासी का प्रशासक नियुक्त किया। परन्तु बौद्ध साक्ष्य के अनुसार शिशुनाग तो अजातशत्रु के बाद में ही राजा बना था।

महावंश के अनुसार शिशुनाग पहले अमात्य था तथा पौरो, आमात्यों और मन्त्रियों ने नागदर्शक को सिंहासन से हटा शिशुनाग का राजा बनाया। मालंकर वत्सु के अनुसार उसका सम्बन्ध वैशाली से था इस लिए इसने वैशाली को अपनी राजधानी बनाया।

**अवन्ति से युद्ध :** पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने प्रद्योत की शक्ति का अन्त किया। संभवतः प्रद्योत की मृत्यु के पश्चात् कई प्रतिभाशाली राजा अवन्ति को न मिल सका तथा गृहयुद्ध के कारण अवन्ति की शक्ति कम हो गई। इसी कारण अवन्ति मगध का सामना न कर सका। हेमचन्द्र राय चौकरी का मत है कि शिशुनाग ने अवन्ति के राजा अवन्तिवर्धन का हराया। इस विजय के बाद मगध उत्तरी भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया।



कोसल पर अधिकार : अवन्ति के पश्चात कोसल की विजय भी शिशुनाग ने की। डा. भण्डारकर का यह मत है। इस तरह उसका राज्य विस्तार बंगाल से मालवा तक हो गया। शिशुनाग न 412 से 394 ई. पूर्व तक राज्य किया।

### कालाशोक या काकवर्ण (394-366 ई. पूर्व)

कालाशोक शिशुनाग का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था जो पुराणों में वर्णित काकवर्ण ही था। इसी के काल में द्वितीय बौद्ध संगति (Second Buddhist Council) का आयोजन किया गया था। कालाशोक ने वैशाली के स्थान पर पुनः पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। दीपवंश तथा महावंश के अनुसार कालाशोक ने 28 वर्षों तक राज्य किया। बाण के हर्षचरित (Harsacharita) से पता चलता है कि काकवर्ण शिशुनाग की हत्या गले में छुरा घोंप कर हुई।

काकवर्ण के पश्चात उसके दस पुत्रों ने राज्य किया। बौद्ध साहित्य में उन्होंने सम्मिलित रूप से 22 वर्ष का राज्य किया। अन्तिम राजा का वध नन्दवंश के संस्थापक ने किया।

### (b) बौद्धिक क्रांति का युग (Age of Reason & Revolt)

#### परिचय :-

भारत में उत्तरवैदिक काल में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। इनमें कृषि विस्तार, सामाजिक विभेदीकरण, राजतंत्र के उद्भव तथा धार्मिक विश्वासों और कृत्यों में परिवर्तन से प्रमाणित होता है। यह वह काल था जब उत्तरी-भारत के इतिहास में आगे और भी विकास की नींव डाली गयी थी, जो ईसा पूर्व छठी शताब्दी से स्पष्ट होती है।

ई० पू० छठी शताब्दी का काल धार्मिक दृष्टि से क्रान्ति अथवा महान परिवर्तन का काल माना जाता है। इस समय परम्परागत वैदिक धर्म एवं समाज में व्यापक कुरीतियों, पाखण्डों, छुआ-छात आदि के विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। यह आन्दोलन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, वरन् चिरकाल से संचित हो रहे असंतोष की परिणति थी। वैदिक धर्म के कर्मकाण्डों तथा यज्ञी विधि-विधानों के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रस्तुत: उत्तर वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। वैदिक धर्म की व्याख्या एक नये सिरे से की गई तथा यज्ञ एवं कर्मकाण्डों की निन्दा करते हुए धर्म के नैतिक पक्ष पर बल दिया शरीर को मिथ्या बताकर आत्मा की अमरता के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में मगध अपने आस पड़ोस के अन्य राज्यों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर रहा था। एवं एक विशाल साम्राज्य के रूप में उभर रहा था। उसी समय धार्मिक क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों का केन्द्र भी यहीं बना। इस समय भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी प्राचीन मान्यताओं को चुनौती दी जा रही थी। जो काम यूनान में हैरक्लीटस पाईथागोरस, ईरान में जेरथुष्ट और चीन में कन्फ्यूशियस व लाओत्से (ताओ) कर रहे थे, वही काम इस समय भारत में महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध कर रहे थे। इस मानवतावादी विचारधारा ने भू-मध्य सागर से प्रशान्त महासागर तक मानव मस्तिष्क में खलबली मचा रखी थी। यह विचारधारा स्पष्ट रूप से तात्कालीन धर्म-संस्था के विरुद्ध प्रश्न-चिन्ता उत्पन्न कर रही थी। यह प्रश्न-चिन्ता का विचार-मार्ग कि प्रश्न-समाधान-सुधारकों ने आपस में काई-राम-राम या राम-राम का स्मरण करके स्पष्ट है कि सभी में सम्मिलित धर्मों को उन पुत्रों ने नकारा कि विरोध किया जा मानव के विकास में बाधक थी।

इस बौद्धिक क्रान्ति के लिए तात्कालिन सामाजिक व आर्थिक कारण भी कम उतरदायी नहीं थे। समाज में वर्ग-व्यवस्था का विकृत स्वरूप 'जाति' के रूप में विकसित हो चुका था। ब्राह्मण विशेषधिकार युक्त तथा शुद्र अधिकार विहिन वर्ग बने हुए थे। किन्तु लोहे के प्रयोग ने कृषि में क्रान्ति ला दी, जिससे उत्पादन बढ़ा, उद्योग धन्धे बढ़े। फलस्वरूप एक शक्तिशाली व्यापारी वर्ग का उदय होता है। दूसरी ओर क्षत्रियों की राजनीतिक शक्ति में वृद्धि हुई। अब क्षत्रिय व वैश्य दोनों ने ब्राह्मणों से सामाजिक प्रतिस्पर्धा शुरू कर दी तथा ब्राह्मणों का विरोध किया। फलतः समाज में नयी विचारधारा का प्रवेश हुआ। कृषि की उपयोगिता बढ़ जाने से पशुओं का महत्व भी बढ़ गया तथा बलि प्रथा एवं अश्वमेध यज्ञ आदि का विरोध किया गया। परिणामस्वरूप नये सुधारवादी विचारों वाले धर्म का मार्ग प्रशस्त हो गया, जिसकी सफलता ने लोगों को बड़ी शीघ्रता से आकर्षित कर लिया। ये नए सुधारवादी धर्म थे - 'जैन एवं बौद्ध धर्म'।

#### 1. जैन धर्म :-

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के धर्म-सुधार आन्दोलन में जैन धर्म का विशिष्ट स्थान है। जिसके संस्थापक महावीर स्वामी थे। जैन श्रुतियों के अनुसार, जैन धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के लिए 24 तीर्थाकर उत्तरदायी थे। इनमें से पहले बाईस की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। परन्तु अन्तिम दो तीर्थाकर पार्श्वनाथ तथा महावीर की ऐतिहासिकता को बौद्ध ग्रन्थों ने प्रमाणित किया है। जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है महावीर स्वामी 24 वें तथा अन्तिम तीर्थकर थे। किन्तु कुछ जैन अनुयायी प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं। जो भी हो इतना सत्य तो अवश्य है कि जैन धर्म के 24 वें तीर्थकरों में महावीर स्वामी के काल में जैन धर्म का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। ऋषभदेव का नाम ऋग्वेद में भी आता है। महावीर स्वामी 24 वें तथा अन्तिम तीर्थकर थे। 23 वें तीर्थकर पार्श्वनाथ थे।



### पार्श्वनाथ :-

जैन श्रुतियों के अनुसार 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ बनारस के राजा अश्वसेन एवं रानी वामा के पुत्र थे। उनका काल महावीर स्वामी से 250 वर्ष पहले माना जाता है। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में सिंहासन का परित्याग कर दिया और सन्यासी हो गए। 83 दिन की घोर तपस्या के बाद इन्होंने ज्ञान की प्राप्ति हुई। जैन श्रुतियों के अनुसार इन्होंने 70 वर्ष तक धर्म का प्रचार किया। पार्श्वनाथ पदार्थ की अन्नतता में विश्वास करते थे। इनके अनुयायियों को निर्ग्रन्थ कहा जाता था। पार्श्वनाथ के समय में निर्ग्रन्थ संप्रदाय सुसंगठित था। निर्ग्रन्थों के चार गणों (संघों) में से प्रत्येक गण एक गणधर के अंतर्गत था। पार्श्वनाथ भी वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड तथा देववाद के कुछ आलोचक थे। इन्होंने जाति प्रथा पर भी प्रहार किया। प्रत्येक व्यक्ति को ये मोक्ष का अधिकारी मानते थे चाहे वह किसी जाति का हो। नारियों को भी इन्होंने अपने धर्म में प्रवेश दिया था। उनकी मूल शिक्षा थी प्राणियों की हिंसा न करना, सदा सत्य बोलना, चोरी न करना तथा संपत्ति न रखना। महावीर स्वामी के माता-पिता पार्श्वनाथ के अनुयायी थे।

### महावीर स्वामी :-

महावीर स्वामी का मूल नाम वर्धमान था। इनका जन्म वैशाली के पास कुडीग्राम में जातक नामक किल के राजा सिद्धार्थ के घर 540 ई० पू० हुआ। इनकी माता त्रीशला लिच्छवी राजा गणराज्य के मुखिया चेटक की पुत्री थी। महावीर का बचपन एक राजकुमार का रहा तथा हर प्रकार की सुविधाओं से पूर्ण था। इनकी पत्नी का नाम यशोदा तथा पुत्री का नाम प्रियदर्शनी था। 30 वर्ष की आयु तक इनके माता-पिता की मृत्यु हो चुकी थी एवं महावीर स्वामी गृहस्थ जीवन से ऊब चुके थे। फलतः इन्होंने परिवार के सभी सदस्यों के समक्ष घर त्यागने का प्रस्ताव रखा जो अन्ततः स्वीकार कर लिया गया तथा इन्होंने अपने बड़े भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा लेकर घर त्याग दिया। पहले उन्होंने एक वस्त्र धारण किया और फिर उसका भी तेरह मास के उपरान्त परित्याग कर दिया तथा बाद में 'नग्न भिक्षु' की भान्ति भ्रमण करने लगे। घोर तपस्या करते हुए 12 वर्ष तक एक सन्यासी का जीवन व्यतीत किया। लोगों ने अनपत्थर फेंके तथा कुत्ते छोड़े, लेकिन महावीर स्वामी अपने तप मार्ग पर अटल रहे। अपनी तपस्या के 13 वें वर्ष में 42 वर्ष की आयु में आधुनिक बिहार में ऋजुपालिका (केवालिन) नदी के तट पर जम्भिकग्राम (जम्भिका ग्राम) में उन्हें ज्ञान कथलिन की प्राप्ति हुई। बाद में उनकी प्रसिद्धि "महावीर (सर्वोच्च यौद्धा)" या "जिन" (विजयी) के नामों से हुई। उनको 'निर्ग्रन्थ' (बन्धन से मुक्त) के नाम से भी जाना जाता था।

अगले 30 वर्षों तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे और कोसल, मगध तथा अन्य पूर्वी क्षेत्रों में अपने विचारों का प्रचार किया। वह एक वर्ष में आठ माह विचरन करते थे औश्र वर्षा ऋतु के चार माह पूर्वी भारत के किसी प्रसिद्ध नगर में व्यतीत करते। इनकी पत्नी यशोदा, पुत्री प्रियदर्शनी, दामाद जमाली के अतिरिक्त इनके शिष्यों में वैशाली का शासक चट्टक, काशी के शासक प्रहोत, मगध नरेश विम्बिसार, कौशांबी के वनपत्नी के मजल शासक अपने परिकर सम्बल थे। इस धर्म के प्रचार के लिए महावीर स्वामी ने 24 वर्षों तक भ्रमण किया।

## जैनधर्म के सिद्धान्त (Principle of Jainism)

जैनधर्म में संसार दुःखमूलक माना गया है। मनुष्य जरा (वृद्धावस्था) तथा मृत्यु से ग्रस्त है। व्यक्ति को सांसारिक जीवन की लड़ाई घेरे रहनी है। संपत्ति संचय के साथ ही मनुष्य की कामना रूपी पिपासा बढ़ती जाती है। जिसका कोई अन्त नहीं है। कामना संचय विषय के समान है। जो अततः दुःख को ही उत्पन्न करते हैं। संसार-त्याग तथा सन्यास ही व्यक्ति को सच्चे सुख की ओर ले जा सकता है। जैन धर्म के अनुसार सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं है। किन्तु संसार को एक वास्तविक तथ्य माना गया है जो अनादि काल से विद्यमान है। जैन धर्म में भी सांसारिक तृष्णा-बंधन से मुक्ति का 'निर्वाण' कहा गया गया है। महावीर स्वामी द्वारा जो बातें कही गई हैं वे किसी गूढ़ दर्शन का इंगित नहीं करती बल्कि आम व्यक्ति उस चिन्तन को बड़ी सरलता से समझा सकता था। इनमें एक अन्य बात यह भी है कि उनका यह सारा चिन्तन-दर्शन उनका मौलिक नहीं है। बल्कि अच्छे विचारों का संयोजन है जो उस समय की समाज में व्याप्त थे। महावीर के उपदेश समाज में फैली उन बुराईयों का विरोध कर रहे थे जिनके कारण समाज का विकास अवरुद्ध हो रहा था। इनका वर्णन इस प्रकार है-

### (1) त्रिरत्न :

महावीर स्वामी ने मानव जीवन में अठारह पापों का वर्णन किया है - (i) झूठ (ii) चोरी (iii) मत्थून (iv) क्रोध (v) हिंसा (vi) अतः मूर्खा (vii) लोभ (viii) माया (ix) मान (x) मोह (xi) कलह (xii) द्वेष (xiii) दोषारोपण (xiv) युगली (xv) निंदा (xvi) अस्वस्व (xvii) माया मृशा (xviii) मिथ्या-दर्शन

### रूपी शतय

निर्वाण की प्राप्ति के लिए इनसे बचना अनिवार्य है। इनसे बचने के लिए निम्नलिखित तीन आदर्श वाक्यों का जीवन में अनुमान अनिवार्य है। 1. यही आदर्श वाक्य त्रिरत्न के नाम से जाने जाते हैं।

- (i) सत्य विश्वास— मनुष्य का अपने ऊपर तथा जैन मत के सभी तीर्थकरों पर विश्वास होना चाहिए।
  - (ii) सत्यज्ञान— मनुष्य का ज्ञान मिथ्या पर आधारित न होकर सत्य की खोज की ओर होना चाहिए।
  - (iii) सत्य कर्म— मनुष्य का कर्म महाव्रतों पर आधारित होना चाहिए, उसे ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जो वह अपने लिए नहीं चाहता।
- (2) पांच महाव्रत या अणुव्रत :

महावीर स्वामी ने गृहस्थ के जीवन का पवित्र एवं सुखमय बनाने के लिए पांच महाव्रत बताए :

(i) अहिंसा :-

यह जैन धर्म का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसका संबंध मन, वचन व कर्म तीनों से है। जैन धर्म के अनुसार सभी जीवन समान हैं। किसी जीव को मारने या हानि पहुंचाने का विचार मन में उत्पन्न होना भी हिंसा है।

किसी को छेड़ना, चिढ़ाना, कठोर शब्द बोलना, मारना या पीड़ा देना भी हिंसा का ही रूप है। पैदल चलने या भोजन करने से भी किसी जीव की हत्या नहीं होनी चाहिए।

(ii) अमृषा (सत्य वचन) :-

मनुष्य के वचन सदा सत्य एवं मधुर होने चाहिए। सत्य बोलने से आत्मा शुद्ध होती है। क्रोध व मोह की स्थिति में मनुष्य को मौन रहना चाहिए।

(iii) अस्तेय (चोरी न करना) :-

चोरी करना पाप है तथा असत्य भी, बिना किसी की अनुमति के किसी की वस्तुओं का संग्रह अनुचित है। यह संग्रह मोह-माया को बढ़ाता है। यह दूसरे अर्थों में हिंसा भी है।

(iv) अपरिग्रह (संग्रह न करना) :-

जैन धर्म भौतिक वस्तुओं का त्याग व सम्पत्ति का संग्रह न करने पर बल देता है।

(v) ब्रह्मचार्य :-

मनुष्य को भोग वासना से दूर रहकर संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए।

(3) कठोर तपस्या :

महावीर स्वामी ने तपस्या के मार्ग को महत्वपूर्ण बताया है। उनके अनुसार तपस्या से शरीर को जितना कष्ट होगा, लक्ष्य को प्राप्त करना अतना ही आसान होगा। उनके अनुसार कष्ट व समस्याएं मनुष्य को परिपक्व बनाती हैं। व्यक्ति जितने अधिक कष्ट उठाएगा, उनका जीवन उतना ही अधिक सन्तुलित होगा।

(4) तीर्थकरों में विश्वास :

जैन अनुयायी 24 वें तीर्थकरों में अटूट विश्वास रखते थे। वे इन्हें सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ मानते थे। तीर्थकरों में महावीर स्वामी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था।

(5) आत्मा, मोक्ष व कर्म सिद्धान्त :

ब्रह्ममण धर्म (वैदिक धर्म) की भांति महावीर स्वामी भी आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखते थे। यह छोटी अथवा बड़ी नहीं होती तथा इसका अस्तित्व शरीर के साथ समाप्त नहीं हो जाता। उनके चिन्तन में कर्म सिद्धान्त को भी महत्व दिया गया है। जिसके अनुसार कर्म की मनुष्य के भविष्य को निर्धारित करते हैं तथा वर्तमान के आधार पर ही अगले जन्म का निर्धारण होता है।

(6) ईश्वर के बारे में :

महावीर स्वामी ने अपने चिन्तन में ईश्वर के अस्तित्व को नकारा है, वे कहते हैं कि संसार में ऐसा कोई नियन्त्रक नहीं है जो इस पूरी व्यवस्था की देखभाल करता हो। इसलिए ईश्वर व अन्य किसी दैवी-देवताओं की उपासना का कोई औचित्य नहीं है। बल्कि मनुष्य के कर्म व आत्मा की पूर्ण शक्ति रखती हैं।

(7) ब्राह्मणों की सर्वोच्चता का विरोध :

महावीर स्वामी ने समाज के सभी वर्गों को समान बताया है। उनके अनुसार ब्राह्मण भी समाज के अन्य लोगों की तरह सामान्य व्यक्ति थे। वे देव पुरुष नहीं हैं। उन्होंने ब्राह्मणों की नीति का विरोध किया।

(8) वेदों व संस्कृत के बारे में :

जैन धर्म ने इस बात को पूरी तरह से मिथ्या बताया है कि वेद मानव कृत नहीं हैं। उन्होंने वेदों की पवित्रता का भी विरोध किया।

महावीर स्वामी ने इन्हें सामान्य पुस्तकों के समान बताते हुए स्पष्ट किया है कि धर्म विशेष के लोगो ने अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु जैन धर्म को छवि बना दी। उन्होंने संस्कृत का भी पवित्र भाषा स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार यह मुठठान भर लागू की भाषा है। इस समय तक सम्मान नहीं पा सकती जब तक सर्व-साधारण इसको अच्छी तरह समझ न लें।

#### (9) यज्ञ, बलि व अन्धविश्वासों का विरोध

जैन धर्म में इन सभी को महत्वहीन बताया गया है। समाज में प्रचलित इस प्रकार की सभी मान्यताओं का विरोध करते हुए जैन लोगो को सरल जीवन जीने के लिए कहा, क्योंकि खर्चोले यज्ञ, बलि व कर्मकाण्ड मनुष्य की आर्थिक स्थिति को न केवल खराब करते हैं, बल्कि समाज में कुछ लोगों के व्यवसाय का साधन भी बनते हैं।

#### (10) ज्ञान सिद्धान्त :

जैन धर्म में पांच प्रकार के ज्ञान पर बल दिया गया था। ये ज्ञान सिद्धान्त थे – मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्याय एवं कवलय ज्ञान। ज्ञान के प्रति जैन धर्म का दृष्टिकोण स्यादवाद का है। स्यादवाद को अनेकान्तवाद भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान को ऐकांगिक दृष्टि से न अपनाकर उसके सभी विविध पक्षों को देखना चाहिए।

### जैन धर्म का विस्तार (The Growth of Jainism)

महावीर स्वामी ने अपने संघों को ग्यारह गणों में बांटा तथा पावा में चर्तुविध संघ की स्थापना की। महावीर के ग्यारह शिष्य थे जिनका गन्धर्व था सम्प्रदायों का प्रमुख कहा जाता था। आर्य सुघर्मा अकेला ऐसा गन्धर्व था जो महावीर की मृत्यु के पश्चात भी जीवित रहा और जो जैन धर्म का प्रथम 'थेरा' या मुख्य उपदेशक हुआ। राजा नंद के काल में जैन धर्म के संचालन का कार्य दो 'थेरो' (आचार्यों) द्वारा किया जाता था :-

(i) सम्भूताविजय और (ii) भद्रबाहू (i) छठे थेरा (आचार्य) भद्रबाहू मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालिन थे।

धीरे-धीरे महावीर के समर्थक सारे देश, में फैल गए। जैन धर्म को शाही संरक्षण की कृपा भी रही। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयन, जैन धर्म का अनुयायी था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय जैन भिक्षुओं को सिन्धु नदी के किनारे भी पाया गया था। पहली सदी ई० में मथुरा एवं उज्जैन जैन धर्म के प्रधान केन्द्र बन गए।

बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म की सफलता शानदार थी। इसकी सफलता का एक मुख्य कारण था कि महावीर एवं उसके अनुयायियों ने संस्कृत के स्थान पर लोकप्रिय भाषा (प्राकृत, धार्तिक साहित्य को अर्ध-मगधी में लिखा गया) का प्रयोग किया। जनता के लिए सरल एवं घरेलू निर्देशों ने लोगों को आकर्षित किया।

#### जैन सभायें

चन्द्र गुप्त मौर्य के शासन की समाप्ति के समीप दक्षिण बिहार में भंयकर अकाल पड़ा। यह बारह वर्षों तक चला। भद्रबाहू और उनके शिष्यों ने कर्नाटक राज्य में श्रावण बेल गोला की ओर विस्थापन किया। अन्य जैन मुनि स्थूलबाहुभद्र के नेतृत्व में मगध में ही रह गए। उन्होंने पाटलीपुत्र में 300 ई० पू० के आस-पास सभा का आयोजन किया। इस सभा में महावीर स्वामी की पवित्र शिक्षाओं को 12 अंगों में विभाजित किया गया।

दूसरी जैन सभा का आयोजन 512 ई० में गुजराज में वल्लभी नामक स्थान पर देवर्धिमणी क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक शास्त्रों को एकत्र एवं उनको पुनः क्रम से संकलित करना था। किन्तु प्रथम सभा के संकलित बारहवा अंग इस समय खो गया था। शेष बचे हुए अंगों की अर्धमगधी में लिखा गया।

#### सम्प्रदाय

जैन धर्म में फूट पड़ने का समय लगभग 300 ई० पू० माना जाता है। महावीर के समय में ही एक वस्त्र धारण करने का लक्षण महत्त्व स्पष्ट होने लगे थे। श्रावण बेल गोल से मगध वापस लौटने के बाद भद्रबाहु के अनुयायियों ने इस निर्णय को मानन से इन्कार कर दिया कि 14 पर्वा खो गए थे। मगध में ठहरने वालों तथा प्रस्थान करने वालों में मतभेद बढ़ते ही गए। मगध में ठहरने वाले साकद वस्त्रों को धारण करने के अभ्यस्त हो चुके थे और महावीर की शिक्षाओं से दूर होने लगे जबकि पहले वाले नग्न अवस्था में रहने का कठोरता से महावीर की शिक्षाओं को अनुसरण करते। जैन धर्म का प्रथम विभाजन दिगम्बर (नग्न रहने वालों) और श्वेताम्बर (अकद वस्त्र धारण करने वालों) के बीच हुआ। अगली शताब्दियों में पुनः दोनों सम्प्रदायों में कई विभाजन हुए। इनमें महत्त्वपूर्ण यह सम्प्रदाय था जिसने मूर्ति-पूजा को त्याग दिया तथा ग्रंथों की पूजा करने लगे। वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में 'तेरापन्थी' कहलाये। दूसरे सम्प्रदाय में समवास कहलाये। यह सम्प्रदाय छठी ईसवी में अस्तित्व में आया।

## जैन धर्म सीमित क्यों रहा? (Why Jainism was Restricted?)

जैन धर्म में तत्कालीन समाज को प्रभावित करने की अच्छी बातें थी जिसके कारण इसका विकास हुआ। इसके साथ-साथ कुछ मौलिक दावों थे जो इसके अधिक विकास में बाधक रहे, समय के साथ-साथ इसमें कुछ दोष भी आ गए। जिसके कारण यह पतन की ओर अग्रसर हो गया तथा समाज के सीमित से हिस्से में अपनी जगह बना पाया। जबकि इसका समकालीन धर्म बौद्ध धर्म विश्व के अधिकतर हिस्सों में अपनी जगह बना पाया। इस बारे में समझने के लिए कि यह धर्म सीमित क्यों रहा कुछ कारणों को जानना अनिवार्य है।

जैन धर्म का सबसे प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा का सिद्धान्त है जो कि अति कठोर है। यदि इसका पूरी तरह से पालन किया जाता तो मनुष्य द्वारा आजीविका कमाना भी कठिन था। अतः यह सिद्धान्त सभी के लिए व्यावहारिक नहीं था। कठोर तपस्या का सिद्धान्त भी अहिंसा के सिद्धान्त की भांति जटिल है। शरीर को अधिकाधिक कष्ट देकर अनुभव प्राप्त करना सामान्य जीवन जीने वाले लोगों के लिए काली कठिन था। जैन धर्म की कार्य-प्रणाली व चिन्तन आरम्भ में ठीक था, लेकिन बाद में यह अपने को ब्रह्मण धर्म से अलग नहीं कर पाया तो लोगों ने अपने पुराने धर्म की ओर लौटना उचित समझा।

जैन धर्म के सिद्धान्त में जन-सामान्य को कहीं-कहीं विरोधभ्यास भी नजर आया। जिसको समझना उनके लिए आसान न था। जैन धर्म कर्म व अत्मा में विश्वास करता है, परन्तु परमात्मा के अस्तित्व को नकारता है। भले ही जैन मत कर्म व आत्मा की व्याख्या अलग ढंग से की गई हो, परन्तु आम व्यक्ति हो इसमें साफ तौर पर विरोधभ्यास दिखाई देता है। प्रारम्भ में जैन धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था जो समय के साथ-साथ कम होता गया और इस धर्म के प्रचार में भी गिरावट आ गई। जैन धर्म का सीमित रहने का एक अति महत्वपूर्ण कारण इसका विभाजन रहा जैन धर्म अपने अन्दा एकता नहीं रख सका। यह दिगम्बर व श्वेताम्बर दो भागों में विभाजित हो गया। इन दोनों मतों ने एक-दूसरे को हीन दिखाने का प्रयास किया जिससे लोगों को इनकी कमजोरियों का भी पता चला। इनकी जीवन-शैली से लोग इस बारे में सोचने लगे, क्योंकि दिगम्बर पुरातन पंथी थे व नग्न रहते थे, जबकि श्वेताम्बर समय के साथ बदलना चाहते थे एवं सफेद वस्त्र धारण करते थे। इस तरह से जैन धर्म समय के बहाव में अपने को उतना बेहतर न रख पाया जैसा कि प्रारम्भ में था।

**पार्श्वनाथ तथा महावीर की शिक्षाओं में अंतर :**

पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा 'बहिर्द्धादाणों वेरमण' के चतुर्थांश धर्म की व्यवस्था की थी। महावीर ने इसमें पंचम व्रत ब्रह्मचर्य की वृद्धि की। साथ ही पार्श्वनाथ वस्त्र धारण के विरुद्ध नहीं थे। किन्तु महावीर स्वामी ने सांसारिकता से पूर्णरूपेण अनासक्ति के लिए नग्नता को आवश्यक माना। नग्नता से काया-कलेश तथा अपरिग्रह को प्राप्त साहज मिलता है। साथ ही लज्जा आदि अनेक सांसारिक मान्यताओं के भ्रम से भिक्षु मुक्त हो जाता है। आगे चलकर वस्त्र धारण करने तथा निर्वस्त्रता के आधार पर जैन धर्म श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।

## 2. बौद्ध धर्म (Buddhism)

**गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पत्ति :-**

कौशल देश के उत्तर में कपिलवस्तु शाक्य क्षत्रियों का एक छोटा-सा गणराज्य था। यहां शुद्धोदन नामक एक राजा राज्य करते थे। 563 ई० 700 इन्हीं शुद्धोदन की कोलियवंशीय पत्नी महामाया अथवा मायादेवी के गर्भ से गौतम का जन्म हुआ था। यह जन्म नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी वन में हुआ था जो कपिलवस्तु से लगभग 14 मील की दूरी पर है। कालान्तर में यहीं पर सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ स्थापित करवाया था जिस पर आज भी 'हिंद बुझे जाते साक्यगुणिति हिंद भगवा जातेति' (यहां शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे यहां भगवान उत्पन्न हुए थे) पढ़ा जा सकता है। जन्म के सातवें दिन इनकी माता का निधन हो गया एवं पालन पोषण सौतेली मां गौतमी ने किया। इसी कारण यं गौतम कहलाए। बालक गौतम को देखकर कालदेव तथा ब्राह्मण कौण्डिन्य ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक चक्रवर्ती राजा अथवा सन्यायी होगा। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया और बड़े होन पर एक क्षत्रिय राजकुमार को दी जाने वाली शिक्षाएं-पुस्तकीय ज्ञान, युद्ध प्रणाली, घुड़सवारी, मतलयुद्ध, अस्त्र-शस्त्र प्रयोग आदि-उन्हे प्रदान की गईं। किन्तु सिद्धार्थ अल्प आयु से ही चिंतनशील थे। वे जम्बू वृक्ष के नीचे प्रायः ध्यानमग्न बैठे रहते थे। गौतम के प्रकृत्या चिन्तनशील होने के कारण उनका इन सब सांसारिक विषयों में अनुरक्त न होता था। गौतम का प्रारम्भिक जीवन बड़ी सुख-समृद्धि के बीच बीता। उनके रहने के लिए तीन ऋतुओं के अनुरूप पृथक्-पृथक् तीन प्रासाद बनवाये गए थे जिनमें ऐश्वर्य की की समस्त सामग्री एकत्र की गई थी। इस प्रकार राजकुमार के घूमने फिरने के लिए अनेक रम्य उपवनों का निर्माण हुआ था। जिनमें अति मनोहरी कुंज और निर्झरादिक थे। नृत्य, वाद्य, संगीत के सरस वातारण में सिद्धार्थ सांसारिक दुःख की कल्पना न कर सकेंगे, ऐसे पिता शुद्धोदन का विचार था। इसी विचार से 16 वर्ष की आयु में सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा (इनके अन्य नाम गोपा, बिना तथा भद्रकच्छा भी उल्लिखित



हैं) से कर दिया। इनसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु सिद्धार्थ प्रसन्न न हुए वरन उसे मोह-बंधन मानकर 'राहु' कहा था। एक नाम राहुल रख दिया।

त्रिपिटक में अनेक ऐसे दृश्यों और घटनाओं का उल्लेख है जिनसे गौतम के वैराग्य प्रधान स्वभाव का उद्दीपन मिला। कर्मण्ये वाहि कि नगरं-दर्शन के हेतु भिन्न-भिन्न अवसरों पर बाहर जाते हुए गौतम को मार्ग में पहले जर्जर शरीर वृद्ध, फिर व्यथापूरा गणिका, मृतक और सबसे बाद को वीतराग प्रसन्नचित सन्यासी के दर्शन हुए। राजप्रसाद के वैभवशाली-विलासमय जीवन से वैषम्य का माल ये दृश्यत्रय निश्चय ही गौतम को सन्यास की ओर मोड़ने वाले थे।

संसार से गौतम का मन उच्यता देख कर शुद्धोधन का चिन्ता हुई और उन्होंने एक बार फिर गौतम को विलासिता की ओर लुभाने का प्रयास किया। एक रात वे अति सुन्दर वेश्याओं के मध्य अकेले छोड़ दिये गए। उन रमणियों ने अनेक हाव-भावा से गौतम को रिझाने का प्रयत्न किया। उन्मत्त गौतम के ऊपर उनका कोई प्रभाव न पड़ा और वे वहीं सो गए। गणिकाएं भी निद्रामग्न हो गईं। राजकुमार गौतम की नींद सहसा टूटी तो साफ-श्रृंगार विहीन गणिकाएं निद्रावस्था में उन्हें बड़ी विद्रुय तथा भयानक दिखाई दीं। किसी के बाल बिखरे थे, लगभग निर्वस्त्र थी और उनमें से कुछ भयावह खर्राटे भर रही थी। गौतम में संसार त्याग का भावना अब दृढ़ हो चुकी थी। अन्त में उन्होंने सांसारिक दुःखों से निवृत्ति का मार्ग खोजने के लिए अपनी पत्नी तथा शिशु को सोते हुए ही छोड़ कर 29 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर दिया इस घटना को बौद्ध साहित्य में महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है।

सांसारिक दुःख उन्मूलन के लिए ज्ञान की खोज की अभिलाषा में सिद्धार्थ अनेक आचार्यों के आश्रम में गए। इनमें एक धर्म आभार कालाम तथा दूसरे रुद्रक रामपुत्र। यहां सिद्धार्थ ने अनेक प्रकार के कठिन योगाभ्यास सीखे किन्तु संतोष नहीं हुआ। गौतम उरुवला पहुँचे। उन्हें वहां कौण्डिन्य आदि 5 ब्राह्मण मिले। तथा उन्होंने घोर तपस्या प्रारंभ की, अन्न-जल ग्रहण न्यूनतम कर दिया। वे सुख कर नर-कंकाल के समान हो गए किन्तु ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। अतः उन्होंने इस कठिन तपस्या को त्याग दिया और सुजाता नामक कन्या के हाथों भोजन ग्रहण किया।

इस कारण इन 5 ब्राह्मणों ने इनका साथ छोड़ दिया। उखेला के बाद वे गया चले गए और उस स्थान पर एक वट वृक्ष (पीपल) के नीचे ध्यान लगाया। आठ दिन की समाधि के उपरान्त 35 वर्ष की आयु में वैसाखी मास की पूर्णिमा की रात्री को उन्हें सच्च्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। इससे वे बौद्ध (ज्ञानी) अर्थात् बुद्ध कहलाए तथा गया 'बौद्ध गया' के रूप में विख्यात हो गया।

ज्ञान-प्राप्ति के बाद उन्होंने पहला उपदेश ऋषिपत्तन (सारनाथ) में पांच शिष्यों को दिया जो 'धर्म-चक्र परिवर्तन' के नाम से जाना जाता है। यहीं पर प्रथम बुद्ध संघ की स्थापना हुई। सारनाथ के बाद वे मगध गए जहां के शासक बिम्बिसार ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। अजातशत्रु, कौशल नरेश प्रसेनचित, धनी व्यापारी अनाथपिड़क इत्यादि के अतिरिक्त बुद्ध के पिता, मौसी, पत्नी व पुत्र ने भी इस धर्म को स्वीकार कर लिया। 40 वर्ष तक विभिन्न क्षेत्रों में प्रचार करते हुए, कुशीनगर में 80 वर्ष की अवस्था में उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

## बौद्ध धर्म की शिक्षाएं तथा सिद्धांत (Teaching & Principles of Buddhism)

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तुरंत बाद ही बौद्ध धर्म की पहली संगीति हुई। इसका उद्देश्य बुद्ध वचनों को सुरक्षित करना था। बौद्ध धर्म के बारे में हमें विशाद ज्ञान पालि त्रिपिटक से ही प्राप्त होता है। मूल बौद्ध धर्म कोई पृथक् दर्शन नहीं है क्योंकि महात्मा बुद्ध ने सतासंबंधी किसी प्रश्न पर कभी अपना विचार प्रकट नहीं किया। वे इस प्रकार के प्रश्नों पर होते वाद-विवादों का अनावश्यक समझते थे। अपने समय के तार्किकों के वाद-विवाद के पचड़े को देख कर महात्मा बुद्ध ने स्वयं अपने अनुयायियों से कहा था कि भिक्षुकों! इसे कहते हैं मतों में जा पड़ना, मतों की गहनता, मतों का कान्तार, मतों का दिखवा तथा मतों का बन्धन। इन मतों का बंधन में बंधा हुआ आदमी जिसने सदधर्म को नहीं सुना वह जनम, बुढ़ापे तथा मृत्यु से मुक्त नहीं होता। शोक से रोने-पीटने से पीड़ित होने से चिन्तित, होने से भी वह मुक्त नहीं होता। मैं कहता हूँ कि वह दुःख से पार नहीं होता। अतः आज जो कुछ भी बौद्ध दर्शन के नाम से प्रख्यात हैं। वह बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् विकास है। वह विशुद्ध मौलिक बौद्ध धर्म के अन्तर्गत नहीं आता।

बौद्ध धर्म का मूलाधार 'चार आर्य सत्य' है। इस धर्म के सारे सिद्धांत तथा बाद में विकसित विभिन्न दार्शनिक मत-वादों का ये ही आधार हैं।

- (i) जीवन में दुःख सत्य है। एवं क्षणिक सुखों को सुख मानना भी अदूरदर्शिता है।
- (ii) दुःख समुदाय-दुःख का कारण तृष्णा है, इन्द्रियों को जो वस्तुएं प्रिय लगती हैं, उनको प्राप्त करने की इच्छा तृष्णा है।
- (iii) दुःख निरोध-दुःखों से मुक्त होने के लिए उसके कारण के निवारण आवश्यक है। अर्थात् तृष्णा पर विषय प्रकृतियों का संयम मुक्ति पाई जा सकती है।
- (iv) दुःख निरोध-प्रतिपदा (दुःख निवारक मार्ग) अर्थात् अष्टांगिक मार्ग। दुःखों के निवारण एवं तृष्णा पर नियंत्रण के लिए निवारण प्राप्त करने का नाम अष्ट मार्ग (मध्य मार्ग) है।

बुद्ध के अनुसार जन्म भी दुःख है, जरा (वृद्धावस्था) भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, अप्रिय मिलन भी दुःख है, प्रिय वियोग भी दुःख है। संसार का दुःखमय देखकर ही बुद्ध न कहा था 'सब दुःख' अर्थात् सभी वस्तुएं दुःखमय हैं।

अष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित सिद्धान्त समहित हैं।

- (i) साम्बक दृष्टि : इसका अर्थ है इच्छा के कारण ही इस संसार में दुःख व्यापक है। इच्छा का परित्याग ही मुक्ति का मार्ग है।
- (ii) सम्यक संकल्प : यह लिप्सा और विलासिता से छुटकारा दिलाता है। इसका उद्देश्य मानवता को प्यार करना और दूसरों को प्रन्न रखता है।
- (iii) सम्यक् वाचन : मनुष्य को झूठ, निन्दा व अप्रिय वचन नहीं बोलने चाहिए तथा वाणी मृदु होनी चाहिए।
- (iv) सम्यक् कर्म : मनुष्य को हिंसा के कर्म पूर्ण रूप से संयमशील होने चाहिए जिसमें अहिंसा व इन्द्रियां संयम के अतिरिक्त, कर्म दान, सदाचार, दया इत्यादि का समावेश होना चाहिए।
- (v) सम्यक् जीविका : अर्थात् आदमी को ईमानदारी से अर्जित साधनों द्वारा जीवन-यापन करना चाहिए।
- (vi) सम्यक् प्रयास : इससे तात्पर्य है कि किसी की भी बुरे विचारों से छुटकारा पाने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण होना चाहिए। कई भी मानसिक अभ्यास के द्वारा अपनी इच्छाओं एवं मोह को नष्ट कर सकता है।
- (vii) सम्यक् स्मृति : इसका अर्थ है कि शरीर नश्वर है और सत्य का ध्यान करने से ही सांसारिक बुराईयों से छुटकारा पाया जा सकता है।
- (viii) सम्यक् समाधि : इसका अनुसरण करने से शान्ति प्राप्त होगी। ध्यान से ही वास्तविक सत्य प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्ध मत में कर्म के सिद्धांत पर बल दिया। वर्तमान का निर्णय भूतकाल के कार्य करते हैं। किसी व्यक्ति की इस जीवन और अगले जीवन की दशा उसके कर्मों पर निर्भर करती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता है अपने कर्मों को भोगने के लिए हम बार-बार जन्म लेते हैं। अगर कोई व्यक्ति किसी भी तरह का पाप नहीं करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। इस प्रकार बुद्ध के उद्देशों का अनिवार्य तत्त्व या सार 'कर्म दर्शन' है। बुद्ध के निर्वाण का प्रचार किया। उनके अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का भ्रन्तिक उद्देश्य है। इसका तात्पर्य है सभी इच्छाओं से छुटकारा, दुःखों का अन्त जिससे अन्ततः पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। इच्छाओं की समाप्ति की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी 'निर्वाण' पा सकता है। इसलिए, बुद्ध ने उपदेश दिया कि इच्छा समाप्त करना ही वास्तविक समस्या है। पूजा और बलि इच्छा को समाप्त नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार, वैदिक धर्म में होने वाले अनुष्ठानों एवं यज्ञों के विपरित बुद्ध ने व्यक्तिगत नैतिकता पर बल दिया।

बुद्ध ने न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा और न ही नकारा। वह व्यक्ति और उसके कार्यों के विषय में अधिक चिन्तित थे। बौद्ध मत ने आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया। बौद्ध धर्म मूलतः अनीश्वरवादी है। सृष्टि का कारण ईश्वर को नहीं माना गया है। तर्क यह है कि यदि ईश्वर को संसार का रचियता माना जाए तो उसे दुःख को उत्पन्न करने वाला भी मानना पड़ेगा। वास्तव में बुद्ध ने ईश्वर के स्थान पर मानव प्रतिष्ठा पर बल दिया। महात्मा बुद्ध के अनुसार मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है तथा उसे कर्मों का फल मिलता है। इसी आधार पर उसके भविष्य के जन्मों का निर्धारण भी होता है। उनके चिन्तन में आत्मा के अस्तित्व को नकारा गया है। वे स्पष्ट करते हैं कि जन्म आत्मा का नहीं बल्कि अनित्य मानव अहंकार का होता है, जिसका आधार मनुष्य के कर्म होते हैं।

महात्मा बुद्ध ने अपने चिन्तन में नैतिकता, मातृभाव व आत्मशुद्धि को संयुक्त रूप से रखा है एवं स्पष्ट किया है कि नैतिकता इंसान व पशु में अन्तर करती है जिससे मातृभाव बढ़ता है जो कि मानव समाज की एक आवश्यकता भी है। यह तभी संभव है जबकि व्यक्ति आत्मशुद्धि पर बल दे। महात्मा बुद्ध ने नैतिकता पर बल देते हुए आचरण के बारे में दस बातें अपनाने का सुझाव दिया जिसे दस शील कहा जाता है। अहिंसा, झूठ का परित्याग, चोरी न करना, वस्तुओं का संग्रह न करना, भोग विलासी न बनना, सुगन्धित पदार्थों का परित्याग, सबकी भलाई करना, किसी से घृणा न करना, मन को शुद्ध रखना, नशे का सेवन न करना। उनके इस उपदेश का सार बहुजन हिताय व बहुजन सुखाय पर आधारित है महात्मा बुद्ध ने समाज में प्रचलित सभी प्रकार के मिथ्या-आडम्बरों का विरोध किया। उनके अनुसार यज्ञ-बलि, तपस्या, मूर्ति-पूजा इत्यादि का खण्डन किया इसके अलावा उत्तरवैदिक काल में समाज को जिन चार वर्गों में विभाजित किया था, बुद्ध उसमें विश्वास व्यक्त करते हैं। इससे समाज में भेदभाव को बढ़ावा मिला। बुद्ध के अनुसार शूद्र व ब्राह्मण दोनों के लिए समान रूप से अष्ट-मार्ग का सिद्धांत निर्वाण का मार्ग है। कोई भी व्यक्ति जन्म के आधार पर छोटा अथवा बड़ा नहीं होता अपितु उसके कर्म इसका आधार होते हैं।

महात्मा बुद्ध के चिन्तन में विश्व के लिए नई व महत्वपूर्ण बात क्षणिकवाद का सिद्धान्त है। जिसके अनुसार संसार की सभी वस्तुएं क्षणिक (नश्वर) व निरन्तर परिवर्तनशील हैं। वे केवल प्रवाह रूप से स्थाई दिखती हैं, जैसे नदी का पानी सदैव बहाव में होता है। परन्तु किनारे से देखने वाले व्यक्ति को वह स्थिर दिखाई देता है। इसी प्रकार संसार भी हर क्षण परिवर्तनशील है। परन्तु हमें क्षण

भर में हो रहे परिवर्तन का आभास नहीं होता है। मनुष्य पदार्थों को स्थायी समझकर अपनी लालसा का हिस्सा बनाने की प्रवृत्ति बैठा है अतः मनुष्य को प्रकृति में चल रहे क्षणिक परिवर्तन को समझकर व्यर्थ की उलझनों में नहीं फसना चाहिए।

## बौद्ध मत का विकास (Growth of Buddhism)

बुद्ध के जीवन काल में ही बड़ी संख्या में लोगों ने बौद्ध मत को स्वीकार कर लिया था। उदाहरण के लिए मगध, काशिल और मगध की जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया। शाक्य, वज्जि और मल्ल जनपदों की जनता ने भी इसका अनुसरण किया। अशोक एवं कनिष्क ने बौद्ध मत को राज्य धर्म बनाया और मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और श्रीलंका में फैल गया। बौद्ध धर्म जनता के बड़े हिस्सों में लोकप्रिय होने के अनेक कारण थे। व्यावहारिक नैतिकता पर बल देना, मानव जाति की सहज स्वीकृत समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध मत की ओर आकर्षित किया। बौद्ध धर्म उस समय के अनुकूल था। लोहे के व्यापक प्रयोग ने कृषि अर्थव्यवस्था को विकसित किया। कृषि विकास ने पशुधन संरक्षण की आवश्यकता को जन्म दिया। बौद्ध धर्म अपने अहिंसा के सिद्धान्त द्वारा इस आवश्यकता को पूरा करता था।

गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने भी बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाया। उनकी बौद्धिकता ने शिक्षित वर्ग को उनके आकर्षक व्यक्तित्व व यागमय जीवन ने साधारण जन को अपनी तरफ आकर्षित किया। भिक्षुओं ने बौद्ध मत के विचारों को व्यक्त करने के लिए उस समय की लोकप्रिय भाषा पाली में किया। संस्कृत भाषा के प्रयोग करने के कारण ब्राह्मण धर्म सीमा में बंध गया था। क्योंकि संस्कृत भाषा उस समय की जन-भाषा नहीं थी। अतः बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी से हुआ। राजाओं के द्वारा संरक्षण प्रदान किये जाने के कारण बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी से हुआ। उदाहरण के लिए ऐसी धारणा है कि अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री सगमित्रा का श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। उसने बहुत से बौद्ध विहारों को स्थापित किया और संघ के लिए उदार भाव से दान आदि भी दिया। बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति को जीवन के सभी क्षेत्रों में सम्पन्न बनाया। धर्म के क्षेत्र में उसने मूर्ति पूजा को लोकप्रिय बनाया तथा संगठित जीवन को आरम्भ किया। नारी तथा शर्द्रों पर जो धार्मिक अपात्रता की भावना थी, उसे समाप्त कर सामाजिक समता का संदेश दिया गया। बौद्ध धर्म ने शिक्षा को सार्वलौकिक बनाया, विवेकवाद का प्रसार किया तथा नालन्दा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों को जन्म दिया। साहित्य के क्षेत्र में ज्ञान-विज्ञान व दर्शन को नागार्जुन, वसुमित्र, अश्वघोष, पार्श्वनाथ जैसे विद्वानों ने सम्पन्न बनाया। कला के क्षेत्र में सांची, भारहुत, बौद्ध गुफा, अमरावती के स्तूप बौद्ध स्थापत्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। मूर्ति-कला के क्षेत्र में गांधार शैली, मथुरा शैली तथा सारनाथ शैली का विकास हुआ। अजन्ता व बाघ गुफा चित्रों का चित्रण करने में बौद्ध धर्म व बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित विषयों को लिया गया। त्रूटिरहित रेखांकन, सशक्त अभिव्यक्ति तथा रंगों का सुन्दर समन्वय बौद्ध चित्रकला की मुख्य विशेषताएँ हैं।

## बौद्ध साहित्य (Buddhist Literature)

बौद्ध साहित्य मुख्यतः त्रिपिटकों में समाहित है।

इस साहित्य को तीन भागों में बांटा गया है :-

- सुत्त-पिटक : इसके पांच काय हैं जिनमें धार्मिक सम्भाषण तथा बुद्ध के संवाद संकलित हैं। पांचवें निकाय में नातक कथार (बुद्ध के जन्म से सम्बद्ध कहानियाँ) हैं।
- विनय-पिटक : इसमें भिक्षु-भिक्षुणियों के संघ, उनके दैनिक जीवन संबंधी नियमों का वर्णन किया गया है। इस पिटक का तीन भाग हैं। सुप्तविभाग, खन्दका एवं परिवार पाठ।
- अभिधम्म-पिटक : इसके सात भाग हैं। इसमें बुद्ध के दार्शनिक विचारों का विवरण है इसको प्रश्न-उत्तर के रूप में लिया गया है इसके अलावा दापवंश तथा महावंश- इसमें तत्कालीन भारत की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक दशा तथा श्रीलंका के राजवंश का वर्णन किया गया है। दोनों ग्रंथों की रचना श्रीलंका में पाली भाषा में की गई थी। मिलिन्दपन्ह नामक ग्रंथ में यूनानी शासक मिलिन्द तथा बौद्ध भिक्षु नागसेन ने दार्शनिक विषय को लेकर हुए वाद-विवाद का वर्णन किया गया है बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ तथा बुद्धकालीन धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का उल्लेख जातक कथाओं में किया गया है। यह पाली भाषा में लिखा गया है। संस्कृत में लिखित ग्रंथ महावस्तु में बुद्ध की अद्भूत शक्ति तथा बोधिसत्व की प्रतिष्ठा का वर्णन किया गया है।

### बौद्ध-संघ

संघ बौद्ध मत की धार्मिक व्यवस्था थी। यह अच्छी प्रकार से संगठित एवं शक्तिशाली संस्था थी और इसने बौद्धमत को लोकप्रिय बनाया। 15 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी नागरिकों के लिए इसकी सदस्यता खुली थी चाहे वे किसी भी जाति के हों। अंधबुद्ध, कुष्ठ रोगी तथा संक्रामक रोग से पीड़ित लोगों को संघ की सदस्यता नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिनाआ के संघ

की सदस्यता नहीं दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिलाओं को संघ का सदस्य बनाने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनके मुख्य शिष्य आनन्द एवं उनकी धाय मां महाप्रजापति गौतमी के लगातार निवेदन करने पद उन्होंने उनको संघ में प्रवेश दिया।

भिक्षुओं को प्रवेश लेने पर विधिपूर्वक अपना मुंडन कराना एवं पीले वस्त्र या गेरूए रंग का लिबास पहनना पड़ता था। भिक्षुओं से आशा की जाती थी कि वे नित्य बौद्ध मत के प्रचार के लिए जायेंगे और भिक्षा प्राप्त करेंगे। वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे एक निश्चित विस्तर लगाने तथा समाधि करते थे। इसका आश्रय या 'वशा' कहा जाता था। संघ लोगों को शिक्षा देने का काम भी करता था। ब्राह्मणों ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया था। उनको बौद्ध मत में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और इस प्रकार शिक्षा समाज के काफी तबकों में फैल गई। संघ का संचालन जनतांत्रिक सिद्धांतों के अनुसार होता था और अपने सदस्यों को अनुशासित करने की शक्ति भी इसी में निहित थी। यहां पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए एक आचार-संहिता थी और वे इसका पालन करते थे। गलती करने वाले सदस्य को दंडित कर सकता था।

### बौद्ध मत की सभायें (बौद्ध संगीति)

अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के थोड़े समय बाद 483 ई० पू० में राजगृह के पास सप्तपर्णि गुफा में बौद्ध मत की प्रथम सभा हुई इस सभा की अध्यक्षता महाकश्यप ने की, इसमें 500 बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया। इस संगीति का आयोजन तत्कालीन मगध नरेश अजातशत्रु के संरक्षण में हुआ। बुद्ध की शिक्षा को पिटकों में विभाजित किया गया, जिनके नाम इस प्रकार हैं— विनय पिटक और सुत्त पिटक। विनय पिटक की रचना उपात्ती के नेतृत्व में की गई और सुत्तपिटक की रचना आनन्द के नेतृत्व में की गई।

दूसरी बौद्ध संगीति, बौद्ध भिक्षुओं में उत्पन्न आपसी मतभेद को दूर करने के लिए 300 ई० पू० में वैशाली में कालाशोक के शासनकाल में हुई। इसमें लगभग 700 भिक्षुओं ने भाग लिया। पाटलीपुत्र तथा वैशाली के भिक्षुओं ने कुछ नियमों का निर्धारण किया परन्तु इन नियमों को कौशाम्बी व अवन्ति के भिक्षुओं के द्वारा बुद्ध की शिक्षा के प्रतिकूल घोषित कर दिया गया। दोनों विरोधी गुटों के बीच कोई भी समझौता कराने में सभा असफल रही। बौद्ध धर्म का विभाजन स्थायी तौर पर दो बौद्ध सम्प्रदायों— स्थविरवादी व महासांधिक में हो गया। पहले सम्प्रदाय ने विनय-पिटक में वर्णित रूढ़िवादी विचारों को अपनाया और दूसरे में नये नियमों का समर्थन किया और फिर उनमें परिवर्तन हुए।

तीसरी सभा का आयोजन अशोक के शासनकाल में मोग्गालिपुत्तिसस की अध्यक्षता में 247 ई० पू० में पाटली पुत्र में हुआ। इस संगीति में लगभग 1000 भिक्षुओं ने भाग लिया। इस सभा में सिद्धांतों को दार्शनिक विवेचना को संकलित किया गया तथा इसको अभिधम्म-पिटक के नाम से जाना जाता है। इस सभा में बौद्ध मत का असंतुष्टों एवं नये परिवर्तनों से मुक्त कराने का प्रयास किया गया।

चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के निकट कुण्डमावन ने कनिष्क के शासनकाल में हुआ। वसुमित्र इस सभा के अध्यक्ष व अश्वघोष उपाध्यक्ष थे। संगीति में उत्तरी भारत के हीनयान सम्प्रदाय को मानने वाले एकत्रित हुए। तीन पिटकों पर तीन टीकाओं (भाष्यों) इसने उन विवादग्रस्त मतभेद प्रश्नों पर निश्चय किया जो श्रावस्तीवासियों एवं कश्मीर तथा गन्धार के प्रचारकों के मध्य उत्पन्न हो गए थे।

### बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय

वैशाली में आयोजित दूसरी सीमा में बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया— स्थविरवादी व महासांधिक। स्थविरवादी धीरे-धीरे ग्यारह सम्प्रदायों और महासांधिक सात सम्प्रदायों में बंट गए। ये 18 सम्प्रदाय 'हीनयान' मत में संगठित हुए। स्थविरवादी कठोर भिक्षुक जीवन और मूल निदेशक कड़े अनुशासिकता नियमों का अनुसरण करते थे। वह समूह जिसने संशोधित नियमों को माना, महासांधिक कहलाया।

महायान सम्प्रदाय का विकास चौथी बौद्ध सभा के बाद हुआ। हीनयान सम्प्रदाय जो बुद्ध की रूढ़िवादी शिक्षा में विश्वास करता था, का जिस गुट ने विरोध किया और जिन्होंने नये विचारों को स्वीकार किया, वे लोग 'महायान' सम्प्रदाय के समर्थक कहलाये। उन्होंने बुद्ध की प्रतिमा बनाई और ईश्वर की भांति उसकी पूजा की।

### बौद्ध धर्म का पतन

जिस प्रकार बौद्ध धर्म का प्रारम्भ भारत में हुआ तथा यहीं से इसका विस्तार एशिया के अनेक भागों में हुआ उसी तरह इसका पतन भी पहले भारत में ही हुआ। मौर्य काल के पश्चात् इसे राजकीय संरक्षण काफी कम हो गया था। केलव कुछ पर्वतीय गुप्त राजाओं के अतिरिक्त गुप्त काल में बौद्ध धर्म का हास हुआ तथा ब्राह्मण धर्म पर भी अधिक ध्यान दिया गया। पूर्व मध्य काल में काल में बंगाल के पालो के अतिरिक्त कोई भी बड़ा साम्राज्य इसका संरक्षक नहीं बन पाया। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म में भी सुधार की प्रक्रिया शुरू हुई। ब्राह्मण धर्म में तो बुद्ध को विष्णु का एक अवतार मान लिया गया। इसके अतिरिक्त बौद्ध देवी तारा की भी पूजा की जाने लगी। हिन्दू देवी सरस्वती की पूजा बौद्धों ने शुरू कर दी। इसके अतिरिक्त पूर्व मध्य काल के हिन्दु धर्म के तांत्रिक आधार पर ही



बौद्ध धर्म का वज्रयान सम्प्रदाय बना। हिन्दु धर्म की तरह ही इसमें भी मिथ्या आडम्बरों की भरमार होनी शुरू हो गई तथा प्रारम्भ में ही यह हिन्दु धर्म के ब.जी समीप आ गया तथा हिन्दु धर्म के व्यापक समुद्र में यह धर्म अपने अस्तित्व को खोने लगा। ही एहो कस विदेशी आक्रमणों ने भी पूरी कर दी। बौद्ध धर्म के पतन के यों तो अनेक कारण हैं इनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :-

**राजकीय संरक्षण का कम होना :-** जैसा कि सर्वविदित है कि महात्मा बुद्ध के काल से ही बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता रहा। अशोक के काल तक पहुँचते-2 तो यह सीमा पर पहुँच गया। इसके विदेशों में प्रसार में भी अशोक का हाथ रहा। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद एक लम्बे अरसे तक इसे किसी भी बड़े राजवंश का संरक्षण नहीं मिला केवल पाल वंश ही इस धर्म का संरक्षक था। यह नहीं है कि इस बीच इसे राजकीय संरक्षण नहीं मिला। कुषाण काल में कनिष्क, गुप्त काल में नरसिंह गुप्त बालादित्य तथा गुप्तोत्तर काल में हर्षवर्धन ने इसे काफी संरक्षण दिया। परन्तु राजकीय सहायता की बैसाखियों पर चलने वाला यह धर्म भारत में इसकी कमी में अधिक दिन नहीं चल सका।

**आन्तरिक मतभेद :-** कुछ विद्यवान बौद्ध धर्म के पतन में इसके संघ के आन्तरिक मतभेदों को उत्तरदायी मानते हैं। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् बौद्ध धर्म में एकता समाप्त हो गई तथा यह धर्म कई शाखाओं में बंट गया। जैसे हीनयान तथा महायान बाद में वज्रयान इत्यादि सम्प्रदाय बन गए। इस मतभेद के कारण परस्पर ईर्ष्या बढ़ने लगी तथा इसका प्रभाव इस धर्म पर पड़ा। परन्तु इस धर्म के अन्त का यह कोई कारण नहीं है क्योंकि अधिक सम्प्रदायों के होना से तो धर्म का प्रसार अधिक होता है जैसा कि हिन्दु धर्म का हुआ। वास्तव में अनेकों सम्प्रदायों ने बौद्ध धर्म के प्रसार में काफी योगदान दिया। भारत में तो कई बौद्ध सम्प्रदाय हुए लक, तिब्बत, चीन, जापान इत्यादि में भी इस धर्म के अलग-2 सम्प्रदाय हुए जिनके कारण इस धर्म का पतन नहीं बल्कि प्रसार अधिक हुआ।

**बौद्ध संघ में भ्रष्टाचार :-** जैसा की सर्वविदित है कि राजकीय संरक्षण के कारण बौद्ध मतों में काफी धनधान्य आन लगा जिसके कारण भिक्षु तथा भिक्षुणियों ने सुख एवं वैभव का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। ये लोग संघ के कार्यों तथा लोगों में धर्म प्रचार से दूर होते चले गए बल्कि पारस्परिक झगड़ों एवं कलहों में अपना समय बिताने लगे। परिणामस्वरूप लोगों का विश्वास इन से उठता चला गया। दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म के आचार्यों को इनसे काफी लाभ हुआ तथा उनकी फुअ के कारण वे हिन्दु धर्म का प्रचार करने में अधिक सक्षम हो गए बौद्ध संघ के आन्तरिक मतभेदों की हानि इन्हे उठानी पड़ी। इसका अर्थ यह नहीं है कि संघ की ओर से कोई कोशिश नहीं की गई। समय-2 पर बौद्ध का प्रयत्न किया गया परन्तु अधिक सफलता नहीं मिली। इसके अतिरिक्त संरक्षक राजाओं ने भी इसके आपसी मतभेद दूर करने की कोशिश की। अशोक ने बौद्ध संघ में गड़बड़ी फैलाने वाले भिक्षु का सफाई कपड़े पहना संघ से निकालने तक की धमकी भी अपने अभिलेखों में दी है। हर्ष ने भी इसी प्रकार की सेवा बौद्ध संघ की थी।

**संघ में स्त्रियों का प्रवेश :-** सर्वप्रथम स्वयं महात्मा बुद्ध ने संघ में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित किया था परन्तु अपने प्रिय शिष्य आनन्द के कहने पर उन्होंने स्त्रियों को संघ में प्रवेश की आज्ञा तो दे दी परन्तु साथ ही यह भी कहा था कि जो धर्म 5 हजार वर्षों तक चल रहा था अब इस कारण से केवल 500 वर्षों में समाप्त हो कर रह जाएगा। कुछ विद्यवानों का मत है कि स्त्रियों के प्रवेश के कारण संघ में भिक्षुओं का नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया। इससे भिक्षुओं के आचरण एवं संयम को आघात पहुँच जिससे विहार का तात्त्विक बोध समाप्त हो गया। संघ में यद्यपि स्त्रियों के प्रवेश के साथ कठोर आचरण सम्बन्धी नियम बनाए गए थे परन्तु समय की दृष्टि से ये नियम टूटते चले गए तथा संघ में भिक्षु भिक्षुणियों में व्याभिचर का समावेश हो गया जिसका सीधा असर इसके पतन पर पड़ा।

**चिन्तकों एवं दार्शनिकों का आभाव :-** ऐसा माना जाता है कि बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त इस धर्म में कोई बड़ा चिन्तक एवं दार्शनिक उत्पन्न नहीं हुआ। इसके परिणाम स्वरूप समय-2 पर आए विकारों का सुधार करने में कोई सक्षम नहीं हुआ। जिसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म में निरन्तर पतन होता चला गया।

**झूठे आडम्बरों का धर्म में प्रवेश :-** यद्यपि बौद्ध धर्म का जन्म ही ब्राह्मण धर्म में पाए जाने वाले आडम्बरों के कारण ही हुआ था। इसी कारण महात्मा बुद्ध इनके उपदेशों को सरल तथा मिथ्या चारों से दूर रखा परन्तु धीरे-2 लोग बुद्ध के उपदेशों से दूर हटते चले गए तथा बौद्ध धर्म की पुरानी सरलता समाप्त हो गई। अब इस धर्म में भी बहुत से मिथ्या आडम्बर, तन्त्र मन्त्र, जादूटोनों इत्यादि का समावेश हो गया जिसके कारण यह धर्म स्थिर तथा जर्जर हो गया तथा धीरे-2 समाप्ति की ओर बढ़ने लगा।

**अन्य धर्मों से प्रतिद्वन्द्विता :-** कुछ विद्यवान बौद्ध धर्म की अवनति को इसकी अन्य धर्मों से प्रतिद्वन्द्विता को भी मानते हैं इन धर्मों में इसी काल में प्रारम्भ हुआ जो कि बौद्ध धर्म की तरह ही ब्राह्मण धर्म के reaction के रूप में शुरू हुआ यही नहीं बल्कि धर्मों में काफी समानता भी थी। इसी कारण अहुत से लोग जैन धर्म तथा अन्य सम्प्रदायों जैसे आजीवक निग्रथ इत्यादि की ओर भी आकृष्ट हो गए। इसका प्रभाव भी बौद्ध धर्म पर पड़ा।

**हिन्दु धर्म का उत्थान :-** बौद्ध धर्म के पतन के असली कारणों में एक है हिन्दु धर्म का पुनरुत्थान, इस धर्म में जो स्थिरता आ गई थी, जिसका कारण बौद्ध तथा जैन धर्मों का काफी आगे बढ़ गए थे, उसे दूर करने के लिए धर्माचारियों तथा सुधारकों ने प्रथम शुरु

कर दिए। शंकराचार्य, कुमारिलभट्ट, प्रभाकर तथा रामानन्द इत्यादि ने स्थान-2 पर जा कर न केवल हिन्दु धर्म का प्रचार कर कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की बल्कि बौद्ध विद्याओं भिक्षुओं धर्माचार्यों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित भी किया तथा इससे लोगों का बौद्ध धर्म की अपेक्षा हिन्दु धर्म की ओर आकर्षण बढ़ा। दूसरी ओर शुंग, गुप्त तथा अन्य बड़े-2 राजवंशों ने हिन्दु धर्म का भरपूर प्रसार किया तथा इस धर्म को राजकीय संरक्षण दिया इसके कारण राजकीय सहायता के समाप्त होने से बौद्ध धर्म पत्तोन्मुख हो गया।

**विदेशी आक्रमण :-** कुछ विद्यवान इस धर्म के पतन में विदेशी आक्रमणों को भी एक कारण मानते हैं। बौद्ध मठों में बहुत सा धन सोना इत्यादि था। जिसके कारण विदेशी आक्रमणकारियों ने इसके मठों को निशाना बनाया। सर्वप्रथम विदेशियों में हूणों द्वारा इस धर्म के विरुद्ध काम करने का नाम लिया जाता है। हूण राजा मिहिर कुल के बारे में यह सर्वविदित है कि उसने बहुत से बौद्ध भिक्षुओं को मारा तथा विहारों को गिरवा दिया। बाद के काल में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बौद्ध मठों, विहारों इत्यादि को निशाना बना न केवल धन की लूट पाट की बल्कि इन को ध्वस्त भी कर दिया। ऐसा बताया जाता है कि नालन्दा के विहार तथा पुस्तकालय में आग लगा दी गई जो महीनों जलती रही। इन आक्रमणों में बहुत से बौद्ध भिक्षु मृत्यु के घाट उतार दिए गए। बहुत से भिक्षु पहाड़ों की ओर भाग गए जहां पर उन्होंने बाद में धर्म प्रचार तथा प्रसार भी किया। इस प्रकार ये आक्रमण बौद्ध धर्म के लिए घातक सिद्ध हुए। परन्तु इस धर्म के अपना स्वरूप खोने का एक अन्य कारण भी है वह है इसका हिन्दु धर्म में धीरे-2 विलय हो जाना यद्यपि महात्मा बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व को नहीं स्वीकारा तथा न ही देवत्व को प्रोत्साहन दिया। परन्तु धीरे-2 धर्म के प्रभाव के कारण बौद्ध धर्म में भी देवत्व की स्थापना हो गई तथा देवी देवताओं की पूजा प्रारम्भ हो गई। बाद में तो बौद्धों ने स्वयं बुद्ध को ही एक अवतार मान लिया तथा इसे ईश्वर के रूप में पूजना शुरू कर दिया। बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की मूर्तियां बनने लगी तथा इनकी पूजा होने लगी। प्रारम्भ में बौद्ध धर्म तथा साहित्य में लौकिक भाषा का प्रयोग होता था परन्तु बाद में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होने लगा। तान्त्रिक आधार पर ही वज्रयान नामक शाखा बन गई। जादूटोने पूजा अर्चना, तन्त्र मन्त्र इत्यादि के प्रारम्भ होने से हिन्दु धर्म तथा बौद्ध धर्म में कोई अन्तर ही नहीं रह गया। इस कारण भी लोग अधिकतर हिन्दु धर्म की ओर आकर्षित हो गए तथा बौद्ध धर्म ने पुनः हिन्दु धर्म के अथाह समुद्र में अपना अस्तित्व खो दिया। भारत से ही प्रारम्भ हो यह धर्म अपनी जन्मभूमि में ही सर्व प्रथम समाप्त हो गया।

**बौद्ध धर्म के प्रभाव :-**

बौद्ध धर्म ने भारत ही नहीं बल्कि पूरे एशिया को प्रभावित किया। इसने भारतीय संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीतिक ही नहीं बल्कि आर्थिकता को भी प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति की सम्पन्नता में इस धर्म के कारण काफी अभिवृद्धि हुई तथा लोगों को जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण का विकास करने में काफी सहायता की।

**अहिंसा का सिद्धान्त :-** बौद्ध धर्म ने अहिंसा के सिद्धान्त पर काफी जोर दिया गया तथा अहिंसा को परम धर्म माना गया। इस उपदेश का भारत की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। अशाक जैसे नरेश ने तो युद्ध से विजय के स्थान पर धम्म विजय का ही अभियान चलाया। इसके कारण ही बाद में मार्ग काल की सैनिक शक्ति ही दुर्बल हो गई तथा मौर्यों का पतन तक हो गया बाद के राजाओं ने यद्यपि पूरी तरह युद्धों को तो तिलाजलि नहीं दी अपितु अहिंसा एवं लोकसेवा, सार्वजनिक कार्य इत्यादि का प्रोत्साहन दिया। इस धर्म के कारण ही एक जीवन पद्धति का विकास हुआ जो मनुष्य के व्यक्तिगत सदाचार पर आधारित थी इसमें अहिंसा, करुणा, त्याग इत्यादि नैतिक मूल्य थे।

**जाति पाति का अन्त :-** बौद्ध धर्म में जाति पाति का कोई स्थान नहीं था। जो भी व्यक्ति संघ या धर्म में प्रवेश करता था वह समान था। इसके कारण समाज में जाति पाति के प्रभाव का कम करने में यह धर्म काफी सहायक हुआ। इसी कारण इस धर्म का अधिक प्रसार भी हुआ क्योंकि हिन्दु धर्म में जाति पाति अचनीच छुआछूत इत्यादि बिमारियां थी जो इस धर्म में नहीं थी। फलस्वरूप देश में इन कुरीतियों से निजात पाने में काफी सहायता मिली। यद्यपि ये पूर्णतया समाप्त तो नहीं हुई।

**कला पर प्रभाव :-** बौद्ध धर्म का प्रभाव कला पर भी पड़ा। यह माना जाता है कि मूर्ति पूजा का प्रचलन बौद्ध धर्म के कारण ही हुआ क्योंकि सर्वप्रथम गान्धार कला में बुद्ध की सुन्दर प्रतिमाओं का निर्माण कर उनकी पूजा प्रारम्भ हुई। बाद में हिन्दु धर्म में भी मूर्ति पूजा प्रारम्भ हुई जिसने पुरानी आर्य-पूजा पद्धति का स्थान लिया।

**शिक्षा के क्षेत्र में :-** शिक्षा के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा। बौद्ध मठ एवं विहार शिक्षा के केन्द्रों के रूप में भी काम करते थे। प्रसिद्ध नालन्दा विहार तो एक बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था जहां न केवल भारत ही अपितु विदेशों से भी छात्र आकर पढ़ते थे।

**मठ प्रणाली का प्रारम्भ :-** बौद्ध धर्म ही मठ प्रणाली के जन्म दाता थे। इससे पूर्व हिन्दु धर्माचार्य इत्यादि वनों में जाकर तपस्या मनन चिन्तन इत्यादि करते थे। परन्तु बौद्ध मठ प्रणाली में भिक्षु परस्पर बन्धुत्व से एक आचार्य के आधीन एक अनुशासित जीवन व्यतीत कर पठन पाठन मनन चिन्तन करते थे। जिससे ने केवल दर्शन बल्कि शिक्षा तथा संस्कृति भी समृद्ध हुई।

**गणतन्त्रात्मक विचारों को बल :-** महात्मा बुद्ध का जन्म एक गणतन्त्रात्मक राज्य में हुआ था। इसी कारण उन्होंने अपने संघ का

स्वरूप भी इन्हीं सिद्धान्तों पर दिया जहां खुली बहस, बहुमत पर आधारित निर्णय, न्याय का महत्त्व तथा बहुकल्याण पर ध्यान दिया जाता था। इस कारण भारत में भी इसी तरह की कल्याणकारी सबसे सहयोग से चलने वाली सरकार का गठन हो सका।  
दर्शन पर प्रभाव :- भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म का अमिट प्रभाव प्रभाव पड़ा। दर्शन के क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव शंकराचार्य के शुन्यवाद का प्रभाव शंकराचार्य के मायावाद पर पड़ा। दोनों विद्यवानों की कुछ समानताओं को देखकर ही कुछ वर्षों में शंकराचार्य पर प्रच्छन्न बुद्ध होने तक का आरोप लगाया था।

**साहित्य पर असर :** बौद्ध धर्म ने धार्मिक प्रचार की प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया। इसके कारण अनेक भारतीय विद्यवान नन्द, अशोक, तिब्बत चीन लंका इत्यादि गए। उनके माध्यम से दोनों पक्षों की भाषाओं में अनेक ग्रन्थ अनुपादित हुए जिसके परिणाम स्वरूप साहित्य में उन्नति हुई। विदेशी यात्रियों जैसे फाह्यान, ह्यूनसांग इत्सिंग इत्यादि ने भारत का भ्रमण किया वे अपने साथ बहुत से बौद्ध ग्रन्थ ले गए जिन्हें चीनी में अनुवाद किया। उनके द्वारा लिखे गए ग्रन्थों से हमें उस काल के इतिहास पर बहुमूल्य प्रकाश पड़ता है।

**आर्थिक प्रभाव :-** बौद्ध धर्म के प्रकार के लिए बौद्ध भिक्षुओं ने भारत के कोने-2 में भ्रमण तथा यातायात के रास्तों का पता लगाया तथा साधनों को सुलभ किया। एक स्थान से दूसरे स्थान से न केवल सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हुए बल्कि आर्थिक सम्बन्ध भी स्थापित हुए। इसी प्रकार विदेशों से सम्बन्धों का प्रभाव व्यापार एवं वाणिज्य इत्यादि पर भी पड़ा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म का भारत के विभिन्न पहलुओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनके भिक्षुओं के एक स्थान से दूसरे स्थान में भ्रमण के कारण भारत की पृथकता का अन्त हुआ तथा देश के अन्य लोग भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगे जिससे भारत की राजनैतिक एकता को बल मिला।

### आजीविक सम्प्रदाय

**आजीविक :-** छठी शताब्दी में बौद्ध तथा जैन धर्म के अतिरिक्त एक अन्य सम्प्रदाय भी था जिसका कोई दो हजार वर्ष का इतिहास है। इस काल के प्रमुख नाशिक सम्प्रदायों में (heretical sects) में इसका प्रमुख स्थान है। ऐसा माना जाता है कि इस सम्प्रदाय का प्रारम्भ नन्दवच्छ द्वारा स्थापित किया गया तथा उनके पश्चात् इसके प्रमुख किंस संकीच्छ (Kisa Sanikichchha) बल परन्तु इसके बाद गोसाल के काल में इस सम्प्रदाय का काफी विस्तार हुआ। अवन्ति से अंग तक इस सम्प्रदाय का इतना प्रसार हुआ कि दोनों बुद्ध तथा जैन धर्म को इससे खतरा उत्पन्न हो गया इसीलिए बुद्ध तथा महावीर दोनों ने ही गोसाल तथा उसके सम्प्रदाय को खुले रूप में तो आलोचना की परन्तु इसके कुछ नियमों एवं सिद्धान्तों को चुपके से अपना भी लिया। अशोक के काल में तो आजीविकों को काफी संरक्षण दिया गया जिसका पता हमें उसके अभिलेखों से लगता है। अशोक के पोते दशरथ ने तो आजीविकों का कई गुफाएँ इत्यादि बनवा कर दी। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व पतंजलि ने भी इस सम्प्रदाय के बारे में संदर्भ दिए तथा बौद्ध ग्रन्थ मलिनदपञ्चा में भी इसका वर्णन है इस भाग्यवादी (Fatalistic) सम्प्रदाय के अनुसार सभी कुछ बिना किसी कार्य (non-performance) के भी पूर्ण सिद्धी प्राप्त (perfect) हो जाती है तथा एक अन्य सामान्य नैसर्गिक तथा अध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया भी है जिससे जन्म मरण के अनेक चक्रों से मुक्ति सकती है। यह सिद्धान्त क्रियावादिनों के विपरीत था जो यह मानते थे कि मनुष्य की सामाजिक सिद्धी के लिए नैतिक कार्यों का होना आवश्यक है।

यद्यपि कोई आजीविक साहित्य पूर्ण रूप से हमें प्राप्त नहीं होता परन्तु जहां तहां कुछ संदर्भों की सहायता से जो कि बौद्ध तथा जैन साहित्य में मिलते हैं, इस सम्प्रदाय के बारे में हमें ज्ञान होता है। इस सम्प्रदाय का घोर तपस्या, एकान्त प्रियता जीवन की सुख आनन्द को त्याग, घोर आत्मसंयम, शालीनता रहित जीवन इत्यादि कठोर नियमों के कारण अधिक लोग इस धर्म की ओर आकर्षित नहीं हो पाए तथा धीरे-2 यह अपना वर्चस्व खोता चला गया। परन्तु फिर भी छठी शताब्दी में वराहमिहिर के काल तक यह चलता रहा तथा हर्ष काल (सातवीं शताब्दी) में भी इस सम्प्रदाय के लोगों को एक दण्डिन कहा जाता था क्योंकि लोग अपने हाथ में डंडा लेकर चलते थे। कभी-2 तो इन्हें बौद्ध या जैनों के साथ भी जोड़ा जाता था जैसा कि दक्षिण भारतीय अभिलेखों तथा तमिल लेखकों के लेखों में मिलता है। बृहद्जातक के टीकाकार उत्पल ने आजीविकों को नारायणाश्रितों में रखा है तथा बाद के काल में आजीविक सम्प्रदाय के लोग वसुदेव के मानने वालों से ही मिल कर रह गए। जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र में वर्णन है कि आजीविकों ने अपने कार्य क्षेत्र को बदल कर बाद के काल में विन्ध पर्वत की तलहटी में पुण्ड्र क्षेत्र में बना लिया तथा उन्होंने अपने सम्प्रदाय में बहुत से वैदिक तथा गैर वैदिक देवी देवताओं का भी मिला। इनमें से दो थे पुण्ड्र (पूर्णभद्र) तथा मणिभद्र (मणिभद्र)। पवाय अभिलेख (स्थल नाम 2 ईसा पूर्व) में मणिभद्र भक्तों का संदर्भ है जिन्हें आदर से भागवत उपाधि भी की जाती थी। मणिभद्र को कुबेर का मुख्या प्रहारी माना जाता है। तथा धीरे-2 ये लोग कुबेर वैश्रवण होने लगे तथा कालान्तर में ये वैश्रवण धर्म के अनयायी बन कर रह गए।

गौतमी पुत्र शातकर्णी केवल एक महान सेनानायक ही नहीं था अपितु एक महान शान्ति पूत भी था। उसने अनेक युद्धों को सुधार करते हुए तत्कालीन कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उसने सभी जाति तथा वर्ण के लोगों को



के लिए निरन्तर प्रयास किए चाहे फिर वे द्विज हों अथवा अवर (निम्न जाति) हों। उसने अपने काल में वर्णसंकर अथवा चारों वर्णों के मिश्रण पर प्रतिबन्ध लगा दिया। गौतमी पुत्र शातकर्णी के मृदु स्वभाव, न्यायप्रियता, बलिष्ठ शरीर, निर्भिकता तथा सदाचार आदि गुणों के आधार पर यह माना गया है कि वही विक्रमादित्य था परन्तु यह तुलना त्रुटिपूर्ण है क्योंकि गौतमी पुत्र ने कभी भी विक्रमीसंवत् का प्रयोग नहीं किया। साथ ही उसकी उपाधि वर-वरण-विक्रम-चारु-विक्रम केवल यह इंगित करती है कि वह बहुत सुन्दर था न कि यह कि वह विक्रमादित्य के समतुल्य था। इसी प्रकार कुछ विद्वानों का यह मत कि गौतमी पुत्र शातकर्णी ने अपने पुत्र वशिष्ठ पुत्र पुलुमाई (पुत्रुमावि) के साथ-2 शासन किया भी गलत प्रतीत होता है क्योंकि हमें अभी तक कोई ऐसा सिक्का अथवा शिलालेख नहीं मिला है जिस पर कि इन दोनों का नाम साथ-2 अंकित हो।

### पुलुमाई द्वितीय

(96-119 ई.) गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र वशिष्ठ पुत्र सामी-श्री पुलुमायी (पुलुमावी) अथवा पुलुमायी द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके शासन काल 96 ई. से लेकर 119 ई. तक सातवाहन साम्राज्य अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था। पुलुमायी द्वितीय ने अपने पिता से प्राप्त साम्राज्य को केवल सुरक्षित ही नहीं रखा अपितु उसका विस्तार भी किया। उसके सिक्कों से यह पता चलता है कि उसने दक्षिण भारत में भी अपने साम्राज्य का विस्तार किया तथा आन्ध्रदेश में अपना प्रभुत्व जमा लिया। उसने नवनगर नामक शहर की भी स्थापना की तथा साथ ही नवनगर स्वामी, महाराज तथा दक्षिण पथिश्वर जैसी उपाधियां भी धारण की। हमें विभिन्न स्थानों से बहुत अधिक मात्रा में उसके सिक्के मिले हैं। उसका काल आर्थिक समृद्धि का काल था तथा उसे अमरावति के स्तूप का विस्तार एवं सौन्दर्यीकरण करने वाले राजा के रूप में भी जाना जाता है। वह इतना विख्यात था कि टोलोमी ने भी अपनी पुस्तक में उसे **रीरोपोलीमेइयू** कहते हुए वैथान अथवा पैतान (प्रतिष्ठान- जो कि सम्भवतः उत्तर कालीन सातवाहनों की राजधानी थी) का राजा बनाया है। यद्यपि रैपसन ने कन्हेरी शिला लेख में वर्णित वशिष्ठ पुत्र श्री शातकर्णी के नाम तथा चैष्टन के पौत्र रुद्रदमन के जूनागढ़ शिलालेख में पाए गए। एक सन्दर्भ, जिसमें यह उल्लेख है कि पुलुमायी ही वह शातकर्णी था जिसे रुद्रदमन ने दो बार हराया था, के आधार पर पुलुमायी द्वितीय को महाक्षत्रप रुद्रदमन का जामाता बताया है तथापि यह कपोलकल्पित ही लगती है कि पुलुमायी द्वितीय ने अपने समकालीन शकक्षत्रप चष्टन की परपौत्री से विवाह किया हो। डा. गोपालाचारी भी इस दूसरे मत को ही प्रतिपादित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पुलुमायी द्वितीय के शासन काल के अन्तिक वर्षों में शक महाक्षत्रप चष्टन ने अपनी शक्ति को बढ़ाना आरम्भ कर दिया तथा उसने कच्छ एवं सिन्धु-सौवीर प्रदेशों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसके साथ ही इस शक महाक्षत्रप ने कुकुर, सौरत, अवन्ति तथा अकर आदि प्रदेशों को भी पुनर्विजित कर लिया।

### श्री शातकर्णी (120-149 ई.)

पुलुमायी द्वितीय के उपरान्त वशिष्ठ पुत्र श्री शातकर्णी नया शासक बना। इस शासक का नाम वायु-पुराण में आया है, जिसने इसके शासन काल को 29 वर्ष लम्बा बताया है। यह शातकर्णी शासक शक महाक्षत्रप रुद्रदमन का जामाता था। इस शासक के सिक्के बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं जिनमें से 600 तो केवल अकोला से ही मिले हैं।

### शिवश्री पुलुमायी III (150-156 ई.)

सातवाहन वंश का अगला शासक शिवश्री पुलुमायी बना। डा. गोपालाचारी के अनुसार यह शासक पुलुमायी द्वितीय का पौत्र था तथा सम्भवतः यही वह शातकर्णी शासक था, जिसे रुद्रदमन ने दो बार हराया था। यद्यपि इन युद्धों में रुद्रदमन सातवाहनों से अनूप एवं अपरान्त प्रदेशों को छीनने में तो सफल हो गया परन्तु वह अस्सक, मूलक तथा कुन्तल प्रदेशों को जीत न सका।

### श्री शिवखद शातकर्णी

शिवश्री पुलुमायी तृतीय के उपरान्त श्री शिवखद शातकर्णी (पुराणों के शिव स्कन्ध का परिवर्तित रूप) सिंहासना रुढ़ हुआ उसका राज्यकाल छोटा था तथा उसने 157 ई. से लेकर 159 ई. तक शासन किया।

### श्री यज्ञ (160-189 ई.)

श्री यज्ञ अथवा यज्ञश्री शातकर्णी सातवाहनों का नया शासक बना। यह सातवाहनों का अन्तिम महान् शासक था। दो कन्हेरी लेखों, एक नासिक लेख तथा दो गुण्टूर लेखों से यह पता चलता है कि श्री यज्ञ का साम्राज्य ब्रगाल की खाड़ी से ले कर अरब सागर तक फैला हुआ था तथा पूर्वी और पश्चिमी दक्कन उसके साम्राज्य के हिस्से थे। परगोटियर के अनुसार कुछ पुराणों की इस शासक के काल में पुनर्व्याख्या हुई। यज्ञश्री सम्भवतः वही शासक था जिसे बाणभट्ट ने त्रिसमुद्राधिपति कहा है तथा जो महान् भिक्षु नागार्जुन का मित्र था। ऐसा प्रतीत होता है इस शासक ने जल परिवहन तथा नौ सैनिक गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया। इसका प्रमाण उसके एक पाए गए सिक्के से मिलता है, जिसके एक ओर एक दो पताका वाला जलपोत, एक मछली तथा एक शंख के चित्र अंकित हैं। श्री यज्ञ के बहुसंख्य सिक्के हमें प्राप्त हुए हैं, ये सिक्के गुजराज, काठियावाड़, सोपारा, अकोला तथा गोदावरी तथा कृष्णा के तटीय प्रदेशों से मिले हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि यज्ञश्री का साम्राज्य काफी विशाल था। परन्तु यज्ञश्री के शासन का अन्तिम काल सातवाहनों के पशमय का काल साबित हुआ। अमीरों ने दक्कन की एकता को नष्ट कर दिया तथा नासिक के आसपास के दोनों को सातवाहनों से छीन लिया।



## स्वामी शकसेन

श्रीयज्ञ के पश्चात माधरी पुत्र स्वामी शकसेन सातवाहन शासक बना। उसके कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर सिंह तथा शकसेन के चित्र हैं। इस शासक के बाद हमें एक अन्य राजा विजय के बारे में पता चलता है जिसने सातवाहन राज्य पर 6 वीं शताब्दी के अन्त में मृत्यु के पश्चात, वशिष्ठ पुत्र श्री चण्डशातकर्णी गद्दी पर बैठा जिसने दस वर्षों तक शासन किया।

पुलुमायी चतुर्थ (IV) सातवाहनों की मुख्य शाखा का अन्तिम शासक था। परन्तु हमें उसके साम्राज्य के आन्ध्र देश में विस्तार का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दरअसल यज्ञश्री शातकर्णी के उत्तराधिकारी केवल नाम मात्र के ही शासक थे तथा उनके काल में मौर्य शक्ति का बड़ी विप्लवकारी प्रभाव हुआ। जहाँ अमीरों ने सातवाहनों से महाराष्ट्र को छीन लिया, वहीं इक्ष्वाकुओं तथा पल्लवों ने इसके पूर्वी क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया।

### सातवाहन काल में दक्कन की स्थिति :-

**राजनैतिक अवस्था :-** यद्यपि सातवाहनों के विषय में हमारे स्रोतसीमित हैं फिर भी सातवाहन काल के शिलालेखों, सिक्कों तथा साहित्य से प्राप्त जानकारियों से हम सातवाहन काल की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का भली भाँति अनुमान लगा सकते हैं। यदि राजनैतिक अवस्था की बात की जाए तो यह कहना होगा कि सातवाहन शासन बड़ा साधारण था तथा यह धर्मशास्त्रों में वर्णित धारणा पर आधारित था। सातवाहनों ने राजतान्त्रिक प्रणाली को अपनाया हुआ था तथा राजा का पद वंशानुगत था। यद्यपि सातवाहन शासक एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे फिर भी हमें सत्ता के लिए संघर्ष तथा साम्राज्य के विभाजन आदि का कोई प्रमाण नहीं मिलता। सातवाहन शासकों ने केवल राजा की ही उपाधी धारण की तथा साधारणतया राजत्व के दैविक सिद्धान्त को नहीं माना। राजा के पुत्र 'कुमार' कहलाते थे तथा उसका सबसे बड़ा पुत्र युवराज कहलाता था। यद्यपि सातवाहन राजाओं के नामों से ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन राजतन्त्र मातृ तन्त्रात्मक था तथापि यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि एक राजा की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र ही राजसिंहासन सम्भालता था।

पूरा सातवाहन साम्राज्य जनपदों में विभक्त था। एक जनपद में कई आहार होते थे तथा यह आहार पल्लव काल के राष्ट्र अथवा आधुनिक जिले के समतुल्य हैं। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी।

**सामाजिक अवस्था :-** सातवाहन समाज चार अलग श्रेणियों में विभक्त था। महाभोज, महारथी तथा महासेनापति जो कि एक राष्ट्र अथवा जिले का प्रशासन सम्भालते थे, का स्थान समाज में सबसे ऊँचा था। दूसरी श्रेणी में अमात्य, महामात्य, भण्डागारिक, नैगम, (व्यापारी) सार्थवाह (व्यापारियों का मुखिया) तथा श्रेष्ठी (व्यापारिक श्रेणी का मुखिया) आते थे। वैद्य, लेखक, सुवर्णकार, गन्धिका (इत्र बेचने वाले) तथा हलकिया (किसान) — इनको मिला कर तीसरी सामाजिक श्रेणी बनती थी। सातवाहन समाज में चौथा तथा सबसे निम्न स्थान मालाकार (माली), वर्धकी (खाती), दासक (मछुआरा) तथा लोह वणिज (लुहार) आदि लोगों को प्राप्त था। सातवाहन समाज में कुल का मुखिया **कुटुम्बी** अथवा **गृहपति** कहलाता था तथा उसे अनेकों विशेषाधिकार प्राप्त थे।

**धार्मिक अवस्था :-** सहनशील सातवाहन शासकों ने हिन्दु तथा बौद्ध दोनों ही धर्मों को संरक्षण प्रदान किया। सातवाहन शासक स्वयं ब्राह्मण थे तथा उन्होंने ब्राह्मण काल में राजसूय, अश्वमेध, आपतौर्याम, आगन्यधेय आदि यज्ञों के उल्लेख से भी ब्राह्मण धर्म के उत्कर्ष का पता चलता है। सातवाहन काल में शिव तथा कृष्ण काफी प्रसिद्ध हो गए थे तथा इनके अतिरिक्त संकर्षण, वासुदेव, सूर्य, चंद्रमा, इन्द्र तथा स्कन्ध आदि देवताओं की भी उपासना होती थी।

दक्कन से प्राप्त लगभग सभी गुफाएं साधारणतया बौद्ध धर्म को समर्पित हैं तथा इनको मूलतः सातवाहन काल में ही उत्कीर्ण कराया गया था। यह गुफाएं दो प्रकार की हैं :- चैत्य गृह अर्थात् बौद्ध पूजा स्थल तथा लयण अर्थात् भिक्षुओं का निवास स्थान। इस काल में बौद्ध धर्म के उत्थान का प्रमाण भट्टी प्रोल, अमरावति, गोली तथा घण्ट शाल आदि स्थानों पर बौद्ध स्तूपों के निर्माण से भी मिलता है।

**आर्थिक अवस्था :-** इस काल में व्यापारिक श्रेणियों का बहुत अधिक महत्व था। सातवाहन समय में हमें धानिकों, कुम्हारों, कालिकों (बुनकर) वंसकारों (बांस का काम करने वाले) आदि के संग अथवा श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। समान व्यावसायिक लोगों को एक जुट करने के अतिरिक्त ये श्रेणियाँ बैंकों के रूप में भी काम करती थी जिनमें ब्याज के ऊपर धन (अक्षयनिधि) का निवेश किया जा सकता था। यदि इस काल की मुद्रा की बात की जाए तो यह पता चलता है कि चान्दी तथा ताम्बे के **कार्षापण** तथा सोने के **सुवर्ण** प्रचलित थे। सातवाहन काल का एक **सुवर्ण** सिक्का चान्दी के 35 कार्षापण के बराबर था। इस काल में व्यापार वाणिज्य का भी विकास हुआ तथा हमें विभिन्न श्रोतों से यह पता चलता है कि पश्चिमी देशों से आए माल से लदे जहाज भड़ौच, सोपारा तथा कल्याण की बन्दरगाह पर रुकते थे। सातवाहन राज्यकाल में तगर तथा पैठान आन्तरिक व्यापार के दो मुख्य केन्द्र थे।

सातवाहन काल भारतीय कला की उन्नति के लिए भी विख्यात है। आन्ध्र प्रदेशों में गोली, भट्टीप्रोल, घण्टशाल, नागार्जुन कोण्डा तथा अमरावति से प्राप्त सातवाहन काल के अनेकों स्तूप तथा प्रतिमाएं इसकी साक्षी हैं। चित्रकला के क्षेत्र में भी यह माना जाता है कि अजन्ता स्कूल का प्रारम्भ भी सातवाहनों के साथ ही हुआ। इस का प्रमाण हमें गुहा नं. X मिलता है। जिसे कि दूसरी शताब्दी ई. पू. माना जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में भी सातवाहनों का योगदान अद्वितीय है। सातवाहन शासक हाल ने इसी काल में प्राकृत भाषा में गथा सप्तशती की रचना की। लगभग इसी समय गुणाढ्य ने भी प्राकृत ही में बृहदकथा लिखी। परन्तु यह बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि सातवाहन शासक जो कि ब्राह्मण थे उन्होंने संस्कृत भाषा को त्याग कर प्राकृत भाषा को अपनाया।

जो भी हो सातवाहन शासकों ने लगभग 450 वर्षों तक मध्यभारत एवं दक्कन को राजनैतिक एवं प्रशासनिक एकता प्रदान कर समानता तथा आर्थिक स्थिरता प्रदान की।

### सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की दशा

ईसा से चोर्थ सदी पूर्व विश्व इतिहास में एक बहुत महत्वपूर्ण घटना हुई वह था सिकन्दर का उदय। युनानी साम्राज्य में में एथेन्ज तथा स्पार्टा के वर्चस्व की समाप्ति के पश्चात मकदूनिया के एक छोटे से नगर राज्य का उदय प्रारम्भ हुआ। फिलिप के काल तक पहुँचते-2 इस राज्य ने अपने आस पास के सभी राज्यों को हरा कर एक बड़ा साम्राज्य खड़ा कर लिया। फिलिप के पुत्र सिकन्दर ने इस साम्राज्य को और भी बढ़ाया तथा पश्चिमी विजयों के पश्चात् उसने अपना ध्यान पूर्व की ओर किया तथा 326 ई. पूर्व में वह भारत के उत्तरपश्चिमी क्षेत्र तक आ पहुँचा। युनानी इतिहासकारों ने इस आक्रमण के बारे में विस्तार से लिखा है जबकि भारतीय साक्ष्यों में इसका वर्णन नहीं के बराबर है। भारत में उस समय नन्दों का एक बड़ा शक्तिशाली साम्राज्य था परन्तु पंजाब, सीमान्त प्रदेश उत्तर पश्चिमी भारत के अंग इसमें सम्मिलित नहीं थे। नन्दों के वर्चस्व से दूर ये छोटे-2 राज्य जिनमें अधिकतर गणराज्य थे अपस में संघर्षरत थे इस कारण उत्तरपश्चिमी भारत की दशा असंतोषजनक थी। विदेशी आक्रमण के समय परं भी ये इक्ठे थिल उसका सामना नहीं कर सके। साथ ही कुछ राज्यों ने तो सिकन्दर का साथ दे उससे काम को आसान भी बना दिया। उस समय के प्रमुख राज्य निम्नलिखित थे :-

1. **अस्पेशियन** :- अक्सिग, कुनार और वजौर घाटियों में इनके राज्य थे जिनका समीकरण अश्वघ से किया जाता है। सर्वप्रथम इनका ही मुकाबला सिकन्दर से हुआ। इन लोगों ने अपनी राजधानी छोड़ पहाड़ों की गुफाओं में शरण ली। इसके पश्चात् सिकन्दर ने वजौर घाटों में प्रवेश किया।
2. **गुरेईअन** :- पंजकोर नदी की घाटी में रहने वाली यह जाति अस्पेशियन तथा अस्केशियन के मध्य रहती थी।
3. **अस्केनोस या अस्केशियन** :- इनका क्षेत्र सिन्धु नदी के पश्चिम में था तथा मालकन्द दर्रे के समीप मस्सग नामक नगर इनकी राजधानी था। ऐसा बताया जाता है कि इनकी सेना में बीस हजार घुड़सवार, तीस हजार पैदल सैनिक तथा तीस हाथी थे।
4. **नीसा** :- काबुल तथा सिन्धु के बीच का पर्वतीय क्षेत्र नीसा का राज्य था जो कि एक गणराज्य था। ऐरियन का कहना है कि यहां के निवासी भारतीय न होकर डायोनिसस के साथ आए हुए लोगों के वंशज थे।
5. **प्यूकेलाटिस** :- काबुल से सिन्धु के मार्ग के बीच पड़ने वाला यह राज्य पुष्कलावती था जो पेशावर के समीप स्थित था यह गान्धार की राजधानी रहा है। सिकन्दर के आक्रमण के समय यहां का राजा अस्तमहस्ति या अष्टक था।
6. **तक्षशिला** :- यह राज्य सिन्धु तथा झेलम नदियों के बीच स्थित था। स्ट्रैवो ने इस राज्य को एक सुशासित राज्य बताया है जिसकी राजधानी गंधार की राजधानी के पूर्वी भाग में थी।
7. **अरसेक्स या अरसक** :- इसे उरशा राज्य की संज्ञा भी दी गई है यह आधुनिक हजारा जिला तथा कम्बोज का एक भाग था।
8. **अमिसार** :- इस राज्य में आधुनिक काश्मीर तथा उत्तरपश्चिमी भारत का कुछ क्षेत्र थे। उरशा की भांति यह भी कम्बोज के कुछ क्षेत्र का ही भाग था।
9. **पोरस राज्य या पुरुराज** :- झेलम तथा चेनाब नदियों के बीच गुजरात तथा शाहपुर क्षेत्र इस राज्य में थे। स्ट्रैवो के अनुसार इस विशाल राज्य में 300 नगर थे। यहां के राजा युनानियों ने पोरस कहा था। डायोडोरस का कथन है कि इसकी सेना में पचास हजार सैनिक, तीन हजार घुड़सवार, एक हजार से अधिक रथ तथा एक सौ तीस हाथी थे।
10. **ग्लौगनिकाई या ग्लानिकाई** :- चेनाब नदी के पश्चिम में स्थित इस राज्य में अनेक समृद्ध नगर थे। ऐसा बताया गया है कि इनमें कुछ नगरों की जनसंख्या दस हजार से भी अधिक थी।
11. **गान्दरिज या गैण्डरिज** :- चेनाब तथा रावी नदियों के मध्य स्थित यह राज्य था। जो कि इस काल में अधिक महत्वपूर्ण न था।
12. **अद्रेस्ताई** :- रावी के पूर्व में स्थित यह राज्य शायद महाभारत में वर्णित आद्रिज ही था। इसकी राजधानी पिम्प्रम थी।
13. **कठोई या काठ** :- झेलम तथा चेनाब के मध्य कठ या काठ नामक जाति रहती थी। गणतन्त्रात्मक शासन वाली यह जाति युद्ध में निपुण थी। कुछ इतिहासकार इस जाति को रावी तथा चेनाब के बीच के क्षेत्र में रखते हैं।
14. **सौभूति वा सौभूमि राज्य** :- यह राज्य झेलम के समीप के क्षेत्र में था। स्ट्रैवो के अनुसार इस राज्य में झेलम से सिन्धु तक का क्षेत्र था। कर्तियस का कहना है कि यहां के लोग नियमित जीवन बिता रहे थे तथा यहां का शासन काफी अच्छा था।

**15. फेगलस** :- इस गणतन्त्रात्मक राज्य का क्षेत्र रावी तथा ब्यास नदियों के बीच स्थित था। यह शायद संस्कृत का शब्द 'वृक्ष' का कर्त्रियों का एक गोत्र था। इसका समीकरण अब तक संतोषजनक रूप से नहीं हो पाया है।

**16. सिबोई या सिबी** :- शिबी या सिबी जनजाति को वर्णन भारतीय साहित्य में काफी हुआ है इनका क्षेत्र झेलम तथा चनाब के बीच स्थित था।

**17. क्षद्रक** :- यह जाति झेलम और चनाब के संगम के समीप के क्षेत्र में रहती। यह गणतन्त्रात्मक शासन वाला राज्य के लोग अपनी युद्धकला में दक्ष थे।

**18. मालव** :- रावी नदी के निचले भाग के आसपास रहने वाली यह जाति थी जिनका उल्लेख क्षुद्रकों के साथ ही किया जाता है। कर्टियस के अनुसार क्षद्रक तथा मालवों के पास 90,000 पैदल, 10000 अश्वारोही सैनिक तथा 900 रथ थे। पाणिनी ने भी मालवों का शास्त्रोप जीवी संघ कहा है।

**19. अम्बष्ठ** :- चनाब के निचले भागों में मालव जाति के निकट का क्षेत्र इन लोगों का था। महाभारत में भी इनका उल्लेख शिबी, क्षुद्रक, मालव इत्यादि गणराज्यों के साथ किया गया है। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह एक शक्तिशाली राज्य था जिनके पास आठ हजार पैदल, तीन हजार अश्वारोही सैनिक तथा पांच सौ रथ थे।

**क्षत्री या अक्षयुथोई** :- चनाब और रावी के बीच का क्षेत्र इस जनजाति का क्षेत्र था। मैक्त्रिण्डल ने अक्षययोई को क्षत्रिय शब्द का अपभ्रंश माना है।

**वसाति या ओस्सोडिआई** :- ओस्सोडिआई का समीकरण वसाति से किया गया है जो चनाब तथा सिन्धु नदियों के बीच रहने वाली एक जनजाति थी।

**मस्सोई या मूषक** :- आधुनिक कोट क्षेत्र बहावलपुर क्षेत्र के आस पास सिन्धु नदी के तट पर रहने वाली जाति मूषक थी। शूद तथा मूषिक को इक्वटा वर्णित किया गया है। ऐरियन के अनुसार मूषिक नगर राज्य पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व था।

**पैटलीन या प्रस्थि** :- प्रस्ति या प्रस्थि का समीकरण पैटलीन से किया गया है जो सिन्धु नदी के पश्चिम में आधुनिक लरकाना जिले के आसपास रहते थे।

**सैम्बस** :- इसका समीकरण क्षाम्ब से किया गया है। इसकी राजधानी सिन्दीमान (सेहवान) थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिकन्दर के आक्रमण के समय में उत्तर पश्चिमी भारत छोटे-छोटे-2 राज्यों में बंटा हुआ था जिनमें से कई गणराज्य तथा कई राजतन्त्रात्मक शासन वाले थे कुद तो समृद्ध राज्य थे तथा कई अपनी सैनिक शक्ति के लिए जाने जाते थे परन्तु ये सभी आपस में लड़ते रहते थे तथा विदेशी आक्रमण का मुकाबला संयुक्त रूप से नहीं कर पाए।

## सिकन्दर का भारत पर आक्रमण

सिकन्दर ने बैक्ट्रिया की जिय के पश्चात् ई० पू० 327 में हिन्दुकुश पार कर कोहीदामन (Kohii-Daman) की घाटी में प्रवेश किया। बैक्ट्रिया के आक्रमण के पूर्व ही यहाँ पर सिकन्दर ने अलेक्जेन्द्रिया नाम के नगर की स्थापना की थी। यहाँ पर अपनी स्थिति दृढ़ करने के पश्चात् सिकन्दर ने आधुनिक जलालाबाद के पश्चिम में स्थित निकाई नामक नगर की ओर प्रस्थान किया। तक्षशिला नरेश आम्भी ने हाथियों के सहित अनेक बहुमूल्य उपहार नतमस्तक होकर सिकन्दर की सेवा में अर्पित किये थे और बिना किसी शर्त के उसकी अधीनता स्वीकार की थी। इससे सिकन्दर को भारत का प्रवेश-द्वार खुला पाया। सिकन्दर द्वारा यहाँ पर सेना का विभाजन किया। पार्डिस को पर्याप्त सैन्यबल के साथ काबुल नदी की घाटी के द्वारा खैबर दर्रे से सिन्धु नदी तक सीधे पहुँचाने का कष्ट किया गया। मार्ग में पुष्कलावती के राजा हस्ती (Astes) ने तीस दिन तक यूनानियों का सामना किया। अन्त में लड़ते हुए वह वीर गाँते का प्राप्त हुआ। अन्य कबीलों ने आत्म-समर्पण कर दिया। पार्डिकस को इस कार्य में तक्षशिला-नरेश आम्भी से पर्याप्त सहायता मिली थी। दूसरे दल ने अवशिष्ट सैन्य बल के साथ सिकन्दर ने पर्वतीय दुर्गम पथ का अनुसरण किया। ऐरियन से ज्ञात होता है कि पर्वतीय प्रदेशों में एस्पेसियन (Alpasians), गौराइयन (Gaurainans) तथा अस्सकेनियन (Assakenians) रहते थे। कदाचित एस्पेसियन और अस्सकेनियन एक ही शब्द के रूपान्तर हैं। कतिपय विद्वान् अश्मक के स्थान पर अश्वक मूल रूप बतलाते हैं। इसकी पुष्टि इन तथ्यों से भी होती है कि यूनानियों ने इस शब्द का अनुवाद हिप्पसिआई (Hippasioi) से किया है। गौराइयन लोगों के विषय में कुछ सिंग्रत ज्ञात नहीं है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनका नाम गौरी नदी पंचकोर पर पड़ा हो और वे अश्मक अथवा अश्वक लोगों से सम्बन्धित थे। यूनानी पुस्तक ने गौरी नदी गौरेमोस शब्द से अभिहित हो। भीषण युद्ध के पश्चात् अश्वक-अश्मक परास्त हुए।

**अज्ञातनाम जाति** :- कुनर की घाटी में एक अज्ञातनाम नगर की सेना ने सिकन्दर का डट कर मुकाबला किया तथा गौरी नदी की भुजा को भेदता हुआ शत्रु एक तीर निकल गया। प्रतिक्रिया स्वभावतः भीषण होती। समस्त नगर धराशायी कर दिया गया। यहाँ पर भी

निवासी तलवार के घाट उतार दिये गये, केवल वे ही अवशिष्ट रह सके जिन्होंने पर्वतमालाओं में जाकर शरण ली। इस जिले के पूर्व अश्वका नेसिकन्दर के इस आक्रमण का समाचार पाते ही अपनी राजधानी त्याग कर गिरिकन्दराओं की शरण ली। तत्पश्चात् सिकन्दर ने वजौर की घाटी में प्रवेश किया। दूसरे मार्ग से भेजे हुए सैन्यबल का सिकन्दर से यहीं पर पुनर्मिलन हुआ। कर्टियस हमें बतलाता है कि अश्वकों को पराभूत करने के पश्चात् सिकन्दर न्यासा नगर की ओर बढ़ा। न्यासा नगर के निवासियों ने सिकन्दर का किंचितमात्र भी विरोध न किया, प्रत्युत उसकी सहायता की।

**मस्सग :-** इसके पश्चात् गौरी नदी (पंजकोर) को पार कर सिकन्दर मस्सग (Massaga) नगर के सम्मुख पहुँच गया। मस्सग पर चार दिनों तक घेरा पड़ा रह। अन्त में सिकन्दर के साथ युद्ध-विराम वार्ता की गई। किन्तु विराम के अनन्तर जब वे अपने-अपने गृह जाने का उद्यत हो रहे थे तभी सिकन्दर ने निर्दयतापूर्वक उनमें से अधिकांश को मौत के घाट उतार दिया। डियोडोरस और प्लूटार्क दोनों ने इस हृदयहीन कार्य की निन्दा की है।

रक्षकों के नष्ट हो जाने के पश्चात् मस्सग का पतन कोई कठिन कार्य नहीं था। एरियन के अनुसार मस्सग की महारानी और राजकुमारी को बन्दी बनाया गया।

**पुष्कलावती :-** स्वात की घाटी में वजिरा (वीरकोटि) तथा ओरा (उदग्राम) पर अधिकार करने के बाद सिकन्दर पेशावर की घाटी की ओर अग्रसर हुआ। सिकन्दर ने सिन्ध के पश्चिम के समस्त भाग पर क्षत्रप निकेनार (Nicanor) को नियुक्त किया और यहीं पर पुष्कलावती की, जो गन्धार की प्राचीन राजधानी थी, अधीनता की स्वीकृति सिकन्दर को मिली।

सिकन्दर ने अभी सिन्ध को पार नहीं किया था। इसके पूर्व अभी उसकी आर्नोस (Aornos) पर स्थित अस्सकेनाई लोगों से निपटना था। स्टीन (Stein) ने इस स्थान का समीकरण पर्वतमालाओं के मध्य में स्थित पीर-सार (Pir-sar) तथा उनसार (Un-sar) से किया है। आर्नोस पर अधिकार करना कोई सरल कार्य नहीं था। एरियन ने इस स्थान का विस्तृत वर्णन किया है। वह बतलाता है कि 6,600 फीट उँचे चट्टान पर यह स्थान स्थित था और इसका घेरा 22 मील था। दक्षिणी सीमा पर सिन्ध की नदी बहती थी। इस पर पहुँचना अत्यन्त कठिन था, क्योंकि पहुँचने के लिए एक ही मार्ग था, वह भी दुर्गम। दोनों पक्षों में सन्धि-वार्ता चली। परन्तु जब भारतीय अपने घरों को वापस जा रहे थे तब सिकन्दर ने सब को बिना किसी रोक के बढ़ने दिया, अन्त में चुने हुए सात सौ सैनिकों के सहित उसने उन पर अप्रत्याशित आक्रमण किया। अधिकांश भारतीय मारे गये और सिकन्दर का पूर्ण अधिकार आर्नो पर हुआ। सिकन्दर ने वहाँ पर देवताओं की पूजा की और एक दुर्ग का निर्माण कराया। यह घटना ईसा पूर्व 326 के आसपास रखी जा सकती है। वहाँ उसने शशिगुप्त को शासक नियुक्त किया।

**सिन्धु से झेलम तक :-** एरियन हमें बतलाता है कि आर्नो से सिकन्दर ने भागे हुए उन आर्नो निवासियों का पीछा किया जिसका नेतृत्व मस्सग में मृत्यु को प्राप्त किसी प्रधान का भ्राता कर रहा था। जब सिकन्दर ने हाथियों ड्यर्टा (Dyrta) पहुँचा तो वह नेता हस्तियों को छोड़ कर सिन्ध के पार आ गया था। बाद में सिकन्दर ने हाथियों को पकड़वा मँगाया। ओहिन्द के पुल पर 16 पड़ावों के पश्चात् पहुँचने पर सिकन्दर ने पूर्ण एक मास का विश्राम अपने सैनिकों को दिया। तक्षशिला नरेश आम्भी यहाँ पर सिकन्दर के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने सिकन्दर के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया तथा 200 रजत मुद्राएँ, 3090 पुष्ट वृषभ, 1000 भेड़े और 30 हाथी एवं 700 अश्वारोही इत्यादि उपहार में दिए हैं। आम्भी कतिपय मित्रों के साथ, सैन्यरहित होकर सिकन्दर के पास गया और अपनी दीनता तथा अधीनता उसके सामने स्वीकार की। सिकन्दर ने आम्भी उसका राज्य उसके पास ही रहने दिया तथा इस तरह उसे एक साथी मिल गया।

तक्षशिला में तीन दिनों तक सिकन्दर ने मनारंजन किया तथा चौथे दिन सिकन्दर तथा उसके साथियों को स्वर्ण और रजत के सिक्के दिये गये। सिकन्दर ने प्रत्युत्तर में फारस में प्राप्त अनेक बहुमूल्य सामग्रियों तथा अश्वों को प्रदान किया। अनेक भारतीय नरेशों ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु वीर पोरस ने सिकन्दर के पास प्रति-सन्देश भेजा कि वह सिकन्दर से साक्षात् अवश्य करेगा, किन्तु सशस्त्र और रणस्थल में। पोरस का राज्य विस्तृत था और उसके अभ्युदय ने पास-पड़ोस के राजाओं के हृदय में खलबली मचा रखी थी। सिकन्दर ने कोनस को सिन्ध नदी के पुल को तोड़ कर झेलम पर लगाने की आज्ञा दी। फिलिप को तक्षशिला का क्षत्रप बनाया गया। सिकन्दर स्वयं सेना को लेकर तक्षशिला के पाँच सहस्र सैनिकों के स्वामी आम्भी के साथ झेलम की ओर आगे बढ़ा। मार्ग में सिकन्दर ने पोरस के भतीजे स्पिटेसीज (Spitaces) को अभिभूत किया और वितस्ता अथवा झेलम (Hydaspes) के तट पर पहुँचा।

## पोरस से युद्ध

सिकन्दर की सेना-झेलम के दक्षिण-तट पर सिकन्दर ने अपना शिविर स्थापित किया। तट की दूसरी ओर दूर तक पोरस ने अपनी समस्त सेना को एकत्र कर रखा था। पोरस की ओर से इस बात का प्रबन्ध था कि जिरा क्षण सिकन्दर नदी को पार करने की चेष्टा करे, उसी क्षण पोरस को समाचार मिल जाय जिससे दूर तक विस्तृत सैन्य-बल को शत्रु-प्रतिरोध में लगाया जा सके। पोरस की



सेना साधारण एवं अल्प न थी। उसके राज्य के जितने समृद्धिशाली ग्राम थे उन सभी के घने हुए उत्साही सैनिक इस यात्रा में एक-का सामना करने के लिए वहाँ उपस्थित थे। झेलम नदी बर्फ के पिघलने के कारण इस समय मई के महीने में बाढ़ पानी से भर चुकी थी। हमें ज्ञात होता है कि 4000 अशवारोही, 300 रथ, 200 हाथी तथा 30,000 पदाति पोरस और 120 रथ उसका पुराना सामान्य शत्रु थे जो पहले ही सिकन्दर से युद्ध करने के लिए भेजी गई थी। प्रचुर मात्रा में पोरस ने सेना शिविर में ही छाड़ रखी थी। इतना पश्चात् सेना के सम्मुख सिकन्दर का साहस नहीं हुआ कि वह नदी पार कर सके। सिकन्दर की सेना अनेक तत्वों का सम्मिश्रण थी। इसमें मकदूनिया के दीर्घभालाधारी पदाति, कुशल अशवारोही, सिकन्दर के साथी जो मकदूनिया के अभिजात वर्गीय थे, तथा कुछ भाड़ पर सैनिक थे। जहाँ तक अशवारोही सेना का प्रश्न है, सिकन्दर की सेना में पोरसा की सेना की अपेक्षा निश्चय ही अधिक अशवारोही थी, किन्तु अन्य अंग संख्या में पोरस की ओर अधिक थे। परम्परानुसार कहा जाता है कि 1,20,000 व्यक्ति सिकन्दर की शिविर में थे, किन्तु इस संख्या में भृत्य, व्यापारी, वैज्ञानिक, मकदूनिया के सैनिकों की एशियाई पत्नियाँ और उनकी सन्तानें सम्मिलित हैं। टॉलेमी के अनुसार युद्ध करने वाले सैनिकों की संख्या 35000 थी।

सिकन्दर इसको भली-भाँति समझता था कि पोरस जैसे सावधान और शक्तिशाली शत्रु के सामने नदी को पार करना प्रायः असम्भव था। अतः जैसा कि एरियन कहता है, सिकन्दर को मार्ग चुनना पड़ा। प्रथम, तो उसने अपनी सेना को कई भागों में विभक्त कर दिया जिससे पोरस का ध्यान बँट जाय। सिकन्दर शत्रु को इस प्रकार दिखलाना चाहता था कि वह नदी पार करने के लिए किसी सरल मार्ग के अन्वेषण में था। वह यह भी दिखलाना चाहता था कि शत्रु को इस बात का विश्वास हो जाय कि सिकन्दर नदी उसी समय पार करेगा जब नदी की धारा कुछ शान्त होगी। सिकन्दर की इस प्रकार की योजना सफल हुई और शत्रु को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि सिकन्दर रात्रि में नदी पार नहीं करेगा। पोरस की सेना उदासिन हो गई।

इतना करने के पश्चात् सिकन्दर ने अपने शिविर से 16 मील ऊपर नदी की ओर एक स्थान चुना जहाँ से नदी को पार किया जाय। नदी का घुमाव कुछ ऐसा था कि जो स्थान सिकन्दर ने चुना था वह पोरस के शिविर से दृष्टिगोचर नहीं होता था। मध्य में एक झाड़ झंझाड़मय द्वीप पड़ता था और नदी का दूसरा तट भ्रमोत्पादक था। इसके अतिरिक्त सिकन्दर के सैनिकों द्वारा उस पर प्रतिदिन रंगरेलियाँ मनाई जाती थी जिनके कारण पर्याप्त शोरगुल होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि नदी पार करने के लिए जो तैयारियाँ करनी पड़ीं उनसे जनित अशान्ति पोरस के सैनिकों के लिए कोई असामान्य घटना न थी— ऐसा प्रति रात्रि को हुआ ही करता था। प्रकृति का सहयोग अन्य कारण था जिसने पोरस के सैनिकों को अधिक जागरूक न बनने दिया। प्रभूत वर्षा, बिजली की कड़क तथा झंझावात के कारण शस्त्रों की खनखनाहट तथा सैनिकों को दी गई सैनिक-आज्ञाएँ सूनी न जा सकी।

सिकन्दर अपने क्रिया-कलाप में फूँक-फूँक कर पैर रखता था। प्रमुख शिविर में तक्षशिला की सेना तथा क्रेटरस के नेतृत्व में एक विश्वसनीय सेना छोड़ दी गई थी। इन पीछे छोड़े हुए सैनिकों को यह आज्ञा दी गई थी कि वे वहाँ तब तक रहें जब तक नदी का दूसरी ओर हाथी दिखाई पड़ें और ज्यों ही हाथी हटाये जायँ वे शीघ्रतिशीघ्र पार करने की चेष्टा करें। द्वीप और प्रमुख शिविर के मध्य में तीन सेनापतियों— मेलीगर (Meleager), एटलस (Attalus) और जार्जियस (Gorgias) के अधीन अशवारोही तथा पदाति रखे गये थे। उनको यह आज्ञा थी कि ज्यों ही वे भारतीयों को युद्धरत देखें त्योंही नदी को पार करें।

## झेलम से रावी तक

इतनी तैयारियों के पश्चात् सिकन्दर लगभग 12000 सेना के साथ पार उतरा। जब वह उतरने से थोड़ी दूर रह गया तब भारतीय प्रहरियों को इस घटना का परिज्ञान हुआ। अब झंझावात का शमन हो चुका था। वितस्ता के तट पर प्रकृतिजन्य झंझावात समाप्त हो चुका था, मानवजन्य झंझावात शेष था। सिकन्दर ने उत्तर कर अश्वाराहियों का नेतृत्व किया और आगे बढ़ा, किन्तु उसका पथ अभी संकट-शून्य नहीं था। उसको अविलम्ब पता चला कि नदी को पूर्णतया पार करना अभी शेष था। बीच में एक नात्ना था जिसका बड़ी कठिनाई से सेना ने पार किया। पदातियों के वक्षस्थल तक जल में घुस कर तथा अशवारोहियों के अश्वों को आकाश प्रवेश करा कर इसको पार करने के बाद सिकन्दर ने इसके पश्चात् अपनी सेना को एक क्रम में खड़ा किया। दक्षिण पार्श्व में अग्ररक्षक तथा अशवारोही, उनके आगे वे अशवारोही जो शर-सन्धान करने वाले थे और उनके पश्चात् पदाति थे। छोर पर दीर्घभालाधारी अ-भालायुक्त सैनिक खड़े किये गए।

**झेलम का युद्ध** :- तत्पश्चात् अपने 500 द्रुतशाली अशवारोही सेना के साथ सिकन्दर शीघ्रता से आगे बढ़ा। उससे आगे नदीतटमय अशवारोहियों के ऊपर पूर्ण विश्वास था और उसे यह भी विश्वास था कि उनकी सहायता ही से पोरस को समस्त सामान्य शत्रु का देगा और यदि नहीं तो कम से कम इतना तो वह अवश्य कर सकता है कि पदाति सेना के आने तक शत्रु को युद्धरत नहीं छोड़ेगा। यदि उसके अचानक इस पार आने की सूचना पर शत्रु ने लायन किया तो वह शत्रु की पर्याप्त क्षति कर सकेगा। किन्तु पार नहीं था। नदी पार करने का समाचार पाते ही उसने तुरन्त अपने पुत्र के नेतृत्व में 2000 अशवारोही तथा 120 रथ भेजे। किन्तु उसके

पहुँचने के पूर्व में सिकन्दर नाले को भी पार कर चुका था। संघर्ष में पोरस-पुत्र की पराजय निश्चित थी। 400 भारतीय धराशायी हुए। इनमें राजकुमार भी सम्मिलित था। वर्षा से अभिषिक्त भूमि पर रथ अधिक कार्य न कर सके। यह समाचार जब पोरस को मिला कि सिकन्दर ने स्वयं नदी पार कर ली तो क्षण मात्र के लिए पोरस को चिन्ता हुई कि क्रैटरस और सिकन्दर दोनों को किस प्रकार रोके किन्तु शीघ्र ही उसने निर्णय किया कि कुछ हाथियों को क्रैटरस का प्रतिरोध करने के लिए छोड़ दिया जाय, शेष के सहित सिकन्दर की ओर प्रस्थान किया जाय। पोरस को अपने हाथियों पर पूर्ण भरोसा था। अतः उसने हाथियों को सब से आगे रखा था। उसके पीछे पदाति-सैन्य था। दोनों ओर अश्वारोही थे जिनके आगे रथ स्थित थे। सिकन्दर अश्वदल के साथ दक्षिण पार्श्व में खड़ा हुआ और कोनोस को दो टुकड़ियों के सहित वाम-पार्श्व की ओर खड़ा किया। उसकी योजना थी कि वह शत्रु के वाम पार्श्व पर आक्रमण करेगा, और जब वाम पार्श्व की रक्षा के लिए दक्षिण पार्श्व का अश्वदल आयेगा तो कोनोस पृष्ठभाग से टूट पड़ेगा। सिल्यूकस मुख्य दल के सहित तब तक युद्ध में भाग नहीं लेगा जब तक भारतीय अश्वदल तथा पदाति अस्त-व्यस्त न कर दिए जायँ। सिकन्दर ने जैसी गणना की थी वैसा ही हुआ। भारतीय अश्वदल को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा सिकन्दर तथा कोनोस दोनों से। उनकी पंक्ति नष्ट हो गई। उसी समय सिकन्दर ने घोर आक्रमण किया। अश्वदल को विवश होकर हाथियों के पीछे शरण लेना पड़ा। अब हाथी आगे थे। इधर सिल्यूकस ने आक्रमण किया। पहले तो इन विशालकाय जीवों ने शत्रु के पक्ष में कुहराम मचा दिया और अपने पक्ष के अश्वदल को संभलने का एक स्वर्ण अवसर प्रदान किया, किन्तु सिकन्दर के शीघ्र पुनराक्रमण ने पुनः अश्वदल की पंक्ति को नष्ट कर दिया। इस बार संघर्ष और अधिक सीमित स्थान में हुआ और हाथी व्रणों से व्याकुल होकर मित्र और शत्रु को समान रूप से हानि पहुँचा लगे। यूनानी सेना अधिक खुले स्थान में थी और हाथियों के आक्रमण पर स्थान छोड़ देती थी। पीछे घुमने पर ये ही आक्रामक विशाल हाथी उनके शर का लक्ष्य बनते, अन्ततोगत्वा अधिकांश हाथी मारे गये और परिश्रम एवं व्रण से जर्जरित अवशिष्ट हाथी व्यर्थ हो गये। अन्तिम बार सिकन्दर ने अश्वारोही और पदाति को आक्रमण करने की आज्ञा दी। विजय-श्री ने सिकन्दर का वरण किया। इस समय तक यूनानी सेना उस पार से भी आ गई थी और उसने शत्रुपक्ष को प्रभूत क्षति पहुँचाई।

इसमें तो किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं कि भारतीयों की क्षति प्रचुर मात्रा में हुई। किन्तु शत्रु-हानि भी उनकी संख्या के अनुसार कम नहीं हुई और उन्हें झेलम तट पर भारतीय वीरता का प्रमाण मिल गया था। वितस्ता-तट के संग्राम के पश्चात् सिकन्दर के जिन सेनापतियों ने उसके अग्रसर होने का खुलकर विरोध किया उनके नेत्रों के सामने अवश्य ही भारतीय हाथियों द्वारा रौंटी हुई अपनी सेना का दृश्य नावत रहा होगा और वर्षों पश्चात् जिस सिल्यूकस ने केवल 500 हाथियों के बदले प्रान्त के प्रान्त (एरियाना, जेड्रोशिया, असकोशिया, पैरिपेनिसदाई) देने को प्रसन्न हो गया था, उसने इन हाथियों की करामात इसी झेलम के युद्ध में देखी थी।

**पुरु की पराजय-पुरु से मैत्री :-** एक विशालकाय हाथी पर आसीन पोरस युद्ध के अन्तिम क्षण तक लड़ता रहा। दक्षिण हस्त के आहत होने पर वह युद्धस्थल को छोड़ रहा था, किन्तु सिकन्दर ने उसकी वीरता की सराहना की थी और उसकी इच्छा थी कि इस वीर का जीवन नष्ट न हो। उसने आम्भी को भेजा। इस प्राचीन शत्रु को देखकर पोरस की भुजा एक बार फड़क उठी और बिना कुछ सुने उसने प्रहार किया। गुणग्राही सिकन्दर इस पर भी क्रुध न हुआ और उसने दूसरे दूतों को भेजा। अन्त में उसने सिकन्दर का सन्देश सुना। प्यास और श्रम से क्लेशित पोरस हाथी से उतरा और एक घूँट जल पीने के पश्चात् सिकन्दर के सामने लाया गया। सिकन्दर ने पोरस के व्यक्तित्व की प्रशंसा की। ग्रीका-रोमन लेखक बतलाते हैं कि जिस साहस और विश्वास के साथ पोरस उपस्थित हुआ उससे सिकन्दर आश्चर्याभिभूत हो गया। सिकन्दर ने पोरस से पूछा कि वह किस प्रकार के व्यवहार की आशा करता था। अदम्य साहस और निःसंकोच के साथ पोरस ने उत्तर दिया, "नृपोचित व्यवहार की।" और दूसरी बार पुनः पूछे जाने पर पोरस ने निःशक कहा कि उसे जो कुछ कहना था, उसने सब कुछ उसी एक वाक्य में कह दिया। इस निर्भीकतापूर्वक उत्तर से संतुष्ट होकर सिकन्दर ने न केवल उसको उसका राज्य प्रत्यार्पित कर दिया वरन् उस और भी आस-पास के राज्यों का स्वामी बना दिया। इस प्रकार तक्षशिला-नरेश का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी वह बना ही रहा। सिकन्दर की इसमें कदाचित् यही नीति थी कि वे दोनों एक दूसरे को अनुचित कार्य करने से सदैव रोकेंगे। आखिर सिकन्दर भी एक प्रबल कूटनीतिज्ञ था। यह युद्ध सम्भवतः ई. पू. 326 को मई मास में हुआ, यद्यपि यह तिथि निश्चित नहीं है। सिकन्दर ने देवों को बलि प्रदान किया और निकाइ (Nikaia) तथा बुकेफेला (Bucephala) नामक दो नगरों की स्थापना की। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उसका सुदूर विस्तृत साम्राज्य इन्हीं नगरों में माध्यम से एक सूत्र में आबद्ध रहे। क्रैटरस को दुर्ग बनाने तथा इन नगरों के नवनिर्माण के लिए कुछ सेना के साथ छोड़ दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि सिकन्दर ने इस महत्वपूर्ण संग्राम की स्मृति में एक प्रकार की मुद्रा का प्रचलन किया जिस पर पोरस के हाथी का पीछा करते हुए उसको उछलते हुए अश्व पर प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार की दो मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं।

### चिनाब से रावी तक

**ग्लौग्निकाइ : निकेनोर की हत्या :-** चिनाब के पश्चिमी तट पर स्थित ग्लौग्निकाइ (ग्लौदुकायन) को जो लोग स्वतन्त्र थे तथा

जो 37 नगरों में निवास करते थे, पराजित कर सिकन्दर ने पोरस के अधीन कर दिया। इस स्थान से आम्भी का अपनी नदानी वापस कर दिया गया। अभिसार के राजा ने अपने भ्राता को बहुमूल्य उपहारों के सहित सिकन्दर के पास भेजा, किन्तु सिकन्दर ने उसको स्वयं आने की आज्ञा भेजी। इसी समय आर्नो के शशिगुप्त ने यह सन्देश भेजा कि अस्सकेनोई लोगों ने विद्रोह का झण्डा छड़ा कर दिया और गवर्नर निकेनर को मार डाला। फिलिप से विद्रोह दमन का आदेश मिला।

कठ :- रावी को पार करने के पश्चात् सिकन्दर की मुठभेड़ कठों तक हुई जो प्रसिद्ध योद्धा थे और जिन्होंने अपनी राजधानी सगल की रक्षा के हुतु अनेक मित्रों की सहायता प्राप्त कर ली थी। अधृष्ट लोगों (Adraistai), जायसवाल के अनुसार (अरिष्ट), ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु कठों ने नीति और वीरता से सिकन्दर का जम कर सामना किया, यहाँ तक की सिकन्दर के अश्वारोही वहाँ पर निष्फल से होने लगे। सिकन्दर ने अन्त में पदाति सेना की सहायता से बड़ी कठिनाई एवं घोर संग्राम के पश्चात् भारतीयों नगर की दीवारों में शरण लेने के लिए विवश किया। इसी समय पोरस भी 5000 भारतीय सैन्य तथा अनेक हाथिया के साथ आ पहुँचा। सिकन्दर ने नगर को घेर लिया। रात्रि में कठों ने एक झील के द्वारा भागने का निश्चय किया। सिकन्दर को परिज्ञात हो गया और उसने छापा मार कर बहुतों को मौत के घाट उतार दिया। नगर धराशायी कर दिया गया। कठों के ऊपर विजय सिकन्दर को बहुत महँगी पड़ी, क्योंकि ग्रीक लेखकों के वर्णन से भी यह ज्ञात होता है कि इस युद्ध में असामान्य रूप से यूनानी मरे और आहत हुए।

## सिकन्दर की वापसी

ब्यास (Hyphasis) के तट पर पहुँचने पर सिकन्दर से भगल (यह नाम पाणिनी में आता है) नामक एक सरदार ने नन्द-साम्राज्य की सीमा और विस्तार का वर्णन किया जिसका समर्थन पोरस ने भी किया। ऐसा समाचार मिला था कि ब्यास के उस पार एक अत्यन्त उर्वरा भूमि वाला राज्य था जहाँ पर उत्कृष्ट शासन-प्रणाली थी और जहाँ समृद्धिशाली वीर कृषक निवास करते थे। नन्द साम्राज्य के वर्णन ने सिकन्दर की इच्छा और अभिलाषा को और भी जागृत किया, किन्तु उसकी सेनाओं का, विशेषतः मकदूनिया की सेना का दिल दहल गया। (1) उनके सम्मुख वे सभी आपत्तियाँ साकार हो उठी जिनको उन्हें भारत-प्रवेश के पश्चात् उठानी पड़ी थी। (2) इसके अतिरिक्त उन्हें घर छोड़े कई वर्ष हो गये थे। (3) सिकन्दर ने पदाधिकारियों की एक सभा का आह्वान किया और अनेक प्रकार के प्रलोभनों को दे कर उनके सुषुप्त उत्साह एवं अभिलाषा को जागृत करने का भगीरथ प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ सभा में शान्ति छाई रही। (4) अन्त में कोनोस ने सभी का प्रतिनिधित्व करते हुए सिकन्दर को समझाया कि बहुत से युद्ध न समाप्त हो गये थे, बहुत से रोग-ग्रस्त हो कर इस संसार से चल बसे थे तथा जो अवशिष्ट थे उनके हृदय में अपने पुत्र, भाया, पिता, माता अपने गृह और अपनी मातृभूमि को देखने की उदाम लालसा थी।

कोनोस ने यहाँ तक कहा कि प्रथमतः सिकन्दर मातृभूमि लौट चले और यदि इच्छा हो तो पुनः आये। कोनोस के इस नन्द-भाषण का समर्थन सारी सेना ने किया। सिकन्दर अपनी सेना की इस साहसहीनता पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और आदेश मिला कि उसने अपने सैनिकों से कहा कि वह तो आगे बढ़ेगा, जिसकी इच्छा हो चले और जिसकी इच्छा न हो वह वह लौट जाय और उसके अपने मित्रों से कह दे कि वह अपने राजा को शत्रुओं के बीच छोड़ आया है। सिकन्दर पूरे तीन दिनों तक अपने शिविर में नन्द रहा किन्तु सैनिकों ने अपना विचार न छोड़ा। (5) सिकन्दर को स्पष्ट हो गया कि झेलम और संगल के युद्धों के पश्चात् उसके कायल हो गया था और वे अब किसी भी प्रकार आगे नहीं बढ़ सकते थे। (6) परन्तु सबसे बड़ा कारण विशाल नन्द-साम्राज्य की सेना के भय था। अन्त में विवश होकर सिकन्दर को प्रत्यावर्तन की घोषणा करनी पड़ी। सेना ने इस घोषणा का स्वागत प्रसन्नता से किया ब्यास के पश्चिम का भाग पोरस के अधीन किया गया था। जब सिकन्दर चिनाब पर तैयारियाँ कर रहा था तब अभिसार-नरेश ने एक दूत भेजा। वह स्वयं अस्वस्थ था, जैसा कि सिकन्दर के सेनापतियों ने भी बतलाया। अभिसार-नरेश को अपने राज्य का स्वामी बना दिया था। चिनाब पार करके सिकन्दर झेलम पर लौटा। कठों के पास ही कहीं सौभूति नामक नरेश का राज्य था जिसके सिकन्दर से नाटकीय साक्षात्कार का वर्णन कर्टिअस ने किया है। वहाँ के शिकारी कुत्तों ने विदेशियों को अत्यन्त प्रभावित किया। झेलम के तट पर सिकन्दर ने बहुत सी नौकाओं का निर्माण करवाया। अन्त में 800 नौकाएँ हो गईं। इसी समय कोनोस बीमार पड़ और मर गया। ई. पू. 326 के नवम्बर मास में यहाँ प्रत्यावर्तन प्रारम्भ हुआ। सेना तीन भागों में होकर लौटी। जलराना का नृत्य नियार्कस (Nearchus) कर रहा था।

तृतीय दिवस सिकन्दर एक स्थान पर रुका जहाँ क्रेरुस और हिफेशन ने अपना शिविर स्थापित किया था। दो दिनों में फिलिप भी वहीं आ गया। उधर मल्लुई और ओकसीड्रेकाइ (मालव और क्षुद्रक) आक्रान्ता का रणस्थल में स्वागत करने के लिए तैयारियाँ कर रहे थे। सिकन्दर उन पर परस्पर संयुक्त होने से पूर्व आक्रमण कर देना चाहता था। प्रारम्भ के पाँचवें दिन झेलम और चिनाब के संगम पर पहुँचा। यहाँ पर दोनों नदियों के जल ने भीषण रूप धारण किया था। आवर्त उत्पन्न हो रहे थे जिनसे नौकाओं की कुछ हानि भी हुई। दो तो जल-गर्भ में प्रविष्ट हो गईं। किन्तु शीघ्र ही वेग शान्त हो गया और नौकाएँ धारा से दूर पर पहुँचाई गईं। नियार्कस को मालवों की सीमा पर पहुँचने का आदेश मिला।



**अग्रश्रेणी** :- सिकन्दर के पहुँचने पर शिबि (Siboi) लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया किन्तु अलगस्सोइ (अग्रश्रेणी) लोगों ने 40000 पदाति तथा 3000 अश्वदल के साथ जमकर सिकन्दर का मोर्चा लिया। युद्ध में मकदूनिया के कई सैनिक चल बसे। इसने सिकन्दर के क्रोध में आहुति का कार्य किया। उसने नगर में आग लगवा दी और बहुतों की हत्या करवा दी। बहुत को दास बना लिया। केवल 3000 व्यक्ति जिन्होंने सन्धि की इच्छा दिखलाई अवशिष्ट रहे। अब मालवों और क्षुद्रकों की बारी थी।

**मालव और क्षुद्रक : अम्बष्ठ, क्षत्रप और वसाति** :- सिकन्दर ने 50 मील जलरहित मरुभूमि के बाद मालवों के नगर पर अचानक आक्रमण किया। मालवगण अचम्भित रह गये। निःशस्त्र लोग निर्दयतापूर्वक तलवार के घाट उतार दिये गये। अवशिष्ट को नगर में घेर लिया गया। पर्डिक्कस को आगे का नगर घेरने के लिए भेजा गया, किन्तु वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि लोग नगर को रिक्त करके भाग रहे थे। उसने पीछा किया और कुछ को समाप्त किया किन्तु अधिकांश भाग गये। इसी समय सिकन्दर भी वहीं आ गया और उसने रावी पार करते समय अनेक मालवों के प्राण लिये। अब एक ब्राह्मणों के नगर पर आक्रमण करना था जहाँ पर अनेक मालवों ने शरण ली थी। यहाँ पर घनघोर संग्राम हुआ। इसमें भी सिकन्दर विजयी हुआ। सिकन्दर ने सुना कि मालवों ने पुनः रावी को पार कर लिया है और व उसके मार्ग को अवरुद्ध करेंगे। एरियन से ज्ञान होता है कि लगभग 50,000 सैनिक रावी के दक्षिण तट पर एकत्र हुए थे। सिकन्दर अपने अल्प सैन्य के साथ धारा में कूद पड़ा। मालवों को उसकी सेना की कमजोरी का पता न था। उन्होंने नदी तट छोड़ दिया। बाद में उन्हें जब ज्ञात हुआ कि सिकन्दर की सेना अत्यन्त अल्प थी तो उन्होंने युद्ध किया किन्तु ने उनको साधारण आक्रमणों से तब तक फँसाये रखा, जब तक कि उसकी पैदल सेना आ गई। मालवों ने समीप के दुर्ग में शरण ली। दूसरे दिवस सिकन्दर का आक्रमण सफल रहा। किन्तु दीवार पार करते समय सिकन्दर मालवों की बाण-वर्षा से आहत हो गया। पर्डिक्कस ने जब बाण को शरीर से निकाला तो सिकन्दर के शरीर से अधिक रक्त निकल जाने से वह मूर्च्छित हो गया। इस दृश्य को देख यूनानी उन्मत्त हो गये और अन्त में जब दुर्ग पर अधिकार हुआ तो बालक, नर और नारी मार डाले गये। सिकन्दर के घाव के अच्छा हो जाने पर एक बार ऐसी वार्ता उड़ी कि वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। अन्त में उसने स्वयं अश्व पर आरूढ़ हो कर अपने को दिखलाया, तब सैनिकों की जान में जान आई। क्षुद्रक मालवों से नहीं मिल पाये। अब उन्होंने एक सौ रथारूढ़ दूतों को सन्धि के लिए भेजा। मालव और क्षुद्रक पराजित तो किये गये किन्तु सिकन्दर के सैनिकों को लोहे के चने चबाने पड़े। कदाचित् मालव बाण द्वारा किया गया गम्भीर घाव कालान्तर में अप्रत्यक्षरूपेण सिकन्दर की मृत्यु का कारण था। पंजाब के ब्राह्मण तथा मालव नगरों ने जो विरोध किया वह इस बात का सूचक था कि सिकन्दर का साम्राज्य भारत पर नहीं जम सकता था। प्रत्यावर्तन पर अम्बष्ठ (Abastamoi), क्षत्रप (Xathaoi) तथा वसाति (Ossadioi) लोगों ने अधीनता स्वीकार की। फिलिप जिस भाप का क्षत्रप नियुक्त किया गया था, उसकी दक्षिणी सीमा पर सिन्ध और चिनाब का संगम था। वहाँ पर एक नगर की स्थापना की गई।

**सिन्ध के राज्य** :- सिन्ध नदी के निम्न भाग में जितने राज्य थे वे गणराज्य न थे। उन पर ब्राह्मणों का असाधारण प्रभाव था। इस भाग का प्रसिद्ध शासक मुसिकेनस (Musicanus) था, जैसा कि ग्रीक लेखकों से ज्ञात होता है। उसने सिकन्दर के पहुँचने पर अधीनता स्वीकार कर ली। ओक्टिनेकस तथा सैम्बस (Sambus, शम्भुर) भी अधीनस्थ हुए। किन्तु इस प्रान्त में सिकन्दर के प्रबल प्रतिरोधी ब्राह्मण ही थे। पतंजलि भी ब्राह्मणक नामक जनपद का निर्देश करते हैं। (ब्राह्मणकों नाम जनपदः)। राष्ट्रीय विपत्ति के समय ब्राह्मणों में अपना कर्तव्य समझा कि वे लोगों को इस विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध भड़काये। अंत में उनके एक नगर पर धावा बोला गया और इसके समस्त निवासी मार डाले गये। उसी समय मुसिकेनस ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। पीथान (Peithon) ने दमन किया और मुसिकेनस अपने साथियों के साथ मार डाला गया। अन्त में पाटल नरेश का राज्य आया। डियोडोरस के अनुसार यहाँ पर दो शासक थे। एक तो सिकन्दर से सन्धि-वार्ता के लिए गया था और दूसरा युद्ध की तैयारी कर रहा था, क्योंकि सिकन्दर ई. पू. 325 के जुलाई मास में यहाँ पहुँचा तो उसने नगर को खाली पाया। अन्त में भागे हुए लोग समझा बुझाकर लौटाये गये।

**फिलिप की हत्या : सिकन्दर की मृत्यु** :- सिकन्दर जब कर्मानिया पहुँच रहा था तो उसे समाचार मिला कि क्षत्रप फिलिप की हत्या कर दी गई। उस समय वह इससे अधिक और कुछ न कर सका कि आम्भी और यूडेमस (Eudemus) को कार्यभार सँभालने का आदेश दे दे। इसी समय क्रेटरस अपनी सैन्य-शाखा तथा हाथियों के सहित आ मिला। नियार्दस ने बतलाया कि चार नौकाएँ मार्ग में नष्ट हो गईं। सम्पूर्ण सेना के सहित सिकन्दर 324 ई. पू. सूसा पहुँचा। 323 ई. पूर्व में बैबिलोनिया में सिकन्दर की मृत्यु हो गई।

**प्रभाव** :- जैसे कि हमें उपर लिखे विवरण से देखा कि भारत पर सिकन्दर का आक्रमण उत्तरपश्चिम क्षेत्र के थोड़े से गणराज्यीय क्षेत्रों तक ही सीमित था। नन्द साम्राज्य पर आक्रमण कर उससे लोहा लेने का साहस न तो उसकी सेना कर सकी तथा न ही शायद वह यह कर भी पाता। क्योंकि उस तो छोटी-2 जनजातियों से उलझ कर ही संतुष्ट होना पड़ा। यही नहीं कुछ ने तो उससे बहुत ही बहादुरी से मुकाबला किया तथा इन्हीं से युद्ध में उसे तीर से घायल होना पड़ा तथा वह अपने देश युनान तक भी नहीं पहुँच पाया तथा रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। इस स्थिति में यह कह पाना बड़ा कठिन है कि क्या भारत पर सिकन्दर की विजय के कोई प्रत्यक्ष प्रभाव पड़े भी कि नहीं। भारतीय साहित्य में तो इस घटना का वर्णन मात्र भी नहीं है जबकि युनानी साक्ष्य भारत



आक्रमण को बहुत बढ़ा चढ़ा कर दर्शाते हैं कुछ इतिहासकारों ने इस आक्रमण को एक आकस्मिक घटना बताया है जिसका भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तथा लोग इसे एक आन्धी की तरह भूल गए। स्मिथ का कहना है कि इस तुफान स्वरूप आक्रमण के सामने भारतीयों ने अपना सिर झुका दिया और उसके गुजर जाने के बाद पुनः विचार मग्न हो गए। उनके इस कथन में अग्रज इतिहासकारों की साम्राज्यवादी नीति की झलक है क्योंकि यह आक्रमण तो ठीक तरह से भारत पर हुआ ही नहीं तथा केवल उत्तरपश्चिम भारत के कुछ क्षेत्रों, जो कि उस समय के भारतीय साम्राज्य (नन्द साम्राज्य) से बाहर थे, पर ही इस के प्रभाव पड़े। राधाकुमुद मुखर्जी भी इसे किसी दृष्टि से इसे महान सफलता नहीं मानते। दूसरी ओर कुछ विद्यवान इसे एक महत्वपूर्ण घटना मानते हैं। हेमचन्द्र राय चौधरी इस आक्रमण का भारत पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रभाव मानते हैं। नीलकण्ठ शास्त्री भी इस आक्रमण से भारत में कई प्रभाव मानते हैं जिससे उत्तरपश्चिमी भारत की जनजातियों के प्रबल होने मौर्य साम्राज्य के उदय का रास्ता खुल गया। दूसरी ओर कुछ ऐसे विद्यवान भी हैं जिनमें डा. नीस हैं जो सिकन्दर के भारत आक्रमण के पश्चात् हुई सारी प्रगति का श्रेय इसी आक्रमण का देते हैं। कुछ भी हो इस आक्रमण के कुछ प्रत्यक्ष तथा कुछ परोक्ष प्रभाव तो पड़े ही।

**1. राजनैतिक प्रभाव :-** सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तरपश्चिमी भारत पर छोटे-छोटे 2 राज्यों का प्रभुत्व था जो आपस में लड़ते रहते थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय ये इकट्ठे हो उसका मुकाबला नहीं कर पाए तथा एक एक कर ये राज्य सैनिक शक्ति के हाथ हुए भी संगठित, सुशिक्षित तथा अनुशासित सेना के सामने टिक नहीं पाए। इस आक्रमण ने न केवल इन छोटे-छोटे राज्यों का हराया बल्कि छिन्न भिन्न भी कर दिया। इनमें से कुछ को तो पर्वतों में शरण लेनी पड़ी तथा कुछ को अपना क्षेत्र छोड़ दूसरे स्थानों पर जाना पड़ा जैसे मालवा पंजाब के आज के मालवा क्षेत्र में चले गए। क्षुद्रक तथा शिबी राजस्थान में बसे इसी तरह अन्य राज्यों का भी हाल हुआ। इन सभी को विजित कर सिकन्दर ने क्षेत्रपीय शासन व्यवस्था कायम कर दी तथा सिकन्दर ने कई नगरों और उपनिवेशों की स्थापना कर दी। यद्यपि उसका यह संगठन कुछ वर्ष ही रह पाया तथा इन जातियों ने कई स्थानों पर यूनानी क्षत्रपों का मार मगाया परन्तु इससे चन्द्रगुप्त का कार्य आसान हो गया तथा वह अपने गुरु चाणक्य की सहायता से इन जनजातियों में अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकता तथा बाद में मगध पर आक्रमण कर उसने नन्द वंश का अंत कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की।

**ऐतिहासिक प्रभाव :-** भारतीय इतिहास की संरचना तथा उसके तिथि क्रम का निर्धारण करने में इस आक्रमण का बहुत योगदान है। 326 ई. पू. ने अनेक भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं को विवादपूर्ण स्थिति से उभार कर निश्चितता प्रदान की। इसके पश्चात् भारतीय इतिहास में एक निश्चित तिथि क्रम का प्रारम्भ हो गया। साथ ही सिकन्दर के आक्रमण के समय आए अनेक यूनानी लेखकों ने तत्कालीन भारत की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन किया जिससे उस काल के इतिहास परखन में काफी सहायता मिलती है।

**सांस्कृतिक प्रभाव :-** सिकन्दर के आक्रमण के प्रभाव भारत की संस्कृति पर भी पड़े। अभी तक यूनानी अपने अतिरिक्त किसी अन्य को सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं मानते थे परन्तु भारत पर आक्रमण के समय आए यूनानी इतिहासकारों ने जब यहाँ की स्मृद्ध संस्कृति को देखा तो दंग रह गए तथा उन्हें यहाँ के ग्रन्थों सामाजिक संगठन इत्यादि को जानने की जिज्ञासा हुई। जिस कारण विचारों के आपसी आदान प्रदान से दोनों संस्कृतियों में काफी सहयोग हुआ।

**धार्मिक प्रभाव :-** कुछ विद्यवानों का कहना है कि भारतीय लोगों के धार्मिक विचारों पर यूनानी प्रभाव पड़ा। प्लुटार्क का कहना है कि कुछ भारतीय यूनानी देवी देवताओं की पूजा करने लगे। परन्तु यह शायद उन्हीं नगरों में सभव होगा जहाँ पर यूनानी उपनिवेश थे जहाँ शायद निवासियों को उनकी प्रार्थना सभाओं में जाना होता होगा। परन्तु दूसरी ओर भारतीय धर्मों का यूनानी तथा हेन्दू यूनानी राजाओं पर प्रभाव अवश्य पड़ा बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो इसका साक्ष्य है। बेसनगर का अभिलेख श्रद्धालु हेलियाडोरस का विष्णु की स्मृति में बनाया स्तम्भ इसका प्रमाण है। जो तक्षशिला के यूनानी शासक अन्तया लकिडस (Antialkidus) का पुत्र था। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बौद्ध तथा ब्रह्मण धर्म का यूनानियों पर प्रभाव पड़ा।

**कला पर प्रभाव :-** भारतीय कला पर यूनानियों का काफी प्रभाव पड़ा। यूनानी शैली का प्रभाव भारतीय मूर्तिकला पर पड़ा। गान्धार शैली भारतीय तथा यूनानी शैली के संगम से ही बनी। इस शैली में यूनानी शैली के संगम से ही निर्माण हुआ जिसमें सुन्दर लक्षणों तथा भावों वाली मूर्तियाँ बनी जिन में पत्थरों पर बने कपड़े पारदर्शी प्रतीत होते हैं। यद्यपि इस कला का क्षेत्र गान्धार में ही प्रारम्भिक काल में हुआ तथा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण हुआ परन्तु धीरे-धीरे इसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों में भी हुआ जैसे पंजाब के पूर्वी क्षेत्रों में भी हुआ जहाँ की मूर्ति कला पर उतकीर्ण आकृतियों की वेशभूषा और आकार चष्टा समकालीन यूनानियों की वेशभूषा से मिलती जुलती है।

वास्तु शैली का इस क्षेत्र में प्रभाव का दर्शाना तो कठिन है क्योंकि बार-बार आक्रमणों के कारण उत्तरपश्चिम भारत में केवल कुछ ही प्राचीन भवन बचे हैं। परन्तु कुछ अवशेष अवश्य यूनानी प्रभाव दिखाते हैं इनमें ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वा में बन मन्नावशेष हैं जिनमें ऊँचे-ऊँचे स्तम्भों से युक्त एक मन्दिर यूनानी शैली का है।

**भारतीय मुद्रा पर प्रभाव :-** भारत में युनानी आक्रमण के बाद मुद्राओं पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। इससे पूर्व आहत मुद्राओं का न तो कोई निश्चित आकार था न ही उन पर लेख तथा ये आहत शैली से बनाई जाती थी। परन्तु युनानी प्रभाव के बाद एक निश्चित आकार वाली (गोलाकार तथा कभी-कभी आयताकार) मुद्राओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ जिन पर लेख भी लिखा होता था। कई गणराज्यों तथा राजाओं ने तो इनकी नकल पर उसी प्रकार के चिन्हों तथा भार वाली मुद्राएं भी चलाई। जैसे औयुम्बर राजा धरघोष की मुद्राएं युनानी राजा अपोलोडोटस (Appolotus) से मिलती जुलती हैं। इसी आधार पर कुछ विद्यवानों ने तो यहां तक कह दिया कि भारत में सिक्कों का प्रचलन भी युनानियों के कारण ही हुआ जो कि एक मिथ्या भ्रान्ति है।

**व्यापारिक मार्ग :-** सिकन्दर के आक्रमण के कारण भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच एक नया मार्ग खोल दिया। इससे पूर्व समुद्र के रास्ते ही पश्चिमी सभ्यताओं से सम्पर्क तथा व्यापार हुआ करता था। अब पश्चिमोत्तर भारत तथा बैबिलोन के भी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए। स्ट्रैबों का कथन है कि कैस्पियन सागर तथा काला सागर के मार्ग से युरोप को भारतीय माल भेजने में यह मार्ग एक महत्त्वपूर्ण मार्ग था। जिसमें आमू नदी एक कड़ी का काम करती थी। यह मार्ग ई. पूर्व तीसरी शताब्दी तक चला। इसके पश्चात भारत युनान इरान तथा पश्चिमी देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध नियमित रूप से प्रारम्भ हुआ।

**साहित्य एवं रंगमंच प्रभाव :-** एक पश्चिमी विद्यवान ने कहा था कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में भारतीयों ने होमर का अपनी विविध भाषाओं में अनुवाद कर लिया था। इसके आधार पर कई विद्यवान भारतीय साहित्य पर युनानी प्रभाव को मानने लगे। रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों को युनानी इलिपाड तथा औडीसी पर आधारित माना गया। परन्तु इस का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है परन्तु रंग मंच पर युनानी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। युनानी लोग नाट्यप्रेमी थे तथा अपने नगरों में नाट्य लीलाएं अपने नगरों में रंगमंच बनाकर प्रदर्शित करते थे। प्राचीन भारतीय लोग इस प्रकार की शैली से परिचित नहीं थे परन्तु युनानियों के सम्पर्क में आने के बाद उन्होंने यह शैली अनुकरणित की जिसे यवनिका का नाम दिया गया है।

**ज्योतिष पर प्रभाव :-** ऐसा माना जाता है कि युनानियों के सम्पर्क से भारतीय ज्योतिष शास्त्र पर विदेशी प्रभाव पड़ा। भारतीय संस्कृत में होराचक्र युनानी भाषा के शब्द होरास्कोपस से ही लिया गया माना जाता है होरा का अर्थ 'घटा' अथवा घड़ी का बोध है। इस प्रकार होरोस्कोपस उस शब्द को कहते हैं जिससे जन्म के बाद की घटनाओं की गणना का संकेत है। भारतीय ज्योतिषियों ने युनानियों से राशि चक्र का अनुकरण किया तथा युनानी दायामेत्रान के अनुरूप जामित्रलग्न भी प्राप्त किया। इसी प्रकार रोमक तथा पोलिस सिद्धान्त भी युनानी ज्योतिष शास्त्र से ही लिए गए हैं। भारतीय विद्यवानों को युनानी ज्योतिषियों से सम्पर्क का वर्णन गार्गी संहिता से स्पष्ट है जिसमें लेखकन यद्यपि यवनों को बर्बर कहा परन्तु ज्योतिष शास्त्र का प्रारम्भ उन्हीं से बताया।

**चिकित्सा पर प्रभाव :-** यद्यपि भारतीय चिकित्सा प्रणाली तथा शल्य चिकित्सा काफी समृद्ध रही है परन्तु भारतीय औषधी विज्ञान पर भी युनानी प्रभाव देखने को मिलता है। आयुर्वेद के साथ युनानी प्रणाली का प्रचलन इसका प्रमाण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि सिकन्दर के आक्रमण के कारण भारत में न तो कोई युनानी राज्य स्थापित हुआ यद्यपि जहां तहां छोटे-छोटे उपनिवेश तथा नगरों की स्थापना तो हुई। परन्तु उत्तरपश्चिम भारत के लगते क्षेत्र में युनानी शासन शुरू हो गया जो बाद में भारत पर आक्रमण भी करने लगे। परन्तु भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के कुछ प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव अवश्य ही पड़े।

## नन्द वंश (344-322 ई० पू०)

### (a) नन्द वंश (344-322 ई०पू०)

बौद्ध साहित्य से प्रकट होता है कि शिशुनाग वंश के काकवर्ण राजा के पश्चात् उसके दस पुत्रों ने 22 वर्ष तक राजा किया तथा इसके पश्चात् नन्दवंश का राज्य प्रारम्भ हुआ। नन्द वंश की स्थापना से भारत के इतिहास में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। प्रथम बार मगध के साम्राज्य की सीमा गंगा के मुहानों से पार दूर-दूर तक फैली। यह प्रथम साम्राज्य था जो एक अर्ध-स्वायत्त (Semi-independent) या सामन्ती राजाओं का इकट्ठे न होकर एक राजतन्त्र था जिसका शासक ऐकराट Ekarata (Single Ruler) था जिसके पास अपार धन सेना तथा क्षेत्र था जिन्होंने क्षत्रिय वंश को समाप्त कर दिया। पुराणों के अनुसार इस वंश के साथ लोह युग (कलियुग) का प्रारम्भ हुआ। परन्तु पुराणों तथा जैन और बौद्ध साक्ष्यों में इस काल के बारे में काफी मतभेद है तथा न ही इस बात पर एकमत है कि प्रथम नन्द राजा का राज्य कब शुरू हुआ। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि जब 326 ई०पू० में चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला उस समय पाटलीपुत्र में नन्द वंश का अधिकार था। ऐसा प्रतीत होता है कि 355 ई०पू० जब जिनोफोन (Xenophon) की मृत्यु हुई उससे पहले नन्दों का राज्य शुरू हो चुका था। क्योंकि इस इतिहासकार ने लिखा है कि भारत का राजा, जिसकी पश्चिमी एशिया के साम्राज्य से झगडा था, बहुत समृद्ध आदमी था। हम जानते हैं कि नन्दों को धननन्द भी कहा जाता है। इस तरह यह बात इन्हीं पर लागू हुई प्रतीत होती है। परन्तु जिनोफोन तो छठी शताब्दी ई०पू० की बात कर रहा था परन्तु शायद उसने अपने काल के संस्मरण इसमें जोड़ दिए हैं।

कुछ विद्वान खारखेल की हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्णित 'ति वस सत' को नन्द वंश द्वारा स्थापित नन्द वर्ष (era) मानते हैं। परन्तु अलबेरुनी इस नाम के किसी युग का वर्णन नहीं किया है। दूसरे स्वयं हाथीगुम्फा अभिलेख की तिथि के बारे में भी विद्वान एक मत नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी समकालीन साक्ष्यों में नन्दों का वर्णन नहीं है जो भी इस संदर्भ हमें मिलते हैं वे काफी बाद के हैं। कुछ विद्वानों ने युनानी साहित्यकार जस्टिन (Justin) द्वारा वर्णित अलैग्जन्द्रुम (Alexandrum) को नन्द्रुम (Nandrum) मान नन्दों का वर्णन आता है। बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो (Milinda-panho) में नन्दों के राजपरिवार का वर्णन है। खारखेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में दो स्थानों पर नन्दों का का संदर्भ है। एक स्थान पर वर्णन है कि खारखेल ने अपने राज्य के पाँचवें वर्ष में 300 वर्ष पूर्व खोदी नहर को पुनः खुदवाया। एक अन्य स्थान पर वर्णन है कि खारखेल ने कलिंग की जैन मूर्ति जिसे नन्द राजा ले गया का वापिस कलिंग लाई।

परन्तु नन्दों के काल का एक सुनियोजित इतिहास लिखने के लिए हमें भारतीय (जैन तथा बौद्ध), सिहली साक्ष्य पुराणों, दन्त कथाओं चन्द्रगुप्त कथा जिसके कुछ अंश हमें मिलिन्द पन्हों में मिलते हैं तथा कुछ चीनी यात्रियों के वृत्तान्त इत्यादि का सहारा लेना पड़ता है।

### महापदम नन्द

पुराणों के अनुसार पहले नन्द शासक ने महापदम या महपदमापति उपाधि धारण की। परन्तु बौद्ध ग्रन्थ महाबोधिवंश के अनुसार प्रथम नन्द राजा उग्रसेन था पुराण उसे शिशुनाग वंश के अन्तिम राजा तथा एक शुद्ध स्त्री की सन्तान बताते हैं (शुद्रागमोदभव)। उसके पिता का नाम महानन्दि था जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन के अनुसार वह नापित पिता तथा वेश्या माता से उत्पन्न हुआ था। इसी प्रकार कर्टियस (Curtius) नामक युनानी विद्वान का कहना है उसका पिता नाई (नापित) था तथा वह अपना पेट बड़ी कठिनाई से महानत कर भरता था। परन्तु देखने में वह बहुत सुन्दर था। वह किसी ढंग से रानी का प्रेम पात्र बन गया तथा उसके सहारे वह राजा का विश्वास पात्र बन गया। बाद में उसने विश्वासघात कर राजा अग्रेमीज का वर्णन किया है। वह उसी धोखेबाज का पुत्र था। परन्तु गणिकाकुशिजन्म का वर्णन हम नन्द राजा महापदम से नहीं परन्तु उसके पिता से मान सकते हैं। कर्टियस ने जिसने आग्रसन्ध का वर्णन किया है तथा जिसने राजा का वध किया वह राजा काकवर्ण था जिसे हर्षचरित में वर्णित किया गया है। बौद्ध साक्ष्य महावंशटीका के अनुसार महापदम नन्द डाकुओं का नेता था जो लूटपाट करता था। बाद में उसने पाटलीपुत्र पर अधिकार कर लिया। कुछ भी हो यह तो तय है कि प्रथम नन्द राजा नीची जाति का था तथा इसलिए वह वंश आम लोगों में लोकप्रिय नहीं था तथा इसी कारण चन्द्रगुप्त का नन्द वंश का अन्त करने में लोगों का साथ मिला।

### राज्य विस्तार :-

भागवत पुराण की एक टीका के अनुसार नन्दराज के पास दस पदम सेना थी इसीलिए उसे महा पदम कहा जाता था। नन्दों के मे मगध साम्राज्य गंगा की घाटी से बढ दूर-दूर तक फैल गया। पुराणों में तथा अन्य साक्ष्यों में महापदम की विजया का उल्लेख है। उसे एक छत्र पृथ्वी का राजा अनुल्लंघित शासक या परशुराम के समान (शायद क्षत्रिय वंश अन्त करने के कारण) माना जाता है।

इत्यादि का गण्य है। जैन साक्ष्य नन्दों के मंत्री द्वारा समुद्र तक सारे देश को जीतने के साक्ष्य है। पुराणों ने भी महापदम को सभी क्षत्रिय राजवंशों से उखाड़ने का जिक्र है जिन्होंने शिशुनाग वंश के समकालीन राज्य किया (तुल्यकालम्, भविष्यान्त सर्गः हि एते महीक्षिति) इन। इक्ष्वाकु, पंचाल, काशेय, हैहेय, कलिंग, अश्मक, कुरु मैथिल, सूरसेन तथा वीतिहोत्र इत्यादि थे। इक्ष्वाकु उस समय कौशल में राज कर रहे थे जिनका राज्य आज के अवध प्रदेश में था। कथासरितसागर के एक अंश में अयोध्या में नन्दों के कैम्प (कटक) का स्दर्भ है जिससे पता चलता है कि नन्द राजा के अयोध्या पर आक्रमण किया।

पंचाल उस समय में उपरी गंगा तथा गोमती तथा मध्य गंगा दोआब में राज्य कर रहे थे। नन्दों ने इन्हें अपने आधीन कर लिया। काशेय या कशी का वंश आज के बनारस के आस पास राज्य कर रहा था। पुराणों के कथन के अनुसार यह एक शिशुनाग राजकुमार को नियुक्त किया गया था। नन्दों ने इसी के वंशजों से काशी के आसपास का इलाका जीता होगा।

हैहेय वंश का वर्चस्व नर्मदा घाटी में मध्यकाल तक रहा है। उनकी प्रारम्भिक राजधानी माहिष्मति थी जो नर्मदा पर स्थित थी। जिसे पार्जितर मनघाता से तथा अन्य विद्वान महेश्वर से समीकृत करते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य से ही मालवा तथा गुजरात मौर्य साम्राज्य के अंग रहे हैं। इस क्षेत्र का नन्दों ने ही विजित किया था।

कलिंग के क्षेत्र में उड़ीसा की वैतरणी नदी से विशाखा पटनम की बराहनदी तक का क्षेत्र था। हाथी गुम्फा अभिलेख से इस क्षेत्र पर नन्दों की विजय का वर्णन है।

अश्मकों का क्षेत्र गोदावरी के मुहाने पर था। इसी नदी पर एक नौ नन्द डेहरा नामक शहर निजामाबाद जिले में है। नौ नन्दों के इस क्षेत्र का संदर्भ भी नन्दों के इस क्षेत्र में विजय का सूचक है।

मैथिल या मिथिल को लोग रामायण के वर्णित क्षेत्र से है जो आज के नेपाल की सीमा पर जनकपुर के क्षेत्र से है जहां उत्तरी बिहार के दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर क्षेत्र मिलते हैं। अजातशत्रु के इस क्षेत्र पर विजय के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ा परन्तु शायद बाद में फिर स्वतन्त्र हो गए तथा नन्द राजा को इसे अपने क्षेत्र में मिलाने में अजातशत्रु से अधिक सफलता मिली।

सूरसेन (या मैगस्थनीज के सौरसेनोई) की राजधानी यमुना किनारे स्थित मथुरा थी। यूनानी साक्ष्य इस क्षेत्र की विजय इसी नन्द राज्य को देते हैं। वीतिहोत्र लोग भी हैहेयो से नजदीकी सम्बन्धित थे। शिशुनाग वंश के काल में इन्होंने मगध के विरुद्ध विजय हासिल की क्योंकि भविष्यानु कीर्तन में पुराणों के संदर्भनुसार इन्होंने प्रद्योत की कीर्ति छीन ली थी (यशः कृत्रस्नम्) दूसरे चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य में पश्चिमी भारत पहले से दी थी इसलिए नन्दों का इस क्षेत्र को विजय करना ठीक प्रतीत होता है। जैन साक्ष्य भी स्पष्ट रूप से नन्दों को अवन्ति के प्रद्योत के पुत्र पालक के उत्तराधिकारी बताते हैं।

### राज्यविस्तार

इस प्रकार हम देखते हैं कि महापदमनन्द के राज्य में उत्तरा तथा पूर्वी भारत के अतिरिक्त मध्य भारत तथा सौराष्ट्र का क्षेत्र शामिल था। हेमचन्द्र राज्य चौधरी के अनुसार दक्षिणापथ का कुछ भाग भी संभवतः नन्द साम्राज्य का अन्तर्गत था। स्मिथ का मत है एक महापदमनन्द ने सरकार का केन्द्रीकरण कर दिया तथा सामन्त राजाओं को हटा दिया। परिशिष्ट पर्वन में भी नन्दों का समुद्र तक साम्राज्य का उल्लेख है।

### सेना

नन्दों के पास न केवल एक विशाल सेना थी अपितु अपार धन भी था। पुराणों के अनुसार नन्द राज के पास दस पदम सेना थी। कर्टियस के अनुसार नन्दों की सेना में 20 हजार घोड़सवार, 2 लाख पैदल सैनिक तथा 3000 हाथी थे। इतनी विशाल सेना का जिक्र सुन कर तो सिकन्दर की सेना ने भी आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था।

### राज्यकाल

वायु पुराण के अनुसार प्रथम नन्द राजा महापदम ने 28 (अष्टविंशति) वर्ष तक राज्य किया। परन्तु मत्स्य पुराण उसका काल 88 (अष्टाशीति) वर्ष बताता है। परन्तु शायद मत्स्य पुराण के गलती से अष्टाविंशति को अष्टाशीति लिख दिया हो। तारानाक भी नन्द राज का 29 वर्ष का राज्यकाल बताते हैं जबकि सिंहली महाकाव्य समस्त नन्द राजाओं का शासन काल 22 वर्ष बताते हैं।

### महापदम के उत्तराधिकारी

पुराणों के अनुसार महापदम के पश्चात् उसके 8 पुत्रों ने 12 वर्ष तक राज्य किया। पुराणों के अनुसार इनमें सबसे बड़ा सहल्य या सहलिन था। मत्स्य पुराण की पांडु लिपियों में उसका नाम सुकल्प दिया है। वायु पुराण सहल्य देते हैं जिसे बेणी महताब बरुआ दिव्यावदान के सहलिन से समीकृत करते हैं। महाबोधी वंश में इसका अलग नाम दिया है जो कि अन्य साक्ष्य से प्रमाणित नहीं होता। अन्तिम नन्द राजकुमार का नाम धननन्द था जिसे चुनावी अग्रामीण था जैनद्रमीज (Xandrames) कहते हैं सिकन्दर के आक्रमण के समय ब्यास नदी के इस पार राज्य कर रहा था। प्रथम आठ नन्द राजकुमारों के बारे में तो हमें अधिक वर्णन नहीं मिलता परन्तु



अन्तिम नव राजकुमार धननन्द को धन इकट्ठा करने का शौक था। इसलिए उसे धननन्द कहा गया है। इसके कारुणिक भावों का धन था जिसे उसने गंगा नदी के किनारे दबा दिया था। इसके लिए उसने खालों, गोंद वृक्ष तथा पत्थरों पर भी धन खोज कर लगा दिया था। तमिल कविताओं में भी नन्दों की विजयों तथा खजानों का वर्णन मिलता है। चीनी यात्री वृकान्ध की यात्रा सातवीं सदी में लिखा है कि नन्द राजा के पास खजाने थे। यह धन उसने अधिक करो से इकट्ठा किया इसी लिए अश्वमेध यज्ञ निम्न जाति के होने के कारण लोग नन्द वंश के विरुद्ध हो गए। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य की पाटलीपुत्र विषय की शासक पद मिलिन्द पन्नों में नन्दों और मौर्यों के युद्ध का वर्णन है जबकि मुद्राराक्षस में कौटिल्य की षडयन्त्रों का वर्णन है।

### शासन प्रबन्ध :-

नन्दों ने भारत के अधिकांश क्षेत्रों में समुन्द्र तक अपना एक राज्य स्थापित कर लिया। यह तो स्पष्ट नहीं है कि वे इसका प्रबन्ध कैसे करते थे परन्तु यदि हम कथाओं तथा अन्य साक्ष्यों को देखें तो उन्होंने एकीकृत शासन (Unitary System) प्रणाली स्थापित की क्योंकि उनका समस्त क्षत्रिय राजाओं को समाप्त करना तथा ऐकशत तथा ऐकछत्र उपलब्धियाँ भी यही दर्शाती हैं। वीणोपनिषद् तो उन्हें समस्त राजाओं को हराकर केन्द्रीयकृत राज्य स्थापित करने वाले मानते हैं। परन्तु युनानी लेखकों का मत है कि न्यास के इस पार साम्राज्य का बहुत ही सुन्दर आन्तरिक प्रबन्धन का जहाँ पर कुलीन तन्त्र (Aristocracy) बहुत ही सयम, सुचारु तथा न्यायप्रिय ढंग से शासन करते थे। शायद कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित कुरु-पांचाल संघ का वर्णन है जो राजा की उपाधि धारण करते थे (राजशब्दोपजीविनाः)। ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दों ने मगध, वुज्जि, काशी, कोशल के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को स्वायत्तता दे दी थी, शायद इसी कारण दूर-दराज के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त अपने इरादों में सफल हो सके।

### मंत्रीमण्डल :-

सम्राट के अतिरिक्त नन्दों ने अपना एक मंत्रीमंडल भी बनाया था जिसमें कल्पक तथा शकताल जैसे योग्य मुन्त्री नियुक्त किए तथा उनके परामर्श से शासन संचालन द्वारा मन्त्रिपरिषद की संस्था को सुदृढ़ किया। उनके पास एक विशाल सेना थी तथा उन्होंने भद्रसाल नामक योग्य सेनापति को नियुक्त किया।

### प्रान्तीय प्रशासन :-

युनानी लेखकों ने उनके प्रान्तीय प्रशासन का भी वर्णन किया है जो कि युनानी नेमार्क (Nomarch) के समकक्ष गर्वनर रहेंगे। जिस वे क्षेत्र के आधीन कहते थे। उन्होंने पंजाब तथा मगध का इस तरह का प्रबन्ध माना। परन्तु भारत में हमें उस समय अहार विषय जनपद इत्यादि के उल्लेख मिलते हैं जो महामात्र राजुक, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीयों के आधीन थे। सबसे नीचे की प्रशासनिक इकाई ग्राम थी। प्रश्न उपनिषद में हमें एक अधिकारी अधिकृत का पता चलता है जिसे गाँव के लिए नियुक्त किया गया था जिस सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता था। पाली साहित्य में वर्णित ग्रामिक शायद इसी अधिकृतों की तरह गाँव का प्रमुख रहा होगा। बिम्बिसार के काल में हमें 80 हजार ग्रामिकों की एक सभा का वर्णन था। यही प्रबन्धन बाद में नन्दों के काल में भी रहा। नन्दों द्वारा एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर पाने में इस क्षेत्र में कृषि का अच्छा होना तो था ही साथ ही मगध के उत्कर्ष में लोहे की भूमिका भी बहुत थी। इस क्षेत्र में लोहा काफी मात्रा में मिलता है तथा इस धातु से खेती और युद्ध के लिए उपयुक्त हथियार बनाए जा सकते थे कलिंग क्षेत्र को विजित करने के कारण वहाँ से हाथियों की उपलब्धता हुई तथा सेना में हाथी रखे गए। पाटलीपुत्र की भौगोलिक स्थिति थी इसके साम्राज्य बनने में सहायक हुई। उत्तरापथ पर स्थित होने से इसका स्थल मार्ग से तक्षशिला तथा पश्चिम दिशा से रेशम मार्ग (Silk Route) द्वारा जुड़ा होना महत्वपूर्ण है। इससे व्यापार को बढ़ावा मिला। इस काल की आहत मुद्राएँ (Punch-Marked Coins) हमें तक्षशिला (Taxila) से प्राप्त हुई हैं। उधर बंगाल, कलिंग, सौराष्ट्र के इनके राज्य में होने से समुन्द्री बन्दरगाहों में भी बाहरी व्यापार संभव हुआ तथा इससे उन्होंने सर्वप्रथम बार भारत को एकीकृत कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया।

### अन्य उपलब्धियाँ :-

नन्द वंश की जो भी उपलब्धियाँ रही हैं वे सभी बाद के मौर्य वंश की उपलब्धियों के आगे फीकी पड़ गईं। नन्दों ने एक ऐसी लड़कू सेना तैयार की जिसका सिकन्दर की सेना पर भी प्रभाव पड़ा तथा उन्हें मजबूर हो वापिस लौटना पड़ा। मौर्यों को इस प्रकार की सेना संगठन उपलब्ध हुआ तथा जिस प्रकार बिम्बिसार (Bimbisara) तथा अजातशत्रु (Ajatasatru) से बड़े नन्दों ने साम्राज्य बढ़ाया उसी प्रकार मौर्यों ने नन्दों से बड़ा साम्राज्य बनाया सैनिक उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रशासन में भी मौर्यों से पहले नन्दों ने केन्द्रीयकृत प्रशासन स्थापित किया। इसके अतिरिक्त यदि हम कृतकृत्य विश्वास करें तो नन्दों के काल में पाटलीपुत्र सरस्वती तथा लक्ष्मी क्षेत्र बन गया था तथा पठन-पाठन का केन्द्र बना जहाँ बहुत ही विद्वान् पुरुष विद्यमान थे जिनमें वर्ष, उपवर्ष, पाणिनी (Panini), कात्यायन (Katayana), वररुचि (Vararuchi), व्यादी (Vyadi) इत्यादि प्रमुख थे। इसमें वर्ष का नाम यह बता पाना तो कठिन है परन्तु पातञ्जलि द्वारा (जो कि पाणिनी स्कूल का था) यवन लिपि का ज्ञान होना दर्शाता है कि पातञ्जलि के जन्म के नन्दकाल के रहे होंगे। कुछ व्याकरण के विद्वान नन्द राजाओं को एक प्रकार के तैल का प्रारम्भ करने वाले मानते हैं (नन्दप्रारम्भक) का जो

इसके अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में भी नन्दों का उदय उस काल में निम्न जातियों के उत्कर्ष का एक सूचक है। पुराण इन्हे शुद्रराज का प्रारम्भ मन्कर अधार्मिक कहते हैं। दूसरी ओर इनका जैन धर्म को अपनाना तथा जैन मन्त्रियों का होना उस समय में ब्राह्मण धर्म का कमजोर होने का सूचक है।

### (b) मौर्य साम्राज्य

चौथी शताब्द ई०पू० के उत्तरार्ध में मौर्यों के आगमन के साथ ही हमारी ऐतिहासिक समझ आलोकित हो उठती है। इस समय से भारतीय इतिहास के विषय में ठोस एवं स्पष्ट साक्ष्य हमें मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी कारणवश मौर्य साम्राज्य की स्थापना भारतीय इतिहास में गोल का पत्थर साबित हुई है। यही वह समय था जब भारत में साम्राज्य स्थापना आरम्भ हुई तथा मगध के महाजनपदों से मौर्य साम्राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसी के साथ भारत में राजनैतिक स्थायित्व के काल का आविर्भाव हुआ क्योंकि मौर्यों ने एक ऐसे विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसकी सत्ता एकाकी एवं केन्द्रीयकृत थी।

इस साम्राज्य का महत्व उन तत्कालीन परिस्थितियों के कारण ओर भी अधिक बढ़ जाता है जिनमें इनकी उत्पत्ति हुई। मौर्य साम्राज्य का उदयउत्तर भारत में उस समय हुआ जब यह राजनैतिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। एक ओर जहाँ पूरा उत्तर-पश्चिमी भारत तथा पंजाब अलकक्षेत्र (अलैक्जेण्डर अथवा सिकन्दर) के रूप में विदेशी आक्रमण को झेल रहा था वहीं दूसरी ओर उत्तर भारत के मुख्यभाग मगध में धननन्द के आधीन राज्य, जिसकी सत्ता अत्याचार, लोभ तथा जनता के आर्थिक उत्पीड़न पर आधारित थी, वह आन्तरिक रूप से जर्जर होकर अपनी अंतिम साँसे गिन रहा था। जिस समय अलकक्षेत्र, 325 ई०पू० में भारत छोड़ वापिस मकदूनिसा के लिए रवाना हुआ उस समय पूरा उत्तर भारत राजनैतिक निराशा, अवसाद तथा अस्थिरता से पीड़ित था।

परन्तु कठेनार्यो के क्रोड़ में ही उत्तम अवसर भी विद्यमान होते हैं। इतिहास इस समय ऐसे महानायक को ढूँढ़ रहा था जो उत्पीड़ित, क्षुब्ध तथा भयाक्रांत जनता को शांति एवं सुरक्षा प्रदान कर सके एवं अलकक्षेत्र के भारत से बहिर्गमन से उपजी राजनैतिक शुन्यता को भर सके। इन्हीं परिस्थितियों में मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य का आविर्भाव हुआ जिसने शोषित जनता के क्षोभ रूपी रथ पर चढ़कर न केवल यूनान से आए विदेशी आक्रांताओं का सफलता पूर्वक सामना किया बल्कि आतातायी एवं अत्याचारी धननन्द को परास्त कर नन्द वंश का भी अन्त कर दिया। मौर्य उद्भव एवं जाति के इस प्रतिभाशाली और महान सम्राट की वंश परम्परा के सम्बन्ध में विद्वानों में घोर मतभेद है। अधिकांश इतिहासकार यह मानते हैं कि मौर्यों की उत्पत्ति 'निम्न जाति' अथवा 'जनजाति' से हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों, विशेषकर पुराणों ने मौर्यों को शूद्र घोषित किया है। विष्णुपुराण के भाष्यकार के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य नन्द राजा तथा मुरा नामक उसकी एक पत्नि से जन्मा पुत्र था। विशाखदत्त ने भी मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को 'मौर्य पुत्र तथा नन्दान्वस (नन्दान्वय)' कहा है। क्षेमेंद्र (बृहद्कथामंजरी) तथा सोमदेव (कथासरित्सागर) भी चन्द्रगुप्त मौर्य को पूर्वनन्दसुत बताते हुए शूद्र घोषित करते हैं। मुद्राराक्षस का 18वीं शताब्दी का भाष्यकार धुन्धीराज लिखता है कि चन्द्रगुप्त की माता मुरा शूद्र कन्या थी। स्वयं विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त को 'वृषल' तथा 'कुलहीन (वृषलात्मजा)' शब्द के आधार पर ही विद्वानों ने चन्द्रगुप्त के विषय में उपरोक्त मत प्रकट किए हैं।

परन्तु 'वृषल' शब्द का अर्थ केवल शूद्र ही नहीं होता है। मुद्राराक्षस में वृषल शब्द का प्रयोग 'राजाओं में वृष अर्थात् राजाओं में श्रेष्ठ' के लिए भी आया है। इस प्रकार इस शब्द का प्रयोग सम्मानसूचक है। इसी प्रकार 'कुलहीन' भी 'निम्न राजवंश का द्योतक है न कि शूद्र कुल का। यह शब्द इस ओर इंगित करता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य मूल राजवंश से न होकर निम्नराजवंश से संबंध रखता था। साथ ही यह यूनानी लेखक जस्टिन की उस उक्ति को भी सत्यापित करता है जिसमें उसने चन्द्रगुप्त को सामान्य परिस्थितियों में जन्मा घोषित किया है। यद्यपि पुराण मौर्यों को शूद्र बताते हैं तथापि उनका कथन केवल उस प्रचलित परिपाटी पर आधारित है जिसमें प्राचीन मगध समाज को मिश्रित जातियों से उत्पन्न माना गया है।

इतिहासकारों का मत है कि मौर्य वैश्य थे। रुद्रदमन द्वारा प्रतिपादित जूनागढ़ शिलालेख कहता है कि मौर्यों की उत्पत्ति वैश्य जाति से हुई। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर भी अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में इस मत की पुष्टि करती हैं। इस मत के मसर्थक अपनेपक्ष को सुदृढ़ बनाने के लिए यह तर्क देते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य, जो कि मौर्य वंश का संस्थापक था, उसके नाम के अन्त में 'गुप्त' का लगना इस ओर इंगित करता है कि मौर्य वैश्य जाति से थे। साथ ही अशोक महान द्वारा विदिशा के एक व्यापारी की पुत्री के साथ विवाह करना भी इस मत को बल प्रदान करता है।

किन्तु बौद्ध एवं जैन स्त्रोत मौर्यों को क्षत्रिय जाति का बताते हैं। 'महावंश-टीका' के अनुसार मौर्यों का सम्बन्ध सूर्यवंशी क्षत्रिय शाक्यों से था। मध्य कालीन शिलालेखों के अनुसार भी मौर्य वंश सूर्यवंशी प्रतीत होता है। कहा जाता है कि मौर्य जाति का आरम्भ मान्धातु से हुआ जो सूर्यवंशी राजकुमार था। जैन परम्परा के अनुसार नन्द को नाई और वेश्या की सन्तान बताया गया है। इसी परम्परा के अनुसार हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि चन्द्रगुप्त मौरों अथवा मयूरों को पालने वाले ग्राम के मुखिया की बेटी का पुत्र था। एक स्मारक से भी इस बात की पुष्टि होती है कि मौर्यवंश का सम्बन्ध मौरों से अवश्य रहा होगा। लौरिया नन्दनगढ़ स्थित अशोक के स्तम्भ के एकदम निम्न भाग में मयुर की प्रतिमा अंकित है। अशोक के काल में सांची से भी ऐसी अनेक प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। बौद्ध परम्परा के अनुसार भी मौर्यों का सम्बन्ध मौरों से प्रतीत होता है। हमें बताया गया है कि पाटलीपुत्र के मौर्य राजप्रसाद में भी अनगिनत मयूरों को रखा जाता था।

बौद्ध ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त को मौर्यवंश अथवा मोरिय वंश का बतलाया गया है। उसके सम्बन्ध में महावंश में लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का क्षत्रिय था और महापरिनिर्वाण (महापरिनिर्वाण) सुत के अनुसार यह मोरिय पिप्पलिवन नामक प्रजातन्त्र राज्य का शासक था। क्योंकि महापरिनिर्वाण सुत ऊपर वर्णित सभी ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इस कारण इसका महत्व तथा प्रामाणिकता भी जाननी चाहिए। तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं रहता कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था। हमें यह पता चलता है कि छठी शताब्दी ई०पू० में पिप्पलिवन का मोरिय वंश रुम्भिनदई तथा कासिया के बीच के क्षेत्रों पर शासन करता था। चौथी शताब्दी ई०पू० में संभवतः मोरिया का राज्य मगध के साम्राज्य में मिला लिया गया था। किंवदन्ति के अनुसार चन्द्रगुप्त के पिता की हत्या कर दी गई तथा उसकी माता जा गम्बती थी अपने सम्बन्धियों के साथ गुप्त रूप से असकर पाटलीपुत्र में रहने लगी। गुप्त रूप से रहने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त की माता तथा अन्य सम्बन्धी मोर-पालकों के रूप में रहकर अपने राजवंश को छिपाए हुए थे जिससे कि वे नन्द के कोप का शिकार होने से बच सकें। इस प्रकार मोर पालकों के बीच उत्पन्न चन्द्रगुप्त आगे चलकर मोरिय अथवा मौर्य कहलाया। इतिहासकार हेमचन्द्र राय चौधरी का भी यही मत है कि चन्द्रगुप्त निश्चय ही मोरिय वंश का क्षत्रिय था। राजपूताना गैज़टियर में भी मौर्यों को क्षत्रिय बतलाया गया है। राजस्थान में अब भी मोरिय वंश के राजपूत (क्षत्रिय) निवास करते हैं। कर्नल जेम्स टॉड ने इन्हे मौर्य वंश का बतलाया है। चाणक्य ने भी मौर्यों को उच्चवंशीय क्षत्रिय कहा है। दिव्यावदान में चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र बिन्दुसार को क्षत्रिय की उपमा दी गई है। इसी ग्रन्थ में अशोक को भी क्षत्रिय बतलाया गया है। इस प्रकार अब प्रायः यह बात मान ली गई है कि मौर्य लोग उच्चवंश के क्षत्रिय थे, शुद्र नहीं थे।

### चन्द्रगुप्त मौर्य :-

चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म 345 ई०पू० में मोरिय अथवा मौर्य वंश के क्षत्रिय कुल में हुआ था जो शाक्यों की एक शाखा थी और पिप्पलिवन के गणराज्य में शासन करते थे। बौद्ध अनुश्रुतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त का पिता जिसका नाम अज्ञात है मौरियों का मुखिया था। वह संभवतः किसी संघर्ष में मारा गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नि भागकर पाटलीपुत्र पहुँची तथा वहीं उसने एक शिशु को जन्म दिया जो कालान्तर में चन्द्रगुप्त के नाम से विख्यात हुआ। सुरक्षा के दृष्टिकोण से बालक चन्द्रगुप्त को एक गोशाला में छुपा दिया गया। बाद में उसका पालन-पोषण एक गड़रिये (चरपाहे) ने किया।

बालक चन्द्रगुप्त शैशव से ही कुशाग्र बुद्धि का स्वामी था। दन्तकथाओं के अनुसार उसे "राजकीलम्" (राजक्रीडा) नामक खेल आताप्रिय था। इस खेल में वह स्वयं राजा बनता था तथा अपने साथियों को अपना दरबारी बनाता था। वह स्वयं ऊँची जगह बैठकर न्याय करता था। कहा जाता है कि ऐसे ही खेल के समय उस पर चाणक्य अथवा कौटिल्य की दृष्टि पड़ी। कौटिल्य तक्षशिला का प्रसिद्ध आचार्य था। वह युनानीयों से भारत को मुक्ति दिलाने के सम्बन्ध में अंतिम नन्द शासक धननन्द के पास पाटलीपुत्र आया था। परन्तु धननन्द शासक ने उसे अपमानित कर निकाल दिया। इसलिए इस अपमान से वह काफी क्षुब्ध एवं क्रुद्ध था। बालक चन्द्रगुप्त ने इस अपने उद्देश्यों की पूर्ति का साधन नजर आया। वह चन्द्रगुप्त के माध्यम से नन्दवंश को नष्ट करने का निश्चय ले चुका था। कहा जाता है कि उसने गड़रिये से चन्द्रगुप्त को खरीद लिया तथा उसे अपने साथ तक्षशिला ले गया। तक्षशिला में उसने चन्द्रगुप्त का प्रविष्ट शिक्षा दी, अस्त्र-शास्त्रों के संचालन में निपुण बनाया तथा उसे हर प्रकार से अपने कार्य के अनुकूल तैयार किया।

### प्रारम्भिक विजय :-

मगध में नन्द शासक का शासन बहुत कुख्यात हो चला था। उनके अत्याचारी शासन से जनता क्षुब्ध थी। उधर, उत्तर-पश्चिम भारत में युनानीयों की शक्ति उत्कर्ष पर थी तथा इस क्षेत्र के बड़े भाग पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। अतः चन्द्रगुप्त और चाणक्य के समक्ष दो प्रमुख समस्याएँ थीं— (i) मगध के अत्याचारी शासन का तथा (ii) देश को युनानीयों की चंगुल से बचाना। अपने पहले उद्देश्य के लिए वे विदेशी सहायता लेने से भी नहीं हिचकिचाए। जस्टिन (जस्टिनियन) के अनुसार चन्द्रगुप्त सिकन्दर के पास उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए गया था। परन्तु उसकी उदण्डता से सिकन्दर ने उसे मार डालने का आदेश दिया। फलतः चन्द्रगुप्त को भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी।

तत्पश्चात् उसने अपने आप को संगठित करना आरम्भ कर दिया। उसने पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश में फैले युनानी शासन के विरुद्ध जनता के असंतोष का लाभ उठाया। उसने जनता को प्रोत्साहित किया तथा उनका नेता बन गया। उसने एक सुसंगठित सेना तैयार की जिसमें उसने पंजाब में रहने वाले लड़ाकू वीरों को सम्मिलित किया। **मुद्राराक्षस** और **परिशिष्टपर्वन** से ज्ञात होता है कि उसने अपने इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिये हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के राजा पर्वतक से मित्रता भी स्थापित की। इस मित्रता के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त की सेना काफी सुदृढ़ हो गई। शक, यवन, पारसी, किरात, कम्बोज, वाहलीक आदि जातियों के लोग उसकी सेना में सम्मिलित थे।

### युनानीयों से सम्पर्क :-

अपने आप को सामरिक रूप से सुदृढ़ कर चन्द्रगुप्त ने युनानीयों को भारत से बाहर खदेड़ने का बीड़ा उठाया। चन्द्रगुप्त के इस विजय अभियान का वर्णन युनानी लेखक जस्टिन ने किया है। वास्तव में चन्द्रगुप्त अपने देश को विदेशी पराधीनता से मुक्त करना चाहता था। जस्टिन लिखता है, "सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् भारत ने अपने गले से दासता का जुआ उतार फेंका और उसके क्षेत्रों को तार डाला। इस मुक्ति का स्रष्टा सैण्ड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त) था।" यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न युनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को अलग-अलग नामों से पुकारा है। जस्टिन, स्ट्रेबो तथा एपेरियन जहाँ उसे **सैण्ड्रोकोटस** कहते हैं वहीं फिलार्कस उसे **सैण्ड्रोकोपोटस** तथा एपियान, ऐरियन तथा प्लूटार्क उसे एण्ड्रोकोटस के नाम से पुकारते हैं। मुद्राराक्षस में भी चन्द्रगुप्त को 'विषल' तथा 'कुलहीन' के अतिरिक्त चन्द्रश्री भी कहा गया है। सवप्रथम विलियम जॉस ने ही **सैण्ड्रोकोटस** की पहचान चन्द्रगुप्त मौर्य के रूप में की। बहरहाल, जस्टिन के उपर्युक्त वक्तव्य से यी स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रधान नायक था। सिकन्दर के 325 ई०पू० में भारत से प्रस्थान के बाद चन्द्रगुप्त ने उसके दो महत्वपूर्ण युनानी क्षेत्रों **निकानोर** तथा **फिलिप** की हत्या करवा दी। इसी बीच 323 ई०पू० में सिकन्दर की बेबीलोन में मृत्यु हो गई। इस घटना ने जहाँ एक ओर चन्द्रगुप्त की महत्वाकांक्षा तथा उसके साहस को बढ़ा दिया वही दूरी ओर युनानीयों की दुर्बलता का फायदा उठाकर चन्द्रगुप्त ने सम्पूर्ण सिंध एवं पंजाब पर अपना अधिकार कायम कर लिया तथा स्वयं शासक बन बैठा। पंजाब पर विजय प्राप्त कर लेने के उपरान्त चन्द्रगुप्त पूरब की ओर बढ़ा और केवल दो वर्षों में ही हरिद्वार से इलाहाबाद तक गंगा की सम्पूर्ण उत्तरी और मध्यघाटी पर अपना अधिपत्य कायम करने में सफल रहा। इतने विस्तृत प्रदेश का स्वामी बन जाने से चन्द्रगुप्त की सेना और शक्ति में अपूर्व वृद्धि हुई। अब वह पंजाब तथा गंगा की ऊपरी घाटों का एकछत्र नरेश था।

### मगध की विजय :-

इन विजयों से उत्साहित होकर चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने मगध विजय की योजना बनाई। कहा जाता है कि प्रारम्भ में उन्होंने गलत समर नीति से काम लिया। यदि हम **महावंश-टीका** तथा हेमचंद्र कृत **स्थाविरावली-चरित** में वर्णित कहानियों के सार को समझें तो हमें पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने सर्वप्रथम मगध साम्राज्य के केन्द्र पर आक्रमण कर दिया। सीमान्त प्रदेशों को पहले जीतकर अपने अधिकार में करने का प्रयत्न नहीं किया। फलस्वरूप आक्रमण विफल रहा। तब दूसरी बार चन्द्रगुप्त ने साम्राज्य की सीमाओं से आक्रमण आरम्भ किया और मार्ग में जो नगर तथा सैनिक चौकियाँ पड़ी, उन पर अधिकार करते हुए आगे बढ़ा तथा मगध की सीमा में प्रवेश कर पाटलीपुत्र को घेर लिया। युद्ध में नन्द राजा धननन्द मारा गया। **मिलिन्दपन्हो** के अनुसार यह युद्ध भीषण और रक्तपातपूर्ण था। यद्यपि जैन अनुश्रुतियाँ ये कहती हैं कि युद्ध में पराजय के पश्चात् धननन्द को क्षमा करते हुए उसे जीवित छोड़ दिया, तथापि अधिकांश स्रोत इस युद्ध के पश्चात् धननन्द की हत्या ही प्रमाणित करते हैं। **मुद्राराक्षस** से यह ज्ञात होता है कि नन्द शासक की हत्या कर दी गई थी। नन्द सेनापति भद्रशाल (भट्टशाल) को पराजित होना पड़ा। चन्द्रगुप्त ने पाटलीपुत्र पर अधिकार कर लिया। 321 ई०पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य मगध का सम्राट बना।

### सेल्युकस से युद्ध :-

युनानी लेखकों के विवरण से पता चलता है कि जिस समय चन्द्रगुप्त भारत विजय में लगा हुआ था उसी समय पश्चिमी एशिया में सेल्युकस भारत पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। सेल्युकस सिकन्दर के उन सेनानायकों में से था जिन्होंने उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके साम्राज्य को आपस में बाँटा लिया था। उसने सिकन्दर का अनुकरण करते हुए 305 ई०पू० में भारत पर आक्रमण कर दिया। वास्तव में सिकन्दर द्वारा जीते गए जिन प्रदेशों पर चन्द्रगुप्त ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था उन्हें सेल्युकस पुनः प्राप्त करना चाहता था। उधर चन्द्रगुप्त ने भी देश के पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था कर ली थी तथा उसकी सेना सेल्युकस की सेना को सिन्ध के उस पार ही रोक दिया। दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम हुआ जिसमें सेल्युकस की हार हुई। उसे हार कर चन्द्रगुप्त से संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार सेल्युकस को अपने (युनानी) राज्य का बड़ा भाग चन्द्रगुप्त को सौंपना पड़ा। दोनों में मित्रता स्थापित हो गयी तथा दोनों में वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हुए। एपियन के अनुसार सेल्युकस ने अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया। चन्द्रगुप्त ने भी सेल्युका को 500 हाथी उपहारस्वरूप प्रदान किये। संधि की एक अन्य शर्त



के अनुसार दूत विनिमय करने का भी पिश्चय किया गया। सेल्युकस ने मेगस्थनीज को चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आने राजदूत के रूप में भेजा। वह काफी दिनों तक पाटलीपुत्र में रहा और वहाँ उसने जो अनुभव किया उसका आँखों देखा वर्णन उसने अपने पुस्तक इंडिका में किया।

इस संधि का विशेष महत्व है क्योंकि इस संधि के परिणामस्वरूप उत्तर-पश्चिम में चन्द्रगुप्त के साम्राज्य की एक निश्चित सीमा निर्धारित हो गई। इतना ही नहीं, इस विजय के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त का राज्य काफी विस्तृत हो गया, क्योंकि सेल्युकस को एरिया (हेरात), आरकोशिया (कान्धार), जेड्रोसिया (ब्लूचिस्तान) एवं परोपेनिसडाई अर्थात् काबुल गान्धार प्रदेश और सिन्ध के मध्य स्थित क्षेत्र चन्द्रगुप्त को सौंप देने पड़े। जिसके फलस्वरूप मौर्य साम्राज्य की सीमा अब ईरान तक पहुँच गई।

### अन्य विजयें :-

चन्द्रगुप्त की अन्य विजयों का हमें विस्तृत वृत्तान्त नहीं मिलता। किन्तु उसके साम्राज्य के विस्तार से ही स्पष्ट है कि उसका लगभग सम्पूर्ण जीवन सैनिक कार्यों में ही बीता होगा। इतिहासकार हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने आगे बढ़ कर पश्चिम भारत में सौराष्ट्र को जीत लिया। मालवा तथा सौराष्ट्र चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के अंग थे इसमें कोई संदेह नहीं है। जूनागढ़ में रुद्रदमन प्रथम के एक उत्कीर्ण लेख है जिससे पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने उस क्षेत्र पर शासन करने के लिये पुष्यगुप्त नामक एक व्यक्ति को सूबेदार नियुक्त किया था और वहाँ सिंचाई के लिए सुदर्शन नामक एक झील का निर्माण करवाया था। अशोक के समय में तुशाप्य नामक एक युनानी व्यक्ति उस प्रदेश का सूबेदार था। थाणे जिले में सोपारा नामक स्थान पर अशोक का एक उत्कीर्ण लेख मिला है, इससे स्पष्ट है कि यह प्रदेश उसके साम्राज्य में सम्मिलित था।

चन्द्रगुप्त की दक्षिण विजय को लेकर इतिहासकारों में मतभेद हैं। डा० विन्सेट ऑर्थर स्थित के अनुसार मौर्यों ने दक्षिण भारत की विजय बिन्दुसार के काल में की न कि चन्द्रगुप्त के काल में। उन्होंने अपने वक्तव्य के समर्थन में 16वीं शताब्दी के बौद्ध लेखक नारानाथ (तिब्बती इतिहासकार) की उस उक्ति का उल्लेख किया है जिसमें यह कहा गया था कि बिन्दुसार ने सोलह राज्यों के राजाओं तथा मंत्रियों को हराकर अपने साम्राज्य का विस्तार समुन्द्र से समुन्द्र तक कर लिया। इस विषय में रिमथ दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी के तमिल कवि मामुलन्नार के उस संदर्भ का भी वर्णन करता है जिसमें इस कवि ने दक्षिण में किसी तमिल राजा को हराने के लिए भेजी जानेवाली मरियर (मौर्यों) की सेना का उल्लेख किया है।

परन्तु दक्षिण भारत की विजय का कार्य बिन्दुसार का नहीं लगता क्योंकि कभी बिन्दुसार दक्षिण गया हो इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरी ओर हमारे पास कुछ ऐसे साक्ष्य हैं जिनसे पता चलता है कि बिन्दुसार में एक विजेता बनने के लिए आवश्यक गुणों का अभाव था क्योंकि जब तक्षशिला में विद्रोह हुआ तब उस विद्रोह के दमन के लिए बिन्दुसार ने स्वयं न जाकर अपना पुत्र अशोक को भेजा। यह तथ्य उसकी सैनिक अयोग्यता को ही प्रदर्शित करता है। इसके साथ ही युनानी लेखकों के माध्यम से हम पता चलता है कि बिन्दुसार की रुचि युद्ध की अपेक्षा 'सूखे अंजीर, मदिरा तथा सोफिस्ट (युनानी दार्शनिक) से वार्तालाप' में थी।

इसके विपरित चन्द्रगुप्त एक महान साम्राज्य निर्माता था। युनानी लेखक प्लूटार्क ने तो यहां तक लिखा है कि उसने (एण्ड्रॉकन के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य) 6,00,000 सेना को लेकर समस्त भारत को पदाक्रांत कर दिया। जैन अनुश्रुतियाँ चन्द्रगुप्त मौर्य का दक्षिण भारत में संपर्क प्रमाणित करती हैं। बस संबंध में हरिशेण कृत बृहत्-कथा कोश, रत्ननन्दी कृत भद्रबाहुचरित तथा राजवली कथा हमारे ज्ञान का विस्तार करती हैं। राजवली कथा से हमें पता चलता है कि पाटलीपुत्र का राजा चन्द्रगुप्त अपने राज्य को अपने पुत्र अशोक पक्ष में त्याग कर जैन गुरु भद्रबाहु का शिष्य बन गया तथा दक्षिण भारत चला गया। यहा श्रावण बेल गोला के निकट चन्द्रगिरि नामक पर्वत पर उसने जैन धर्म द्वारा मान्यता प्राप्त सल्लेखन किया (उपवास रखने की क्रिया) द्वारा सन् 298 ई०पू० में प्राणांत कर लिया। प्रचलित परिपाटी के अनुसार इस पर्वत (चंद्रगिरि) पर विद्यमान एक प्राचीन मंदिर का नाम भी चन्द्रबस्ती केवल इसलिए पड़ा क्योंकि इसका निर्माण स्वयं चन्द्रगुप्त मौर्य ने करवाया था।

इसके साथ ही अशोक के गोविमठ तथा पालकीगुण्ड लेखों, जो कि कोपबल तालु के मैसूर में स्थित है, मास्की लघु शिलालेख तथा रायचुर, आंध्रप्रदेश में है तथा कुर्नूल स्थित एरागुडी लघु शिलालेख से हमें पता चलता है कि दक्षिण भारत को चन्द्रगुप्त मौर्य ने जीता था। चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार ने कोई विजय की हो इसका उल्लेख नहीं मिलता और जैसा कि अशोक ने स्वयं शिलालेख XIII में कहा है उसकी एकमात्र विजय कंलिग प्रदेश पर थी जिसके पश्चात् उसने 'असुर विजय', 'लाभ विजय' अथवा 'ददिविजय' के स्थान पर धर्म विजय को महत्व देना आरंभ कर दिया।

जहाँ तक इस विजय में ऊपर वर्णित तमिल साहित्य का प्रश्न है तो कवि मामुलन्नार केवल उल्लेख करता है कि दक्षिण में किसी तमिल राजा को हराने के लिए मरियर (मौर्यों) की सेना भेजी गई थी जिसने कोंकण के रास्ते कन्नूर तथा कांगू (कांगम्बटूर) प्रायद्वीप को पार कर सुदूर त्रिन्नेवली प्रदेश की दाडियल पहाड़ियों तक अपना प्रसार किया। इस वर्णन में मौर्यों के लिए वम्बमरियर शब्द

का प्रयोग हुआ है जिसमें उपयुक्त विशेषण **वम्ब** (तुरंत उठा हुआ) से यह प्रतीत होता है कि यह उल्लेख चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में ही है क्योंकि वही प्रारम्भिक मौर्य सम्राट था। अधिकांश इतिहासकार यही मानते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने दक्षिण भारत की विजय अन्तिम नन्द शासक को हराने के बाद तथा सेल्युकस को हराने से पहले की।

### साम्राज्य विस्तार :-

उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस विशाल साम्राज्य पर सम्राट अशोक ने बाद में शासन किया उसका निर्माण मूलतः उसके पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य ने ही किया था। वी०ए० स्मिथ के अनुसार चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में निश्चित ही अफगानिस्तान, प्राचीन एरियाना, हिन्दुकुश पर्वत श्रृंखला, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा पश्चिम में काठियावाड़ सम्मिलित थे। कदाचित बंगाल भी उसके साम्राज्य का हिस्सा था। राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार भी चन्द्रगुप्त ने निश्चय ही एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया। इससे यह स्पष्ट है कि जब चन्द्रगुप्त मौर्य का 298 ई०पू० में देहांत हुआ तब उसका विशाल साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में मैसूर तक तथा पूर्व में कामरूप से लेकर पश्चिम में हिरात, काबुल, कन्धार, बलूचिस्तान तक फैला हुआ था। उसके साम्राज्य की सीमाएँ हिन्दुकुश पर्वत के पश्चिम में दूर तक फैली हुई फारस की सीमा को स्पर्श कर रही थी। इतना बड़ा साम्राज्य इससे पहले भारत में किसी राजा ने कायम नहीं किया था।

### (बिन्दुसार 298-273 ई०पू०)

चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् उसका पुत्र व उत्तराधिकारी बिन्दुसार गद्दी पर बैठा। युनानी लेखक ऐथेनियस ने उसे **अमित्रोचेट्स** कहा है जबकि एक अन्य युनानी लेखक स्ट्रेबो ने उसे **अलित्रोचेड्स** कहता है। कुछ विद्वानों के अनुसार **अमित्रोचेट्स** का संस्कृत रूप है **अमित्रघात** जिसका अर्थ होता है शत्रुओं का नाश करने वाला। संस्कृत साहित्य में **अमित्रघात** के अतिरिक्त बिन्दुसार के लिए **अमित्रखाद** (अर्थात् शत्रुओं को खा जाने वाला) का भी प्रयोग हुआ है। वायु पुराण में उसे **भद्रसार** तथा जैन ग्रन्थ **राजवलीकथा** में **सिंहसेन** कहा गया है। बिन्दुसार के शासक काल के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत कम है। पुराणों के अनुसार बिन्दुसार ने 24 वर्ष तक शासन किया लेकिन बौद्ध ग्रन्थ महावंश उसकी शासन अवधि 27 वर्ष मानती है। जो भी हो अधिकांश इतिहासकार इस विषय में एकमत हैं कि उसका शासन काल ई०पू० 298 से लेकर ई०पू० 273 तक रहा। यद्यपि बिन्दुसार को ग्रन्थों में **अमित्रघात** की उपाधि दी गई है तथापि हमें यह जानकारी नहीं मिलती के उसके शत्रु काकन थे। जैन तथा बौद्ध अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् भी चाणक्य कुछ समय तक ओर जीवित रहा और बिन्दुसार के शासन के आरम्भ में उसकी नीति का संचालन करता रहा। तिब्बती इतिहासकार तारा नाथ ने लिखा है कि चाणक्य ने राजा को सोलह नगरों के सामन्तों और राजाओं का नाश करने में तथा पूर्वी और पश्चिमी समुन्द्रों के बीच के प्रदेशों पर अपना अधिपत्य स्थापित करने में सहायता दी। इस कथन के आधार पर कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि बिन्दुसार ने पश्चिम तथा दक्षिण पथ के उन प्रदेशों पर विजय प्राप्त की जो चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में सम्मिलित नहीं थे। किन्तु उपरोक्त वक्तव्य इसी तथ्य से गलत साबित हो जाते हैं कि हम निश्चित तौर पर यह जानते हैं कि सौराष्ट्र प्रांत पर पहले से ही चन्द्रगुप्त का अधिपत्य था। बहरहाल हमें तिब्बती बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान से यह पता चलता है कि चाणक्य की मृत्यु के पश्चात् खालटक अथवा कालाटक बिन्दुसार का प्रधानमंत्री बना।

दिव्यावदान के ही अनुसार बिन्दुसार के ही शासनकाल में दो बार विद्रोह हुए। प्रथम बार यह विद्रोह तत्कालीन तक्षशिला के गर्वनर तथा बिन्दुसार के बड़े पुत्र सुसिम (अथवा सुमन) द्वारा स्थापित क्रुशासन के विरुद्ध हुआ जिसको दबाने के लिए कुमार अशोक (जो कि बिन्दुसार का दूसरा पुत्र था तथा उस समय उज्जैन का गर्वनर था) को भेजा गया जिसने सफलतापूर्वक इस विद्रोह का दमन किया। दूसरी बार हुय विद्रोह को दबाने के लिए सुसीम को भेजा गया किन्तु उसी समय बिन्दुसार की मृत्यु होने के कारण इस विद्रोह को दबाया न जा सका।

युनानी लेखकों के अनुसार बिन्दुसार विलासिता प्रिय शासक था। ऐथेनियस के अनुसार बिन्दुसार ने सीरिया के राजा एण्डोकोस प्रथम सोटर को पत्र लिखकर अंगुरी (मीठी) शराब, सूखे अंजीर तथा एक सोफिस्ट भेजने को कहा। इसके प्रत्युत्तर में सीरिया के शासक ने लिखा कि मैं आपके लिए अंजीर तथा शराब तो भेज दूँगा, किन्तु युनानी कानून के अनुसार सोफिस्टों को बेचना मना है। कुल मिलाकर बिन्दुसार की महत्ता उसके द्वारा किया गया साम्राज्य विस्तार न होकर अपने पिता से प्राप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने में है। वह अपने पिता से प्राप्त विशाल साम्राज्य की रक्षा करने में सफल रहा। यद्यपि इसका श्रेय बहुत कुछ चन्द्रगुप्त की सुदृढ़ शासन व्यवस्था को था, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यदि बिन्दुसार में पराक्रम तथा राजनैतिक दूर-दर्शिता का अभाव होता तो उसके लिए अपने साम्राज्य की रक्षा करना असंभव हो जाता। दूसरे, उसकी नीति शान्ति एवं मित्रता की थी। उसने व्यर्थ के युद्धों में अपनी शक्ति और साधन नष्ट नहीं किए अपितु पश्चिम के युनानी शासकों के साथ मित्रता कायम रखी। स्ट्राबो के अनुसार सेल्युकस के उत्तराधिकारी सीरिया के राजा एण्टियोकस ने मेगस्थनीज के स्थान पर डाइमेक्स को अपना दूत बनाकर बिन्दुसार के दरबार में

मेजा। प्लिनी लिखता है कि मिस्र के राजा टॉलमी द्वितीय फिलाडेल्फस ने भी भारतीय सम्राट के दरबार में डायोनिसस नामक व्यक्ति को राजदूत के रूप में भेजा। इसके साथ ही बिन्दुसार ने साम्राज्य के प्रशासन में भी कोई शिथिलता नहीं आने दी। यह भी स्मरणाय है कि बिन्दुसार सुसंस्कृत सम्राट था। उसे साहित्य, दर्शन आदि से प्रेम था। उसने यूनानी सम्राट से एक सोफिस्ट माना था। इसी से उसका दर्शन-प्रेम प्रकट होता है।

पुराणों के अनुसार बिन्दुसार ने पच्चीस वर्ष शासन किया किन्तु बौद्ध ग्रन्थ हमें बताते हैं कि उनका शासन काल सत्तईस अथवा पंद्रहईस वर्ष तक चला।

## अशोक महान (273-232 ई०पू०)

बौद्ध परम्परा के अनुसार बिन्दुसार की सोलह रानियाँ तथा एक सौ एक पुत्र थे। राजकुमार सुसीम (अथवा सुमन) इनमें सबसे बड़ा था तथा वह तक्षशिला का गर्वनर था। अशोक द्वितीय पुत्र था तथा महावंश के अनुसार बिन्दुसार की मृत्यु के समय वह उज्जैन का गर्वनर था। तिस्स अथवा तिव्य बिन्दुसार का सबसे छोटा पुत्र था। यह निश्चित है कि बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् कालाटक अथवा राधागुप्त नामक मंत्री की सहायता से अशोक ही पाअलीपुत्र के सिंहासन पर आसीन हुआ। मौर्य सम्राटों में अशोक का प्रमुख स्थान प्राप्त है। उसकी तुलना विश्व की महानतम विभूतियों से की गई है। वह केवल मौर्य वंश का ही नहीं अपितु प्राचीन भारत एवं विश्व का एक महान् सम्राट था। उसकी तुलना इसराइल के डेविड तथा सोलोमन, रोम के मार्कस ओरलियस, शार्लभागन इत्यादि से की जाती है। इतिहासकार एच०जी०वेल्स ने अशोक को इतिहास का एक अद्वितीय व्यक्ति माना है।

### प्रारम्भिक जीवन :-

अशोक के जीवन तथा प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। उसके पिता बिन्दुसार की अनेक पत्नियों थी। अशोक की माता के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि अशोक बिन्दुसार की यूनानी रानी से उत्पन्न हुआ था। रोमिला थापर के अनुसार भी उसकी माता या दादी यूनानी राजकुमारी थी। परन्तु इस मत को सिद्ध करने के लिए कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। दिव्यावदान में उल्लेख आता है कि अशोक की माता का नाम जनपदकल्याणी था। उत्तर भारतीय परम्पराओं में उसकी माता का नाम सुमद्रांगी बताया गया है जो कि चम्पा के ब्राह्मण की पुत्री थी तथा परम सुंदरी थी। किन्तु सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक की माता का नाम धर्मा था। अशोक की शिक्षा-दीक्षा अपने सहादर भाई तिव्य तथा सौतेले भाइयों के साथ हुई। वह पढ़ने-लिखने, हथियार चलाने आदि में अन्य सभी राजकुमारों से अधिक योग्य था। सुसीम उसका सौतेला भाई था।

अशोक के प्रारम्भिक जीवन का एक ओर उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि जब वह उज्जैन की सूबेदारी का कार्यभार सम्हालन जा रहा था तो मार्ग में विदिशा में ठहरा। वहाँ एक व्यापारी की देवी नामक पुत्री से उसका विवाह हुआ। इस पत्नि से महेन्द्र नामक पुत्र तथा संघमित्रा नामक पुत्री हुई। बौद्ध धर्म के इतिहास में इन दोनों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

### साम्राज्य के लिए संघर्ष :-

बिन्दुसार की मृत्यु से पूर्व ही उसकी बीमारी का समाचार अशोक जो उस समय उज्जैन का प्रतिनिधि शासक था, पाटलीपुत्र चला आया। अशोक, सम्राट बिन्दुसार का द्वितीय पुत्र था। बिन्दुसार के सबसे बड़े पुत्र का नाम सुसीम था। वह अशोक का सौतेला भाई था। तिष्य तथा अशोक सहादर भ्राता थे। तिष्य का ही दूसरा नाम विगताशोक अथवा वीताशोक था। अशोक का एक और भाई था जिसका नाम महेन्द्र था। महेन्द्र को कुछ इतिहासकारों ने अशोक का पुत्र भी माना है, परन्तु इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। दिव्यवदान के अनुसार अशोक को राजसिंहासन की प्राप्ति के लिए अपने बड़े भाई सुसीम के साथ धार संघर्ष करना पड़ा। उस संघर्ष में अंततः अशोक को विजय प्राप्त हुई और वह अपने पिता की मृत्यु के चार वर्ष उपरान्त 269 ई०पू० में पाटलीपुत्र के राजसिंहासन पर बैठा।

बौद्ध अनुश्रुतियों में अशोक के सिंहासनारोहण के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न कथाएं मिलती हैं। महावंश में कहा गया है कि अशोक अपने नाइके में सबसे क्रूर तथा अत्याचारी था तथा सिंहासन पर बैठने से पहले उसने तिष्य को छोड़कर शेष निन्यानवे भाइयों का वध कर दिया था। तिब्बती बौद्ध इतिहासकार तारानाथ भी लिखता है कि अशोक ने राजगद्दी पर आसीन होने से पहले अपने छह भाइयों का वध कर दिया था। परन्तु आधुनिक इतिहासकार इन कहानियों का कपोलकल्पित मानते हैं। उनका कहना है कि बौद्धों ने इस प्रकार की कहानियाँ यह दिखाने के लिए गढ़ ली होंगी कि किस प्रकार एक क्रूर तथा अत्याचारी सम्राट बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बन गया। साथ ही अशोक के शिलालेखों में भी यह वर्णन मिलता है कि उसके शासन काल के प्रारम्भ में अशोक ने अपने भाइयों का वध कर दिया था।



अशोक ने सम्राट बनने के समय 'देवनामप्रिय' तथा 'प्रियदर्शी' की उपाधियाँ धारण की। उसके शिलालेखों से उसके नामों तथा उपाधियों का पता चलता है। जहाँ कान्धार शिलालेख में उसे 'प्रियदर्शी' कहा गया है वहीं बराबर गुहा लेख में उसे 'प्रियदर्शी राजा' कहते हैं। भाद्रशिलालेख में उसे 'मगध के राजा' के नाम से पुकारा गया है तो मास्की तथा गुर्जरी शिलालेखों में उसे उसके नाम 'अशोक' से सम्बोधित किया गया है। जूनागढ़ शिलालेख में उसे अशोक मौर्य कहा गया है। पुराणों में उसके लिए अशोकवर्धन का प्रयोग हुआ है।

अशोक ने सम्राट बनने के पश्चात् अपने पूर्वजों की ही भाँति साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया और साथ ही कुछ देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने की नीति का भी पालन किया। उसने यवन राज्यों में अपने राजदूत भेजे तथा उनके राजदूतों का स्वागत किया। उसने यवन पदाधिकारियों को अपने राज्य में नियुक्त किया जिसका उदाहरण हमें सौराष्ट्र से मिलता है जहाँ एक यवन सामन्त तुशष्प उसके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। किन्तु आन्तरिक क्षेत्र में उसकी नीति राज्य विस्तार की थी। भारत में प्राचीन राजाओं की परम्परा के अनुसार उसका भी राजनीतिक आदर्श दिग्विजय था। फलतः भारत के जो प्रान्त अभी मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं थे उन पर आक्रमण करने का संकल्प किया। सर्वप्रथम उसने कश्मीर पर आक्रमण किया और उस पर विजय प्राप्त करके उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। कश्मीर के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ राजतरंगिणी में अशोक को मौर्य देश का प्रथम सम्राट व्यक्त किया गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त या बिन्दुसार का कश्मीर पर अधिकार नहीं था।

### कलिंग की विजय तथा उसका महत्व :-

अपने शासन काल के तेरहवें तथा राज्याभिषेक के नवें वर्ष में अशोक ने कलिंग राज्य पर आक्रमण कर दिया। कलिंग उस समय एक प्रबल राज्य था और उसके पास एक विशाल सेना थी। संभवतः नन्दवंश के अंतिम राजा धनन्द के समय में कलिंग मगध साम्राज्य का एक अंग था। परन्तु नन्द वंश के पतन और मौर्य वंश की स्थापना के संक्रमण काल से लाभ उठाकर कलिंग ने अपनी स्वतन्त्रता कायम कर ली। मगध के लिए अपने पड़ोस में ऐसे शक्तिशाली राज्य का होना असह्य था। अतएव अशोक ने कलिंग की स्वतन्त्रता समाप्त करने का निश्चय करते हुए एक विशाल सेना का संग्रह कर 261 ई०पू० में कलिंग पर आक्रमण कर दिया। अशोक के तेरहवें शिलालेख से हमें ज्ञात होता है कि अशोक ने कलिंग से युद्ध करके उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसके लिए बड़ा भीषण युद्ध लड़ा गया। कहा जाता है कि इस युद्ध में एक लाख लोग बंदी बनाए गए तथा डेढ़ लाख लोग घायल हुए। मरने वालों की संख्या इससे भी अधिक थी। कई लाख स्त्रियाँ विधवा तथा बच्चें अनाथ हो गए।

कलिंग के युद्ध में भीषण नरसंहार हुआ, जिसे देखकर अशोक के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ड़ा। उसके विचार एकदम परिवर्तित हो गए तथा उसने साम्राज्यवादी नीति को सदा के लिए त्याग दिया। इतिहासकार हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार 'कलिंग विजय मगध ही नहीं अपितु भारत के भी इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुई'। इसके साथ ही मगध साम्राज्य के इतिहास में साम्राज्य विस्तार के उस काल का अन्त हुआ जिसका सूत्रपात हर्याक वंश के शासक बिम्बिसार ने अंग राज्य के अधिग्रहण से किया था। कलिंग युद्ध के भीषण स्तूपपात से अशोक के हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने राज्य विस्तार की नीति की परित्याग कर दिया तथा यह निर्णय लिया कि भविष्य में वह कभी युद्ध नहीं करेगा। 'भेरीघोष' का स्थान 'धम्मघोष' ने ले लिया तथा अशोक ने राज्य विजय के स्थान पर धर्मविजय को महत्व देना आरम्भ कर दिया। कलिंग युद्ध के उपरान्त अशोक ने यह घोषणा की थी - "कलिंग देश की विजय के समय जितने लोग मारे गए, घायल अथवा बन्दी बनाए गए, उसके शतांश अथवा सहस्रांश की भी आज हानि हो तो देवनामप्रिय को भारी दुख होगा। यही नहीं यदि देवनामप्रिय को कोई हानि भी पहुँचाए तो उसे यथासम्भव सहन कर लेना चाहिए। अब सम्राट के विचार में वास्तविक विजय धर्म विजय की थी अतएव भेरीघोष की जगह धर्म घोष की गूँज सुनायी देगी और दिग्विजय के स्थान पर धर्म विजय का प्रयत्न किया जाएगा।"

अशोक के ये विचार केवल सद्भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र नहीं थे। अशोक ने जो संकल्प किया उसे जीवन भर निभाया। कलिंग युद्ध के बाद उसने कोई युद्ध नहीं किया। यद्यपि अशोक के समय में मौर्य साम्राज्य काफी विस्तृत हो चुका था, फिर भी भारतवर्ष में तथा उसकी सीमाओं पर अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने उन्हें जीतने का कभी प्रयत्न नहीं किया। अशोक ने यह निश्चय केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखा वरन् अपने पुत्र तथा पौत्र को भी यह उपदेश दिया कि युद्ध न करें। इसका प्रमाण हमें उसके अन्य अभिलेखों से भी मिलता है। प्रथम कलिंग शिला अभिलेख में सीमान्त जातियों के प्रति अपनी नीति का उल्लेख करते हुए अशोक कहता है कि "वे मुझसे अनुद्विग्न रहें, मुझसे आशवासन प्राप्त करें और मुझसे सुख ही लाभ करें, मुझसे दुख न पावें। वे इस प्रकार समझें कि जहाँ तक क्षमा करना संभव है देवों का प्रिय हम लोगों को क्षमा करेगा।"

इतना ही नहीं अशोक ने विदेशियों के साथ भी सहिष्णुता तथा मैत्रीपूर्ण नीति अपनाई। तेरहवें अभिलेख में यवन राजाओं एवं दक्षिण भारत के शासकों का उल्लेख है। ये यवन शासक थे, सीरिया के राजा एंटीओकस द्वितीय, मिस्र का राजा टॉलमी द्वितीय, मकदूनिया (Macedonia) का राजा एंटीगोनस, साइरिन का राजा मगस (Magas) एवं एपिरस का राजा एलेक्जेंडर। उसने इन देशों में अपने



विचारों के प्रसार के लिए दूत भेजे। इसी प्रकार चोल, पाण्ड्य, सरिय पुत्र, केरल पुत्र (चेर) तथा ताम्रपर्णी में भी अशोक के दूत गए। इससे पता चलता है कि अशोक ने युद्धविजय की अपेक्षा हृदय परिवर्तन तथा धर्म विजय पर अधिक जार दिया।

यह भी सही है कि इस युद्ध के बाद अशोक ने हिंसा का जो त्याग किया उसका परिणाम मौर्य साम्राज्य के लिए बड़ा ही लाभकारी सिद्ध हुआ। उत्तरोत्तर में उसका पतन होने लगा। इस कारण भारत के राजनैतिक जीवन पर इसका बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा। परन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इसका अत्याधिक महत्व है। इस युद्ध के उपरान्त अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना लिया और भौतिकता के उसके प्रचार व प्रसार का कार्य किया। अन्य राज्यों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर अशोक ने भारतीय सभ्यता—संस्कृति का बाहर के देशों में प्रचार किया।

इस दृष्टिकोण से कलिंग युद्ध का महत्व विश्व के इतिहास में भी बहुत हो जाता है। विश्व के इतिहास में प्रायः यही देखा गया है कि युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् विजय की आकांक्षा ओर भी बढ़ जाती है। परन्तु यह शायद इतिहास का एकमात्र ऐसा अनूठा उदाहरण है कि विजय प्राप्ति के बाद भी एक शासक ने अपनी महत्वाकांक्षा को दबा लिया तथा संकल्प कर लिया कि वह दिग्विजय के स्थान पर धर्म विजय करेगा। अशोक ने विजय के तुरंत बाद अहिंसात्मक बौद्ध धर्म को अपना लिया और उसके प्रचार एवं प्रसार में अपना तन-मन और धन अर्पित कर दिया।

### अशोक का साम्राज्य विस्तार :-

यह सर्व विदित है कि कलिंग विजय ही अशोक की एकमात्र विजय थी। यदि प्राचीन कश्मीरी इतिहास ग्रन्थ राजतरंगिणी पर विश्वास किया जाए तो कश्मीर विजय को भी अशोक की साम्राज्य वादी गतिविधियों से जड़ सकते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त उसके द्वारा साम्राज्य विस्तार के लिए किए गए प्रयास की कोई सूचना नहीं मिलती। अशोक के साम्राज्य के विस्तार को सही-सही निश्चित करना कोई कठिन कार्य नहीं है। हमें यह जानकारी है कि अशोक को विरासत में ही अपने पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य तथा पिता बिन्दुसार से एक विशाल साम्राज्य मिला था। उत्तर-पश्चिम की ओर उसकी सीमाएँ निश्चय ही हिन्दुकुश तक फैली हुई थी। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि ऐशिया (हेरात), आरकोसिया (कन्धार), गेड्रोशिया (ब्लूचिस्तान) तथा पैरोपनेशिया (काबुल) के क्षेत्र पहले ही सेल्युकस निकेटर के द्वारा अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य को सौंप दिया था। बिन्दुसार तथा अशोक के समय में इन प्रदेशों पर किसी प्रकार के युनानी अधिपत्य का कोई प्रमाण नहीं मिलता। साथ ही देश के विभिन्न भागों से हमें जो अशोक के अभिलेख मिलते हैं उनसे उसके साम्राज्य को निश्चित करने में बड़ी सहायता मिलती है। उसके बृहत् चौदह शिलालेखों में से दक्षिण-उत्तर-पश्चिम में शाहबाजगढ़ी (पेशावर जिला) तथा मनसेहरा (हजारा जिला) से प्राप्त हुए हैं जिससे यह स्पष्ट है कि अशोक का साम्राज्य दक्षिणी अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। इसके साथ ही चीनी यात्री युवान च्वांग भी अपने वृत्तांत में कफ्रिस्तान (कपीरा) तथा जलालाबाद में अशोक द्वारा निर्मित स्तूपों का वर्णन करता है। यही यात्री, राजतरंगिणी के लेखक कल्हण के साथ यह भी घोषित करता है कि कश्मीर पर अशोक ने अधिकार कर लिया था। इस सम्बन्ध में यह जानना अति रुचिकर है कि श्रीनगर की स्थापना से भी अशोक को जोड़ा जाता है तथा यह कहा गया है कि उसने कश्मीर घाटी में अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया था। इन्हीं बृहत् चौदह शिलालेखों में से एक उत्तर में कालसी (यमुना व होन्स संगम पर) जो कि देहरादून जिले में पड़ता है, मिला है। इसके साथ नेपाल की तराई में स्थित लघु स्तंभ लेख रुम्नदेई तथा निगलीवा और बिहार में चम्पारन में स्थित रामपुरवा लौरियाअरराज एवं लौरियानन्दनगढ़ स्तम्भ लेखों से यह पता चलता है कि उत्तर में अशोक का साम्राज्य आधुनिक बिहार, उत्तरांचल तथा नेपाल तराई क्षेत्र को अपने में समाए हुए था। इसके साथ ही प्राचीन परम्पराओं के अनुसार नेपाल में अलितहन नामक स्थान का निर्माण भी अशोक ने करवाया था।

यदि पूर्व दिशा की बात करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि बंगाल भी अशोक के साम्राज्य का एक हिस्सा था। युवान च्वांग ने पृथ्वी (उत्तरी बंगाल) में अशोक के स्तूप देखे थे तथा बोगरा जिले में स्थित महास्थान स्तम्भ लेख, जो कि मौर्य काल से सम्बन्धित है और ब्राह्मी लिपि में है, से भी यह जानकारी मिलती है कि अशोक का बंगाल के ऊपर अधिकार था। यह तो सर्वविदित है ही कि कलिंग को जीतकर अशोक ने अपने साम्राज्य में मिला लिया था। कलिंग (उड़ीसा) के विभिन्न प्रदेशों पर अशोक के अधिपत्य की पुष्टि यहाँ से प्राप्त उसके पुरी जिले में स्थित धौली तथा गंजाम जिले में स्थित जौगढ नामक शिलालेखों से भी होती है। अशोक के उपरान्त (काठियावाड़—गुजरात) तथा सोपारा (थाणे जिला—महाराष्ट्र) से यह ज्ञात होता है कि अशोक का साम्राज्य पश्चिम में अरबसागर तक फैला हुआ था। इस बात की पुष्टि रुद्रदमन के जूनागढ़ शिलालेख से भी होती है जिसमें यह बात यादगिरि के यवनराज तुषष् सौराष्ट्र में अशोक के प्रतिनिधि के क्ष में कार्य कर रहा था। दक्षिण भारत की ओर आन्ध्रप्रदेश के कृत्तवर्मन के स्थित एरंगुडी तथा आन्ध्रप्रदेश के ही रायचूर जिले में स्थित मारकी लघु शिलालेख एवं कर्नाटक में पालकी मुन्दु प्रतीति के स्थित रामेश्वर सिद्धपुर तथा गोविन्द लघु शिलालेखों से यह पता चलता है कि दक्षिण भारत में चित्तलदुग तथा नभूर तक अशोक के

साम्राज्य की सीमएँ फैली हुई थी। जैसा कि अशोक के शिलालेख दो (R.E. II) से पता चलता है, दक्षिण भारत का एक छोटा सा भाग ही उसके साम्राज्य से बाहर था जिसमें चोल, पांड्य, सतीपुत्र तथा कर्लपुत्र (चेर) इत्यादि छोटे-छोटे राज्य थे।

अंततः अशोक वं शिलालेखों से ही हमें उसके साम्राज्य के बड़े नगरों जैसे कि बौद्धगया, तक्षशिला, तोसली, संभापा, उज्जैन, सुवर्णगिरी, इस्लामा, कौशाम्बी, पाटलीपुत्र आदि के संदर्भ मिलते हैं।

यह सभी साक्ष्य इसी ओर इंगित करते हैं कि अशोक के समय में मौर्य साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिन्दुकुश से लेकर पूर्व में बंगाल तक विस्तृत था तथा उत्तर में नेपाल की तलहटी एवं कश्मीर से लेकर दक्षिण में चित्तलदुर्ग तक फैला हुआ था। अरब सागर के तट पर स्थित सौराष्ट्र तथा बंगाल की खाड़ी से लगे कलिंग भी उसके साम्राज्य के हिस्से थे। शिलालेख चौदह (R.E. XIV) में अशोक स्वयं ही अपने साम्राज्य के बारे में जब यह कहता है कि "महाल के हि विजितं", अर्थात् "मेरा साम्राज्य विशाल है", तो यह अतिशयोक्ति नहीं लगता। निश्चय ही प्राचीन भारत में कोई अन्य शासक इतने विशाल साम्राज्य का कभी स्वामी नहीं रहा।

### अशोक का धम्म :-

अशोक भारतीय इतिहास में न सिर्फ एक विजेता एवं कुशल प्रशासक के रूप में विख्यात है बल्कि वह एक महान् धर्म नेता के रूप में प्रसिद्ध है। उसने मानव के केवल भौतिक कल्याण के लिए ही कार्य नहीं किए अपितु वह स्वयं अपने एवं जनसाधारण के आध्यात्मिक कल्याण के लिए प्रयत्नशील था। यदि अशोक के व्यक्तिगत धर्म की बात की जाए तो अपने शासन काल के आरम्भ में अपने पूर्वजों की ही भांति ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। महावंश के अनुसार वह प्रतिदिन ६००० ब्राह्मणों को भोजन दिया करता था और अनेक देवी-देवताओं की पूजा करता था। कल्हण ने भी राजतरंगिणी में शिव को अशोक का इष्ट देव बताया है किन्तु अपने राज्यारोहण के नवें वर्ष में उसके द्वारा कलिंग विजय हुई। इस युद्ध में हुए भीषण रक्तपात का अशोक के धार्मिक जीवन और उसके विचारों पर बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इस युद्ध का अशोक के हृदय पर इतना गहरा असर पड़ा कि उसने अपना धर्म ही बदल लिया और वह बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। उत्तर भारत की अनुश्रुतियों के अनुसार उपगुप्त के मार्गदर्शन में अशोक ने बौद्ध मत ग्रहण कर लिया। एक अन्य परम्परा के अनुसार हमें यह पता चलता है कि अपने बड़े भाई सुसीम के पुत्र के प्रवचन को सुन कर ही अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाया था। यद्यपि पहले कुछ इतिहासकारों को अशोक के बौद्ध धर्मावलम्बी होने में संदेह था और जैसा कि उसके लघुशिलालेख एक (M.R.E. I) से विदित होता है कि बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद भी लगभग एक साल तक अशोक ने केवल एक उपासक का जीवन व्यतीत किया तथा बौद्ध धर्म के प्रसार में सक्रिय भाग नहीं लिया तथापि उसके बौद्ध होने के कई स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। उसके ही चतुर्दश शिलालेखों में से तेरहवें शिलालेख में ही अशोक के बौद्ध होने का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है। इस शिलालेख में यह घोषणा अंकित है—“कलिंग युद्ध के बाद शीघ्र ही देवनामप्रिय अशोक धम्म के अनुकरण, धम्म के प्रेम और धम्म के उपदेश के प्रति उत्साहित हो उठा।” बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश और महावंश में स्पष्ट कहा गया है कि अशोक एक बाल पंडित था जिसने बाद में बौद्ध धर्म की शिक्षा ली थी। चीनी यात्री युवान च्वांग ने भी अशोक के बौद्ध होने की परम्परा का उल्लेख किया है। मातुलेख में भी अशोक ने अपने आप को बुद्ध, धर्म तथा संघ का भक्त बताया है। सारनाथ के लघु स्तम्भ लेख में उसने अपने को “संघ रक्षक” कहा है तथा संघ में फूट डालने वालों के लिए दण्ड निश्चित किया है। उसके ही शिलालेख आठ (R.E. VIII) तथा लघु स्तम्भ लेख से यह पता चलता है कि उसने बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा की तथा अनेक स्तूप बनवाने का कार्य किया। शिलालेख एक (R.E.I) से हमें यह पता चलता है कि उसने बौद्ध धर्म की शिक्षिकाओं के अनुसार ही पशुहत्या, व्यर्थ के उत्सव समारोहों तथा यज्ञादि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार अशोक ने बौद्ध धर्म के व्यवहारिक पक्ष के समर्थक सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ किया।

### अशोक के धम्म का स्वरूप :-

अशोक ने जिस धर्म का प्रचार किया वह अशोक का धम्म कहा जाता था। अशोक के “धम्म” (संस्कृत के “धर्म” शब्द का प्राकृत रूप) के स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इस संदर्भ में मुख्यतः दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वान इस बौद्ध धर्म मानते हैं तो कुछ दूसरे विद्वान इसे अशोक की खोज मानते हैं। हेरास के अनुसार अशोक ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। कुछ विद्वान उसे जैन धर्मावलम्बी भी मानते हैं। डा०आर०जी० भण्डारकर के मत में अशोक का ‘धम्म’ धर्म निरपेक्ष बौद्ध धर्म था। एफ०डब्ल्यू०थॉमस भी अशोक को बौद्ध धर्मावलम्बी ही मानता है। नीलकण्ठ शास्त्री का भी लगभग यही विचार है कि अशोक बौद्ध धर्मावलम्बी था।

इतना ही नहीं बौद्ध ग्रन्थों में अशोक के अभिलेखों तथा मौर्यकालीन कलाकृतियों से भी अशोक का बौद्ध धर्म के प्रति अनुराग स्पष्ट तथा प्रकट होता है। प्रथम लघु शिलालेख में अशोक अपने आप को “बद्ध शाक्य” और प्रकाश्य रूप से ‘शाक्य’ घोषित करते हुए अपने बौद्धत्व की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डालता है। उसने स्वयं लुम्बिनी एवं बोधगया की यात्रा की, अनेक स्तूपों की रचना करवाई, अहिंसा पर बल दिया तथा पाटलीपुत्र में तीसरी बौद्ध सगति बुलवाई। इसके अतिरिक्त अशोक स्तम्भों पर भी हाथी, सांड, घोड़ा और सिंह की भूर्तियाँ पाई जाती हैं। जिनका बद्ध के जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है; इन प्रमाणों के आधार पर अशोक को अनेक विद्वान बौद्ध मानते हैं तथा उसके धर्म का बौद्ध धर्म मानते हैं।

परन्तु बौद्ध धर्म से समानता रहने पर भी अशोक के 'धम्म' में बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा नहीं की गई है। इसमें "आर्य सत्य", "अष्टांगिक मार्ग", तथा "निबबान अथवा निर्वाण" आदि का उल्लेख नहीं मिलता। अशोक न तो अपने धम्म के लिए सच की ही व्यवस्था करता है और ना ही भिक्षुक का जीवन व्यतीत करने को कहता है। यद्यपि अशोक ने स्वयं बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था तथापि वह किसी भी रूप में धार्मिक रूप से असहिष्णु अथवा धर्मान्ध नहीं था। इसके बिल्कुल विपरीत उसने विभिन्न मतानुयाईयों को संरक्षण प्रदान किया उसने पूर्व में बराबर पर्वत श्रृंखला में आजीवन धर्मावलम्बियों को कुछ गुफाएँ रहने के लिए अनुदान में दी। इसके अतिरिक्त उसने ब्राह्मणों, श्रामणों तथा निग्रन्थों को मुक्त हस्त से दान दिए। अपने शिलालेख सात (R.E. VII) में भी वह सभी सम्प्रदायों के बीच सहिष्णुता का आह्वान करता है। शिलालेख बारह (R.E. XII) में पुनः सम्प्रदायों के बीच सहिष्णुता का निवेदन करता है तथा विभिन्न मतवलम्बियों से आत्म नियन्त्रण रखने का आग्रह करता है। वह सभी धर्मावलम्बियों को बहुश्रुत अर्थात् विभिन्न धर्मों की पूर्ण जानकारी रखने तथा विरोधी मतों के प्रति सम्मान का भाव रखने के लिए कहता है। इस प्रकार उनके समानताओं के रहने पर भी अशोक का 'धम्म' बौद्ध धर्म से भिन्न है। यही कारण है कि अनेक विद्वान् उसे बौद्ध धर्म नहीं मानते। विभिन्न इतिहासकारों के अनुसार अशोक का 'धम्म' तत्कालीन सभी धर्मों का सार था। उस पर सभी धर्मों का प्रभाव था। वास्तव में जिस धर्म में अशोक को जो सिद्धान्त अच्छा लगा वही उसने चुन लिया। वस्तुतः अशोक ने जिस धर्म को अपनाया और प्रचार किया वह सर्वहितकारी तथा लोककल्याणकारी था। उसने ऐसे नैतिक सिद्धान्तों का प्रचार किया जिन्हें प्रत्येक जाति, धर्म तथा देश के व्यक्ति मान सकते थे। राधा कुमुद मुखर्जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि "अशोक का धर्म जीवन तथा विचारों का आधारभूत सिद्धान्तों का समन्वय था जो आज भी सर्वमान्य है तथा जिन्हें समस्त मानवता पर लागू किया जा सकता है।" सम्राट अशोक के धर्म के सम्बन्ध में सेनार्ट ने भी लिखा है कि "अशोक का धम्म केवल आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का समुह था उसने बौद्ध धर्म के विशेष तथा गूढ़ तत्वों पर बहुत कम ध्यान दिया गया था।" अशोक के द्वारा चुने गए सिद्धान्त जो कि धार्मिक होने की अपेक्षा नैतिक अधिक थे उनकी व्याख्या द्वितीय स्तम्भ लेख (P.E. II), सप्त स्तम्भ लेख (P.E. VII) तथा सत्रम् शिलालेख (R.E. VII) में की गई है। इस व्याख्या के अनुसार अशोक का धम्म दान, दया, सच अथवा सत्यम्, संयम, भाव शुद्धि, साधुता, कृतज्ञता, दृढ़ भक्ति आदि गुण का समुह है (यदि नकारात्मक रूप से देखा जाए तो जैसा कि स्तम्भ लेख तीन (P.E. III) में वर्णित है, अशोक के धम्म का अर्थ था पाप, क्रोध, नैष्ठुर्य (हिंसा), मान (अहंकार) तथा ईर्ष्या से मुक्ति।

किन्तु अशोक का धर्म कोरे सिद्धान्तों तक सीमित नहीं था उसने धर्म के व्यावहारिक रूप को भी सामने रखा। माता-पिता, बन्धु-बन्धव मित्र-साथी, गुरु, नौकर, दास सभी की सेवा तथा भक्ति उसके धर्म के मूल मंत्र थे। उसका उपदेश था कि गृहस्था का कर्तव्य कि वह ब्राह्मणों तथा श्रामणों का आदर करें तथा पशुओं तक के साथ दया का बर्ताव करें। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो अशोक के धम्म में मुख्यतः पाँच अंगों में विभक्त किया जा सकता है। (1) सुश्रुषा- जिसका अर्थ है माता-पिता, गुरुओं तथा बड़ा भाई-बहन करना और उनकी आज्ञा का पालन करना। (2) अपचिति- जिससे तात्पर्य है गुरु तथा शिष्य में आपसी सौहार्दय आदर और प्रेम का भाव होना। (3) सम्प्रतिपत्ती- जिसका अर्थ है ब्राह्मणों, श्रामणों, साधुओं, सम्बन्धियों, मित्रों, आश्रितों, दासों तथा निम्न एवं वृद्ध लोगों के साथ उचित व्यवहार करना। (4) दानम्- जिससे तात्पर्य है साधु-सन्तों, ब्राह्मणों, श्रामणों, निरग्रन्थों तथा उद्धृत तथा जरूरतमन्द लोगों को दान-दक्षिणा देना। (5) अविहिंसा- अर्थात् पशु हत्या प्रतिबन्ध करना।

अशोक के धर्म की सबसे बड़ी विशेषता सहिष्णुता की भावना थी। वह संसार की सभी जातियों एवं धर्मों में समन्वय स्थापित करना चाहता था। उसका बारहवाँ शिलालेख इसी बात का प्रमाण है। अहिंसा अशोक के धर्म का अन्य महत्वपूर्ण अंग था। उसका कहना था कि जीवन के सभी रूप पवित्र हैं। उसकी अहिंसा मनुष्यों तक ही सीमित नहीं थी वरन् पशु-पक्षियों के जीवन का भी उसने पवित्र माना। शाही भोजनालय के लिए सैकड़ों पशुओं का वध होता था, उसे उसने बन्द करवा दिया। अहिंसा के सिद्धान्त का उसने व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि राजनीति के क्षेत्र में भी उसको कार्यान्वित किया। कलिंग विजय के उपरान्त उसने युद्ध तथा साम्राज्य विस्तार की नीति को सदैव के लिए त्याग दिया। संसार के इतिहास में इस प्रकार का उदाहरण मिलना असम्भव है। अशोक ने समसामयिक प्रथाओं तथा परम्पराओं का भी ज्यों की त्यों नहीं अपनाया। अपने अहिंसा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए वह पशु बलि को प्रतिबन्धित करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाया (R.E. I) इसी प्रकार उसने बहुप्रचलित पशु-उत्सवों का भी विरोध किया जो कि उसकी दृष्टि में निरर्थक थे। शिलालेख नौ (R.E. IX) में उसने जन्म, बीमारी, विवाह आदि के उपरान्त तथा यात्रा से पूर्व हाने वाले समारोहों की निन्दा की है। पत्नियों तथा माताओं द्वारा समारोह मनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके स्थान पर अशोक धम्म पर बल देता है और समारोहों की व्यर्थता की बात करता है।

वास्तव में अशोक के धम्म के कुछ सैधान्तिक पक्ष भी हैं। वह परलोक में विश्वास करता था तथा अपनी प्रजा के भौतिक एवं इहलौकिक कल्याण की कामना करता था, वह उदार विचार का था एवं सभी धर्मों में का प्रसार चाहता था। वह पशुओं की अव्यर्थता धार्मिक सहिष्णुता, धर्म मंगल की श्रेष्ठता एवं धर्म दान की महत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करता था। धर्मोन्नति के लिए पराक्रम आत्म परीक्षा



उत्साह और निष्ठा (ध्यान) से प्राप्त हो सकता था। वह धर्म विजय और सच्चे यश की भी कामना करता था। 'धम्म को वह अपने शासन का मुख्य आधार मानता था। 'धम्मेन पालना, धम्मेन विधाने, धम्मेन सुखियाना, धम्मेन गोति। अशोक स्वयं धर्म का पालन करता था, वह प्रजा से भी इसकी कामना करता था, अपने उत्तराधिकारियों से इसकी आकांक्षा करता था तथा अपने अधिकारियों को इसके पालन का आदेश देता था।

### धम्म के प्रचार के उपाय :-

अशोक महान धर्मोपदेशक ही नहीं अपितु बहुत बड़ा धर्मप्रचारक भी था। उसने अपने धर्म के प्रचार के लिए अनेक उपाय किए। अपने सातवें स्तम्भ लेख (P.E. VII) में उसने स्वयं उसका उल्लेख किया है। उसके लिए उसने 'धर्म श्रवण' (धार्मिक घोषणाएं), 'धर्म स्तम्भों का निर्माण' तथा 'धर्म-महात्माओं' की नियुक्ति की। इसके अतिरिक्त उसने लोक कल्याणकारी कार्य भी किए। माता-पिता की सेवा, दासों एवं भृत्यों के प्रति सम्यक व्यवहार की नीति अपनाई एवं धर्म यात्रा प्रारम्भ की। शिलालेख आठ (R.E. VIII) के अनुसार उसने इस विषय में व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए "विहार यात्राओं" (आखेट स सम्बन्धित) के स्थान पर "धम्म यात्राओं अपनाया। इसी उद्देश्य की प्रतिपूर्ति के लिए, जैसा कि वह स्तम्भ लेख सात (P.E. VII) में कहता है, उसने धम्म महा स्तम्भों की स्थापना की तथा धम्म महामात्रों की नियुक्ति की। अपने धर्म प्रचार के संदर्भ में अशोक ने धर्म श्रवण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया। यह घोषणा राजकर्मचारियों एवं जनसाधारण दोनों के ही मध्य करवाई गई। तृतीय शिलालेख में अशोक ने यह भी आज्ञा दी कि उसके साम्राज्य में सर्वत्र युक्त, राजुक और प्रादेशिक पाँच-पाँच वर्षों पर धर्मानुशासन के लिए निकलें। इसके साथ ही धर्म महामात्रों की नियुक्ति कर उसने जनता की भौतिक एवं आध्यात्मिक आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को भी पूरा करने का प्रयास किया। उसने धर्म महात्माओं की नियुक्ति अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में की। धार्मिक क्षेत्र में इनकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। अशोक ने अपने सातवें स्तम्भ लेख में स्वयं उनके कार्यों का उल्लेख किया है। धर्म महामात्र साम्राज्य के विभिन्न भागों में भ्रमण करके धर्म प्रचार के कार्यों में भरपूर सहायता प्रदान करने लगे। इन महामात्रों का कार्य अकारण कारावास तथा मृत्युदण्ड को रोकना था। इसके अतिरिक्त वे धर्म के नियमों का भी प्रचार किया करते थे। स्त्रियों के नैतिक जीवन का भी उन्हें प्रचार करना पड़ता था। इस प्रकार अशोक ने सरकारी पदाधिकारियों को धर्म के कार्य में लगाया। इतने सुसंगठित रूप से कार्य करने का ही परिणाम था कि सम्राट को अपने उद्देश्यों में आशातीत सफलता मिली जिसका उल्लेख उसने धर्म लेखों में किया है।

अशोक ने कल्याणकारी कार्यों को भी अपने धर्म प्रचार का माध्यम बनाया। ऊपर पहले ही वर्णन किया जा चुका है कि उसने पशु बलि को प्रतिबन्धित कर दिया था। शिलालेख एक (R.E. I) में आगे वर्णित है कि इस सिद्धान्त की अनुपालना में उसने राजकीय भोजनालय में मांस का पकाना निषिद्ध कर दिया तथा स्वयं भी मांस खाना त्याग दिया। इसी तरह स्तम्भ लेख पाँच (P.E. V) में भी वह पशु बलि तथा पशु हिंसा के विरुद्ध निर्धारित किए गए कई नियमों का उल्लेख करता है। शिलालेख दो (R.E. II) के अनुसार भी चिकित्सा एवं उपचार के विषय में बात करता है।

### विदेशों में धर्म प्रचार :-

अशोक के शासन काल की एक महत्वपूर्ण घटना थी, उसके राज्याभिषेक के सत्रहवें वर्ष में उसके द्वारा तृतीय बौद्ध संगति का आयोजन करना। इस संगति का आयोजन बौद्ध धर्म के विभिन्न मतों के आनसी मतभेदों को दूर करने के लिए पाटलीपुत्र में हुआ। इस संगति के अध्यक्ष मोगली पुत्र तिस्स तथा उपाध्यक्ष उपगुप्त थे। इस संगति के समापन पर भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में अशोक ने धर्म विजय एवं प्रचार के लिए धर्मप्रचारकों भेजा। अनुश्रुति के आधार पर यह जानकारी प्राप्त होती है कि अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को सिंहलद्वीप (श्री लंका) भेजा था। वहाँ के राजा तिस्स ने उन दोनों का भव्य स्वागत किया था। मझांतिक नामक भिक्षु धर्मप्रचार के लिए कश्मीर तथा गांधार गया वहीं मज्झिम हिमालय प्रदेश में, महादेव महीशमण्डल (मैसुर) में, सोन तथा उत्तर स्वर्ण भूमि (बर्मा) में, महाधर्म रक्षित तथा महारक्षित क्रमशः महाराष्ट्र एवं यवन प्रदेशों में भेजे गए। उसने धर्म प्रचार के लिए श्री लंका, बर्मा, तिब्बत, जापान, कोरिया, सीरिया, मिस्र तथा पूर्वी द्वीप समुह आदि देशों में अन्य भिक्षु-भिक्षुणियों को भेजा। भण्डारकर का कहना है कि अशोक ने धम्म को इतना महत्वपूर्ण स्थान दिया कि अन्य सभी कार्य प्रष्टभूमि में चले गए और अशोक चक्रवर्ती धर्मराज के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। इस धर्म विजय के विषय में अशोक ने स्वयं लिखा है, "देवनामप्रिय धम्म द्वारा हृदय विजय को वास्तविक समझता है। यहां तक कि 600 योजन दूर के देशों में भी देवनामप्रिय को यह विजय मिली।" इस प्रकार अशोक ने धार्मिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। उसने मानवोचित गुणों के विकास के पालन पर जोर दिया जिससे मानव कल्याण हो सके। अशोक के धम्म की अपनी विशिष्टता है, वह जीवन के व्यवहारिक पहलु पर जोर देता था तथा नागरिकों में सामाजिक नैतिकता का विकास करना चाहता था।

### अशोक की धार्मिक नीति का मुल्यांकन :-

अशोक की धार्मिक नीति की सफलता एवं असफलता तथा उसके नीति के प्रभावों को लेकर इतिहासकारों के बीच मतभेद हैं।



मध्यकालीन महान मुगल सम्राट अकबर की "दीन-ए-इलाही" की भांति अशोक ने भी अपने 'धम्म' के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना तथा धार्मिक उदारता का वातावरण तैयार करना चाहा। धम्म की नीति में ऐसे कार्य भी शामिल थे जो आज भी नागरिक कल्याण के सम्बन्ध में प्रासंगिक हैं। यह कहना तो कठिन है कि अपने राष्ट्रीय एवं सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में अशोक किस सीमा तक सफल रहा पर इस दृष्टि से धम्म के प्रभाव हितकारी ही रहे होंगे। अतः प्रो० रोमिला थापर के इस कथन का पूरी तरह सवीकार करना कठिन है कि "अशोक की धम्म की नीति सफल नहीं रही।" वस्तुतः इस प्रकार की आदर्शवादी नीतियाँ की पूर्ण सफलता सदा ही इतिहास में सन्दिग्ध रही है। महत्व सफलता को नहीं अपितु उद्देश्य को दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास में अशोक की महानता सदैव बनी रहेगी।

### मौर्य कालीन प्रशासन :-

प्राचीन भारत में साम्राज्य निर्माण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूत्रपात तब हुआ जब महाजनपदों के स्थान पर एक कन्द्रीय मगध राज्य का उदय हुआ। यह वही काल था जब चन्द्रगुप्त ने मौर्य साम्राज्य की नींव रखी तथा कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा अर्थशास्त्र में प्रतिपादित सप्तांग सिद्धान्त का महत्व उजागर हुआ। इस सप्तांग सिद्धान्त के द्वारा पहली बार कुशल प्रशासन चलाने के लिए राजा के अतिरिक्त मन्त्री, सेना, जनपद, राजकोष, दुर्ग तथा मित्र, इन छह अंगों को भी उचित महत्व दिया गया। आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा इस आधिक्य की उगाही और इसका वितरण एवं खर्च ऐसे कुछ कारण थे जिन्होंने मौर्य प्रशासन को जटिल बना दिया क्योंकि एक विशाल मौर्य साम्राज्य की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियाँ इसी उत्पादन के आधिक्य पर आधारित थीं। चन्द्रगुप्त मौर्य एक महान विजेता ही नहीं अपितु एक कुशल प्रशासक भी था। उसके द्वारा स्थापित प्रशासन में यदि अशाक के छिटपुट परिवर्तनों को छोड़ दें, तो मौर्य साम्राज्य के अन्त तक किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ी। मौर्य प्रशासन के मन्दभ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मेगस्थनीज के इंडिका से हमें बहुत महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। ये दोनों ही ग्रन्थ बड़े विस्तार से मौर्य प्रशासन के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हैं।

### केन्द्रीय प्रशासन :-

मौर्य काल में राजतन्त्र ही शासन की सबसे प्रचलित विधि थी। साम्राज्य का केन्द्र और प्रधान राजा स्वयं था। राजा को सारा शक्ति उसी में केन्द्रित रहती थी। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्याय एवं सेना सम्बन्धी सभी विषयों में अन्तिम सत्ता सम्राट के हाथ में थी। वह प्रधान सेनानति, प्रधान न्यायाधीश और प्रधान दण्डाधिकारी होता था। वह राजाज्ञा निकालता था तथा प्रधान कर्मचारियों का नियुक्ति करता था। राज्य की आय-व्यय का निरीक्षण, युद्ध संचालन तथा न्याय प्रतिपादन उसके प्रधान कार्य थे। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य दण्डधर्म को धारण करके वर्णश्रम धर्म की रक्षा करना था। यद्यपि वह अपने मन्त्रियों की सलाह से ही शासन कार्य को संचालित करता था तथापि वह इन मन्त्रियों का परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं था। कौटिल्य के अनुसार राजशासन धर्म व्यवहार और चरित्र (लोकाचार) दोनों ही से ऊपर था। राजा ही राज्य की नीति निर्धारित करता था फिर भी वह स्वेच्छाचारी या निरकुशल नहीं था। कौटिल्य ने ही स्वयं अर्थशास्त्र में लिखा है - "सत्कर्म वह नहीं है जिससे केवल राजा का मनोरंजन हो; वास्तविक सुकर्म वह है जिससे प्रजा सुखी तथा प्रसन्न हो।" अर्थात् राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था। यद्यपि बाद में अशाक ने दण्डनमयिणी (देवताओं के प्रिय) जैसे विशेषणों का प्रयोग किया फिर भी मौर्य काल में राजा अपनी शक्ति को ईश्वर प्रदत्त नहीं मानता था और ना ही वह अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था अपितु वह धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं का आदर करता था। मेगस्थनीज ने भी इस बात की पुष्टि की है और कहा है कि चन्द्रगुप्त अपनी प्रजा का शोषक नहीं पोषक था। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य को शासन व्यवस्था को हम उदार-निरकुशल शासन कह सकते हैं। सम्राट प्रजा के सुख दुःख का बड़ा ध्यान रखता था और प्रजा की शिकायत को सुनने के लिए सदा तत्पर रहता था। चाणक्य का विचार था कि राजा को अपने द्वार पर किसी न्यायाकाक्षी प्रजा जन का अधिक समय तक प्रतीक्षा में खड़ा नहीं रहने देना चाहिए। राजा के प्रजाहितकारी होने का प्रमाण हमें अर्थशास्त्र में राजा के लिए निर्धारित अत्यावश्यक गुणों से भी मिल जाता है। जिसमें यह कहा गया है कि राजा को उच्च कुल का होने के अतिरिक्त धर्म का संरक्षक होना चाहिए, छोटे राजाओं तथा सामन्तों को अपने नियन्त्रण में रखने की क्षमता होनी चाहिए, सैनिक रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए तथा वित्त (आर्थिक कार्य) एवं लिपि (लेखन) का ज्ञान होना चाहिए। संक्षेप में उसके शासन में उदारता, न्याय तथा निरकृशता का समुचित समन्वय होना चाहिए।

**मन्त्री मण्डल-** एक व्यक्ति के लिए इतने विशाल साम्राज्य का संचालन करना असम्भव था। अतएव सम्राट का शासन संचालन के लिए अमात्य एवं सचिवों से युक्त एक मन्त्री परिषद की स्थापना करने की सलाह दी गई है। कौटिल्य कहता है कि राजत्व सहायता के बिना सम्भव नहीं है। एक अकेला पहिया कभी नहीं चल सकता। अतः राजा को मन्त्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए तथा उनके परामर्श को मानना चाहिए। अशोक के शिलालेख तीन (R.E.III) में भी यह कहा गया है कि मन्त्री परिषद से यह आशा की जाती

थी कि वह यह सुनिश्चित करें कि नए प्रशासनिक सुधान राज्य में लागू हो जाए। इसी प्रकार शिला लेख छह (R.E. VI) में भी मन्त्रियों को यह परामर्श दिया गया है कि वे राजा की अनुपस्थिति में उसके द्वारा प्रतिपादित नीति पर आपस में विचार विमर्श करें तथा आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन करें।

राजा द्वारा मुख्य मन्त्रियों तथा पुरोहित का चुनाव उनके चरित्र की भलीभांति जांच के बाद किया जाता था। इस क्रिया को **उपधापरीक्षण** कहा गया है। राज्य के सभी कार्यों में मन्त्रीगण सुझाव देते थे तथा उनके सुझावों पर ध्यान दिया जाता था, लेकिन अन्तिम निर्णय राजा के ही हाथ में था। सचिवों में सबसे प्रमुख मन्त्रिन (Mantrin) प्रतीत होते थे जो अशोक के अभिलेखों में वर्णित महामात्र से मिलते जुलते हैं।

इनकी संख्या बहुत कम तीन या चार होती थी। इन्हें मन्त्री सभा या आन्तरिक मन्त्री मण्डल भी कहा जा सकता है मन्त्री सभा के अतिरिक्त एक मन्त्री परिषद भी हाती थी जो पद तथा वेतन के विषय में मन्त्री सभा से निम्न थी। यह एक सचिवालय के समान थी तथा इसमें बारह से ले कर बीस तक कम या अधिक मन्त्री रहते थे।

शासन की सुविधा के लिए केन्द्रिय प्रशासन मुख्यतः चार भागों में विभक्त था, इनकी व्याख्या निम्न लिखित है :-

(1) तीर्थ :- यह मन्त्री परिषद के अतिरिक्त मन्त्रियों में सबसे उच्च थे। इनकी कुल संख्या 18 थी।

(2) अध्यक्ष :- तीर्थों के बाद इन्हें मौर्य प्रशासन में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ये मुख्यतः राज्य की आर्थिक एवं सैनिक गति विधियों से सम्बंधित थे। इनकी कुल संख्या 27 थी।

(3) महामात्य :- ये भी उच्च श्रेणी के कर्मचारी थे तथा मूल रूप से परामर्श दाताओं के रूप में कार्य करते थे।

(4) अमात्य :- ये वस्तुतः प्रशासकीय एवं न्यायिक गतिविधियों से सम्बंधित थे तथा आधुनिक सचिवों की तरह कार्य करते थे।

अर्थ शास्त्र में वर्णित 18 तीर्थ निम्नलिखित हैं -

(1) मन्त्री, (2) पुरोहित, (3) सेनापति, (4) युवराज- ये चारों तीर्थों में सर्व प्रमुख थे। (5) दौवारिक अथवा द्वारपाल (6) अन्तर्वशक अथवा अन्तः पुर रक्षा अधिकारी (7) प्रशत्री अथवा कारागार का अधिकारी (8) समाहर्ता अर्थात् राज्य की सम्पत्ति एवं आय व्यव का अधिकारी (9) सन्निधाता (सन्निधात्री) अर्थात् राजकोष, अस्त्रागार एवं कोष्ठागार का अधिकारी। (10) प्रदेष्टा (प्रदेष्ट्री) अथवा कमीश्ना (11) नायक अर्थात् नगर रक्षक (12) पौर यानि कोतवाल (13) व्यवहारिक अर्थात् मुख्यान्वयाधीश (14) कारमांतिक अर्थात् कारखानों एवं खानों का अधिकारी। (15) मन्त्री अथवा मन्त्रीमण्डलाध्यक्ष (16) दण्डपाल अर्थात् पुलिस का प्रधान (17) दुर्गपाल अर्थात् गृह अधिकारी (18) अन्तपाल अर्थात् सीमा रक्षा अधिकारी।

इनके अतिरिक्त विभिन्न अध्यक्षों की भी चर्चा अर्थ शास्त्र में की गई है। जो निम्नलिखित थे :-

(1) पर्याध्यक्ष- व्यापार की देखभाल (2) अक्षपाटलाध्यक्ष- लेखाविभाग का प्रधान (3) कोषाध्यक्ष- खजाने का प्रधान (4) अक्राध्यक्ष-खानों का प्रधान (5) लोहाध्यक्ष- धातु विभाग का प्रधान (6) लक्षणाध्यक्ष- मुद्राव्यवस्था का प्रधान (7) लवणाध्यक्ष- नमक की देखभाल (8) सुवर्णाध्यक्ष- स्वर्ण आभूषणों का निर्माण (9) कोष्ठागाराध्यक्ष- भण्डार की देखभाल (10) कुप्याध्यक्ष- वन सम्पदा की देखभाल (11) आयुधगाराध्यक्ष- अस्त्र-शस्त्र की देखभाल (12) नगराध्यक्ष- नगर प्रशासन का प्रबन्धक (13) पौतवाध्यक्ष- नापतोल तथा बाजार पर नियन्त्रण (14) शुल्काध्यक्ष- शुल्क की वसूली (15) सूत्राध्यक्ष- कताई बुनाई की देखरेख (16) सुराध्यक्ष- शराब के उत्पादन वितरण एवं प्रयोग पर नियन्त्रण (17) गणिकाध्यक्ष- वेश्याओं पर नियन्त्रण (18) सीताध्यक्ष- राजकीय जमीन की देखभाल (19) सुनाध्यक्ष- बूचड़खाने का नियन्त्रक (20) नावाध्यक्ष- जल मार्ग का प्रबन्धक (21) गौध्यक्ष- राजकीय मवेशियों का अध्यक्ष (22) अश्वध्यक्ष- राजकीय घुड़साल का प्रबन्धक (23) हस्त्याध्यक्ष- हाथियों की देखरेख (24) रथाध्यक्ष- रथों का प्रबन्धक (25) देवता अध्यक्ष- देवता और मन्दिरों का प्रबन्धक (26) मानाध्यक्ष- समय को मापने के साधनों का नियन्त्रक (27) विविताध्यक्ष- चरागाहों का व्यवस्थापक।

**प्रान्तीय शासन :-** चन्द्रगुप्त मौर्य ने शासन की सुविधा के लिए विशाल मौर्य साम्रज्य को अनेक भागों अथवा प्रान्तों में विभाजित कर दिया था। वास्तव में चन्द्रगुप्त के समय में कितने प्रान्त थे इसके तो अनुमान नहीं लगता, परन्तु अशोक के समय में पांच प्रान्तों का उल्लेख उसके अभिलेखों में मिलता है जो निम्न है-

(1) उत्तरापथ- इसकी राजधानी तक्षशिला थी तथा इसके अन्तरगत कम्बोज, गान्धार, कश्मीर, पंजाब एवं अफगानिस्तान के इलाके आते थे।

(2) दक्षिण पथ- विंध्याचल के दक्षिण का सारा प्रदेश इस प्रान्त में था और इसकी राजधानी स्वर्णागिरि थी।

(4) कलिंग- इसकी राजधानी तोसाली (धौली) थी।

(5) प्राच्य- इसमें बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे। इसकी राजधानी पाटली पुत्र थी।

प्रो. एच. सी. राय चौधरी के अनुसार इन पांच प्रान्तों में से पहले दो तथा अन्तिम चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी थे। इन प्रान्तों को राष्ट्रपाल या गवर्नर कहते थे। मौर्य साम्राज्य में दो प्रकार के प्रान्त थे - एक जैसे प्रान्त जो अधीनस्थ शासकों के राज्य थे और दूसरे वे प्रान्त जो मौर्य सम्राटों के राज्य को विभिन्न हिस्सों में बांट कर शासन की इकाइयों के रूप में बनाए गए थे। इनमें से सीमावर्ती प्रदेश कुमारों (राजकुमारों) के द्वारा शासित होते थे एवं मध्य के प्रान्तों (Home Province) पर सम्राट स्वयं अधिकारियों को महत्वपूर्ण शासन करता था। प्रान्तीय शासन भी केन्द्रिय शासन के आधार पर ही चलता था। राजा का उन पर कठोर नियन्त्रण था।

**स्थानीय शासन-** प्रान्तीय शासन के नीचे स्थानीय शासन का संगठन भी महत्वपूर्ण था। प्रान्त अनेक मण्डला में तथा प्रत्येक मण्डल बहुत से जनपदों में विभक्त थे। जनपदों के भी विभिन्न भाग होते थे जिन्हें अर्थशास्त्र में 'द्राणमुख', 'खार्वटिक', 'संग्रहण' और 'ग्राम' कहा गया है। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। दस गावों के समूह को संग्रहण कहते थे तीस बीस संग्रहणों से एक खार्वटिक बनता था। दो खार्वटिकों से एक द्राणमुख और द्राण मुखों से एक स्थानीय बनता था। ग्राम का शासक ग्रामिक, संग्रहण का गाण और स्थानीय का स्थानिक कहलाता था। संपूर्ण जनपद के शासक को 'समाहर्ता' कहते थे। समाहर्ता के ऊपर 'महामात्र' होते थे जो 'वक्रा' के अन्तर्गत विविध मंडलों का शासन करते थे। महामात्रों के ऊपर 'कुमार' होते थे और सबसे ऊपर 'सम्राट' होता था।

**ग्राम शासन-** शासन की दृष्टि से प्रत्येक ग्राम अपना पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व रखता था। ग्राम का शासक ग्रामिक कहलाता था। वही गांव का शासन तथा झगड़ों का न्याय पंचायत के सदस्यों की सहायता से करता था। उसे ग्रामवासी ही चुनते थे तथा उसका पद अवैतनिक था। प्रत्येक गांव में सम्राट का एक भृत्य कर तथा लगान आदि वसूल करने के लिए रहता था जो 'ग्राम भृत्य' कहलाता था।

**नगर शासन-** चन्द्रगुप्त के शासन में देश में जीवन में स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का बहुत महत्व था। मेगस्थनीज ने कवल-पटलीपुत्र के म्युनिसिपल प्रशासन का विवरण दिया है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि साम्राज्य के अन्य बड़े-बड़े नगरों में भी इसी प्रकार का प्रबन्ध रहा होगा।

मेगस्थनीज के अनुसार पाटलीपुत्र का शासन एक 30 सदस्यों वाली परिषद करती थी। यह परिषद 6 समितियों में बँटी हुई थी जिसमें 5-5 सदस्य होते थे। इनके कार्य निम्न थे -

**पहली समिति-** शिल्पियों एवं कारीगरों की देखभाल करती थी तथा उनके लिए उचित मजदूरी भी तय करती थी।

**दूसरी समिति-** इसका काम विदेशियों की देखभाल करना था।

**तीसरी समिति-** इस समिति के जिम्मे नगर में होने वाले जन्म एवं मृत्यु का लेखा-जोखा रखना था। यह व्यवस्था सम्भवतः एक निर्धारित करने के लिए की गई थी।

**चौथी समिति-** यह समिति व्यापार-वाणिज्य की देखभाल करती थी। इसके साथ-साथ यह मापताल का भी प्रबन्ध करती थी।

**पाँचवीं समिति-** यह समिति कारीगरों द्वारा तैयार माल की देखभाल तथा उनकी बिक्री का प्रबन्ध करती थी।

**छठी समिति-** इस समिति के जिम्मे विक्रय की गई वस्तुओं पर बिक्री कर वसूलना था। यह कर बेचे गए मूल्य का एक प्रतिशत होता था।

इन कार्यों के अतिरिक्त संयुक्त रूप से यह बोर्ड सार्वजनिक भवनों, बाजारों, बन्दरगाहों, मन्दिरों आदि की देखभाल करता था। यह ही मूल्य भी निर्धारित करता था। मेगस्थनीज ने इस बोर्ड के सदस्यों को **अस्टोनोमई (Astonomoi)** कहा है। इन्हें नगर कमिश्नर भी कहा जाता था।

**सैनिक प्रशासन-** चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक विशाल सेना की स्थापना की। प्लिनी के अनुसार उसकी सेना में 6 लाख पदत सैनिक, 10 हजार घुड़सवार, 9 हजार हाथी तथा 8000 रथ थे। जबकि प्लूटार्क के अनुसार चन्द्रगुप्त की सेना में 2 लाख पदाति, 8 हजार घुड़सवार, 6 हजार हाथी तथा 8 हजार रथ थे। वास्तव में चन्द्रगुप्त ने एक चतुरङ्गिणी अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों का संगठन किया था जिसे चाणक्य ने अर्थशास्त्र में चतुर्गुण की संज्ञा दी है। सम्राट स्वयं सेना का प्रधान सेनापति होता था तथा उसने अपने सेना के प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध किया था। चन्द्रगुप्त ने जल सेना का भी संगठन किया था। मेगस्थनीज के अनुसार जल सेना के प्रबन्ध के लिए 30 सदस्यों की एक समिति होती थी। सेना का प्रबन्ध छह भागों में विभक्त था और प्रत्येक विभाग का प्रबन्ध पाँच-पाँच सदस्यों के हाथ में रहता था। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता था। पहला विभाग जल सेना का प्रबन्ध करता था। दूसरा विभाग सेना को हर प्रकार की सामग्री तथा रसद भेजने का प्रबन्ध करता था। तीसरा विभाग पदत सैनिकों का प्रबन्ध करता था। चौथा विभाग घोड़ों, हाथियों की सेना तथा छठा रथ सेना का प्रबन्ध करता था। सेना के साथ एक चिकित्सा विभाग होता था जो सैनिकों की चिकित्सा करता था। चन्द्रगुप्त की सेना स्थायी थी और उसे राज्य की आर से वेतन तथा अस्त्र-शस्त्र मिलता था। सेना को बनाने के लिए सरकारी कारखाने हों।

**पुलिस एवं गुप्तचर व्यवस्था**— चन्द्रगुप्त ने राज्य में कानून एवं व्यवस्था की स्थापना के लिए पुलिस एवं गुप्तचर सेवा का भी प्रबन्ध किया। इसके दो उप-विभाग थे, अर्थात् प्रकट पुलिस तथा गुप्तचर विभाग। प्रकट पुलिस के सिपाहियों को रक्षिन कहा जाता था। गुप्तचरों के दो वर्ग थे— संस्थान तथा संचारण। संस्थान वर्ग के गुप्तचर एक स्थान पर रहते थे और संचारण वर्ग के गुप्तचर भ्रमण करते थे। स्त्रियों को भी गुप्तचर नियुक्त किया जाता था। गुप्तचरों के अनेक कार्य थे। वे सरकारी कर्मचारियों की गतिविधियों पर ध्यान रखते हुए उनके कार्यों तथा चरित्र के सम्बन्ध में सम्राट को सूचना देते थे। साथ ही वे चोरों, अपराधियों तथा शत्रुओं का भेद लगाते थे। गुप्तचरों के कार्यों की देखभाल के लिये उन पर भी अन्य गुप्तचर नियुक्त थे।

**न्याय व्यवस्था**— राजा स्वयं न्याय का प्रधान था। उसका न्यायालय साम्राज्य में सर्वाच्च था। नगरों एवं जनपदों (जिलों) के लिए अलग-अलग न्यायालय बने हुए थे। अर्थशास्त्र में हमें दो प्रकार के न्यायालयों का उल्लेख मिलता है— धर्मस्थीय या धर्मैष्ठ तथा कंटकशोधन। पहले प्रकार का न्यायालय दीवानी मामलों से सम्बन्धित था तथा इसमें तीन धर्मस्थ (कानून वेत्ता) एवं तीन अमात्य होते थे। दूसरे प्रकार का न्यायालय जो फौजदारी मामलों की देखरेख करता था, उसमें तीन प्रदेशीय तथा तीन अमात्य होते थे। इन न्यायालयों की अतिरिक्त जाति पंचायत एवं श्रेणी न्यायालय भी थे। छोटे मोटे झगड़े ग्राम पंचायतों के द्वारा सुलझाए जाते थे। इन के पश्चात् जनपद सन्धि न्यायालय होता था जो सबसे छोटा न्यायालय था। उसके ऊपर संग्रहण न्यायालय, फिर द्रोणमुख न्यायालय और उसके बाद स्थानीय न्यायालय था। स्थानीय न्यायालय की अपील सम्राट के न्यायालय में सुनी जाती थी। सम्राट का निर्णय अंतिम होता था। इन न्यायालयों में से प्रत्येक में छह न्यायाधिश बैठते थे।

कौटिल्य तथा मेगस्थनीज के विवरण से ही यह स्पष्ट है कि दण्ड विधान बहुत कठोर था। छोटे अपराधों के लिए जुर्माने किये जाते थे। इससे बड़े अपराधों के लिए अंग-भंग और मृत्युदण्ड था। झूठी गवाही देने पर जीभ काट ली जाती थी। शिल्पियों को क्षति पहुँचाने, राज्य कर न देने तथा सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध अपराध करने पर मृत्युदण्ड दिया जाता था। दण्ड विधान कठोर होने के कारण चोरी, व्यभिचार आदि अपराध कम होते थे। शुभ अवसरों जैसे कि सम्राट के जन्मदिन, राज्याभिषेक, राजकुमार के जन्म आदि के उपलक्ष में कैदियों को छोड़ देने की रीति भी प्रचलित थी।

**अशोक के द्वारा मौर्य प्रशासन में किए गए सुधार**— अशोक के समय में भी मौर्य प्रशासन लगभग वैसा ही रहा जैसा चन्द्रगुप्त के समय में था। उसने तो केवल चन्द्रगुप्त के समय से चली आई प्रशासन व्यवस्था को और अधिक सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित किया किन्तु कलिंग युद्ध का अशोक के राजनैतिक सिद्धान्तों तथा दृष्टि कोण पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अशोक ने अपने धार्मिक और नैतिक विश्वासों के कारण अपना सारा राजनैतिक और व्यक्तिगत जीवन प्रजा की सेवा में अर्पित कर दिया। अशोक के राजत्व के सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह अपने को राजा के अतिरिक्त प्रजा पालक भी समझता था। वह पितृवत शासन का हिमायती था। कलिंग के दूसरे अभिलेख में वह कहता है, "सब प्रजाजन मेरे पुत्रों के समान हैं, जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों की इहलौकिक तथा तथा पारलौकिक हर प्रकार समृद्धि चाहता हूँ, उसी प्रकार से मैं सब लोगों की समृद्धि चाहता हूँ।"

अशोक ने उपर्युक्त कारणों से कुछ प्रशासनिक सुधार किए। उसने धर्ममहानात्य (धर्म महामात्र) नामक एक नए विभाग की लोगों के नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में सुधार हेतु स्थापना की। शिलालेख पांच (R.E. V) में इन महामात्रों के कार्यों का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि इनका मूल कार्य राज्य में रह रहे विभिन्न धर्मों के मतानुयाइयों के बीच में परस्पर सौहार्द की भावना पैदा करना था। इसके अतिरिक्त लोगों के उत्पीड़न को रोकना, दण्ड को कम करवाना तथा दान को बढ़ावा देना भी इनका मुख्य दायित्व था। इसके साथ ही अशोक ने राजुक, प्रादेशिक तथा युक्त आदि पदाधिकारियों को हर पांच वर्ष में राज्य में भ्रमण करने के आदेश दिए ताकि वे सीधे जमा थे। सम्पर्क में आ सकें तथा उनकी समस्याओं को समझ सकें (R.E. III)

शिलालेख छह (R.E. VI) में अशोक ने प्रतिवेदक (सूचना देने वाला) नामक अधिकारी को यह आदेश दिए हैं कि वह अतिमहत्वपूर्ण नागरिक मुद्दों को किसी भी समय उसके समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उसने राजकों को दण्ड तथा सम्मान देने के विषय में ओर अधिक स्वतन्त्रता दे दी जिससे कि वे अपना कर्तव्य ओर अधिक विश्वास एवं निर्मयता के साथ निभा सकें। (स्तम्भ लेख चार) इसी प्रकार जैसे कि स्तम्भ लेख पांच (R.E. V) में वर्णित है अशोक अपने राज्याभिषेक के वार्षिकोत्सव पर बन्दियों को रिहा करने की प्रथा का आरम्भ किया। मृत्युदण्ड पाए हुए अपराधियों को दण्ड मिलने से पहले तीन दिन का अवकाश दिया जाता था ताकि वे उपवास, चिन्तन आदि के द्वारा दूसरी जगह की तैयारी कर लें।

अशोक को अपनी प्रजा की आध्यात्मिक तथा नैतिक उन्नति में ही रूनि न थी अपितु उसने, जनता की भौतिक उन्नति और सुख के लिए भी कार्य किए। उसने स्वयं लिखा है कि "मैंने सड़कों पर बरगद तथा आम के वृक्ष लगवाए, हर आधे कोस पर कूएं खुदवाए और पशुओं तथा मनुष्यों के लिए जलाशय बनवाए।" साथ ही उसने मनुष्यों एवं पशुओं की चिकित्सा के लिए अस्पताल खुलवाए। वास्तव में अशोक की यह धारणा थी कि सभी प्राणियों का उस पर ऋण है और इस ऋण से मुक्ति पाने के लिए वह बहुत व्यग्र था। इस आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि मौर्य साम्राज्य सुच्यवस्थित होने के साथ-2 प्रजा हितकारी भी था।



**अशोक के उत्तराधिकारी** - 232 ई. पू. में अशोक की मृत्यु हो गई। प्राचीन परम्पराओं में उसके उत्तराधिकारी को ज्ञान मत्त भेद है। यद्यपि प्राचीन अनुश्रुतियों में अशोक के कई पुत्रों का उल्लेख मिला है तथा उसके शिला लेख उसका काल के पुत्र-तीव्र का उल्लेख करते हैं। साहित्यिक अनुश्रुति में कुमार तीव्र का उल्लेख नहीं मिलता जिससे यह प्रतीत होता है कि यह कदाचित अशोक के जीवन काल में ही परलोक वासी हो गया था। बौद्ध अनुश्रुतियों में हमें अशोक की रानी असधमित्री के पुत्र महेन्द्र का उल्लेख मिलता है जो भिक्षु हो कर श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु चला गया था। तिब्बती साहित्य में अशोक के एक पुत्र पुस्तन का भी उल्लेख मिलता है जिसने खोतान में एक स्वतन्त्र भारतीय उपनिवेश की स्थापना की थी। कलहण के **राजतरंगिणी** में अशोक के एक पुत्र जालौक का भी उल्लेख मिलता है जो शैव मत का अनुयायी था तथा जिसने पिता की मृत्यु के बाद कश्मीर में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी।

वायु पुराण से विदित होता है कि अशोक की मृत्यु के पश्चात् उसके सबसे बड़े पुत्र कोणाल (अथवा सुयश) को सिंहासन प्राप्त हुआ परन्तु दक्षिणी परम्पराओं में यह बतलाया गया है कि अशोक की एक रानी तिष्यरक्षिता के कपट के कारण कोणाल का अन्धा करवा दिया गया तथा वह शासन चलाने योग्य नहीं रहा। दूसरी ओर **अशोकावदान** से हमें यह पता चलता है कि अशोक के समय में ही कोणाल का पुत्र सम्प्रति युवराज के पद पर नियुक्त था तथा वह इतना प्रभावशाली हो गया था कि उसने अशोक को राजकोष से बौद्ध धर्म संघ को दान देने का निषेध कर दिया था। इन्हीं कारणों से कुछ ग्रन्थों में अशोक के पश्चात् सम्प्रति को मौर्य शासक दर्शाया गया है जो भी हो कोणाल का शासन काल जो कि सम्भवतः 232-224 ई. पू. तक था उसमें विशाल और शक्तिशाली मगध साम्राज्य का दिग्घटन आरम्भ हो गया। कश्मीर पाटलीपुत्र के प्रभुत्व से मुक्त हो गया और वहाँ जालौक ने अपना प्रथम राज्य स्थापित कर लिया। सम्भवतः अशोक के शासन काल के अन्तिम समय में यवनों ने मगध राज्य पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। बिन्दुसार के समय में जीता गया आन्ध्र प्रदेश भी कोणाल के समय में स्वतन्त्र हो गया था।

वायु तथा मत्स्य पुराणों के अनुसार कुणाल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र दशरथ गद्दी पर बैठा। वायु पुराण के अनुसार कुणाल के उत्तराधिकारी का नाम 'बन्धुपालित' था। सम्भवतः यह दशरथ का ही उपनाम था। अनुश्रुतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में भी शासन की बागडोर सम्प्रति के हाथों में रही। सम्प्रति योग्य युवराज होने के कारण अशोक, कुणाल तथा दशरथ तीनों के समय में शासन कार्य करता रहा, सम्भवतः इसीलिए दशरथ को 'बन्धुपालित' जैसा विशेषण दिया गया है। चाहे जो भी हो दशरथ धार्मिक प्रवृत्ति का था तथा उसने आतीविकों के लिए नागार्जुनी की पहाड़ियों में गुफा-बिहार बनवाया। इसका शासन काल 214-216 ई. पू. तक रहा जिसमें मगध साम्राज्य निरन्तर विनाश की ओर अग्रसर होता गया। सम्भवतः कोल वंशीय शासक देवराज 223 ई. पू. में कलिंग को मौर्य साम्राज्य की आधीनता से मुक्त करवा लिया।

दशरथ को कोई पुत्र नहीं था, इसलिए इसकी मृत्यु के पश्चात् उसका भाई सम्प्रति सिंहासन पर बैठा जिसने 216-207 ई. पू. शासन किया। बौद्ध साहित्य में जो स्थान अशोक का है, जैन साहित्य में वही स्थान सम्प्रति का है। जैन अनुश्रुतियों से विदित होता है कि वह जैन धर्म का अनुयायी था और उसने जैन धर्म के प्रचार के लिए अथक प्रयास किए। वास्तव में अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य में यही एक शक्तिशाली शासक हुआ जो मगध साम्राज्य के अधिकांश भाग पर अधिकार कर सका। पाटलीपुत्र और ऊज्जयिनी के दो प्रमुख राजधानियाँ थीं।

राजा सम्प्रति की 207 ई. पू. में मृत्यु के पश्चात् शालिशुक अपने भाई को मार कर गद्दी पर बैठा। मौर्य संहिता के अनुसार यह पृथ्वी प्रिय विग्रह, अपने राष्ट्र का घोरमर्दन करने वाला, धर्मवादी किन्तु अधार्मिक था। इसी के समय में कश्मीर के मौर्य राजा जालौक ने मगध पर आक्रमण किया तथा सम्प्रति के पुत्र वृषसेन ने सिन्धु के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अपना स्वतन्त्र राज स्थापित किया। इस समय युनानी राजा अन्तियोक्स III ने भारत पर आक्रमण किया परन्तु सीमा पर से ही सुभगसेन से सन्धि करके लौट गया।

राजा देव वर्मा शालिशुक के पश्चात् पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठा। उसके शासनकाल (206-199 ई. पू.) के समय बर्किट्टाक राजा राजा डेमेट्रियस ने 200 ई. पू. में भारत पर आक्रमण उत्तरा पथ के कुछ प्रदेशों को जीत लिया। देव वर्मा के पश्चात् शतधनुष मगध का शासक बना जिसने 199-191 ई. पू. तक शासन किया इसके काल में डेमेट्रियस ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। शतधनुष के पश्चात् 191 ई. पू. वृहद्रथ मगध का राजा बना। शतधनुष का यह भाई मौर्य वंश का अन्तिम सम्राट था। सम्राट के पश्चात् उसी के प्रधान सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने 184 ई. पू. में वृहद्रथ की हत्या करके पाटलीपुत्र के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया तथा मौर्य साम्राज्य का अन्त कर दिया।

**मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण** :- चन्द्रगुप्त जैसे महान विजेता ने जिस विशाल साम्राज्य का निर्माण प्राणकर्म के सहपथ से किया था और जिसे अशोक जैसे महान सम्राट ने भी सुरक्षित रखा, उसी साम्राज्य का 184 ई. पू. में पतन हो गया। यह कोई एक ही घटना नहीं थी अनेक कारणों और परिस्थितियों पिछले कई वर्षों से साम्राज्य को अशक्त बना रही थी। अशोक के निधन 232 ई.

में हो गया और उसके पश्चात करीब पचास वर्षों के भीतर की मौर्य साम्राज्य का अत्यन्त की नाटकीय ढंग से विघटन हो गया। मौर्य साम्राज्य के पतन के अनेक कारण बतलाए जाते हैं। प्रथम— अशोक के निधनोपरान्त अयोग्य उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठे। द्वितीय— साम्राज्य का पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में विभाजन हो गया जिसके कारण प्रशासन शिथिल पड़ गया। पूर्वी भाग दशरथ तथा पश्चिमी भाग कुणाल के अधीन था यदि विभाजन नहीं हुआ होता तो पश्चिमात्तर प्रदेश से युनानी आक्रमण इतनी शिघ्रता से नहीं होते। तृतीय— अशोक की धम्म नीति के बुरे परिणाम हुए उसकी शान्ति और अहिंसा की नीति से मौर्य साम्राज्य की सैनिक शक्ति का हास हो गया। चतुर्थ— ब्राह्मण प्रतिक्रिया के फल स्वरूप पुष्यमित्र शुंग ने अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ का वध कर दिया। इसके मूल में अशोक का बौद्ध और उसके उत्तराधिकारियों का जैन धर्मानुख होना है। पंचमलोक कल्याण कारी होने के बावजूद भी मौर्य राज्य में करों की अधिकता के कारण जनता असन्तुष्ट थी। षष्ठ— केन्द्री भूत प्रशासन भी मौर्य साम्राज्य के विघटन का एक कारण बन गया तथा कमजोर उत्तराधिकारियों के शासन काल में शासन का अतिकेन्द्रिय करण अभिशाप बन गया। सप्तम— अमात्यों द्वारा शोषण भी बढ़ गया। तक्षशिला में अमात्यों के शोषण के विरुद्ध अशोक के राज्यकाल में ही विद्रोह हुआ था। अष्टम— राष्ट्रिय भावना के अभाव के कारण भी मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया।

प्रो. रोमिला थापर के शब्दों में, "मौर्य साम्राज्य के पतन की सन्तोषजनक व्याख्या यह कह कर नहीं की जा सकती कि सैनिक निष्क्रियता, ब्राह्मण प्रतिक्रिया, लोकप्रिय विद्रोह, आर्थिक दबाव आदि के कारण साम्राज्य का पतन हो गया। पतन के कारण मौलिक थे जिनका मौर्य कालीन जीवन से सम्बन्ध था।" थापर का विचार है कि प्रशासकीय संगठन, राज्य या राष्ट्र की अवधारणा आदि साम्राज्य के पतन के मौलिक कारण थे।

**अशोकादायित्व—** अनेक विद्वानों ने अशोक को मौर्य वंश के पतन के लिए उत्तरदाई माना है। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री के मतानुसार अशोक की नीतियों के परिणामस्वरूप ब्राह्मण प्रतिक्रिया के चलते मौर्यवंश का पतन हुआ। अशोक ने पशु बलि पर प्रतिबन्ध लगा दिया, धर्म महामात्रों की नियुक्ति की जिन्होंने ब्राह्मणों का दमन किया, मौर्यों द्वारा ब्राह्मणों के विशेषाधिकार को समाहा किया जाना आदि कारणों के चलते ब्राह्मणों में प्रतिक्रिया हुई एवं पुष्यमित्र नामक ब्राह्मण ने अन्तिम मौर्य शासक की हत्या कर इस वंश का नाश कर दिया। ब्राह्मण अशोक की व्यवहार समता और दण्ड समता से भी विक्षुब्ध थे तथा उसे शूद्र मानते थे। हर प्रसाद शास्त्री के अतिरिक्त डा. हेमचन्द्र राय चौधरी ने भी अशोक को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराया है। उनके अनुसार कलिंग विजय के पश्चात अशोक ने अहिंसा की नीति अपना ली जिसने सैनिक शक्ति को दुर्बल बना दिया। इसके परिणामस्वरूप राज्याधिकारियों पर शासन का नियन्त्रण कमजोर हो गया, वे मन माने अत्याचार करने लगे जिसके चलते लगातार विद्रोह हुए। साम्राज्य की कमजोरी का फायदा उठा कर युनानियों ने भी भारत पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। अन्ततः पुष्यमित्र ने इस मौर्य दुर्बलता का लाभ उठा कर सत्ता हड़प ली।

परन्तु इन दोनों इतिहासकारों के मतपूर्णतः सत्य नहीं है। यह सही है कि कलिंग विजय के पश्चात अशोक द्वारा अपनाई अहिंसा की नीति ने उसके राजनैतिक आदर्शों को प्रभावित किया किन्तु इसके चलते ही मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया हो यह कहना उचित नहीं। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता कि अशोक की धार्मिक नीति के चलते ही ब्राह्मणों की प्रति क्रिया हुई हो। अशोक ने ब्राह्मण धर्म विरोधी कार्य नहीं किए अपितु उसने मानव कल्याण के लिए सब को समान समझा, बराबर का महत्त्व दिया। अशोक ने ब्राह्मणों को दान दिया तथा धर्म महामात्रों के कार्यों में ब्राह्मणों के हित, सुख वृद्धि को भी सम्मिलित किया।

**साम्राज्य की विशालता—** चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसकी सीमाएं उत्तर में कश्मीर तथा हिन्दुकुश से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक तथा पूर्व में बंगाल और कलिंग से लेकर पश्चिम में काठियावाड़—सौराष्ट्र तक फैली हुई थी। अशोक की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों का इतने विशाल साम्राज्य पर शासन करना कठिन कठिन हो गया और यह मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण था।

**अशोक के कमजोर उत्तराधिकारी—** अशोक की मृत्यु के पश्चात मौर्य साम्राज्य पर कई राजाओं ने शासन किया परन्तु उनमें कोई भी इतना योग्य नहीं था जो इतने बड़े साम्राज्य पर शासन का उचित प्रबन्ध कर सके। इस तरह साम्राज्य का पतन को गया और अशोक के उत्तराधिकारी उसे छिन्न भिन्न होने से नहीं रोक सके।

**प्रान्तीय शासकों में स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति—** क्योंकि अशोक के उत्तराधिकारी निर्बल थे अतः उसकी मृत्यु के साथ ही साम्राज्य के प्रान्त एक-एक करके स्वतन्त्र होने लगे। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार अशोक के दूसरे पुत्र जालौक ने कश्मीर में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर अपनी सत्ता कन्जोज तक बढ़ा ली। इसी प्रकार तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के किरण से ज्ञात होता है कि अशोक के अधिकारी वीरसेन ने अपने आप को गन्धार का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। इतना ही नहीं मलविकाग्निमित्रम् से ज्ञात होता है कि विदर्भ भी मौर्य साम्राज्य से अलग हो चुका था। इस प्रकार अशोक की मृत्यु के पश्चात शिघ्र ही मौर्य साम्राज्य खण्डित हो गया।

**प्रान्त पतियों के अत्याचारः**— मौर्यों के पतन का एक और कारण दूर के प्रान्तों में मौर्य गवर्नरों का जनता पर अन्यायपूर्ण व्यवहार था। यह पहले ही बताया जा चुका है कि बिन्दुसार के समय में तक्षशीला के लोगों ने वहाँ के शासक के अन्यायपूर्ण व्यवहार में विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया था। अशोक के काल में एक बार पुनः तक्षशीला में विद्रोह हुआ जिसका कारण भी पहल सा है।

**आवागमन के साधनों का अभावः**— उस समय आज की भांति आवागमन के उचित साधनों का विकास नहीं हा पाया था और सत्त्वयात के सुविकसित साधनों के अभाव में इतने विशाल साम्राज्य पर नियन्त्रण रखना एक दुष्कर कार्य था। परिणामस्वरूप दूरस्थ प्रदेशों की शासन व्यवस्था धीरे-धीरे शिथिल होने लगी तथा केन्द्रिय नियन्त्रण कमजोर होता चला गया।

**विदेशी आक्रमणः**— कुछ विद्वानों ने भारत पर होने वाले युनानी आक्रमण को मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण माना है। युनानी लेखक पोलिबियस के विवरण तथा गार्गी संहिता से इसका आभास मिलता है। गार्गी संहिता के विवरण से यह ज्ञात होता है कि अन्तिम मौर्य शासकों के काल में युनानी बहुत बड़ी शक्ति बनकर उभरे। युनानीयों का सामना न कर सकने के कारण निश्चित ही मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ।

**अतिकेन्द्रियकरण की नीतिः**— डा. रोमिला थापर ने अपनी पुस्तक **अशोका एण्ड दि डिक्लाइन ऑफ दि मौर्याज** में मौर्य साम्राज्य के पतन के मूलभूत कारणों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार मौर्य वंश के पतन का मुख्य कारण केन्द्रिय नीकर शाही व्यवस्था और राज्य तथा राष्ट्र के विचार का अभाव था। मौर्य शासन में केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक थी। यह व्यवस्था नीकर शाही पर ही आधारित थी। प्रशासनिक सुव्यवस्था अधिकारियों की योग्यता एवं वफादारी पर आधारित थी। ये अधिकारी व्यक्तिगत तौर पर राजा के प्रति वफादार रहते थे, राज्य के प्रति नहीं। मौर्यों ने इनकी योग्यता को रखने एवं उन्हें राज्य के प्रति उत्तरदायी बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। फलतः उनमें राष्ट्रियता की भावना का अभाव था जो मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण बना।

**आर्थिक कारणः**— डा. डी. डी. कौशाम्बी ने मौर्यों की आर्थिक दुर्बलता को उनके पतन का मुख्य कारण माना है। चन्द्रगुप्त के समय से ही मौर्यों ने एक विशाल सेना और नीकर शाही की व्यवस्था की। इसकी देखरेख पर राजस्व का बहुत बड़ा हिस्सा खर्च का जाता था। अर्थ शास्त्र में राजस्व के जितने स्रोतों का विवरण दिया गया है उससे पता चलता है कि जनता पर कर का अत्याधिक भार था। ऐसी अवस्था में जनता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं रही। इसके साथ ही अशोक ने दान देने एवं कल्याणकारी कार्यों में बहुत धन खर्च कर दिया जिसके कारण आर्थिक संकट और अधिक गहरा को गया।

प्रो. रामशरण शर्मा ने भी अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत' में मौर्य साम्राज्य के पतनों के कारणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि मगध साम्राज्य का विस्तार कतिपय मूलभूत भौतिक श्रेष्ठताओं पर निर्भर था। परन्तु साम्राज्य में विस्तार के कारण मध्यभारत, दक्कन और कलिंग में संस्कृति के इन तत्वों (लोहे का प्रयोग, अतिरिक्त उत्पादन, सिक्के का प्रचलन, व्यापार वाणिज्य की सुविधा आदि) के प्रयोग सम्बन्धि ज्ञान का प्रसार होते ही गंगा घाटी जो साम्राज्य की ममस्थली थी अपनी विशेषता खो बैठी। लोहे के औजारों और हथियारों का बाह्य प्रान्तों में नियमित प्रयोग तथा मौर्य साम्राज्य का ह्रास एवं पतन मुख्यतः उपरोक्त कारणों से ही मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ। आर. सी. मजूमदार इस सम्बन्ध में कहते हैं, "अप्रवासियों का सफल विद्रोह युनानीयों का मगध साम्राज्य में दूर तक सफल आक्रमण तथा उत्तर पश्चिम अधिराज्य के अलग हो जाना से मौर्य साम्राज्य का शासन एवं सम्मान को गहरा धक्का लगा।" वस्तुतः मौर्य साम्राज्य के पतन के मौलिक कारणों में कमजोर उत्तराधिकारी, विशाल साम्राज्य, आर्थिक दुर्बलता, बाह्य आक्रमण एवं प्रान्तीय शासकों के अत्याचार तथा शोषण ही मुख्य हैं।

# इकाई-III

अध्याय - 1

## शुंग वंश (187-5 ई. पूर्व से 75-3 ई. पूर्व)

पुराणों के अनुसार दस मौर्य राजा पृथ्वी पर 137 वर्ष राज्य करगें तदुपरान्त शुंग वंश का राज्य होगा तथा सेनापति पुष्यमित्र बृहद्रथ को मार कर 36 वर्ष राज्य करेगा। बाणभट्ट के हर्षचरित इस संदर्भ में कुछ और वृत्तान्त भी देते हैं कि पुष्यमित्र ने राजा बृहद्रथ को सेना की समीक्षा के बहाने सबके सामने मार दिया क्योंकि वह कमजोर शासक था तथा वह अपने सिंहासनरुद्ध होने के समय की शपथ को पूरी नहीं कर सका। इसी साक्ष्य में पुष्यमित्र को अनार्य कहा है। राजा की पूरी सेना के सम्मुख हत्या करना कोई आम बात नहीं है इसके पीछे एक पूर्व नियोजित योजना थी तथा सेनापति पुष्यमित्र का सेना पर इतना प्रभाव था कि वे अपने राजा के वध के समय चुप रहे। अब प्रश्न उठता है कि आखिर वह क्या अवसर था जिसके कारण सेना के निरीक्षण का आयोजन किया गया। महामहिम हरप्रसाद शास्त्री का विचार है कि इस समय यवनों के आक्रमण होने शुरू हो गए थे तथा पुष्यमित्र उन्हें हरा विजयी हो पाटलीपुत्र अपनी सेना के साथ लौटा था जहां पर सेना की परेड या किसी अन्य आयोजन हुआ था जहां पुष्यमित्र ने अपने स्वामी की हत्या कर दी। इस कथन के अनुसार मौर्य साम्राज्य के अन्त के समय युनानी आक्रमण प्रारम्भ हो गए। पतञ्जलि के महाभाष्य में भी यवन आक्रमण के संदर्भ में वर्णन है कि यवन आक्रमण अयोध्या तथा राजस्थान में चितौड़ इत्यादि पर हुए थे (अरुणद् यवनः साकेतत अरुणद् यवनः माध्यमिकाम)। पतञ्जलि पुष्यमित्र का समकालीन था क्योंकि उसने सभी घटनाओं को वर्तमान काल में ही लिखा है जैसे इह पुष्यमित्रम् याजयामः इत्यादि।

**पुष्यमित्र शुंग :-** शुंग वंश का संस्थापक पुष्यमित्र था जिसके राज्य काल के बारे में हमें पुराणों, हर्षचरित, पतञ्जलि के महाभाष्य, जैन लेखक मेरुतुंग की थेरावली (जिसमें उज्जैन के राजाओं की वंशावली दी गई है), कालीदास का मालविकाअग्निमित्र, धनदेव की अयोध्या अभिलेख, दिव्यावदान तथा हरिवंश इत्यादि से जानकारी मिलती है।

**वंश :-** हरप्रसाद शास्त्री का मत है कि इस वंश के राजाओं के नाम मित्रान्त हैं इससे लगता है कि ये राजा पारसीक थे जो मित्र या मिथिर (सूर्यदेव) के उपासक थे। परन्तु बाद में उन्होंने इस वंश को ब्राह्मण वंश माना। दिव्यावदान नामक बौद्ध ग्रंथ के अन्तिम भाग (29 वां अध्याय) में पुष्यमित्र को मौर्य कहा गया है। हर्षचरित में पुष्यमित्र को अनार्य कहा है जिससे कुछ विद्वानों ने इसके शुद्ध होने का संकेत दिया है परन्तु अनार्य शब्द उसके दुष्कर्म या स्वामी हत्या के कारण प्रयुक्त किया लगता है। परन्तु अब तक प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार पुष्यमित्र ब्राह्मण था। अहिंसात्मक बौद्ध नीति को मानने वाले अशोक के वंशजों की नीति के कारण राजा अपने राज्य की सुरक्षा करने में सफल नहीं रहे तथा ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा के कारण ही नहीं अंग जगत की सैनिकों के विरुद्ध हो चुकी थी। अन्तिम मौर्य शासक के राज्य काल में कुव्यवस्था से तंग आ इस वंश का नाश करने के लिए शायद ब्राह्मणों ने सेना में आना प्रारम्भ किया शायद पुष्यमित्र ने सेनापति बनते अधिकाधिक ब्राह्मणों को सेना में लिया। इसी कारण शायद सेना राजा की हत्या के समय मौन रही। बृहद्रथ की हत्या के पीछे बौद्ध धर्म के विरुद्ध गैर बौद्ध मतावलम्बियों का सामुहिक विरोध प्रतीत होता है। कालीदास के मालविकाअग्निमित्र में पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को बैम्बिक कुल का बताया है। सुधाकर चट्टोपाध्याय इन को भारहुत अभिलेख में वर्णित बिम्बिका नदी से जोड़ते हैं। कुछ विद्वान इस कुल को बिम्बिसार से सम्बन्धित मानते हैं। परन्तु इस के कोई प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं हैं। बौद्धायन श्रोतसूत्र के अनुसार बैम्बिक कश्यप गोत्र के थे जो कि ब्राह्मणों का एक महत्त्वपूर्ण गोत्र है। इसकी पुष्टि हरिवंश से होती है क्योंकि इस ग्रंथ में कलियुग में अश्वमेध करने वाले एक औदभिज्ज कश्यप ब्राह्मण सेनापति का उल्लेख है। जयसवाल इस सेनानी का समीकरण पुष्यमित्र से करते हैं उनके अनुसार औदभिज्ज का अर्थ है आकस्मिक रूप से उदय होने वाला। उनके अनुसार अपने राजा को पार कर राजा बनना उसके आकस्मिक उदय का द्योतक है। दूसरी ओर पुराण तथा हर्षचरित पुष्यमित्र को कश्यप या बैम्बिक न मान शुंग कहते हैं। यह शुंग कौन थे इस का उल्लेख वृहद्आरण्यक उपनिषद् तथा लाट्यायन श्रोतसूत्र में है। इस के टीकाकारों का मत है कि शुंग आचार्य थे। कीथ तथा मैकडाल ने आश्वलायन श्रोतसूत्र के हवाले से मत प्रकट किया है कि शुंग आचार्य होते थे तथा प्राचीन भारत में आचार्य ब्राह्मण ही होते थे पाणिनी भी शुंगों को ब्राह्मण ही मानते हैं तथा भारद्वाज गोत्र वाला कहते हैं। अतः शुंग ब्राह्मण थे।

**राज्यकाल :-** येरुतुंग के अनुसार नंदों के बाद मौर्यों ने 108 वर्ष राज्य किया इसके बाद पुष्यमित्र ने 30 वर्ष राज्य किया। मत्स्य पुराण पुष्यमित्र का राज्य काल 36 वर्ष तथा वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण इसका काल 60 वर्ष बताते हैं। पारजीटर (Pargiter) का



मत है कि 60 वर्ष लिखना तो लेखक की गलती है वास्तव में यह 36 वर्ष ही है। पुराण मौर्यों को 137 वर्ष दत्त है जबकि मनु- 108 वर्ष मौर्य तथा 30 वर्ष देते हैं। जैन साक्ष्य अवंती के राज्य के अनुसार लिखे गए हैं उनके अनुसार शायद पुष्यमित्र मौर्यों के अन्तिम राजा के काल में वास्तविक (de-facto) राजा रहा हो जबकि वह अवंति का शासक तथा मौर्यों का सेनापति ही नहीं था। सुधाकर चंद्रपाध्याय के अनुसार 60 वर्ष का पुष्यमित्र का राज्य काल 24 वर्ष अधीनस्थ राजा तथा 36 वर्ष स्वतन्त्र शासक के रूप में हो सकते हैं। उनके अनुसार जब पुष्यमित्र के अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया तो उसके साथ सेना का संचालन उसका गत वसुमित्र का रहा था। इससे भी उसके दीर्घ राज्य काल का पता चलता है।

पुराणों में मौर्यों का 137 वर्ष का काल दिया गया है इसका अर्थ हुआ कि अन्तिम मौर्य राजा का वध (322 ई. पूर्व - 137-185 ई. पूर्व के आसपास हुआ। पुराणों के कथनानुसार उसका काल 36 वर्ष का इसका अर्थ हुआ कि वह 149 ई. पूर्व (185-36) तक राज्य करता रहा। परन्तु उसने कभी भी अपने आपको राजा नहीं कहा। पुराण, हर्षचरित, मालविकाग्निमित्रम् तथा धनदत्त की अवाध्या अभिलेख इत्यादि सेनापति के रूप में ही पुष्यमित्र को वर्णित करते हैं। इन साक्ष्यों में उसके पुत्र अग्निमित्र का राजा कह गये हैं। **यवनों से युद्ध :-** युग पुराण (गार्गी संहिता), महाभाष्य इत्यादि से पता चलता है कि यवन ने भारत के पूर्वी हिस्सा में राजस्थान तक को रौंद डाला। पञ्जलि पुष्यमित्र के पुराहित थे तथा उन्होंने इस घटना का शायद आँखों देखा वर्णन किया हो सकता है क्योंकि उन्होंने इस घटना को अनद्यतन लंग लकार में वर्णित किया है जो कि भूत काल के लिए प्रयुक्त किया जाता है अर्थात् कि घटना परोक्ष रूप से घटी हो परन्तु यदि कोई देखना चाहे तो देख सकता है। युग पुराण के गार्गी संहिता में भी वर्णन है कि यवनों ने साकेत पांचाल तथा मथुरा पर आक्रमण किया उसके बाद वे पाटलीपुत्र (कुसुमध्वज) तक पहुँच गए। उनके आक्रमण के कारण अव्यवस्था फैल गई। मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार पुष्यमित्र के अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा घूमते हुए सिन्धु नदी के दक्षिणी तट (सिन्धुदक्षिणप्रांश्वसि) पर पहुँच गया जहाँ यवनों ने उसे पकड़ लिया। इस घोड़े के साथ गई सेना का सेनापति पुष्यमित्र का पोता वसुमित्र था जिसने यवनों को पराजित कर घोड़ा छुड़वाया।

उपरोक्त साक्ष्यों में कहीं भी साक्ष्य यवन नेता का नाम नहीं देता केवल दि लिखा है जो कि डिमित्र या डिमिट्रियस रहा होगा। एस्मथ सिन्धु इत्यादि इस आक्रमण का नेता मीनान्डर को मानते हैं जो कि बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दपान्हो का मिलिन्द है। हेमचन्द्र शयचोधुरी भण्डारकर एवं काशीप्रसाद जयसवाल यवनों के नेता को डिमिट्रियस मानते हैं। स्टेन कोनी भी जयसवाल की तरह ही खारखेल की हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्णित यवनराज डिमित्र (Demetrius) ही मानते हैं। जबकि एन, एन घोष का मत है कि इस काल में दो यवन आक्रमण हुए प्रथम जिसका वर्णन पतञ्जलि के महाभाष्य तथा गार्गी संहिता में है। इसका नेता डिमित्र (Demetrius) था। परन्तु स्वयं डिमिट्रिय ब्यास नदी के पार नहीं गया इस तरह पाटलीपुत्र आक्रमण न्यायसंगत नहीं लगता। घोष के अनुसार दूसरा आक्रमण पुष्यमित्र के शासन काल के अन्त में हुआ जिसका नेता मीनान्डर (मिलिन्द) था। उनके अनुसार मालविकाग्निमित्रम् में जिस आक्रमण का वर्णन है वह दूसरा आक्रमण है। घोष के अनुसार पुष्यमित्र के पोते वसुमित्र का सेनापति पता चलता है कि यह घटना बाद की है।

अवधकिशोर नारायण के अनुसार सिक्कों के आधार पर हमें दो डिमिट्रियस राजाओं का पता चलता है। उत्तरपश्चिम भारत में पाए गए सिक्के डिमिट्रियस द्वितीय के हैं। अतः यह प्रदेश उसी ने जीता परन्तु उत्तरी भारत पर आक्रमण उसने नहीं किया उनके अनुसार यह मीनान्डर (Menander) ने जीता। उनके अनुसार युनानियों का एक ही आक्रमण इस क्षेत्र में हुआ था जब कि वे बृहद्रथ के काल के अन्तिम चरण में साकेत पांचाल कुसुमध्वज (पाटलीपुत्र) तक गए थे। वी. पी. सिन्हा मानते हैं कि युनानियों ने इस काल में दो आक्रमण किए पहला तो बृहद्रथ के अन्तिम दिनों में जब सेनापति पुष्यमित्र ने उन्हें हराया तथा फिर राजा का मार स्वयं शासक बना। इस यवन आक्रमण का नेता डिमिट्रियस था। उनके अनुसार द्वितीय यवन आक्रमण तब हुआ जब पुष्यमित्र के छोड़े हुए यवनों ने सिन्धु नदी पर पकड़ लिया जिस युद्ध का वर्णन मालविकाग्निमित्रम् में है। इसका नेता मीनान्डर था।

टार्न महोदय के अनुसार अपोलोडोटस ने भारत के भीतरी मात्र को जीत कर माध्यमिका (चित्तौड़) को जा घरा जिसका वर्णन पतञ्जलि में किया है परन्तु इन आक्रमणों तथा संघर्षों के साथ यह जान लेना भी आवश्यक है कि जिस सिन्धु नदी पर वसुमित्र ने यवन को पकड़ रखा वह आज की सिन्धु ही है या कोई और है। कनिंघम इसे पंजाब की सिन्धु नदी नहीं मानते। वे इसे यमुना की सहायक नदी का सिन्धु बताते हैं। स्मिथ, स्टेन कोनी एवं घोष इत्यादि विद्यवान भी कनिंघम के मत से सहमत हैं।

कुछ विद्यवान अब यह मानते हैं कि जिस यवन राजा ने भारत पर उस समय आक्रमण किया वह डिमिट्रियस ही था। पुराणों में वर्णन है कि यवन भारत में अधिक देर नहीं ठहरे क्योंकि उनके अपने राज्य में ही सत्तासंघर्ष (Civil war) हो गया जो कि काल भंगकर था। यह संघर्ष शायद युक्रेटाइडस तथा युथिडिमस परिवारों के राजाओं का आपसी संघर्ष था जिसमें डिमिट्रियस को युक्रेटाइडस से हटते ही युक्रेटाइडस ने सत्ता हथिया ली तथा गंगा घाटी से डिमिट्रियस को वापिस जाना पड़ा।

**विदर्भ युद्ध** :- मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार विदर्भ को अग्निमित्र ने जीत शुंग राज्य में मिला लिया। क्योंकि पुष्यमित्र के काल में अग्निमित्र विदिशा का गवर्नर था वहीं से उसने विदर्भ को भी जीता। इस नाटक के अनुसार विदर्भ का शासक यज्ञसेन था जिसके बारे में हम कुछ और साक्ष्य से कुछ नहीं जानते। मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार विदर्भ नरेश, मौर्य राजा बृहद्रथ के मंत्री विगत का बहनोई था तथा वह शुंगों का शत्रु था जिस समय पुष्यमित्र शासक बना तो उसने इस मंत्री को बन्दी बना लिया। विदर्भ के ही गवर्नर यज्ञसेन ने पुष्यमित्र की आधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। अन्त में अग्निमित्र ने यज्ञसेन को हरा दिया तथा विदर्भ को दो भागों में बांट दिया एक भाग यज्ञसेन के पास ही रहा दूसरा अग्निमित्र के सहयोगी माधवसेन को मिला। वर्धा नदी दोनों के बीच सीमा बनी। परन्तु बाद में संभवतः यज्ञसेन को पुष्यमित्र की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

**राज्य विस्तार** :- जैसा कि ऊपर दिए गए साक्ष्यों से विदित है कि पुष्यमित्र के पोते वसुमित्र ने यवनों को सिन्धु नदी पर हराया था इससे यह पता चलता है कि पुष्यमित्र का राज्य पश्चिम में सिन्धु नदी तक था। इस बात की पुष्टि तारानाथ के वर्णन से भी होती है कि पुष्यमित्र ने मध्य देश से जालन्धर तक बौद्ध विहारों को नष्ट किया। दक्षिण में विदिशा-विदर्भ युद्ध के आधार पर भी वर्धा नहीं तक इसके राज्य की सीमा होने के प्रमाण हैं। पूर्व में पाटलीपुत्र तो इसकी राजधानी थी इसका अर्थ यह है कि यहां से आगे का काफी क्षेत्र भी इसके राज्य में होगा।

**शासन प्रणालि (Administration)** :- ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्यों के समान ही इस काल में प्रशासन के लिए वही नीति अपनाई गई। यह विशाल साम्राज्य अनेक राज्यों का संघ था इन पर अनेक शासक राज्य करते थे जो कदाचित अपने आन्तरिक विषयों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। अश्वमेघ के घोड़े की सुरक्षा के संदर्भ में हमें इसका और प्रमाण मिलता है। ऐसा बताया गया है कि एक विशाल सेना का नेतृत्व वसुमित्र कर रहा था तथा उसके साथ 100 राजा भी थे। इसका अर्थ यह हुआ कि पुष्यमित्र के आधीन काफी मात्रा में शासक थे जिन्हे संभवतः राजा कहा जाता था। राजपरिवार के सदस्यों या राजकुमारों को प्रान्तों का गवर्नर लगाया जाता था। स्वयं अग्निमित्र विदिशा का गवर्नर था। इसी तरह अयोध्या में भी गवर्नर राजपरिवार से था। धनदेव के अभिलेख में धनदेव अपने आप को पुष्यमित्र का छटा वंशज कहता है। वायुपुराण के अनुसार पुष्यमित्र के आठ पुत्र एक की समय विभिन्न प्रदेशों में राज्य करते थे। इसके अतिरिक्त राज्य के अन्य अधिकारी भी थे। एक अमात्य परिषद का भी उल्लेख है। पतञ्जलि एक सभा का भी वर्णन करते हैं।

**बौद्ध विराधी कार्य** :-

दिव्यावदान के अनुसार पुष्यमित्र अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में रहता तथा इसमें उसके शाक्यमुनी के धर्म के विरोधी होने के प्रमाण दिए हैं। इसके अनुसार उसने सम्पूर्ण देश में बौद्ध स्तूपों का विनाश किया। परन्तु वह पाटलीपुत्र के कुक्कुटा राम (Kekkutarama) विहार को नष्ट नहीं कर सका क्योंकि वहां उसने तुमुल सिंहनाद सुनाई दिया तथा वह डर कर पाटलीपुत्र भाग गया। मध्य देश के अन्य बौद्ध विहारों को नष्ट कर वह साफल्य पहुंचा जहां उसने घोषणा की कि जो उसे श्रमण सिर देगा उसे वह 100 दिनार देगा। परन्तु वह अपने इस प्रयास में सफल नहीं हो सका किन्तु कृमीश नामक यक्ष द्वारा मार दिया गया। परन्तु दिव्यावदान काफ़ी बाद में लिखी गई इसलिए इसके प्रमाण का सत्य नहीं माना जा सकता दूसरे इस बौद्ध ग्रन्थ का ब्राह्मण विराधी होना स्वाभाविक है इसलिए इसकी सत्यता पर संदेह किया जा सकता है इसी तरह तारानाथ का भी कथन है कि पुष्यमित्र ने बौद्ध स्तूपों एवं विहारों को नष्ट किया। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में भी दिव्यावदान जैसा ही वर्णन है परन्तु पुष्यमित्र को बौद्ध विरोधी बताने वाले सारे साक्ष्य ही बौद्ध साक्ष्य हैं जिनका ब्राह्मण सेनापति का शासक बनना और वह भी एक बौद्ध राजा को मार कर, अनुचित लगा इसीलिए उन्होंने ऐसा लिखा। जबकि साक्ष्य इसके विपरीत हैं। सांची के स्तूपों में बहुत सा निर्माण कार्य स्वयं पुष्यमित्र के काल में ही हुआ था। यदि वह बौद्ध विरोधी होता तो क्या यह संभव था।

**ब्राह्मणधर्म का पुनरुत्थान** :- पुष्यमित्र के शासक बनते ही बौद्ध संघ को राजकीय सहायता मिलनी बन्द हो गई। ऐसा भी कहा जाता है कि उसने बौद्ध स्तूपों एवं विहारों को मन्दिरों में बदल दिया। इस काल के अर्धवृत्ताकार मन्दिरों (apsidal temples) को बौद्ध स्तूपों में कुछ और additions करके बनाया गया माना जाता है इसके अतिरिक्त उसने ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियों की भांति शस्त्र ग्रहण किए क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जब राजा दुर्बल हो धर्म से विचलित हो जाए तो उसका वध करना है। स्वयं मनु ने भी परोक्ष रूप से इस तरह का समर्थन किया है। पुष्यमित्र ने इसी तरह किया। अपनी विजयों तथा राज्य विस्तार के बाद उसने ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार अश्वमेघ यज्ञ किया इस प्रकार ब्राह्मण धर्म की इस राजाओं के लिए उचित यज्ञ का पुनरुद्धार किया जो मौर्यों के शासन काल में बन्द हो गए थे।

**धार्मिक सहिष्णुता** :- जहां एक ओर पुष्यमित्र को बौद्ध विरोधी तथा ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान करने वाला माना गया है वहीं इसके

शुंग वंश (ई० 187-5 पूर्व से 75-3 ई० पूर्व)

धार्मिक सहिष्णु शासक होने के प्रमाण भी मिलते हैं। शुंगकाल में भारत, बौद्धगया, सांची इत्यादि स्तूपों का और विशाल प्रमाण मिले हैं। भारत के स्तूप पर तो एक लेख भी इस बाल का समर्थन करता है दिव्यावदान से विदित होता है कि पुष्यमित्र ने बौद्धधर्म भी नियुक्त किए थे। अग्निमित्र, जो कि उस समय विदिशा का गवर्नर था, ने अपनी राज्यसभा में भगवती कौशिकी नाम की स्त्री को नियुक्त किया जो शायद बौद्ध धर्म से सम्बन्धित थी।

**पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी :-** पुष्यमित्र के पश्चात हमें ऐसे कोई प्रमाण नहीं मिलते कि इतना बड़ा साम्राज्य एक मुद्रा में पूरा भारत छोटे-2 राज्यों में बंट गया तथा पुष्यमित्र के वंशज केवल विदिशा के आसपास के ही राज्य संतुष्ट होकर रह गए। पाप वाक्या के अनुसार शुंग वंश में दस राजा हुए। पुष्यमित्र के बाद अग्निमित्र राजा बना जिसका पता हमें मालविकाग्निमित्र संगत में यह विदिशा का शासक था। अग्निमित्र नाम वाली बहुत सी मुद्राएं इस क्षेत्र में मिली हैं जिन्हें जयसवाल अग्निमित्र शुंग ही से सम्बन्धित मानते हैं जबकि कनिंघम इसे किसी स्थानीय शासक की मानते हैं। अग्निमित्र के बाद वसुज्येष्ठ राजा बना कुछ मुद्राओं पर अग्निमित्र का नाम मिलता है जो संभवता वसुज्येष्ठ था। वसुज्येष्ठ के बाद वसुमित्र राजा बना जो अग्निमित्र का पुत्र था इसके अतिरिक्त आन्ध्रक, पुलिण्डक, घोष वज्रमित्र, भाग और देवभूति राजा बने। नौवा शुंग राजा मात्र था जिसका समीकरण का भंडाकर बेसनगर के गरुड़ स्तम्भ में उद्विखित राजा भागमद्र से करते हैं जिसकी राज्य सभा में एण्टिगालकी इस ने अपने राजदूत हेलियोडोरस को भेजा था। अन्तिम शुंग राजा देवभूति था जो कि अत्यन्त कामुक नरेश था जिस उसके अमात्य वसुदेवकण्व ने मार कर स्वयं राज्य छीन लिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुंगों ने 112 वर्ष राज्य किया। पुष्यमित्र 187-5 ई. पूर्व शासक बना इस तरह शुंगों का काल 187-5-3 ई. पूर्व तक रहा जब इसके बाद ब्राह्मण मंत्री वसुदेव ने कण्व राजवंश का राज्य स्थापित किया।



## कण्व वंश (75-30 ई. पूर्व)

### कण्व वंश (75-30 ई. पूर्व)

विष्णु पुराण के अनुसार ब्राह्मण मंत्री वसुदेव ने अपने राजा देवभूति का वध कर दिया तथा कण्व शासन स्थापित किया। हर्षचरित में भी अमात्य वसुदेव द्वारा अतिकामी शुंगराज देवभूति की हत्या का उल्लेख है। यह वंश भी ब्राह्मण वंश था। परन्तु पुराणों में कुछ भ्रान्तियां भी हैं। जैसे वसुदेव जिसने शुंगराजा देवभूमि का वध किया को शुंग राजा बताया गया है। परन्तु वह कण्व या काण्वायन था जो उनके परिवारिक गोत्र कण्व के कारण था। इस वंश के चार राजाओं के नाम वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण तथा सुशर्मन का राज्यकाल क्रमशः 9, 14, 12 तथा 10 वर्ष बताया गया है (कुल 45 वर्ष)। इस प्रकार इन्होंने 75-3 ई. पूर्व से 30-28 ई. पूर्व तक राज्य किया। पुराणों के अनुसार इन कण्व राजाओं ने अपने पड़ोसी राजाओं को जीता तथा राज्य नीति अनुसार किया। इसके अतिरिक्त कोई अन्य वर्णन इस वंश का नहीं मिलता।

कण्व तथा शुंगों के तिथिक्रम के बारे में भी कुछ भ्रान्तियां बनी हुई हैं। एक तरफ तो शुंगों का अन्त वसुदेव कण्व द्वारा बताया गया है दूसरी ओर पुराणों में ऐसे भी संदर्भ हैं जिनके अनुसार आन्ध्र राजाओं को कण्वों का अन्त करने वाले होने के साथ-2 बची खुची शुंग शक्ति का अन्त करने वाला भी बताया गया है। आर. जी. भण्डारकर के अनुसार इसका अर्थ यह है कि जब शुंग राजा कमजोर हो गए तो कण्वों ने आधुनिक काल के पेशवाओं की तरह ही आसली रूप से राज्य करना शुरू कर दिया। परन्तु 112 में से 45 वर्ष वे असली राजा रहे। परन्तु इस मत को मानने वाले कम ही हैं। पुराणों के इस कथन का अर्थ यह लगाया जा सकता है कि जब वसुदेव कण्व ने शुंगों की शक्ति का अन्त कर दिया तब भी शुंग विदिशा इत्यादि के आसपास राज्य करते रहे तथा आन्ध्रों ने कण्वों के साथ-2 इन बचे खुचे शुंग वंशीय राजाओं का भी अन्त कर दिया।

### कण्वों के उत्तराधिकारी :-

पुराणों ने यद्यपि आन्ध्रों को कण्वों का अन्त करने वाला बताया है परन्तु हमारे पास कोई स्वतन्त्र साक्ष्य नहीं है जिसके अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि आन्ध्रों ने मगध पर शासन किया। मगध का इतिहास गुप्त राजाओं के उदय तक ठीक प्रकार से पता नहीं है। पांचाल, कौशांबी, मथुरा इत्यादि से बहुत से मित्र नाम से अन्त होने वाले राजाओं की मुद्राएं प्राप्त होती हैं जिन पर अग्निमित्र, भद्रघोष, जेठमित्र, भूमिमित्र इत्यादि तथा और बहुत से राजाओं के नाम हैं जो मित्र होने के कारण शुंग वंशीय बताए गए हैं। इनमें से अधिकतर को हम किसी पौराणिक या अन्य साक्ष्य में वर्णित शुंग राजा से नहीं मिला सकते। संभवत वे मित्र नाम वाले राजा शायद शुंग वंश से ही सम्बन्धित हो। परन्तु इन छोटे-2 क्षेत्र के मित्र वंशीय राजाओं में पांचाल के मित्रों का राज्य काफी विशाल था तथा इनकी एक शाख भानुमित्र के काल में पंजाब में भी आ गई बाद में वह स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगी। इसी तरह विदर्भ में भी मित्र नामान्त वाले राजाओं की मुद्राएं प्राप्त होती हैं।

उत्तर पश्चिमी भारत में मौर्यों के बाद तथा कुछ क्षेत्रों में शुंगों के बाद कई गणराज्य स्थापित हो गए थे तथा उन्होंने अलग-2 क्षेत्रों में अपना राज्य स्थापित किया। इनमें यौधेय औयुम्बर, कुणिन्द राजन्थ इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।



## हिन्द-यूनानी शासक (Indo-Greeks)

भारत में मौर्य शासकों के पतन के लिए उत्तरदायी अनेक कारणों में से एक भारत में यवन आक्रमणकारियों का पदापण भी था। ये यवन उत्तर पश्चिम की ओर से भारत में आये तथा भारत में आने वाली विभिन्न विदेशी शक्तियों में वे पहले थे। भारत में उत्तर मौर्य काल का एक रुचिकर पहलू यह था कि इन विदेशी शक्तियों ने कालान्तर में उत्तरापथ, अपरान्त (प्राच्यदेश) तथा मध्यदेश के कुछ भागों में अपने को स्थापित कर लिया।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य में **यवन** शब्द को **मलेच्छ** का प्रायवाची माना गया है तथा यह कहा गया है कि यह शब्द एक विदेशी के लिए प्रयुक्त होता था। परन्तु ईसा की प्रथम शताब्दियों तक एक भारतीय के लिए **यवन** का अर्थ केवल ग्रीक (ग्रीस का निवासी), अथवा यूनानी ही था। इस शब्द की उत्पत्ति प्राचीन ईरानी भाषा के **यउन** से हुई है जो मूल रूप से आयोनिया के ग्रीक लोगों के लिए प्रयुक्त होता था। परन्तु कालान्तर में इसका प्रयोग समस्त ग्रीक जाति के लिए होने लगा। एजियन सागर तथा लाडिया प्रदेश जिसे कि एशिया माइनर के नाम से जाना जाता था, के आयोनियन ग्रीक लोगों तथा उत्तर पश्चिम भारत के लोगों का परस्पर सम्पर्क खामिनी शासक डेरियस प्रथम (द्वारा प्रथम- 522-486 ई. पू.) के समय में हुआ क्योंकि ये दोनों ही प्रदेश इस समय इस ईरानी शासक के साम्राज्य का हिस्सा थे। ऐसा असम्भव प्रतीत नहीं होता कि खामिनी सरकार के आधीन यूनानी तथा भारतीय मूल के सेवारत अधिकारी तथा व्यापारी प्रान्तीय राजधानियों तथा बड़े नगरों में परस्पर एक दूसरे के सम्पर्क में आते होंगे। अतएव यह तथ्य हम बिल्कुल आश्चर्य चकित नहीं करता कि यह शब्द **यउन** (अर्थात् यूनानी) जिसका सर्वप्रथम प्रयोग डेरियस प्रथम के दस्तावेजों में हुआ है, को ज्यों का त्यों भारतीयों ने अपना लिया।

**यउन** शब्द के संस्कृत रूप **यवन** के प्रयोग का उल्लेख सर्वप्रथम ई. पू. पाँचवीं शताब्दी में पाणिनी कृत अष्टाध्यायी में मिलता है जबकि प्राकृत रूप **योन** का प्रयोग सर्वप्रथम अशोक के अभिलेखों में हुआ।

327-325 ई. पू. में सिकन्दर द्वारा उत्तर-पश्चिम भारत की विजय तथा वहाँ मकदनियाई साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीयों तथा यूनानियों के सम्बन्ध और अधिक प्रगाढ़ हुए। सिकन्दर द्वारा उत्तर-पश्चिम भारत विजय के उपलक्ष्य में स्थापित अलेग्जेंडरिया बुकेफल तथा निकार्इया आदि नगरों में भी इस घनिष्ठ आपसी सम्पर्क में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इन नगरों में रहने वाले यूनानी मौर्य काल में भी यहाँ बने रहे।

लगभग 325 ई. पू. से, जब सेल्युकस की चन्द्रगुप्त मौर्य से भिड़त हुई थी, से लगभग 100 वर्षों तक, अर्थात् 206 ई. पू. तक जबकि अन्तियोकस तृतीय ने उत्तर-पश्चिमी भारत पर आक्रमण किया था, यूनानियों के भारत के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे। मौर्य काल में यवन के आसत्तित्व का पता इसी तथ्य से पता चल जाता है कि अशोक के राज्यकाल में उसके सौराष्ट्र प्रान्त का गवर्नर एक यूनानी था। पातांजलि के **महाभाष्य** की रचना के समय तक **यवनों** तथा **शकों** ने भारतीय समाज में स्थान पा लिया था। जहाँ **महाभाष्य** में एक **अनिर्वासित** (शुद्ध) क्षूद्र कहा गया है वहीं **मनुस्मृति** उन्हें **निम्न क्षत्रिय** मानती है। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों में इस विषय पर मतभेद हैं तथापि उस समय भारत में **शुद्ध शूद्रों** तथा **निम्न क्षत्रियों** की सामाजिक स्थिति लगभग बराबर थी। **महाभाष्य** तथा **मनुस्मृति** जिन बैक्ट्रिया तथा अफगानिस्तान में बसे यूनानियों की बात करती हैं, धीरे-धीरे उनका भारतीयकरण हो गया तथा इन्होंने भारतीय नाम, धार्मिक विश्वास तथा परंपराओं को अपना लिया। शनः शनः वे भारतीय समाज में विलीन हो उसके अंग बन गए।

250 ई. पू. के कुछ पश्चात् पार्थिया (कैस्पियन सागर के दक्षिण-पूर्व में स्थित क्षेत्र तथा खुरासान) तथा बैक्ट्रिया (प्राचीन बाहलीक हिन्दूकश के परे उत्तरी अफगानिस्तान के आधुनिक बल्ख) प्रान्तों ने सेल्यूसिड शासक अन्तियोकस द्वितीय थिअकेस (261-246 ई. पू.) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। बैक्ट्रिया के इस विद्रोह का प्रणेता एक यूनानी गवर्नर डायोडोटस था। अन्तियोकस द्वितीय तथा उसके उत्तराधिकारी सेल्युकस द्वितीय (246-226 ई. पू.) तथा सेल्युकस तृतीय (226-223 ई. पू.) इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे इन विद्रोहों से निपट सकें। इनके एकदम बाद आये सेल्यूसिड शासक अन्तियोकस तृतीय (223-187 ई. पू.) ने कुछ वर्षों तक पार्थिया तथा बैक्ट्रिया को जीतने का प्रयास किया। परन्तु आखिरकार निराश होकर इनसे शांति स्थापित कर ली तथा इन दोनों प्रान्तों की व्यावहारिक स्वतंत्रता को स्वीकार कर लिया।

डायोडोटस प्रथम ने बैक्ट्रिया में एक स्वतंत्र यूनानी (ग्रीक) राज्य की स्थापना की। जस्टिन के अनुसार डायोडोटस का पार्थिया के शासक से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं थे। इसी लेखक ने सिक्कों के आधार पर डायोडोटस द्वितीय को डायोडोटस प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी बताया है। डायोडोटस द्वितीय ने अपने पिता की नीति को उलटते हुए पार्थिया के शासक से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये।

डायोडोटस द्वितीय के पश्चात् यूथेडमस नया शासक बना। यूथेडमस का अपने पूर्वव्रत शासकों से क्या सम्बन्ध था, इसका ठीक-ठाक आकलन करना कठिन है। यूथेडमस ने सेल्यूसिड शासक अन्तियोकस तृतीय से सन्धि स्थापित करने के लिए 206 ई. पू. में अपने पुत्र डिमिट्रियस को अपना दूत बना कर भेजा। यूथेडमस का देहावसान सम्भवतः 190 ई. पू. के लगभग हुआ। परन्तु उसके पुत्र डिमिट्रियस को ही भारत में यूनानी शक्ति का वास्तविक शासक माना जाता है। डिमिट्रियस ने भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की परन्तु भारत की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित करने के कारण उसकी अनुपस्थिति में उसके ही एक सरदार युक्रेटाइडस ने बैक्ट्रिया में लगभग 171 ई. पू. में डिमिट्रियस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यद्यपि डिमिट्रियस ने अपने छीने गए राज्य को युक्रेटाइडस से पुनः प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया तथापि इस कार्य में असफल ही रहा। कालान्तर में युक्रेटाइडस ने भारत में डिमिट्रियस के साम्राज्य पर भी अपना प्रभाव जमा लिया। परन्तु कुछ समय पश्चात् मिथाडेस प्रथम (171-136 ई. पू.) के नेतृत्व में पार्थियनों ने युक्रेटाइडस को हरा कर बैक्ट्रियन के साम्राज्य के दो बड़े प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया। हैलोल्कीज बैक्ट्रिया पर शासन करने वाला अन्तिम महान यवन शासक था। कालान्तर में पार्थियनों तथा उत्तर से आई यायावर जातियों (शक तथा यू-ची अथवा कुषाण) ने बैक्ट्रियन साम्राज्य का अन्त कर उसे आपस में बांट लिया।

### इन्डोग्रीक (हिन्द-यवन) शासक

बैक्ट्रिया के विनाश के पश्चात् भी यवन मध्य तथा दक्षिणी अफगानिस्तान एवं उत्तर पश्चिमी भारत पर शासन करते रहे। भारत में इस काल के यवन शासन की मुख्य विशेषता यह थी कि डिमिट्रियस तथा युक्रेटाइडस के वंशज राज सत्ता प्राप्त करने के लिए निरन्तर रूप से आपस में लड़ते रहे। सिद्धों से हमें लगभग तीस हिन्द यूनानी शासकों के बारे में पता लगता है। इन राजाओं के वर्णित नामों में से कुछ नाम जैसे कि एण्टीमाकस, अपोलाडोटस, डिमिट्रियस, डायोडोटस, युक्रेटाइडस, यूथेडमस, स्ट्रैटो तथा जोइलस ऐसे हैं जिन्हें सम्भवतः दो-दो ग्रीक शासकों ने अपनाया। ऐसा माना जाता है कि ऊपर वर्णित नामों में से एक ही नाम से पिता और पुत्र अथवा दादा और पौत्र ने शासन किया। इन सब शासकों ने भारत में शक-पार्थियन तथा कुषाण साम्राज्यों से पहले शासन किया।

क्योंकि डिमिट्रियस तथा युक्रेटाइडस के वंशज लगभग तीस हिन्द यूनानी शासकों ने कुल मिलाकर दो शताब्दियों से भी कम समय तक शासन किया इसलिए यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः इनमें से कुछ शासकों ने यवन साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों से साथ-साथ शासन किया तथा इस तरह वे एक दूसरे के समकालीन रहे। इस प्रकार भारत में यवन शासन काल के विषय में पुराणों में दी गई तिथियाँ ठीक प्रतीत होती हैं।

**मिनाण्डर** :- अपोलोडोटस के द्वारा दिए गए सन्दर्भों के आधार पर स्ट्रैबों ने मिनाण्डर तथा डिमिट्रियस को महानतम हिन्द-यूनानी शासक माना है। पेरिप्लस (लगभग 70-80 ई.) के अज्ञात लेखक ने भी यह माना है कि सिकन्दर के पश्चात् अपोलोडोटस तथा मिनाण्डर के समय में भी बरीगाजा (भड़ोच) के अभिलेखों पर यूनानी चिन्ह तथा यूनानी सिक्के (द्रवम) प्रचलित थे। भड़ोच का क्षेत्र सम्भवतः डिमिट्रियस, अपोलोडोटस तथा मिनाण्डर के समय में यूनानी साम्राज्य का हिस्सा था। जस्टिन की अप्राप्य चवालीसवीं पुस्तक में भी अपोलोडोटस तथा मिनाण्डर का वर्णन भारतीय राजाओं के रूप में हुआ है। प्लुटार्क के अनुसार मिनाण्डर अपनी न्यायप्रियता के लिए जाना जाता था तथा वह अपनी जनता के बीच इतना लोकप्रिय था कि जब एक सैनिक कैम्प में उसकी मृत्यु हुई तो विभिन्न नगरों के लोगों ने उसकी अस्थियों के अधिकार को लेकर होड़ लग गई। यह बड़ी विचित्र बात है कि भारत के सभी यूनानी शासकों में एकमात्र मिनाण्डर को ही भारतीय बौद्ध परंपराओं में एक विद्वान तथा बौद्ध अनुयायी के रूप में विशिष्ट स्थान मिला है। उसकी पहचान राजा मिलिन्द से की गई है जो कि प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ **मिलिन्द-पान्हो** (मिलिन्द के प्रश्न) में बौद्ध भिक्षु नागसेन के साथ दूसरा प्रमुख पात्र है। इस पुस्तक की रचना बौद्ध भिक्षु नागसेन तथा राजा मिलिन्द के बीच संवाद पर आधारित है तथा इसमें इस भिक्षु को राजा मिलिन्द द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किये गए समस्त प्रश्नों तथा संदेहों का सुगमतापूर्वक हल करते हुए तथा अंततः इसके परिणामस्वरूप राजा को बौद्ध अनुयायी बनते हुए दिखाया गया है। क्षेमेन्द्र कृत **अवदानकल्पलता** में इस राजा के नाम का भारतीय रूप मिलिन्द्र दिया गया है जबकि शिन्काट अभिलेख में उसका उल्लेख मिनाद्रा के रूप में हुआ है जो कि उसके सिक्कों से प्राप्त सही नाम मिनाण्डर के काफी निकट है। **मिलिन्द-पान्हों** के अनुसार मिनाण्डर का जन्म अलसन्दा के दोआब अथवा द्वीप (काबुल के निकट अलेक्जेंडरिया) के एक गाँव कलसी-ग्राम में हुआ तथा उसने शाकल (पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त में स्थित सियालकोट) को अपनी राजधानी बनाया। ऐसा कहा जाता है कि मिनाण्डर ने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया तथा इस संसार से निर्वासित हो बौद्ध भिक्षु तथा बाद में अर्हत के रूप में जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। हिन्द-चीन परम्पराओं में उसे हिन्द-चीन में स्थित प्रसिद्ध बौद्ध प्रतिमा से सम्बद्ध बताया गया है। हालांकि ऐसी अनुश्रुतियों को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता, फिर भी इस संदर्भ में यह बहुत रुचिकर है कि एक विदेशी राजा ने भारतीय मस्तिष्क को प्रभावित किया।

साधारणतया मिनाण्डर का शासनकाल दूसरी शताब्दी ई. पू. का मध्य माना जाता है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इसके कुछ

बाद, सम्भवतः 115-90 ई. पू. के दौरान शासन किया। कुछ विद्वानों ने अपोलोडोरस के अपुष्ट उद्धरण के आधार पर यह मत प्रस्तुत किया है कि मिनाण्डर की वह यवन शासक था जिसने पुष्यमित्र शुंग के समकालीन महाभाष्य के लेखक पातांजलि के जीवनकाल में साकेत तथा मध्यमिका पर आक्रमण किया था। परन्तु उन्होंने गार्गी-संहिता में वर्णित उस तथ्य का बिल्कुल अनदेखा कर दिया है जिसमें यह कहा गया है कि मध्य देश तथा पूर्वी भारत पर यूनानी आक्रमण परवर्ती मौर्य शासक शालिशूक के राज्यकाल के एकदम बाद तथा पुष्यमित्र के शासनकाल से पहले, संभवतः 187 ई. पू. में हुआ था। क्योंकि विद्वानों का इस विषय में मतैक्य है कि मिनाण्डर का राज्यकाल डिमेट्रियस की मृत्यु, जो की लगभग 165 ई. पू. में हुई थी, के बाद ही आरम्भ हुआ, इसलिए हम यह मान सकते हैं कि अधिक से अधिक वह पुष्यमित्र के शासन काल के बाद के वर्षों में ही उनका समकालीन था तथा निश्चित तौर पर वह यवन शासक नहीं था जिसने दूसरी शताब्दी ई. पू. में मध्य देश तथा पूर्वी भारत पर आक्रमण किया था। हालांकि यह सुझाया गया है कि पुष्यमित्र ने यवनों से दो बार (पहली बार डिमेट्रियस से तथा दूसरी बार अपने अपने शासनकाल के अंतिम समय में मिनाण्डर से) युद्ध किये। परन्तु अन्य भारतीय परम्पराओं के अनुसार मिनाण्डर ने पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल के बाद ही शासन किया।

कुछ अन्य लेखकों में पाये गये कुछ चौरस सिक्कों के आधार पर यह मत प्रस्तुत किया है कि यूक्रेटाईडस के शासन काल के अन्तम वर्षों में मिनाण्डर उसका समकालीन था क्योंकि दोनों के ही प्राप्त सिक्के चौरस होते हुए न केवल एक दूसरे से मिलते मिलते थे अपितु वे एक ही क्षेत्र से जारी किये गए थे। परन्तु क्योंकि मिनाण्डर ने डिमेट्रियस के एक दम बाद के उत्तराधिकारियों अपोलोडोरस, अगथोक्लीज तथा एन्टीमाकस जिन्होंने यूक्रेटाईडस से युद्ध किये थे, के पश्चात ही शासन सभाला था इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि वह यूक्रेटाईडस का समकालीन था अथवा उसने दूसरी शताब्दी ई. पू. के मध्य से पहले शासन किया हो। संभवतः मिनाण्डर के शासनकाल का आरम्भ तब हुआ जब यवन शासक बैक्ट्रिया, द्रंगिअना तथा आरकोसिया के कुछ प्रदेशों को तार चुक थे मिनाण्डर के साम्राज्य की विशालता का अनुमान उसके द्वारा बहुत अधिक मात्रा में जारी किये गए सिक्कों तथा इन सिक्कों के विभिन्न दूरस्थ क्षेत्रों में प्रसार से लगाया जा सकता है। ये सिक्के केवल काबुल घाटी तथा सिन्धु घाटी से ही नहीं प्राप्त हुए हैं अपितु उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों से भी मिले हैं। प्रथम शताब्दी ई. में उसके सिक्के काठियावाड़ में भी प्रचलित थे। अपोलोडोरस के अनुसार मिनाण्डर हैफनिस (ब्यास) नदी को पार कर इसेमस (प्राकृत इच्छुमई अथवा संस्कृत इक्षुमती के समतुल्य - जो कि पांचाल प्रदेश की एक प्राचीन नदी थी जिसकी तुलना रुहेलखण्ड, कुमायूँ तथा कन्नौज क्षेत्र से प्रवाहित होती आधुनिक कालीनदी से की जाती है) तक जा पहुँचा। शिन्कोट में पकी मिट्टी के बक्स से प्राप्त दो खरोष्ठी लिपि में लिखे अभिलेखों में से पहला, जो कि मिनाण्डर के राज्यकाल का उल्लेख करता है, वह पजकोरा तथा स्वात नदियों के संगम से बीस मील पश्चिम में स्थित बजोर जनजातियों प्रदेश में खोज निकाली गई है। ऐसा कहा जाता है कि वियकमित्र नामक एक राजकुमार (जो कि सम्भवतः मिनाण्डर का एक सामन्त था) ने सर्वप्रथम उपासना हेतु शाक्यमुनि बुद्ध के अस्थि अवशेषों को इस बक्से में स्थापित किया था। इसके पश्चात इस बक्से के विजमित्र, जो कि कदाचित वियकमित्र का पुत्र अथवा पौत्र था, ने जारी रखा। अतएव शिन्कोट अभिलेख की खोज से आ इंगित करता है कि पेशावर तथा ऊपरी काबुल घाटी के क्षेत्रों पर मिनाण्डर का अधिकार था। इस प्रकार यह पता चलता है कि इस काल में यवन साम्राज्य अफगानिस्तान के मध्य भाग, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, पंजाव, सिन्धु राजपुताना काठियावाड़ तथा सम्भवतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ था।

एण्डिएलकिडास :- मिनाण्डर के अतिरिक्त एक अन्य हिन्द-यूनानी शासक के नाम का उल्लेख भी बेसनगर से प्राप्त एक अभिलेख में हुआ है। इस अभिलेख में तक्षशिला के एक यवन राजदूत हलियोडोरस, जिसने की भागवत (विष्णु अथवा वासुदेव का) शासक की उपाधि धारण की हुई थी तथा जो मौर्य राजा कौतसी पुत्र भागमद्र की राजदरबार में उसके शासन काल के चौदहवें वर्ष में यूनानी राजा एण्डिएलकिडास के राजदूत के रूप में आया था, द्वारा बेसनगर (विदिशा) में भगवान वासुदेव के सम्मान में निर्मित गरुड-ध्वज स्तम्भ का उल्लेख है। साधारणतया ऐसा माना जाता है कि हिन्द-यूनानी शासक एण्डिएलकिडास ने तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया था तथा वहाँ स्थायी रूप से अपने राजदूत की नियुक्ति की थी। साथ ही यह भी धारणा है कि वह यूक्रेटाईडस का पौत्र था तथा उसके एक उत्तराधिकारी के रूप में कपीश क्षेत्र से शासन करता था। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि हिन्द-यूनानी शासकों की यूक्रेटाईड शाखा के राजकुमारों के साम्राज्य में कपीश, पुष्पकलावती तथा तक्षशिला के प्रदेश आते थे।

सिक्कों के आधार पर एण्डिएलकिडास के सम्बन्ध यूक्रेटाईडस के पुत्र हेलोक्लीज से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। कुछ विद्वान यह अनुमान लगाते हैं कि एण्डिएलकिडास हलियोक्लीज (हेलोक्लीज) का पुत्र तथा यूक्रेटाईडस का पौत्र था। परन्तु तक्षशिला से मिले कुछ सिक्कों के आधार पर अन्य विद्वान लीसियस को एण्डिएलकिडास का पिता बताया है। लीडियस का शासनकाल हलियोक्लीज तथा एण्डिएलकिडास के राज्यकाल के बीच में पड़ता है।

उपरोक्त वर्णन से हमें यह पता चलता है कि भागमद्र के शासन काल के 14 वें वर्ष में यूनानी राजा एण्डिएलकिडास का राजदूत



उसके दरबार में आया यह तिथि लगभग 113 ई. पू. पड़ती है तथा यह प्रमाणित करती है कि इस समय हिन्द-यूनानी राजा एण्टिएलकिडास शासन कर रहा था। अतः इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं लगती कि जब यूथेडमस शाखा के शासक मिनाण्डर ने तक्षशिला तथा पुष्पाकलावती के क्षेत्रों में यूक्रेटाइड शाखा के राजाओं को हरा दिया तो उसकी शक्ति को सीमित करने के लिए एण्टिएलकिडास ने इस भारतीय राजा (भागभद्र) की सहायता ली।

### भारत में यवन शासन का अंत :-

कुछ यवन शासकों की जानकारी हमें केवल उनके सिक्कों से ही मिलती है। ये सम्भवतः यूथेडमस तथा डिमेट्रियस के वंशज थे। इनमें से कुछ सिक्के एक रानी अगथोक्लिया द्वारा जारी किये गए थे जो कि संयुक्त रूप से एक कनिष्ठ राजा स्ट्रेटों के साथ मिलकर चलाये गये थे। विद्वानों का मत है कि ये सिक्के रानी ने तब प्रचलित करवाये थे जब स्ट्रेटो अल्पवयस्क था तथा वह उसकी संरक्षिका के रूप में शासन कर रही थी। इसके पश्चात स्ट्रेटों (प्रचलित नाम सोटर), जो कि सम्भवतः अगथोक्लिया का पुत्र था, ने एंकाकी रूप से शासन करना आरम्भ किया तथा अपने स्वतन्त्र सिक्के जारी किये। परन्तु अपने शासन काल के अंतिम समय में स्ट्रेटो-सोटर ने भी अपने आधीन के कनिष्ठ राजा स्ट्रेटो फिलोपेटर, जो कि उसका पौत्र था, के साथ मिलकर संयुक्त रूप से शासन चलाया। इन नामों तथा सिक्कों की समानता के आधार पर ही विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि स्ट्रेटो I की माता अगथोक्लिया राजा अगथोक्लीज की पुत्री तथा राजा मिनाण्डर की पत्नी थी।

मिनाण्डर की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी शासक सम्भवतः गान्धार तथा अफगानिस्तान के क्षेत्रों पर अधिकार नहीं रख सके। ऐसा प्रतीत होता है कि अगथोक्लिया तथा स्ट्रेटो प्रथम (सोटर) ने केवल पंजाब के पूर्वी भागों पर शासन किया। सिक्कों से प्राप्त इस जानकारी के आधार पर कि स्ट्रेटो ने एक अल्पवयस्क के रूप में शासन आरम्भ किया था तथा वृद्धावस्था तक शासन करता रहा, यह अनुमान लगाया गया है कि उसका राज्यकाल पचास वर्ष से भी अधिक था। इस प्रकार स्ट्रेटो प्रथम के शासन काल का अन्त लगभग 30 ई. पू. के आस पास हुआ। यूनानियों की यूथेडमियन शाखा के बाद के राजकुमार जैसे कि डायोनिसियस, लोइलस, अपोलोफेन्स, हिपोस्ट्रैटस तथा अपोलोडोटस (द्वितीय अथवा तृतीय) का शासनकाल प्रथम शताब्दी ई. पू. का उत्तरार्द्ध माना जाता है तथा हिपोस्ट्रैटस एवं अपोलोडोटस को स्ट्रेटो प्रथम का उत्तराधिकारी माना जाता है।

अपने शासन काल के बाद के वर्षों में स्ट्रेटो प्रथम के सिक्कों का भंगित होना तथा उसके द्वारा स्ट्रेटो द्वितीय के साथ मिल कर संयुक्त रूप से सिक्के जारी करना यह दर्शाता है कि हिन्द यूनानियों की यूथेडमस शाखा का पराभव इस काल में आरम्भ हो गया था। इनके कुछ सिक्कों को सीथियन जाति के शक क्षत्रपों तथा कुछ भारतीय राजाओं ने बाद के समय में ज्यों का त्यों अपनाया। एक यवन शासक जिसका नाम सन्देहास्पद है तथा खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख के अनुसार जिसका नाम दिमित बताया गया है, सम्भवतः प्रथम शताब्दी ई. पू. अन्तिम समय में शासन करता था। इसी अभिलेख के अनुसार उसका साम्राज्य मथुरा तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों में फैला हुआ था। यह निश्चित नहीं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम शताब्दी ई. पू. से पहले ही इस प्रदेश को पूर्वी ईरान से आए शक शासकों ने अपने अधिकार में ले लिया था। गान्धार तथा अफगानिस्तान इस समय हिन्द यवनों की यूक्रेटाइड शाखा के राजकुमारों के हाथ में थे। इन राजकुमारों को निम्न सिन्धु घाटी से आए शक शासक मऊज (20 ई. पू. - 22 ई.) ने प्रथम शताब्दी ई. के आरम्भिक समय में तक्षशिला तथा पुष्पाकलावती क्षेत्रों से खदेड़ दिया।

हिन्द यवनों की एक अन्य यूक्रेटाइड शाखा के दो शासकों अमेण्टस तथा हरमियस ने माफिरिस्तान तथा काबुल क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि हरमियस, जिसका शासन काल प्रथम शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है, काबुल घाटी में अन्तिम यवन शासक था तथा उसके पश्चात यह क्षेत्र पार्थियनों तथा बाद में कुशाणों के हाथ में चला गया।

निम्न सिन्धु प्रदेश में पार्थियन शक्ति का प्रसार दूसरी शताब्दी ई. पू. के मध्य के लगभग उनके शासक मिथाडेटीस के शासन काल में हुआ। इसके लगभग एक शताब्दी पश्चात पूर्वी ईरान (द्रंगियाना अथवा शईस्तान देश), जिस पर मूलतः पार्थियन शासकों के वायसरायों का अधिकार था, एक स्वतन्त्र साम्राज्य बन गया। आरकोशिया (दक्षिणी अफगानिस्तान का कन्धार प्रदेश) इस नए साम्राज्य का एक प्रान्त था और हरमियस के काल से बहुत पहले सम्भवतः मिथाडेटीज के शासन काल में ही यह यूनानी हाथों से निकल कर पार्थियनों के पास आ गया था। बाद के पार्थियन शासक गोनोफरनीज (21-50 ई.) जो मूलतः आरकोशिया का शासक था, ने काबुल घाटी में यवन राज्य का अन्त कर दिया। परन्तु इस घटना के कुछ ही पश्चात प्रथम शताब्दी ई. के मध्य के लगभग स्वयं पार्थियन शासक कुशाणों के हाथों हार गए।

हमने उपरोक्त पृष्ठों में बैक्ट्रिया, उत्तरपश्चिमी भारत तथा अफगानिस्तान में स्थापित हिन्दयवन राज्य के क्रमिक पतन के देखा है। परन्तु सीथो-पार्थियन तथा कुषाण शक्ति के भारत में स्थाई हो जाने के पश्चात भी यवनों का भारतीय राजनीति से सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ। ऐसे प्रमाण मिले हैं कि भारत के नए शासकों ने सहर्ष यवन अधिकारियों को अपनी सेवा में रखा। इसके साथ ही जिन यवन सरदारों ने सीथो-पार्थियन तथा कुषाण आधिपत्य को स्वीकार कर लिया उन्हें इन शासकों ने अपनी स्वतन्त्र बस्तियां बसाने का अधिकार दे दिया। सातवाहन शासक गौतमी पुत्र शातकर्णी के अभिलेखों से यह प्रमाण मिलते हैं कि उसने शक, पहलाव तथा यवन शासकों के साथ संघर्ष किया। सम्भवतः इस समय यवन काठियावाड़ तथा मालवा प्रदेशों में रहते थे तथा यही क्षेत्र गौतमी पुत्र शातकर्णी के साम्राज्य का उत्तरी छोर भी थे। कालीदास जिसका जीवन काल चौथी-पांचवी शताब्दी ई. माना जाता है ने भी रघुवंश में इन यवन बस्तियों का उल्लेख किया है। उसने रघु की दिग्विजय का वर्णन करते हुए अपरान्त (उत्तरी कोंकण) तथा पारसिका (पर्शिया अथवा ईरान) को यवनों की भूमि माना है। तीसरी शताब्दी ई. के उत्तरार्ध में नागार्जुन कोण्डा से प्राप्त एक अभिलेख में भी यवन राज्य का उल्लेख मिलता है जहां कुछ श्री लंकाई भिक्षुणियां देशाटन हेतु आई थी।



## शक

ईसा के पूर्व द्वितीय शताब्दी में बैक्ट्रिया पर युनानियों का राज्य समाप्त हो गया तथा इनका स्थान मध्य एशिया से आने वाले कबिलाई लोगों ने ले लिया। इन लोगों के इतिहास को जानने के साधनों में प्रमुखतः चीनी साक्ष्य है। इनका सर्वप्रथम पता हमें सी-या-सियान के ग्रन्थ शी-की में चांग-कियान की रिपोर्ट के आधार पर मिलता है जो कि 99 ई०पूर्व लिखी गई। इसके बाद के दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं सीन-हान-शु या प्रथम हान राजवंश का इतिहास या दूसरी हाऊ-हान-शु या बाद के हान राजवंश का इतिहास। सीन-हान-शु 24 ई०पूर्व में पान-कु द्वारा तैयार की गई पिसे उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी बहन पान-चा ने पूर्ण किया। इस पुस्तक में मध्य एशिया तथा चीन का इतिहास 202-100 ई०पूर्व के मध्य का दिया गया है जबकि हाऊ-हान-शु में 25 ई०पूर्व से 220 ई०पूर्व तक का इतिहास है।

इन चीनी ग्रन्थों के अनुसार चीन मंगोलिया सीमा या कशगरिया के उत्तर-पूर्व तथा पूर्वी क्षेत्र में एक कबिलाई लोग रहते थे। इनके पड़ोस में एक अन्य जाति हुंग-सु थी। इन्होंने अपने पड़ोस के अन्य कबीले यु-ची राजा मारा गया तथा पूरा कबीला तहस-नहरा हो गया। इनका एक भाग पश्चिम की ओर चला गया जिन्हे ता-यु-ची कहा जाता है दूसरा दक्षिण की ओर बढ़ा। इन्हे साओ-यु-टी (छोटे युची) कहा गया। ता-यु-ची लोगों ने पश्चिमी की ओर बढ़ते हुए अपने क्षेत्र से लगे वू-सुन लोगों के क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। वू-सुन राजा मारा गया तथा इनके राजकुमार ने हुंग-सु (Hunuish) के यहाँ शरण ली जब यह राजकुमार व्यस्क हो गया तो उसने इन हुंग लोगों की सहायता से यु-ची कबीले को हरा अपना राज्य पुनः प्राप्त किया। इस तरह यु-ची कबीले को पुनः पश्चिम की ओर नए प्रदेशों की खोज में जाना पड़ा। चीनी साक्ष्यों के अनुसार वहाँ उन्होंने एक अन्य जाति सई (Sai) या शको (Sakos) को हराया। हार के बाद शक जाति को दक्षिण की ओर जाना पड़ा तथा उन्होंने की-पिन (Ki-pin) पर अधिकार कर लिया परन्तु इन शकों के कई भाग हो गए तथा इन्होंने कई राज्य स्थापित किए। इनकी एक शाखा की-पिन (Ki-pin) थी जो कपिशा हारते हुई भारत में प्रविष्ट कर गई। दूसरी चीन की ओर बढ़ी तथा इनके बार-बार आक्रमणों के कारण चीनी राजाओं ने चीन की प्रसिद्ध दीवार बनवाई। इनकी ऐ शाखा पश्चिम की ओर के पार्थियन राजा फ्राटेज द्वितीय (Phraates-II) ई०पूर्व 138-28 इनके साथ युद्ध में मारा गया। इसके उत्तराधिकारी आटीबनुस द्वितीय (128-3 ई०पूर्व) Artabanus-II ने इन शकों से समझौता कर लिया परन्तु इन शकों की मार्गों से तंग आ उसने शस्त्र उठाए परन्तु युद्ध में मारा गया। 123 ई०पूर्व में मिथरिडेस द्वितीय (Mithridates-II) पार्थियनों का राजा बना जिसके कारण शकों को भारत की ओर मुख करना पड़ा। भारत में बोलन दर्रे के रास्ते सिन्धु क्षेत्र तक पहुँच गए इन्हे भारत में हिन्दू सीथियन (Indo-Scythian) कहा जाता है जिनका प्रथम राजा मावेज (Mues) था जिसने सर्वप्रथम तक्षशिला में अपना राज्य स्थापित किया। उसे तथा उसके उत्तराधिकारियों को तक्षशिला के शक कहा जाता है।

### भारतीय साक्ष्य :-

चीनी साक्ष्यों के अतिरिक्त अनेक भारतीय ग्रन्थों में भी शकों का वर्णन है। रामायण तथा महाभारत में शका का वर्णन के समय वर्णन है। पंतजलि तथा काव्यायन ने भी अपने ग्रन्थों में शक जाति का उल्लेख किया है। मनु ने भी शक संदर्भ दिया है। पुराणों के ऐतिहासिक भाग में भी शक तथा मुरुण्ड (Murunda) लोगों का वर्णन किया है उनके अनुसार जब आन्द्र वंश का अग हागा ना राज्य उनके भृत्यों (नौकरों) को चला जाएगय। इनमें 10 आभीर (Abhira) राजे 7 गर्दभीन (Gardabhin), 18 शक के अतिरिक्त 8 यवन 14 तुषार, 13 मुरुण्ड तथा 11 हुण राजे होंगे। मार्गी संहिता में भी यवन आक्रमण के पश्चात् शकों के आक्रमण और मथुरा क्षेत्र पर उनके अधिपत्य का वर्णन है। देवी चन्द्रगुप्तम, हर्षचरित तथा काव्यमीमांसा नामक संस्कृति ग्रन्थों के अतिरिक्त नान प्राकृत ग्रन्थ कालकाचार्य कथानक में भी शक नरेशों (शाहि) का वर्णन है। जिन सेन के हरिवंश ने भी इनका जिकर किया है। बौद्ध साक्ष्यों में मलिंदपञ्चो में शक-जाति का उल्लेख है। समन्तपासादिका में शक नरेश रूद्रादामन का उल्लेख है। हेरोडोटस, स्ट्रुबा, जॉर्जिन, मेरियस के लेखक, टालमी इत्यादि ने भी शकों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त शकों के भारत में अभिलेख तथा मुद्राएँ मिलती हैं जो कि इनके इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण हैं। तक्षशिला में सर जॉन मार्शल के उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं से पता चलता है कि शकों का सर्वप्रथम शक राजा मावेज था। इसकी मुद्राओं पर पार्थियन प्रभाव मिलता है जिससे पता चलता है कि ये पार्थियाई आगमन के सम्पर्क में आए। डॉ० अल्लेकर का मत है कि मावेज प्रारम्भ में पार्थिया के अधीन राजा था क्योंकि इसके सिक्के पार्थियनों से मिलते हैं तथा केवल राजा की उपाधि उसने धारण की। संभवतः मिथरिडेस द्वितीय (Mithridates-II) के पश्चात् तब पार्थियाई साम्राज्य कमजोर हो गया तो इसने स्वतन्त्रता घोषित कर दी।

### मावेज की तिथि :-

मावेज की तिथि के संदर्भ में विद्वानों में काफी मतभेद है। इसे जानने के लिए हमारे पास मुद्राशास्त्र के साक्ष्य तो हैं ही साथ ही तक्षशिला के ताम्बे की पट्टी (Taxila Copper Plate) पर लिखा अभिलेख है जो वर्ष 78 की है। इसमें एक महान राजा मोग (मावेज) का वर्णन है। इसके अनुसार क्षत्रप लियाक कु सुलक और उसके अधीन उसका पुत्र महादानपति पतिक इत्यादि मोग के आधीन थे। एक अन्य मानसेरा अभिलेख में भी लियाक का नाम मिलता है। हेमचन्द्रराय चौधरी के अनुसार तक्षशिला ताम्रपत्र तथा मानसेरा अभिलेख में वर्णित लियाक ही एक व्यक्ति है। तक्षशिला ताम्रपत्र (वर्ष 78) तथा मानसेरा अभिलेख (वर्ष 68) के अनुसार मावेज का साम्राज्य काफी विशाल था जिसमें की-पिन का क्षेत्र था जो कि 32 ई०पूर्व के बाद ही उसका राज्य इस क्षेत्र पर हुआ हो। इस समय विक्रमी सम्वत् का प्रारम्भ हो चुका था तथा घिर्षमैन (Ghirshman) नामक विद्वान के अनुसार सभी भारतीय प्राचीन रिकार्डों में इसका प्रयोग हुआ है। यदि हम तक्षशिला ताम्रपत्र की तिथि विक्रमी सम्वत् की माने तो मावेज की तिथि (78-58) 20 ई०पूर्व आंकी जा सकती है। इसके अनुसार मावेज का राज्य काल 30 ई०पूर्व तक रहा। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान विक्रम सम्वत् को ऐजिज (Azes-I) प्रथम द्वारा संस्थापित किया मानते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। पातिक के अभिलेख से पता चलता है कि वह महाक्षत्रप से पहले अपने पिता के आधीन महादानपति तथा वह 20 ई०पूर्व में राजा बना।

### राज्य विस्तार :-

मावेज ने न केवल अपने स्वामी पूर्वी इरान को महान राजाओं के राजा से सम्बन्ध विच्छेद कर स्वतन्त्र हो गया बल्कि अपना राज्य उत्तर-पश्चिमी भारत में फैलाकर राजाओं के राजा महान की उपाधि धारण की। इसके प्रारम्भिक सिक्कों पर बैसिलियस माओस (Basileos Mauou) यूनानी भाषा में लिखा मिलता है परन्तु इसके बाद के सिक्कों पर यूनानी भाषा में बैसिलियस, बैसिलियोन, मैगालस माओस (Basileos, Basileon, Megalou Mauou) तथा स्रोष्टी में रजदिरजस महतस माओस मिलता है जो इस बात का द्योतक है। दूसरे इसके सिक्कों यूनानी सिक्कों से भी मिलते जुलते हैं। मावेज द्वारा गांधार तक्षशिला क्षेत्र का अधिपत्य वर्ष 78 की तक्षशिला ताम्रपत्र से लगता है जिसमें उसके अधीन राजा (क्षत्रप) लियाक का उल्लेख है जो मावेज के आधीन चुक्श आधुनिक तक्षशिला पर राज्य करता था। उसने तथा उसके पुत्र पतिक ने तक्षशिला में बुद्ध के अवशेषों को स्थापित करवाया है। इसके अतिरिक्त मानसेरा अभिलेख में भी क्षत्रप लियाक कुसुलक का उल्लेख है। यह भी मावेज के आधीन शासन कर रहा था। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि कश्मीर का क्षेत्र भी इसके राज्य में था। पंजाब मथुरा का क्षेत्र संभवतः इसके उत्तराधिकारियों ने विजित किया होगा परन्तु मथुरा के सिंह शीर्ष पर लिखे लेख को स्टेन कोनो नामक विद्वान ने मुके पढा है जिसका समाकरण उन्होंने मोग या मावेज से किया है परन्तु दोनों का पाठ गलत लगता है।

### राज्य प्रबन्ध :-

मावेज ने एक बड़ा साम्राज्य स्थापित लिया था तथा उसका प्रशासन बड़ी सूझबूझ से कर रहा था। अधीनस्थ राज्यों का संचालन करने के लिए उसने अपने क्षत्रप नियुक्त कर रखे थे जिनके अभिलेखों से हमें उनके द्वारा संचालित क्षेत्रों का भी पता चलता है। तक्षशिला ताम्रपत्र से क्षत्रप लियाक कुसुलक तथा मथुरा सिंह शीर्ष पतिक का पता चलता है।

### एजिज प्रथम (Azes-I) 5 से 30 ई०पूर्व :-

मुद्राशास्त्र के साक्ष्यों से पता चलता है कि तक्षशिला क्षेत्र में मावेज के पश्चात् एजिज प्रथम राजा बना। यह वही व्यक्ति था जो स्पैरिडिसिस (Spalirises) का साथी था तथा दक्षिणी अफगाननिस्तान पर राज्य कर रहा था। एजिज किस वंश से था इस बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विख्यात इसे पहलव (पार्थियन) मानते हैं जैसे स्टेन कोनो परन्तु अधिकतर विद्वान इसे शक ही मानते हैं। इनमें रैप्सन (Rapson), टार्न (Tarn), गार्डनर, मार्शल, रायचौधरी इत्यादि हैं। वह स्पैलिराइसिस के साथ उपराजा के रूप में राज्य कर रहा था क्योंकि सिक्कों पर महाराजा तथा उपराजा, राजा के नाम के कारण इसमें कोई सम्बन्धो का वर्णन नहीं होता। अतः हमें यह नहीं पता चलता कि इन दोनों का सम्बन्ध क्या था। कुछ विद्वान इस आधार पर ही एजिज को स्पैलिराइसिस का पुत्र मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वह मावेज का पुत्र था तथा स्पैरिडिसिस का दामाद था परन्तु यह स्पष्ट है कि उसने मावेज के पश्चात् राज्य किया तथा वह मावेज का ही पुत्र या दामाद तथा उत्तराधिकारी था।

एजिज ने हिन्द यूनानी राजाओं अपोलोडोटस द्वितीय (Appolodotus-II) तथा हिप्पोस्ट्रटस (Hippostratus) की मुद्राओं का पुनः निर्माण (Restruck) कर इनके कुछ चिन्हों (Monograms) को भी अपनाया। स्तरविन्यास के आधार पर हमें उत्खनन से अलग-अलग सतहों में एजिज के सिक्कों मिलते हैं जो इनके अलग-अलग काल के द्योतक हैं। दूसरे कुछ मुद्राएं पार्थियन (Parthian) राजा गोण्डोफर्नेज (Gondopharnes) की मुद्राओं के साथ मिलती हैं। इससे इस एजिज (Azes) का पार्थियन राजा के समीप के काल में राज्य होना सिद्ध होता है। मुद्राओं पर एक प्रकार के सिक्के पर घोड़े पर सवार राजा के हाथ में भाला तथा दूसरे के हाथ में



तरह क्षत्रप पतिर का वर्णन भी हमें मिलता है। मथुरा में भी राज्य प्रबन्धन के लिए खत्रप नियुक्त किए गए थे। जिनमें एक नाम मेरकी हिथिक का सदा हमें मथुरा सिंह शीर्ष (Matura lion capital) से मिलता है। कुछ विद्वानों जैसे मार्शल का मत है कि मथुरा में खत्रप नियुक्त करना काफी महत्वपूर्ण था ताकि सातवाहनों का ध्यान रखा जा सके जो इस समय तक मालव क्षेत्र पर अधिपत्य कर चुके थे।

### हगान तथा हगामस :-

सिक्कों के अधार पर पता चलता है कि मथुरा क्षेत्र के प्रारम्भिक खत्रप हगान तथा हगामस थे। इनमें से कौन पहले हुआ इसका अधिक प्रमाण हमें नहीं है। संभवतः हगान पहले खत्रप हुआ। एक विचार यह भी है कि ये दोनों संयुक्त रूप से इस क्षेत्र के खत्रप के रूप में शासन कर रहे थे। इनके सिक्के प्रकार तथा बनावट के आधार पर पाँचाल के सिक्कों तथा मथुरा के अन्य राजकुमारों जैसे गोमित्र तथा रामदत्त से मिलते-जुलते हैं। इन्हीं के बाद हगान तथा हगामस ने अपना शासन मथुरा में प्रारम्भ किया।

### राजुबुल --

हगान तथा हगामस के पश्चात् हमें मुद्राशास्त्र के आधार पर मथुरा पर राजुबुल के अधिपत्य का पता चलता है। इसके सिक्के हिन्द युनानी राजाओं स्ट्रटो-I तथा द्वितीय (Strato-I & II) से बिल्कुल मिलते हैं तथा इन पर बैसीलियस, बैसीलियोन युनानी लिपि में तथा पृष्ठ पर खत्रप तथा अप्रतिचक्र लिखा है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रारम्भ में इसने पूर्वी पंजाब में शासन किया तथा बाद में मथुरा का महाक्षत्रप बन बैठा। इसके छोटे ताम्बे के सिक्के तो पूर्वी पंजाब में मिलते हैं तथा मथुरा के आसपास अन्य प्रकार के सिक्के मिलते हैं जिनमें शुद्ध भारतीय प्रकार के सिक्के हैं जिन पर महाक्षत्रप रणुबुलास लिखा है। स्टेन कोनो का विचार है कि मथुरा सिंह शीर्ष अभिलेख के प्रथम भाग में युवराज खरोष्ट (Kharosta) का नाम है जो राजुबुल का श्वसुर था जो मावेज के बाद स्वतन्त्र हो गया तथा राजाराज (King of King) की उपाधि धारण थी परन्तु रामस नामक विद्वान का मत है कि खरोष्ट राजुबुल का पुत्र था जबकि क्लौट उसे राजुबुल की पुत्री का पुत्र मानते हैं। मथुरा अभिलेख में हमें राजुबुल की महाक्षत्रप में पहचान है। टॉमस के अनुसार राजुबुल के राज काल में कुछ समय खत्रप रहने के बाद उसकी मृत्यु राजुबुल के जीवन काल में ही हो गई तथा उसके बाद सोडास खत्रप बना।

### सोडास :-

राजुबुल के पश्चात् मथुरा के क्षेत्र में सोडास महाक्षत्रप बना। मथुरा सिंह शीर्ष अभिलेख में उसे केवल खत्रप कहा गया है जबकि अमोहिनी दानपट्टिका में उसे महाक्षत्रप विरुद्ध दिया गया है। इसका अर्थ है कि वर्ष 72 में (संभवतः 15 A.D.)

वह महाक्षत्रप बन गया। इसी क्षेत्र से हमें बहुत से सिक्के ऐसे भी मिलते हैं जिन पर खत्रपस प्र खरोष्टस अर्तस पुत्रस लिखा मिलता है। इससे पता चलता है कि खरोष्ट का एक पुत्र भी था जो अपने चाचा के साथ खत्रप के रूप में कार्य कर रहा था।

सोडास के सिक्के तथा अभिलेख केवल मथुरा के आसपास से प्राप्त होते हैं जिससे यह पता चलता है कि वह अपने पिता की तरह पूर्वी पंजाब इत्यादि का स्वामी नहीं था। सोडास के पश्चात् उसका पुत्र तरणदास (Taranadasa) या भरणदास (Bharnadasa) महाक्षत्रप बना जिसके सिक्के हमें इस क्षेत्र से मिलते हैं जो कि उस समय मावेज के अधीन आ चुके थे। इसके अतिरिक्त हमें एक अन्य खत्रप घटक का नाम भी मिलता है जो गनेसरा (मथुरा) अभिलेख से ज्ञात है। इसके अतिरिक्त हमें दो अन्य खत्रपों के सिक्के मथुरा क्षेत्र से मिलते हैं जिनके नाम हैं शिवघोष तथा शिवदत्त। जो संभवतः भारतीयकरण हुए शक खत्रप ही थे। प्रथम शताब्दी में वेम कैडफिमस (रबताक Rabatak (Afghanistan) अभिलेख को माना जाए) या कनिष्क ने मथुरा के इन शकों को हरा कर इस क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया।



## पहलव (पार्थियन या हिन्द पार्थियन)

प्रारम्भिक पहलव या पार्थियन राज्यवंश तथा राजाओं के बारे में ठीक-2 रूप से नहीं कहा जा सकता। शकों तथा पहलवों के इतिहास इस काल में इतना आसपास में मिलजुल चुका है कि यह कह पाना भी कठिन है कि कौन शक है तथा कौन पहलव। इस कारण कई विद्वान शक-पहलव संयुक्त रूप से भी प्रयोग करते हैं। शकों के प्रारम्भिक काल के वर्णन के समय हमने देखा कि पश्चिम में जाते हुए शकों को एक शक्तिशाली पार्थियन साम्राज्य ने रोक दिया जहाँ पर उनका राजा मिथ्रडेटस प्रथम (Mithradates-I) पूर्वी इरान से बगदाद तक के क्षेत्र पर राज्य कर रहा था। परन्तु अधिक समय तक इसका राज्य नहीं रह सका क्योंकि शका तथा पार्थियनों के बीच संघर्ष में उनके दो राजा मारे गए। पार्थिया के क्षेत्रों में बाद में कुछ स्वतन्त्र तथा अर्द्धस्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए जो उनके गवर्नरों द्वारा स्थापित किए गए। ये गवर्नर या तो शक थे या शक-पार्थियन मिली जुली नस्ल के थे।

### वोनोनीज (Vonones)

पूर्वी इरान में प्रारम्भिक राजा एक पार्थियन या पहलव था जिसने राजाओं के राजा महान की उपाधि धारण की वह वोनोनीज या पारसी का वानान था वोनोनीज अपने प्रारम्भिक जीवन में द्रंगियाना (Drangiana) का गवर्नर था जो पूर्वी इरान में है। वोनोनीज नाम तो पार्थियन है परन्तु इसके भाईयों के जो कि इसके पिता की शक पत्नी से थे के नाम शक या सीथियाई है। वोनोनीज ने दक्षिणी अफगानिस्तान में अपने क्षेत्रों से साथ उस समय राज्य किया जब पंजाब में मावेज राज्य कर रहा था। पार्थियन राजाओं के सिक्कों के अग्रभाग पर युनानी लिपि में महाराजा का नाम होता है तथा पृष्ठ भाग पर उसके सहयोगी शासक का नाम जो सामान्यतः उसी के परिवार से सम्बन्धित होता था इसके सिक्के युरेटाइडस (Euraitides) वंश के राजाओं के सिक्कों से मिलते हैं। जिन्हें हरा इसने अपना राज्य बढ़ाया होगा। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार इसने इरानी शासक के आधीन 58 ई. पूर्व अपना राज्य प्रारम्भ किया बाद में स्वतन्त्र हो गया तथा 18 ई. पूर्व तक शासन किया।

मुद्राशास्त्र या सिक्के के आधार पर हमें प्रमाण मिलते हैं कि इसने अपने रिश्तेदारों के साथ शासन चलाया इनके नाम स्पलहोरा (Spalahora), स्पलगदम (Spalagadama) तथा स्पलराइसस (Spalarises) हैं। वोनोनीज के सिक्कों पर स्पलहोरा को महाराजभ्राता या महाराज का भाई कहा गया है जबकि स्पलगदम को स्पलहोरा पुत्र कहा गया है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि वोनोनीज का भाई स्पलहोरा उसका गवर्नर था। ऐसा लगता है कि वह वोनोनीज राज्य काल में ही मर गया तथा उसके बाद गवर्नर उसका पुत्र स्पलगदम बना।

### स्पलराइसस (Spalarises)

वोनोनीज के पश्चात् स्पलराइसस सिंहासन पर बैठा। हमें कुछ मुद्राएँ ऐसी मिलती हैं जिन पर स्पलराइसस का राजा का भाई कहा गया है तथा खरोष्ठी में लेख महाराजसभ्राता धर्ममियस सपलराइसस। एक अन्य प्रकार की मुद्राओं पर उसके सिक्के उस महाराज बताते हैं तथा खरोष्ठी लेख भी महाराजस महतकस स्पलिसस है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह वोनोनीज का दूसरा भाई था जो स्पलहोरा के मरने के बाद अपने भाई के आधीन राज्य कर रहा था तथा उसके पश्चात् सम्राट बना। परन्तु कुछ मुद्राएँ जो वोनोनीज ने चलाई थीं को स्पलराइसस ने पुनः अंकित करवाया। सामान्यतः विजित राजा पराजित मुद्राओं को पुनः अंकित करवाता है। इससे कुछ विद्वानों ने यह मत दिया है कि उसने वोनोनीज से राज्य हथियाया था।

### गोडोफर्नीज

शकों के पश्चात् पार्थियनों (Parthians) या पहलवों का सबसे महत्त्वपूर्ण राजा गोडोफर्नीज था जिसे गुदुफरस भी कहा जाता है। पहले पहल वह एक अधीनस्थ राजा था तथा उसने सीस्तान के सम्राट के साथ राज्य किया उसके पश्चात् वह पार्थियन राजा आर्थेग्रीज के साथ शासन करता रहा। इसका प्रमाण कन्धार क्षेत्र से प्राप्त मुद्राओं से है जो पार्थियन प्रकार से ही प्रारम्भिक रूप से गूनी भाषा में अंकित हैं जिन पर आर्थेग्रीज का नाम है तथा पृष्ठ भाग पर खरोष्ठी में गुदुफरस गुदन लिख है। यह राजा दूसरे शक द्वितीय के काल में उनके राज्य में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हुईं जिसका पता हमें एजिज द्वितीय की मुद्राओं से लगता है। शकों के काल में एफ़रसक कम दान्दी की तथा भौंडी बनावट की हो गई। इसका अर्थ यह है कि कन्धार समस्त एक काज्जल के पार्थियन स्थिति भी खराब हो गई संभवतः इस समय पहलव या पार्थियन आक्रमण कर रहे थे। पूर्वी अफ़गानिस्तान का काल के अन्त में

के तक्षशिला पर अधिकार को उन्होंने समाप्त कर दिया। जब टाइना का अपोलोन्यूस (Appolonius of Tyana) तक्षशिला में पहुँचा (43-44 ई. पूर्व) त उस समय वहाँ पर फ्राओटेस राज्य कर रहा था जो पार्थियन था। हरजफेल्ड (Herzfeld) तथा तार्न (Tarn) नामक विद्वान मानते हैं कि वह गोण्डोफर्नेज ही था क्योंकि उनके अनुसार यह शब्द उसके विरुद्ध का युनानी भाषा में अपभ्रंश रूप मानते हैं परन्तु प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार ये दोनों अलग-2 व्यक्ति थे तथा गोंडोफर्नीज ने अपना राजनैतिक जीवन फ्राओटेस (Phraotes) व अधीनस्थ राजा के रूप में प्रारम्भ किया जिसका प्रमाण मुद्राओं में मिलता है।

गोंडोफर्नीज ने एजिज द्वितीय के पश्चात् शासन प्रारम्भ किया क्योंकि एजिज का गवर्नर अस्पवर्मा इसका भी गवर्नर रहा। तख्त-ए-बाही अभिलेख (वर्ष 103) के अनुसार गोंडोफर्नीज 45 ई. में राज्य कर रहा था तथा उसका राज्य जल 19 ई. से प्रारम्भ हुआ। परन्तु हमें एक ही समय में दो पार्थियन राजाओं के प्रमाण मिलते हैं। फ्राओटेस (Phraotes) 44 ई. में राज्य कर रहा था क्योंकि 45 ई. में गोंडोफर्नेज। परन्तु तख्त-ए-बाही (Takht-i-Bahi) अभिलेख से यह स्पष्ट नहीं है कि उसने तक्षशिला को कब जीता सम्भवतः वह उससे राज्य के कई वर्ष बाद उसके अधीन आया जो फ्राओटेस की मृत्यु के बाद होगा।

राज्यविस्तार :- मार्शल का विचार है अपने राज्य की चर्म सीमा में गोंडोफर्नेज का शासन सीस्तान सिन्ध कच्छ, काठियावाड़ दक्षिणी तथा पश्चिमी पंजाब, उत्तरपश्चिमी सीमान्त प्रान्त, दक्षिणी अफगानिस्तान में तो रहा ही साथ ही इस बात के भी प्रमाण हैं कि उसने सीस्तान के पश्चिम का क्षेत्र भी विजित किया।

पेशावर जिले में मिले तख्त-ए-बाही अभिलेख से उसके इस क्षेत्र में अधिपत्य का पता चलता है। पूर्वी इरान पर अधिकार का आधार है उसकी कुछ मुद्राओं का आर्थेगेनीज की मुद्राओं से मिलता जुलता होना पार्थिया के नरेशों के सिक्कों पर गोण्डोफर्नेज के चिन्ह का पाया जाना। जिसके आधार पर रैप्सन इस का अधिकार सीस्तान पर मानते हैं। चीनी यात्री तथा लेखक फान-ये का कथन है कि काबुल प्रदेश पार्थिया के अधीन था। बेग्राम तथा काबुल से इसकी काफी मुद्राओं का पाया जाना इस क्षेत्र में इसके अधिकार को सिद्ध करता है। कुछ विद्वानों का मत है कि युनानी शासक हरमियस ने कुषाण राजा कुजुल कैंडफिसेज (Kujula Kadphises) से पार्थियन राजा गोंडोफर्नेज के विरुद्ध सन्धि की थी। स्टेन कोनो तख्त-ए-बाही अभिलेख में लिखे ऐंरुन कप या कप को कुजुल कैंडफिसिस मानते हैं। जिसके आधार पर कुषाण तथा पार्थियनों के सम्बन्ध ठीक ठाक थे। इसके अतिरिक्त पेरिप्लस सान्डनेज नामक राजकुमार का वर्णन करता जिसके काल में कल्याण एक प्रमुख बाजार था तथा बड़ौच में युनानी जहाज आते थे। इस आधार पर विद्वान कच्छ तथा सुराष्ट्र के क्षेत्र को इसके अधीन मानते हैं।

शासन प्रबन्ध :- पश्चिमी पंजाब, काबुल सीस्तान, बलुचिस्तान पार्थिया के कुछ भाग पश्चिमी भारत के इतने विशाल का प्रशासन करने में उसने अपने गवर्नरों को नियुक्त कर रखा था। अस्पवर्मा जो प्रारम्भ में एजिज द्वितीय का गवर्नर था, को गोंडोफर्नेज ने अपने अधीन भी रहने दिया। जो स्वात घाटी का प्रशासन करता था। इसके बाद वहाँ उसने अपने भतीज सस को नियुक्त किया। तक्षशिला से प्राप्त मुद्राओं पर वहाँ के शासक सपेडनीज तथा सतवस्त्र का नाम मिलता है। पूर्वी इरान में उसका भतीजा एब्दागसिस (Abdagases) गवर्नर था। कुक्ष प्रदेश के गवर्नर का पता उसकी मुद्राओं से लगता है जिन पर जिहोणिकसेस लिखा है। इसके कुछ गवर्नरों ने महाराज राजाराज की उपाधि भी धारण की थी जैसे सपेडनीज तथा सतवस्त्र ने जो शायद अर्द्धस्वतन्त्र शासक के रूप में (Quasi independent) राज्य कर रहे होंगे या किसी प्रकार के अर्द्धसंघीय (loose federation) का प्रचलन रहा होगा।

गोंडोफर्नेज तथा सन्त टामस :- एक्टज आफ जुडाज टामस दी अपोसल (Acts of Judas Thomas the Apostle) की सीरियाई प्रति से पता चलता है कि सन्त टामस ईसा की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् भारत आए थे तथा उसने गोंडोफर्नेज की इसाई मतवाली स्त्री बना दिया इस इसाई जन श्रुति में कितनी सत्यता है कहा नहीं जा सकता।

गोंडोफर्नेज के उत्तराधिकारी :- मुद्राशास्त्र के साक्ष्यों के आधार पर फ्रांसिस विधान लॉहूइ जेन व ल्यु Lohui zen de leeuw का मत है कि गोंडोफर्नेज के पश्चात् उसका भतीजा राज्य सिंहासन पर बैठे। परन्तु एब्दागसिस क्या कर्णी राजा बना इसके प्रमाण कम हैं। उसके सिक्के गोंडोफर्नेज के संयुक्त रूप से मिलते हैं। शायद वह कभी स्वतन्त्र शासक नहीं रहा। परन्तु फ्रांसिस विद्वान इसे स्वतन्त्र राजा मानते हैं जो कि गोंडोफर्नेज का भतीजा तथा जिसे जल्दी ही पदच्युत कर दिया गया तथा उसने भाग कर पार्थिया का राज्य में शरण ली। जिराके बाद पकोरेस (Pakores) राजा बना जिसके सिक्के सास्तान प्रकार के हैं। उसका राज्य तक्षशिला पर रहा हो कहा नहीं जा सकता। शायद पकोरेस का राज्य काफी बड़ा समय तक चले था। इनके पश्चात् सस्तस या गोंडोफर्नेज पुरुस राजा बना जिसे गोंडोफर्नेज-द्वितीय भी कहा जाता है। इसके सिक्के के प्राप्त हुए हैं जो इसके स्वतन्त्र शासक होने के प्रमाण हैं। परन्तु जो सिक्के का सिद्धांत उल्लंघन करेगा उन सिक्कों को ही अपने सिक्के के रूप में प्रयोग करेगा। उसके पश्चात् जो इनके उत्तराधिकारी को तक्षशिला पर शासन करने की शक्ति देता है वह सिक्के के रूप में प्रमाण है जो गोंडोफर्नेज के उत्तराधिकारी को तक्षशिला पर शासन करने वाले गवर्नर के रूप में मानते हैं। इसी सिद्धांत को ही अपने राजा कुजुल कैंडफिसिस का कुजुल कैंडफिसिस राज्य मानना शुरू कर दिया। पश्चिम पाषाण युग के अनुसार पेशावर में कुषाणों ने अपना अधिकार कर लिया। इस तरह पहला पार्थियन राज्य का अन्त हो गया।

## सातवाहन राजवंश

प्राचीन भारत में मौर्य वंश के अन्तर्गत पहली बार राजनैतिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। बाद में मौर्य वंश के अन्तर्गत सातवाहन वंश ने इस प्रयास को आगे बढ़ाया। यद्यपि इतिहासकार सातवाहनों को दक्कन में मौर्यों का उत्तराधिकारी मानते हैं, यद्यपि इस वंश के उदय को अशोक के बौद्ध राज्य के विरुद्ध सामान्य जैन तथा हिन्दु प्रक्रिया के रूप में भी समझा जाना चाहिए। सातवाहन वंश की स्थापना मौर्य वंश के पराभव से लगभग पचास वर्ष पहले हुई। उनका साम्राज्य दक्षिण भारत का सबसे प्राचीन और बड़ा साम्राज्य था। उत्तर भारत निरन्तर बदलते राजवंशीय परिदृश्य (जहां मौर्यों के पतन के बाद छोटे-छोटे अन्तराल पर शुंग, कण्व तथा कुषाण वंशों की स्थापना हुई) के विपरित सातवाहनों ने दक्कन में अटूट, अविभाज्य तथा दीर्घकाल तक स्थाई रूप से चलने वाला एक साम्राज्य की स्थापना की जिसने लगभग साढ़े चार सौ वर्षों तक शासन किया।

इस काल के विषय में जितनी जानकारी हमें प्राप्त हुई है उससे हमें सातवाहनों की विलक्षणता तथा विभिन्न क्षेत्रों में उनकी अद्वितीय गतिविधियों का ज्ञान होता है। यदि पुराणों के वक्तव्यों पर विश्वास किया जाए तो दक्कन के इस साम्राज्य की सीमाएं उत्तर भारत तक फैली हुई थी। मगध इस साम्राज्य का एक हिस्सा था, दक्षिणी भारत में भी फैलाव था तथा पूर्वी से पश्चिमी समुन्द्र तक इसकी सीमाएं विस्तृत थी। उत्तर तथा दक्षिण भारत की मालव, भोज, पठनिक, रथिक, आन्ध्र, पारिन्द तथा द्राविड आदि विभिन्न प्रकार की प्रजातियों के समन्वय से इस साम्राज्य का निर्माण हुआ था तथा इस दृष्टि से क्षेत्रफल में मौर्य साम्राज्य से कम होते हुए भी सातवाहन साम्राज्य उससे कहीं अधिक सुगठित था। ये सातवाहनों द्वारा मध्य भारत तथा दक्कन में प्रदत्त लम्बे एवं शान्तिपूर्ण शासन काल का ही परिणाम था कि कला एवं स्थापत्य का विकास हुआ जिनके उदाहरण हम पश्चिम भारत की शिलाओं में तराशी हुई गुहाओं तथा पूर्वी भारत के स्तूपों एवं विहारों में पा सकते हैं। इस काल में संस्कृति का भी अत्याधिक विकास हुआ तथा प्रकृत भाषा का आकर्षण राजदरबारों तक पहुँचा। यद्यपि सातवाहन राज्य एक हिन्दु साम्राज्य था तथापि उनके आधीन बौद्ध धर्म का अद्वितीय विकास हुआ। व्यापार, वाणिज्य एवं जल परिवहन के क्षेत्रों में भी अत्याधिक उन्नति हुई।

**स्रोत :-**

सातवाहनों के विषय में जानकारी देने वाले एवं स्रोतों का नितान्त अभाव है। उनसे सम्बन्धित शिलालेखों की संख्या बहुत कम है और इस प्रस्तुत शिलालेखों में दिए गए सन्दर्भों में भी सातवाहनों के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं मिलती। उनके विषय में हमारे पास पूर्वी दक्कन से प्राप्त उन्नीस शिलालेख ही हैं। जो इस वंश के तीस राजाओं तथा साढ़े चार सौ वर्षों के लम्बे शासन काल के विषय में जानकारी देने के लिए किसी भी दृष्टिकोण से प्रयोग नहीं है। यद्यपि पुरातत्व विभाग ने प्राचीन हैदराबाद राज्य (जो अर्वाचीन तेलंगाना प्रदेश का हिस्सा था तथा आधुनिक आन्ध्र प्रदेश की राजधानी है एवं जिसे सातवाहनों को उद्गम क्षेत्र माना जाता है, में पैठान, मास्की तथा पोण्डापुर में खुदाई करवाई परन्तु यहाँ से अधिक साक्ष्य नहीं मिले। इस विषय में सातवाहन वंश के राजाओं द्वारा प्रचलित सिक्के जो पूर्वी तथा पश्चिमी दक्कन एवं मध्य प्रदेश से मिले हैं, से हमें इस वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। थामस, रैपसन, कनिधम, भगवान लाल इन्द्रा जी तथा स्कॉट जैसे विद्वानों ने इन सिक्कों से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की है। परन्तु इन सिक्कों के भंगित तथा कुछ सिक्कों के जाली होने के कारण कई विवाद उठ खड़े हुए हैं। इस विषय में साहित्यिक स्रोतों ने तो और भी अधिक निराश किया है। मौलिक पुराणों में कालान्तर में जुड़े अंशों के कारण इनमें सातवाहनों के विषय में दी गई सूचनाएं अब विश्वसनीय नहीं रह गई हैं। साथ ही विभिन्न पुराणों में सातवाहनों के संदर्भ में मर्तक्य न होने के कारण स्थिति और भी सन्देहास्पद हो गई है। यद्यपि गुणादय द्वारा रचित बृहद कथा को सातवाहन राज्य संरक्षण में लिखा हुआ माना जाता है तथापि यह कृति अब मूल रूप में नहीं मिलती तथा इस पर आधारित उसके बाद के संस्करणों में दी गई सूचनाओं की व्यवस्था विभिन्न संस्करणों में अलग-अलग की है। इसी प्रकार लीलावती जो कि सातवाहन शासक काल के सैनिक अभियानों एवं विजयों से सम्बन्धित है पर भी अधिक अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। इस कारणवश सातवाहन काल के विषय में अभी हमारी जानकारी सीमित है।

**सातवाहनों का उदय तथा उनका मूल निवास स्थान :-**

सातवाहनों के अभ्युदय तथा उनके मूल निवास स्थान को लेकर विभिन्न विद्वानों में गहरा मतभेद है। शिलालेख तथा सिक्कों में वर्णित सातवाहन और शातकर्णी शासकों को पुराणों में आन्ध्र, आन्ध्र-मृत्य तथा आन्ध्र जातीय नामों से पुकारा गया है। इस अन्ध्र पर विद्वान इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि सातवाहन अथवा शातकर्णी राजा आन्ध्रों के समतुल्य थे। रैपसन, स्मिथ तथा इन्द्रा जी



अनुसार सातवाहन शासक आन्ध्र देश से सम्बन्धित थे। आन्ध्र लोगों के विषय में पुराण कहते हैं कि वे लोग प्राचीन तेलगु प्रदेश जो कि गोदावरी तथा कृष्णा नदी के मध्य में स्थित था, के निवासी थे। एतरेय ब्राह्मण में उनका उल्लेख ऐसी जाति के रूप में हुआ है जो आर्यों के प्रभाव से मुक्त थी। इंडिका में मैगस्थनीज उनकी शक्ति एवं समृद्धि का उल्लेख किया है। अशोक के शिलालेखों में उनका वर्णन ऐसे लोगों के रूप में हुआ है जो कि उसके साम्राज्य के प्रभाव में थे। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद उनका क्या हुआ इसका पता नहीं चलता। सम्भवतः उन्होंने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। ऊपर वर्णित इतिहासकार यद्यपि आन्ध्रप्रदेश का सातवाहनों का मूल निवास स्थान मानते हैं तथापि उनकी शक्ति के केन्द्र को लेकर इन विद्वानों में मतभेद है। जहाँ स्मिथ श्री काकुलम् को सातवाहनों अथवा आन्ध्रों की राजधानी मानते हैं। परन्तु सातवाहन के आन्ध्रों के साथ सम्बन्ध को लेकर विद्वानों में मतभेद है। सामवाहन वंश के शिलालेखों में इस काल के शासकों को निरन्तर रूप से सातवाहन अथवा शातकर्णी कहा गया है। साहित्यिक ग्रन्थों में इनके लिए यदाकदा शाली वाहन शब्द का भी प्रयोग हुआ है। परन्तु इस संदर्भ में आन्ध्र शब्द का प्रयोग इस वंश के किनी भी शिलालेख में नहीं है। दूसरी ओर शिलालेखों, सिक्कों तथा साहित्यिक स्रोतों के आधार पर पश्चिमी भारत को इनका मूल निवास स्थान माना गया है। इस तथ्य का प्रमाण नानाघाट (पुना जिला) तथा सार्ची (मध्यप्रदेश) के आरम्भिक शिलालेखों से भी मिलता है। इस आधार पर डा० गोपालचारी ने प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठान जो कि प्राचीन हैदराबाद राज्य के औरंगाबाद में स्थित है) तथा उसके आसपास के क्षेत्र के सातवाहनों का मूल निवास स्थान माना है। इसके अतिरिक्त वी०एस० सुकूथानकर ने बेल्लारी जिले को; एच०सी०राय० चौधरी ने अन्य देश के दक्षिणी हिस्से को तथा वी०वी० मिराशी ने वेन गंगा नदी के दोनों किनारों से लगे बरार प्रदेश को सातवाहनों का मूल निवास स्थान माना है। इस आधार पर सातवाहनों तथा आन्ध्रों का समतुल्य एवं सजातिय होना सन्देहास्पद ही है। इस विषय में विद्वानों ने यह सुझाया है कि सातवाहनों ने अपने आरम्भिक जीवन की दक्कन से शुरुआत की तथा कुछ ही समय में आन्ध्र प्रदेश को भी जीत लिया। कालान्तर में जब शक तथा अमीर आक्रमणों के कारण सातवाहन साम्राज्य के पश्चिमी तथा उत्तरी क्षेत्र उनके हाथों से जाते रहे तब कदाचित् उनकी शक्ति गोदावरी तथा कृष्णा नदी के मध्य क्षेत्र अर्थात् आन्ध्र प्रदेश तक सीमित हो गई तथा अब सातवाहनों को आन्ध्रों के नाम से जाना जाने लगा।

सातवाहनों की उत्पत्ति के विषय में भी हमें जानकारी नहीं है। कुछ विद्वानों ने उनका तुलना अशोक के शिलालेखों में वर्णित सतीयपुत्रों से तथा कुछ ने प्लिनी द्वारा वर्णित सेतई से की है। कुछ अन्य विद्वानों ने शब्द भाशा विज्ञान के आधार पर शातकर्णी तथा सातवाहन शब्दों को परिभाषित किया है चाहे इन शब्दों की महत्ता कुछ भी रही हो परन्तु सातवाहन वंश के शिलालेखों के आधार पर यह लगभग निश्चित है कि सातवाहन भी शुंग तथा कण्व शासकों की तरह ब्राह्मण थे। इस बात का प्रमाण नासिक शिलालेख से भी मिल जाता है जिसमें गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी को एक ब्राह्मण (अद्वितिय ब्राह्मण) तथा खतिय—दप—मान—मदन अर्थात् क्षत्रियों का मान मर्दन करने वाला आदि उपाधियों से सुशोभित किया है। इसी शिलालेख के लेखक ने गौतमीपुत्र की तुलना परशुराम से की है। साथ ही दात्रीशतपुतलिका में भी शालीवाहनों को मिश्रित ब्राह्मण जाति तथा नागजाति से उत्पन्न माना गया है।

**सातवाहनों का शासनकाल तथा कालक्रम :-**

सातवाहनों के कालक्रम को लेकर विद्वानों में गहरे मतभेद हैं। एतरेय ब्राह्मण जो कि पाँच सौ ई०पूर्व में लिखा गया था उसमें आन्ध्रों को ऐसे दन्त्य बताया गया है जो कि आर्य परिधि से बाहर थे तथा जो विश्वामित्र के वंशज थे। इस आधार पर डा०डी०आर०भण्डारकर ने 500 ई०पूर्व को सातवाहनों की आरम्भिक स्थिति माना है। डा०वी०ए०स्मिथ के अनुसार आन्ध्र पहले अधीनस्थ थे परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् वे सिमुख के नेतृत्व में स्वतन्त्र हो गए तथा यह घटना तीसरी शताब्दी ई०पूर्व में हुई। इस विषय में स्मिथ ने पुराणों का ही आधार माना है जिनके अनुसार आन्ध्रों के कुल तीस शासकों ने लगभग 460 वर्षों तक शासन किया। डा०गोपालचारी ने भी इस तथ्य को स्वीकारते हुए यह माना है कि सातवाहन वंश की स्थापना लगभग 235 ई०पूर्व तथा उसका पतन लगभग 255 ईस्वी में हुआ।

कलिंग के शासक खारखेल के राज्यकाल में उत्कीर्ण हाथी गुम्फा शिलालेख के आधार पर रैपसन सातवाहन वंश का आरम्भ 220 ई०पूर्व तथा 211 ई०पूर्व के बीच मानते हैं परन्तु सातवाहनों के यासन काल को लेकर विभिन्न पुराणों में भी मतान्तर है। एक ओर जहाँ मत्स्यपुराण उनका कुल यासन काल 460 वर्ष बताता है वहीं दूसरी ओर ब्राह्मणपुराण में यह अवधि 456 वर्ष बताई गई है। वायुपुराण के अनुसार सातवाहनों ने 411 वर्षों तक शासन किया जबकि विष्णुपुराण उनकी शासन अवधि 300 वर्ष मानता है।

दूसरी ओर डा० आर० जी० भण्डारकर सातवाहन वंश की स्थापना 72-73 ई०पूर्व को मानते हैं। पुराणों में वर्णित एक वक्तव्य के आधार पर उन्होंने यह माना है कि, "शुंग मृत्यु" कण्व शासक शुंग शासकों के सेवक थे तथा पेशवाओं की भाँति उनके साथ-साथ शासन करते थे तथा सिमुक अथवा शिशुक नामक सातवाहन वंश के संस्थापक ने कण्व राजा सुश्रमन को मारकर कण्व तथा शुंग दोनों वंशों का अन्त कर दिया तथा उनके साम्राज्य को अपने आधीन कर लिया। परन्तु यह तथ्य अविश्वसनीय है क्योंकि हम यह भली-भाँति जानते हैं कि शुंग तथा कण्व वंश के शासकों ने कभी संयुक्त रूप से शासन नहीं किया तथा कण्व वंश के संस्थापक



वासुदेव कण्व ने अन्तिम शुंग शासक देवभूति की हत्या कर शासन की बागडोर सम्भाली थी। वायुपुराण के उस वक्तव्य जिसके आधार पर डॉ० भण्डारकर ने गलत गणना की है, को डॉ० राय चौधरी ने सही ढंग से परिभाषित किया है। उनके अनुसार वह कण्व ने इतना ही बताता है कि सिमुक ने जब कण्व वंश का अन्त कर सातवाहन वंश की स्थापना की तो उसने उन शुंग उपशासकों को समाप्त कर दिया जो कि कण्व वंश के हाथों शुंग शासकों के पराजित होने के बाद भी बचे रह गए थे। अतएव सातवाहन शासकों का ई०पूर्व (72 ई०पूर्व - 45 वर्ष) में कण्व वंश का अन्त कर स्वयं शासन की बागडोर सम्भाली। परन्तु इस सब कारकों के हस्तक्षेपों से इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि सिमुक जिसने 23 वर्षों तक शासन किया वह कुछ समय पहले ही अर्थात् 23 शताब्दी ई०पूर्व के मध्य में ही सिंहासनारूढ़ हो गया होगा।

### सातवाहन वंश के शासक :-

**सिमुक (235 ई०पूर्व - 212 ई०पूर्व):-** सिमुक सातवाहन वंश का संस्थापक था तथा उसने 235 ई०पूर्व से लेकर 212 ई०पूर्व तक लगभग 23 वर्षों तक शासन किया। यद्यपि उसके विषय में हमें अधिक जानकारी नहीं मिलती तथापि पुराणों से हमें यह ज्ञात होता है कि कण्व शासकों की शक्ति का नाश कर तथा बचे हुए शुंग मुखियाओं का दमन करके उसने सातवाहन वंश की नींव रखी। पुराणों में उसे सिमेक के अतिरिक्त शिशुक, सिन्धुक तथा शिप्रक आदि नामों से भी पुकारा गया है। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार सिमुक ने अपने शासन काल में जैन तथा बौद्ध मन्दिरों का निर्माण करवाया, परन्तु अपने शासन काल के अन्तकाल में वह पथभ्रष्ट तथा क्रूर हो गया जिस कारणवश उसे पदच्युत कर उसकी हत्या कर दी।

### कान्हा तथा कृष्ण (212 ई०पूर्व - 195 ई०पूर्व) :-

सिमुक की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई कान्हा (कृष्ण) राजगद्दी पर बैठा। अपने 12 वर्षों के कार्यकाल में कान्हा ने साम्राज्य विस्तार की नीति को अपनाया। नासिक के शिलालेख से यह पता चलता है कि कान्हा के समय में सातवाहन साम्राज्य पश्चिम में नासिक तक फैल गया था। **शातकर्णी-1** (प्रथम) कान्हा के उपरान्त शातकर्णी प्रथम गद्दी पर बैठा। पुराणों के अनुसार वह कान्हा पुत्र था। परन्तु डॉ० गोपालचारी सिमुक को शातकर्णी प्रथम का पिता मानते हैं। कुछ विद्वानों ने यह माना है कि इसका शासन काल मात्र दो वर्ष रहा परन्तु नीलकण्ठ शास्त्री ने उसका शासन काल 194 ई०पूर्व से लेकर 185 ई०पूर्व माना है। जो भी हो यह सुस्पष्ट है कि उसका शासन काल बहुत लम्बा नहीं था। परन्तु छोटा होते हुए भी शातकर्णी प्रथम का कार्यकाल कुछ दृष्टिकोणों से बड़ा महत्वपूर्ण है। सातवाहन शासकों में वह पहला था जिसने इस वंश के शासकों में प्रिय एवं प्रचलित, "शातकर्णी" शब्द से अपना नामकरण किया। **नानाघाट** शिलालेख के अनुसार शातकर्णी ने अपने साम्राज्य का खुब विस्तार किया तथा अपने कार्य काल में दो अश्वमेध यज्ञ तथा एक राजसुय यज्ञ किया। उसकी रानी नयनिका के एक शिलालेख से हमें यह ज्ञात होता है कि शातकर्णी प्रथम ने पश्चिमी मालवा के साथ-साथ अनुप (नर्मदा घाटी का क्षेत्र) तथा विदर्भ (बरार) प्रदेशों भी जीत लिया। यदि शातकर्णी प्रथम ही वह शासक है जिसका उल्लेख सांची स्तूप के तोरण में हुआ है तो यह भी इस बात को प्रमाणित करता है कि उसके समय में मध्य भारत सातवाहनों के अधिकार में था। वह अपने छोटे से कार्य काल में सम्राट बन गया तथा उसने दक्षिण पथपति तथा अप्रतिहत चक्र आदि उपाधियाँ धारण की। **नानाघाट लेख** तथा **हाथी गुम्फा** लेखों में प्रयुक्त लिपि की समानता के आधार पर ही यह सुझाया गया है कि कदाचित् इसी शातकर्णी शासकों के शासन काल के दूसरे वर्ष में कलिंग के महान शासक खारखेल ने युद्ध क्षेत्र में हराया था। शातकर्णी प्रथम की पत्नी नयनिका अथवा नागनिका अंगीय कुल के एक महारथी त्रणकाइरो की पुत्री थी।

### वेदश्री तथा सतश्री (अथवा शक्ति श्री) :-

शातकर्णी प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसके दो अल्पव्यस्क पुत्र वेदश्री तथा सतश्री सिंहासन पर बैठे। परन्तु अल्पव्यस्क होने के कारण प्रशासन की सारी बागडोर उनकी मां नयनिका के हाथों में आ गई जिसने अपने पिता की सहायता से शासन चलाया। ऐसा प्रतीत होता है कि वेदश्री की अल्पायु में ही मृत्यु हो गई तथा सतश्री ने उसके उत्तराधिकारी के रूप में शासन सम्भाला। परन्तु पुराण इस विषय में एकमत है कि शातकर्णी प्रथम के पश्चात् पूर्णोत्संग नामक राजा सातवाहन सिंहासन पर आसीन हुआ। चाहे वस्तुतः सातवाहन शासक का नाम कुछ भी रहा हो, यह तो निश्चित है कि इस शासक के शासन काल में ही पुष्यमित्र शुंग ने अन्तिम मौर्य शासक ब्रह्मदत्त को मार कर मगध राज्य पर अधिकार कर लिया था। **मत्स्यपुराण** में **स्कन्दस्तम्भी** का उल्लेख सातवाहन वंश के पाँचवें शासक के रूप में किया है परन्तु अधिकतर विद्वान इस नाम को कल्पित मानते हैं।

### शातकर्णी द्वितीय :-

शातकर्णी द्वितीय ने लगभग 166 ई०पूर्व से लेकर 111 ई०पूर्व तक शासन किया। यह कदाचित् वही शासक था जिसका वर्णन हैमिन्टन तथा भीलसा शिलालेखों में हुआ है। यह प्रतीत होता है कि इसके शासन काल में सातवाहनों ने पूर्वी मालवा के पूर्ण क्षेत्र में एक उत्तराधिकारी को जीत लिया।

पुराणों के अनुसार शातकर्णी द्वितीय के पश्चात् लम्बोदर राजसिंहासन पर आसीन हुआ। लम्बोदर के पश्चात् उसका पुत्र अपीलक गद्दी पर बैठा। अपीलक जो कि आठवों सातवाहन शासक था, इन दोनों के मध्य का काल सातवाहनों के संदर्भ में अंधकार युग माना गया है जिसमें केवल कुन्तल शातकर्णी के काल को ही अपवाद माना जा सकता है। कुन्तल शातकर्णी, अपीलक के पश्चात् सातवाहनों का अगला महत्वपूर्ण शासक था। कामसूत्र में वात्सायन ने कुन्तल शातकर्णी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसने अपनी उंगलियों को कैंची के रूप में प्रयोग किया तथा इसके प्रहार से उसकी पटरानी मलयवती की मृत्यु हो गई। काव्यमिमांसा में राजेश्वर ने कुन्तल शातकर्णी का वर्णन करते हुए कहा है कि उसने अपने रनिवास में रहने वाली अपनी रानियों को यह आदेश दिया था कि वे केवल प्राकृत भाषा का प्रयोग करें।

**हाल (20 ई०पू० - 24 ई०पू०) :-**

हाल सातवाहनों का अगला महत्वपूर्ण शासक था। यद्यपि उसने केवल चार वर्ष ही शासन किया तथापि कुछ विषयों उसका शासन काल बहुत महत्वपूर्ण रहा। ऐसा माना जाता है कि यदि आरम्भिक सातवाहन शासकों में शातकर्णी प्रथम योद्धा के रूप में सबसे महान था तो हाल शांतिदूत के रूप में अग्रणी था। हाल साहित्यिक अभिरुचि भी रखता था तथा एक कवि सम्राट के रूप में प्रख्यात हुआ। उसके नाम का उल्लेख पुराण, लीलावती, सप्तशती, अभिधान चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में हुआ है। यह माना जाता है कि प्राकृत भाषा में लिखी गाथा सप्तशती अथवा सतसई (सात सौ श्लोकों से पूर्ण) का रचयिता हाल ही था। बृहदकथा के लेखक गुणादय भी हाल का समकालीन था तथा कदाचित पैशाची भाषा में लिखी इस पुस्तक की रचना उसने हाल ही के संरक्षण में की थी। कालान्तर में बुद्धस्वामी की बृहदकथा-यलोक-संग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहदकथा-मंजरी तथा सोमदेव की कथासरित सागर नामक तीन ग्रन्थों की उत्पत्ति गुणादय की बृहदकथा से ही हुई।

हाल के प्रधान सेनापति विजयानन्द ने अपने स्वामी के आदेशानुसार श्रीलंका पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। इस विजय अभियान से वापिस लौटते समय वह कुछ समय के लिये सप्त गोदावरी भीमम् नामक स्थान पर रुका। वहाँ विजयानन्द ने श्रीलंका के राजा की अति रूपवान पुत्री लीलावती की चर्चा सुनी जिसका वर्णन उसने अपने राजा हाल से किया। हाल ने प्रयास कर लीलावती से विवाह कर लिया। किवदंती है कि हाल ने पूर्वी दक्कन में कुछ सैनिक अभियान किये परन्तु साक्ष्यों के अभाव में अधिकतर विद्वान इसे गलत मानते हैं।

यद्यपि हाल तक के सातवाहन शासकों के शासनकाल में राजनैतिक क्षेत्र के अतिरिक्त साहित्यिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी अत्याधिक विकास हुआ तथा व्यापार-वाणिज्य शहरों के विकास एवं जलपरिवहन की उन्नति हुई जो कि प्रथम शताब्दी ई० के दूसरे मुण्डलक अथवा पुरिंद्रसेन के शासन काल में अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँच गई, तथापि आने वाले लगभग पचास वर्ष सातवाहन साम्राज्य के लिए बड़े ही कठिन साबित हुए। ऐसा प्रतीत हुआ मानो के पश्चिम क्षेत्रों के रूप में हुए विदेशी आक्रमण के साथ ही सातवाहन साम्राज्य का पतन होने को है। कुषाण उत्तर-पश्चिम में अपना प्रसार कर रहे थे तथा उनके दबाव में शक तथा पहलाव शासक मध्य तथा पश्चिमी भारत की ओर आकर्षित होकर सातवाहनों से संघर्ष करने को आतुर थे। क्षहरात वंश के पश्चिमी क्षेत्रों ने अपने को पश्चिमा राजपुताना, गुजरात तथा काठियावाड़ में स्थापित कर लिया था। इन शक शासकों ने 35 ई० से लेकर लगभग 90 ई० तक सातवाहन राज्य पर आक्रमण किये। उन्होंने सातवाहनों से पूर्वी तथा पश्चिमा मालवा प्रदेशों को जीता; उत्तरी कोंकण (अपरान्त) उत्तरी महाराष्ट्र, जो कि सातवाहन शक्ति का केन्द्र था तथा बनवासी (वैजयन्ती) तक फैले दक्षिणी महाराष्ट्र पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया। क्षहरात वंश का पहला शासक घूमक था जिसकी जानकारी के स्रोत कुछ सिक्के हैं जो कि अधिकांशतः गुजरात काठियावाड़ के तटीय प्रदेश तथा यदाकदा मालवा से पाए हैं। घूमक का उत्तराधिकारी नहपान था जिसकी जानकारी हमें उसके बहुसंख्य सिक्कों पर राजा (अथवा राजन्) की उपाधि धारण की है। वहीं शिलालेखों उसकी उपाधि क्षत्रप तथा महाक्षत्रप मिली। नासिक, कारले तथा जुनार (उत्तरी महाराष्ट्र) के उसके शिलालेख; उसके बहुसंख्य सिक्के तथा उसके जामाता शक अशवदात के द्वारा उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में दिए गए दान सब के सब ये प्रमाणित करते हैं कि नहपान के समय में क्षहरात वंश का साम्राज्य काफी विस्तृत था तथा उसने सातवाहन शासकों से काफी बड़ा प्रदेश छीन कर ही अपने साम्राज्य को इतना विशाल बनाया था। नहपान तथा उसके जामाता शक अशवदात ने मालवा, नर्मदा घाटी, उत्तरी कोंकण, बरार का पश्चिमा भाग एवं और दक्षिणी महाराष्ट्र को जीतकर पश्चिमी दक्कन में सातवाहन शक्ति को ढ़भ्र उखाड़ फँका। वे सातवाहन राजा जो नहपान के हाथों पराजित हुए कदाचित सुन्दर शातकर्णी, चकोर शातकर्णी तथा शिवसाती थे जिनका कि कार्यकाल बहुत ही छोटा था (इनमें से पहले दो का शासन काल मात्र डेढ़ वर्ष था) परन्तु यह परिस्थितियाँ अधिक समय तक नहीं चली तथा गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी के सातवाहन शासक बनते ही इस क्षहरात-सातवाहन संघर्ष में नया मोड़ आया।

**गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी (70 ई०-95 ई०)**

लगभग आधी शताब्दी की उठा-पटक तथा शक शासकों के हाथों मान मर्दन के बाद गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी के नेतृत्व में अपनी खाँई हुई प्रतिष्ठा को पुनरस्थापित कर लिया। गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी सातवाहन वंश का सबसे तहान यासक था जिसने लगभग

25 वर्षों तक शासन करते हुए न केवल अपने साम्राज्य की खोई प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया अपितु एक विशाल साम्राज्य का भी स्थापना की। गौतमी पुत्र के समय तथा उसकी विजयों के बारे में हमें उसकी माता गौतमी बालश्री के नासिक शिलालेख से सम्पूर्ण जानकारी मिलती है। उसके सन्दर्भ में हमें इस लेख से यह जानकारी मिलती है कि उसने क्षत्रियों के अहकार का मान-मर्दन किया, उसका वर्णन शक, यवन तथा पहलाव शससकों के विनाश कर्ता के रूप में हुआ है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि क्षहरात वंश के शक शासक नहपान तथा उसके वंशजों की उसके हाथों हुई पराजय थी। जोगलथम्बी (नासिक) समुह से प्राप्त नहपान के शान्दी के सिक्के जिन्हे कि गौतमी पुत्र शातकर्णी ने दुबारा ढलवाया तथा अपने शासन काल के अठारहवें वर्ष में गौतमी पुत्र द्वारा नासिक के निकट पांडु-लेण में गुहादान करना— ये कुछ ऐसे तथ्य हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि उसने शक शासकों द्वारा छीने गए प्रदेशों को पुनर्विजित कर लिया। नहपान के साथ उनका युद्ध उसके शासन काल के 17वें और 18वें वर्ष में हुआ तथा इस युद्ध में जीत कर गौतमी पुत्र ने अपरान्त, अनूप, सौराष्ट्र, कुकर, अकर तथा अवन्ति को नहपान से छीन लिया। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त गौतमी पुत्र का ऋशिक (कृष्णा नदी के तट पर स्थित ऋशिक नगर), अयमक (प्राचीन हैदराबाद राज्य का हिस्सा), मूलक (गोदावरी के निकट एक प्रदेश जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी) तथा विदर्भ (आधुनिक बरार क्षेत्र) आदि प्रदेशों पर भी अधिपत्य था। उसके प्रत्यक्ष प्रभाव में रहने वाला क्षेत्र उत्तर में मालवा तथा काठियावाड़ से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक तथा पूरव में बरार से लेकर पश्चिम में काकण तक फैला हुआ था। उसने त्रि-समुंद्र-तोय-पीत-वाहन उपाधि धारण की जिससे यह पता चलता है कि उसका प्रभाव पूर्वी पश्चिमी तथा दक्षिणी सागर अर्थात् बंगाल की खाड़ी, अरब सागर एवं हिन्द महासागर तक था।

ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले गौतमी पुत्र शातकर्णी द्वारा नहपान को हराकर जीते गए क्षेत्र उसका हाथ से निकल गए। गौतमी पुत्र से इन प्रदेशों को छीनने वाले संभवतः सीथियन जाति के ही करदामक वंश के शक शासक थे। इसका प्रमाण हमें ऑलमी द्वारा भूगोल का वर्णन करती उसकी पुस्तक से मिलता है। ऐसा ही निष्कर्ष 150 ई० के प्रसिद्ध रुद्रदमन के जूनागढ़ के शिलालेख से भी निकाला जा सकता है। यह शिलालेख दर्शाता है कि नहपान से विजित गौतमीपुत्र शासकर्णी के सभी प्रदेशों को उसका रुद्रदमन ने हथिया लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतमीपुत्र शातकर्णी ने करदामक शकों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर रुद्रदमन द्वारा हथियाए गए अपने क्षेत्रों को सुरक्षित करने का प्रयास किया। कन्हेरी से प्राप्त एक शिलालेख से यह पता चलता है कि वशिष्ठीपुत्र शातकर्णी, जो कि संभवतः गौतमीपुत्र

### (b) पश्चिमी भारत के शक क्षत्रय

दूसरी शताब्दी ई. पू. में इन्डो-ग्रीक (हिन्द-यूनानी) अथवा इन्डो-बैक्ट्रीयन शासकों ने सिन्ध, सौराष्ट्र तथा राजस्थान के कुछ भाग को जीत लिया। इससे अगली शताब्दी में पूर्वी ईरान के सीथियनों ने अपने आप को सिन्ध के निचले भाग में स्थापित करते हुए सौराष्ट्र तथा उसके साथ लगे क्षेत्रों में अपना प्रभाव जमा लिया। सीथियन शासकों ने पश्चिमी भारत के बहुत बड़े भाग पर बहुत लम्बे समय तक अधिकार जमाए रखा। गुप्त वंश के आरम्भिक शासकों के समय में भी, पश्चिम भारत में सीथियन शासक सशक्त थे और उनकी शक्ति का हास तभी हुआ जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इन शासकों को हरा कर पश्चिमी भारत को गुप्त साम्राज्य में मिला लिया।

#### I पश्चिम भारत में सीथियन शक्ति का उदय :-

पश्चिमी भारत में सीथियन शासन का उल्लेख सर्व प्रथम पेरीप्लस (C.A.D. 70-80) में मिलता है इस पुस्तक में निचली सिन्धु घाटी को सीथिया अर्थात् सीथियनों का प्रदेश कहा गया है। यद्यपि हमें यह वर्णन मिलता है कि इस प्रदेश पर पार्थियन शासक का अधिकार था जिनकी राजधानी मिन-नगर थी तथापि पैरीप्लस एक शक्तिशाली शासक माम्बरस का उल्लेख करती है, जिसकी शक्ति का केन्द्र एक दूसरा मिन नगर था तथा जो संभवतः एक सीथियन था। ऐसा प्रतीत होता है कि माम्बरस का वंश मूलतः सीथियन शासकों के शासकों के अधीनस्थ था परन्तु पार्थियन शासक एजेज-II के पश्चात् व्यवहारिक तौर पर सिन्धु घाटी के निचले भाग का स्वतन्त्र शासक बन गया। पैरीप्लस के वर्णन से यह पता चलता है कि माम्बरस के साम्राज्य में सौराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान के कुछ भाग सम्मिलित थे। परन्तु पैरीप्लस में ही आए इस उल्लेख से कि कलीइना नगर (थाटो जिले में स्थित कल्याण) ना कि पहले बड़े सारगैनस (शातकर्णी) के हाथ में था तथा जो बाद में जब इस पतन की व्यापारिक गति विधियों में व्यवधान आया आ जिस समय यह सन्दरीज के अधिकार में था, यह संकेत मिलता है कि प्रथम शताब्दी के मध्य तक आते-2 उसी काल में सीथियनों का अधिकार हो गया था। यदि इस तथ्य पर विश्वास किया जाए तो यह मानना अनुचित न होगा कि सन्दरीज न अपरान्त जो कि इस समय सात वाहनों से जीता गया था, में माम्बरस का वायसराय था। कुछ विद्वान यह सुझाव देते हैं कि माम्बरस नाम्बनस का बिगडा हुआ रूप है तथा यह नाम्बनस भी ग्रीक भाषा में नैहपान का ही बिगडा हुआ नाम है। परन्तु हम यह जानते हैं कि एक क्षत्रय के रूप में नैहपान ने लगभग 119 ई. से 125 ई. तक शासन किया तथा इस आधार पर इन विद्वानों का उपरोक्त वर्णित सुझाव गलत ही प्रतीत होता है।



## II क्षहरात वंश के क्षत्रय शासक :-

प्रथम शताब्दी के अन्त के आते-2 कुशाण शासक कनिष्क ने अपनी शक्ति का विस्तार मध्य तथा पश्चिमी भारत तक कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि माम्बरस वंश के शासन को या तो कनिष्क ने समाप्त कर दिया अथवा उसके वंशजों को अपना अधीनस्थ बना लिया। अभी तक यह नहीं पता चल पाया है कि क्षहरात वंश के शासक, जिन्होंने कनिष्क तथा उसके वंशजों के क्षत्रय के रूप में पश्चिमी भारत पर शासन किया था, वे माम्बरस के ही वंश से सम्बन्ध रखते थे अथवा नहीं। क्षहरात वंश के क्षत्रय भी मूल रूप से सीथियन जाति के ही थे। इस वंश के कुछ मुख्य शासकों का वर्णन निम्नलिखित है :-

**1. भूमक :-** भूमक का उल्लेख कनिष्क के आधीन कुशाण साम्राज्य के दक्षिणी पश्चिमी भाग के सबसे पहले क्षहरात क्षत्रय के रूप में हुआ है। उसके सिक्के गुजरात तथा सौराष्ट्र के तटीय प्रदेशों तथा यदा कदा मालवा एवं राजस्थान में अजमेर क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। भूमक के सिक्कों पर वर्णित लेख ब्राह्मी तथा खरोष्ठी दोनों ही लीपियों में पाए गए हैं जो इस ओर इंगित करते हैं कि उसके समय में क्षत्रय साम्राज्य केवल मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र तक ही सीमित नहीं था, जहां पर ब्राह्मी लीपि प्रचलित थी अपितु पश्चिमी राजस्थान तथा सिन्ध प्रदेशों तक भी फैला हुआ था जहां पर खरोष्ठी लीपि का प्रयोग होता था। पश्चिम भारत के आरम्भिक शकक्षत्रयों ग्रीक (यूनानी) उल्लेख इस ओर इंगित करता है कि हिन्द-सीथिया में अभी तक भी हिन्द-यूनानी मुद्राएं प्रभावी तथा लोकप्रिय थीं। पैरीप्लस भी इस तथ्य की साक्षी है। कुछ लेखकों का यह मत है कि आरम्भिक क्षत्रय सिक्कों पर खरोष्ठी लेखों का होना यह प्रमाणित करता है कि क्षत्रयों का मूल कहीं उत्तर में ही था। भूमक के शासन के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं है। उसने कनिष्क के समय में सिक्के जारी किये अथवा कनिष्क की मृत्यु के बाद उस समय में जारी किये जब कुषाणों का अपने सीमावर्ती प्रदेशों पर अधिकार कमजोर हो गया था, इसका निश्चित तौर पर पता नहीं चलता।

**2. नहपान :-** भूमक की मृत्यु के पश्चात् नहपान उसके उत्तराधिकारी के रूप में क्षत्रय बना। यद्यपि नहपान भी भूमक की ही तरह क्षहरात वंश से सम्बन्ध रखता था तथापि इन दोनों शासकों का आपस में क्या सम्बन्ध था, यह अभी तक पता नहीं चल पाया है। नहपान के शासन काल के विषय में हमें जानकारी केवल उसके सिक्कों ही से नहीं मिलती है अपितु उसके शिलालेखों से भी मिलती है जो कि एक विशेष सम्बन्ध के 41वें तथा 46वें वर्षों के बीच उत्तकीर्ण करवाए गए थे। यह विशेष संवत् और कोई नहीं बल्कि कनिष्क द्वारा 78 ई. में चलाया गया शक संवत् ही था तथा इस आधार पर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि नहपान ने सम्भवतः 119 ई. से लेकर 125 ई. तक शासन किया। जोगल थम्बी से प्राप्त सिक्कों से भी यह तिथि प्रमाणित होती है क्योंकि यहां से पाए गए सिक्कों से यह पता चलता है कि गौतमी पुत्र शातकर्णी ने जिन शक सिक्कों को पुनर्मुद्रित किया था वे नहपान के अतिरिक्त और किसी क्षहरात वंश के शासक के नहीं हो सकते। इस प्रकार यहां कहा जा सकता है कि नहपान तथा गौतमी पुत्र एक दूसरे के समकालीन थे तथा गौतमी पुत्र ने नहपान को हराया था। टोलमी की पुस्तक **ज्योग्राफी** में भी यह उल्लेख मिलता है कि 140 ई. के लगभग गौतमी पुत्र शातकर्णी का पुत्र पुलुमावी, सातवाहनों की राजधानी प्रतिष्ठान से शासन चला रहा था। इस वर्णन से भी यही प्रमाणित होता है कि गौतमी पुत्र तथा नहपान दूसरी शताब्दी ई. के पहले 25 वर्षों में ही शासन करते थे। जहां पहले लेख में नहपान को केवल एक क्षत्रप कहा गया है, वहीं शक संवत् के 46वें वर्ष में उत्तकीर्ण नहपान के बाद के शिला लेख में उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की है। इसके अतिरिक्त इन शिला लेखों में राजन् नामक एक अन्य उपाधि भी धारण की है जिससे यह पता चलता है कि राजनैतिक रूप से नहपान अपने पूर्वज भूमक से कहीं अधिक शक्तिशाली था। सिक्कों पर नहपान की केवल एक उपाधि राजन् ही मिलती है तथा उनमें से किसी पर भी क्षत्रप अथवा महाक्षत्रप आदि उपाधियों का उल्लेख नहीं मिलता। यहां यह बताना भी उचित होगा कि नहपान से सम्बन्धित किसी भी लेख में उसके किसी भी स्वामी का कोई उल्लेख नहीं है जो इस ओर इंगित करता है कि ऊपरी तौर पर कुशाणों के आधीन होते हुए भी व्यवहारिक तौर पर नहपान ने स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन किया। क्षहरात वंश के शासकों के पश्चात उनके उत्तराधिकारी के रूप में गद्दी पर बैठे कारदमक क्षत्रप शासकों ने भी राजन् (यदा कदा महाराज भी) की उपाधि धारण की।

नहपान ने चान्दी तथा ताम्बा धातु दोनों के ही सिक्के चलाए। उसके द्वारा चलाए गए चान्दी के सिक्के आकार, भार तथा रूप में यवन शासकों के हभी-द्रुम की नकल थे तथा इस सन्दर्भ में नहपान द्वारा चलाए गए सिक्कों ने ऐसे मानक स्थापित किए जिनका अनुगमन आने वाले समय में लगभग 300 वर्षों तक केवल पश्चिमी शक क्षत्रप शासकों ने ही नहीं किया अपितु उनके पश्चात गुप्त तथा त्रैकूटक शासकों ने भी किया। इन सिक्कों की मुख्य विशेषता यह थी कि इनके मुख्य भाग की ओर रोमन शैली के सिक्कों की तरह ही राजा का सिर अंकित होता था, जिसके नीचे ग्रीको-रोमन लीपि में वर्णन मिलता था।

नहपान के सिक्के उत्तर में राजस्थान के अजमेर क्षेत्र में तथा दक्षिण में नासिक क्षेत्र में पाए गए हैं। उसका साम्राज्य बहुत विशाल था तथा शिला लेखों के अनुसार वह अजमेर से लेकर उत्तरी मराठा देश तक फैला हुआ था। नहपान के एक अमात्य आर्यमन का



एक शिला लेख पूना जिले में स्थित जुनार से प्राप्त हुआ है है दिनिक का पुत्र ऋषभदत्त (उषवदात्त) जिसका विवाह नहपान का पुत्र दक्षमित्रा से हुआ था तथा जो अपने श्वसुर के साम्राज्य के दक्षिणी प्रान्तों का अधिस्वामी था, के भी दान सम्बन्धी अनेक शिला लेख नासिक तथा पूना जिले में स्थित कार्ले से प्राप्त हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गोवर्धन (नासिक) तथा मामाल (पूना, नामग नाहा (जिला) ऋषभदत्त के आधीन थे तथा उसका अधिकार क्षेत्र सम्भवतः दक्षिणी गुजराज से आरम्भ हो कर उत्तरी कोंकण में मडच तक सौपारा तक विस्तारित था। ऋषभ दत्त के दान विषयक लेखों में वर्णित स्थानों जैसे कापूर आहार (प्राचीन बड़ौदा राज), प्रभास (दक्षिणी सौराष्ट्र में स्थित), भृग, कच्छ (भड़ौच), दशपुर (पश्चिमी मालवा में मन्दसौर), शूरपार्क (थाना जिले में स्थित सौपारा), पुष्कर (अजमेर के निकट), पारादा (सूरत जिला), दमाना (दमन के निकट दमन गंगा), दाहनुका (थाना जिले में स्थित दहानु के निकट) तथा इसके साथ ही साथ तापी तथा बनास नदियों के वर्णन से तो यही प्रतीत होता है कि उसका शासन बहुत बड़े क्षेत्र पर फैला हुआ था। यद्यपि कुछ विद्वानों का यह मत है कि यह क्षेत्र ऋषभदत्त के आधीनस्थ नहीं थे तथा इन पवित्र स्थानों की यात्रा उसने केवल धार्मिक कारणों से की थी तथापि इस बात की सम्भावना कहीं अधिक है कि मालवा, सौराष्ट्र, गुजरात, उत्तरी कोंकण तथा मराठा क्षेत्र तथा राजस्थान का एक बहुत बड़ा भाग जिसमें कि निचली सिन्धु घाटी का भाग भी सम्मिलित था, यह प्रदेश ऋषभ दत्त के श्वसुर नहपान के साम्राज्य के ही हिस्से थे। राजस्थान में अजमेर के अतिरिक्त नासिक तथा पूना के क्षेत्रों पर भी नहपान का अधिकार था। बाद के दोनों क्षेत्रों को नहपान अथवा उसके किसी पूर्वज पश्चिमी क्षत्रप शासक ने साताहनों से छीना था। शक संवत् के वर्ष 46 (124-125 ई., जो कि नहपान के शासन काल की अन्तिक ज्ञात तिथि है) में अथवा उसके तुरन्त पश्चात् शक क्षत्रप नहपान का सातवाहन शासक गौतमी पुत्र शातकर्णी ने युद्ध में हरा कर मार डाला तथा क्षहरात साम्राज्य के दक्षिणी प्रान्तों पर अधिकार कर लिया। गौतमी पुत्र का उल्लेख केवल क्षहरात वंश के दमन कर्ता के रूप में ही नहीं हुआ है बल्कि यह भी वर्णन मिलता कि उसने शकों के अतिरिक्त यवनों तथा पहलावों की शक्ति को उखाड़ फेंका तथा वह सौराष्ट्र, कुकुर (गुजरात-सौराष्ट्र क्षेत्र), अनूप (नर्मदा के समीप महेश्वर प्रदेश), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), आकर (पूर्वी मालवा) तथा अवन्ती (पश्चिमी मालवा) आदि प्रदेशों का सर्वेसर्वा बन गया। नासिक तथा पूना जिले से प्राप्त गौतमी पुत्र शातकर्णी के शिला लेखों से यह पता चलता है कि किस प्रकार उसने इस प्रदेश से नहपान के जामाता ऋषभदत्त की शक्ति को उखाड़ फेंका। नासिक जिले के जोगलथम्बी से प्राप्त नहपान के सिक्कों के विशाल भंडार से यह पता चलता है कि किसी प्रकार गौतमी पुत्र शातकर्णी ने क्षत्रप शासक के राजकोष पर अधिकार जमा कर नहपान के सिक्कों का पुनर्मुद्रित करवा उन्हे दोबारा प्रचलित किया। परन्तु अपने साम्राज्य के दक्षिणी प्रान्तों को सातवाहनो के हाथों हार जाने के पश्चात् भी शकों ने क्षहरात साम्राज्य के उत्तरी प्रान्तों को अपने अधिकार में बनाए रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि नहपान की मृत्यु के साथ ही क्षहरात वंश का अंत हो गया। कुषाण साम्राज्य के दक्षिण-पश्चिमी प्रान्तों के क्षत्रियों के रूप में अब कारदमक वंश के शक अथवा सीथियन शासकों ने अब क्षहरात वंश के शासकों का स्थान लिया।

### III कारदमक वंश के क्षत्रप शासक :-

1. चष्टन :- पश्चिमी भारत में सीथियन अथवा शक जाति के नए राजवंश की स्थापना का श्रेय यशामोतिका (अथवा धरमामातक) के पुत्र चष्टन, जो कि कारदमक वंश से सम्बन्ध रखता था, को जाता है। कुछ विद्वानों का मत है जिनमें हमचन्द्र रायचौधरी एक है, कि कारदमक वंश का नामकरण बैक्ट्रिया प्रदेश में स्थित करदम नदी के नाम पर हुआ है। क्षहरात वंश के शासक नहपान की तरह ही चष्टन के भी आरम्भिक सिक्कों पर उसका उल्लेख क्षत्रप तथा बाद के सिक्कों पर महाक्षत्रप के रूप में हुआ है। साथ ही उसने राजन् की भी धारण की। कारदमन वंश के शासकों के आरम्भिक निवास स्थान की हमें कोई जानकारी नहीं मिलती; परन्तु, ऐसा माना जाता है कि चष्टन अपने आरम्भिक काल में कुषाण शासकों के सामंत के रूप में सिंध प्रदेश पर शासन किया। नहपान की मृत्यु के पश्चात् कुषाणों ने इस ध्येय से चष्टन को अपने दक्षिण-पश्चिमी प्रान्तों का अधिस्वामी बनाया कि वह सातवाहनो के हाथों हुई क्षहरात शासकों की हार का बदला लेते हुए छीने गए प्रदेशों को पुनर्विजित कर सके।

सीथियन तथा कुषाण साम्राज्यों के कुछ प्रान्तों में यह प्रथा प्रचलित थी कि इनका वायसराय (अधिस्वामी) महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर अपने एक विश्वास पात्र अधीनस्थ जिसे क्षत्रप कहा जाता था, के साथ मिलकर प्रशासन चलाता था। अतः जब चष्टन भी बड़ी आयु में महाक्षत्रप बन तब ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपने पुत्र जयदामन को अपना क्षत्रप चुना। परन्तु जयदामन शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ तथा उसके मरणोपरान्त नए क्षत्रप के रूप में उसके पुत्र रुद्रदामन को चुना गया।

कच्छ क्षेत्र में अन्धाऊ नामक स्थान से प्राप्त शिलालेखों से यह पता चलता है कि शक संवत् वर्ष 52 (130-31 ई.) में राजा चष्टन अपने पात्र राजा रुद्रदामन के साथ मिलकर शासन कर रहा था। ऐसा लगता है कि इस समय चष्टन महाक्षत्रप तथा रुद्रदामन क्षत्रप के रूप में कार्य कर रहे थे। अतएव हमें यह तो पता चल ही गया है कि कारदमक शासक नहपान की मृत्यु के पश्चात् गौतमी पुत्र शातकर्णी द्वारा स्थापित विस्तृत साम्राज्य के सीमावर्ती प्रदेशों में तो कम से कम अपने को स्थायी कर ही चुके थे।

ऐसे प्रमाण मिले हैं जो यह दर्शाते हैं कि चष्टन तथा रुद्रदामन के आधीन शकों ने सातवाहन शासक को हरा उसके उन उत्तरी प्रान्तों को उससे छीन लिया जो मूल रूप से पूर्व में नहपान के साम्राज्य का हिस्सा थे। टोलमी की पुस्तक **ज्योग्राफी**, जो कि लगभग 140 ई. में लिखी गई थी तथा जिसमें इस तिथि से कुछ पहले की घटनाओं का मूल्यांकन किया गया है, में भी ओजीन अर्थात् उज्जैन की जो कि अवंती अथवा पश्चिमी मालवा की राजधानी थी, का वर्णन तीअस्तनीज (जो कि निसन्देह चष्टन का बिगड़ा हुआ यूनानी नाम था) के मुख्यालय के रूप में हुआ है। रुद्रदामन के जूनागढ़ शिला लेख में भी इस शासक को आकर, अवन्ति, अनूप, अपरान्त, सौराष्ट्र तथा आनर्थ आदि अनेक देशों का स्वामी बताया गया है, जिन्हें शक शासकों ने गौतमी पुत्र से उस समय छीन लिया था जब सम्भवतः रुद्रदामन अपने दादा चष्टन के साथ एक क्षत्रक के रूप में शासन करता था। आगे रुद्रदामन यह भी दावा करता है कि उसने दक्षिण पथ के स्वामी शातकर्णी को दो बार हराया परन्तु उसका विनाश नहीं किया क्योंकि वह रुद्रदामन का निकट का सम्बन्धी था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शातकर्णी सम्भवतः गौतमी पुत्र अथवा एक दम बाद का उसका कोई उत्तराधिकारी रहा होगा। रुद्रदामन तथा गौतमी पुत्र के घनिष्ठ सम्बन्धों का हमें कान्हरी शिला लेख से भी मिलता है जो इस ओर इंगित करती है कि महाक्षत्रक रुद्र (निसन्देह रुद्रदामन) की पुत्री का विवाह वशिष्ठ पुत्र शातकर्णी से हुआ था जो कि वशिष्ठ पुत्र पुलुमावी का सहोदर भ्राता तथा गौतमी पुत्र शातकर्णी का पुत्र था।

चष्टन के आरम्भिक सिक्कों पर, 'चान्द तथा तारा' अंकित था। बाद में इस चिन्ह के अतिरिक्त पर्वत शिखर (कुछ लेखकों के अनुसार चैत्य) का भी चिन्ह चान्द तारे के चिन्ह के साथ जोड़ दिया। क्योंकि पर्वत शिखर का चिन्ह गौतमी पुत्र शातकर्णी तथा यज्ञश्री शातकर्णी के उत्तरी सिक्कों के साथ घनिष्ठता से जुड़ा है इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि यह प्रमाणित करता है कि सातवाहनों के स्थान पर चष्टन ने अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया था। यद्यपि चष्टन के शासन काल के पश्चात् शक सिक्कों पर ग्रीको-रोमन चिन्ह तो ज्यों के त्यों बने रहे परन्तु उन पर अब खरोष्ठी लीपि का प्रयोग समाप्त हो गया। संभवतः कारदमक मुख्यालय के खरोष्ठी लीपि प्रयोग करने वाले उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र से उज्जैन स्थानांतरित हो जाने के परिणामस्वरूप ही चष्टन के पश्चात् इस वंश के शासकों के सिक्कों पर खरोष्ठी का प्रयोग बन्द हो गया।

**2. रुद्रदामन :-** १३०.३१ ई. के कुछ पश्चात् चष्टन के स्थान पर उसका पौत्र रुद्रदामन प्रथम महाक्षत्रप बन सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके सभी प्राप्त सिक्के उसकके महाक्षत्रप बनने के बाद के काल के हैं। रुद्रदामन के शासनकाल के बारे में जानकारी प्राप्त करने का एक मुख्य स्रोत उसके द्वारा उत्कीर्ण जूनागढ़ शिलालेख है, जिसकी तिथि शक सम्वत् 72 अर्थात् 150-51 ई. मानी जाती है। इस प्रशस्ति का मुख्य विषय सुदर्शन झील पर बने बाँध का पुनर्निर्माण है, जिसका निर्माण उर्जयत (आधुनिक गिरनार) पहाड़ियों में से निकले सुवर्णसिक्ता तथा पलाषिनी जैसे झरनों के पानी को संरक्षित करने के उद्देश्य से हुआ था। यह झील गिरीनगर (आधुनिक जूनागढ़), जो कि सौराष्ट्र की प्राचीन राजधानी थी, से बहुत दूरी पर थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के वायसराय पुष्यगुप्त ने जन संरक्षण के लिए इस विशाल बान्ध की स्थापना की थी। मौर्य शासक अशोक के समय में सौराष्ट्र के उसके गवर्नर यवन राज तुशाष्य ने इस झील से सिंचाई हेतु कई नहरें निकालीं। इस झील से सौराष्ट्र के कृषकों को अनेक शताब्दियों तक लाभ होता रहा परन्तु 150-51 ई. से कुछ समय पूर्व एक भीषण चक्रवात के कारण इस बान्ध में बड़ी दरारें आ गईं। जिस कारण वश सुदर्शन झील का महत्वहीन हो गई। तब किसानों की दुविधा को दूर करने के लिए इस झील पर बने बान्ध की मरम्मत हेतु रुद्रदामन ने अपने सलाहकारों तथा प्रशासनिक अधिकारियों को भेजा। परन्तु ये सभी अधिकारी इस कार्य को करने में असफल रहे। अन्ततः रुद्रदामन ने पहलाव वंश के पुलैप के पुत्र सुविष्प को आनर्त तथा सौराष्ट्र का गवर्नर नियुक्त किया। इस पार्थियन अधिकारी के अथक प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही इस झील तथा बान्ध का जीर्णोद्धार सम्भव हुआ।

यह पहले ही वर्णित किया जा चुका है कि किस प्रकार रुद्रदामन ने दक्षिणपथ के स्वामी शातकर्णी को हरा कर मालवा, सौराष्ट्र, गुजराज, उत्तरी कोंकण तथा नर्मदा नदी के निकट के क्षेत्र माहिष्मती पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त इस महाक्षत्रप के साम्राज्य में कच्छ, शवन्न (साबरमती घाटी), मरु (मारवाड़ प्रदेश), सिन्धु (निचली सिन्धु घाटी का पश्चिमी भाग), सौवीर (निचली सिन्धु घाटी का पूर्वी भाग) तथा निषाद (पश्चिमी विन्ध्य तथा अरावली क्षेत्र) आदि प्रदेश भी सम्मिलित थे। अतएव, ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में स्थापित क्षहरात वंश के साम्राज्य के नासिक तथा पूना प्रदेशों को छोड़ लगभग सभी प्रदेशों पर रुद्रदामन ने पुनः अधिकार जमा लिया।

ऐसा माना जाता है कि रुद्रदामन प्रथम ने दक्षिणी पंजाब तथा उसके आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार किए हुए यौधेय गणतन्त्र को ध्वस्त कर दिया। संभवतः उसने यौधेयों का यह मानमर्दन अपने कुषाण अधिपति की ओर से किया हो, परन्तु कुषाण दस्तावेजों में ऐसे किसी संदर्भ के आभाव में कि रुद्रदामन कुषाणों के आधीनस्थ था, हमें यह मानने पर बाध्य होना पड़ता है कि इस समय वह व्यावहारिक रूप से एक स्वतंत्र शासक के रूप में शासन कर रहा था। साथ ही, रुद्रदामन के लेखों में उसके द्वारा महाक्षत्रप की उपाधि धारण करना भी इसी ओर इंगित करता है। फिर भी उसके दावे को हम वर्तमान में प्रमाणित नहीं कर सकते।

रुद्रदामन केवल एक महान विजेता तथा प्रशासक ही नहीं था अपितु वह पारम्परिक एवं प्राचीन संस्कृत का भी पोषक था। वह स्वयं

व्याकरण, राजनीति, संगीत एवं तर्क में तो निपुण था ही, साथ ही साथ अनेक संस्कृत गद्य तथा पद्यों की रचना करने का कारगर भी वह प्रसिद्ध था। कारदमक शासकों के अतर्गत उज्जैननी भारत में शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र बन गया। जूनागढ़ शिलालेख के अनुसार रुद्रदामन ने अनेक स्वयंवरों में भाग लिया तथा कई राजकुमारियों से विवाह किया। रुद्रदामन के समय कारदमक शासकों द्वारा विभिन्न राज्यों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना, इस ओर इंगित करता है कि शनः शनः सीथियन जाति का विदेश में प्रथम समाज में हो रहा था। साथ ही हमें कारदमक राजकुमारियों के दक्षिणपथ के सातवाहनों, आंध्रपथ के इक्ष्वाकुओं तथा वशावती के लिच्छवी राजपरिवारों से विवाह के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जो कि ऊपर वर्णित तथ्य को ही प्रमाणित करते हैं।

**3. रुद्रदामन के उत्तराधिकारी :-** दामयसाद (कुछ लेखकों के अनुसार दामघसाद) अथवा दामजादश्री प्रथम, जो कि रुद्रदामन प्रथम का पुत्र था, ने भी अपने पिता के शासन काल में क्षत्रप के रूप में अपने सिक्के चलाए। इस से यह प्रमाणित होता है कि इन दोनों शासकों के समय तक 'संयुक्त प्रशासन' की वह प्रथा, जिसमें राजा महाक्षत्रप कहलाता था तथा जो अपने पुत्र अथवा भाई-भासों के उससे प्रतिष्ठा में निम्न होते थे तथा क्षत्रप कहलाते थे, के साथ संयुक्त रूप से शासन करता था, वह कारदमक वंश में प्रचलित होकर स्थायी हो चुकी थी। 150-51 ई. के कुछ समय पश्चात् दामयसाद ने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में महाक्षत्रप बन शासन करने लगा। दामयसाद अथवा दामयजाद के नाम का उल्लेख उसके भाई तथा उसके भतीजे के काल की आधिकारिक कारदमक पशावली में नहीं मिलता। हालांकि यह बिलकुल अप्राकृतिक नहीं है कि एक वंश की मुख्य शाखा के शासक का उल्लेख उसी वंश के सहायक शाखा के शासकों के शिलालेखों में न मिले क्योंकि ऐसी सहायक वंशावलियों में पिता के पश्चात् साधारणतया उसके उत्तराधिकारी पुत्र का ही उल्लेख मिलता था, फिर भी रैप्सन ने इस आधार पर यह सुझाया है कि संभवतः दामयजाद की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई रुद्रसिंह तथा पुत्र जीवदामन में उत्तराधिकारी के लिये युद्ध हुआ।

क्षत्रप के रूप में जीवदामन के किसी भी सिक्के की हमें कोई जानकारी नहीं मिलती तथा इस आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि उसने अपने पिता के शासन काल में कोई भी प्रशासनिक उत्तरदायित्व नहीं निभाया। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् जीवदामन महाक्षत्रप के पद पर आसीन हुआ परन्तु शीघ्र ही उसके चाचा रुद्रसिंह प्रथम ने उसे सत्तच्युत कर दिया। महाक्षत्रप के रूप में जीवदामन ने लगभग शक सम्बत् 100 (अर्थात् 178-79 ई.) में सिक्के जारी किये। जीवदामन तथा रुद्रसिंह के शासन काल से ही कारदमक वंश के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर ब्राह्मी लिपि का प्रयोग आरम्भ हो गया। विशेषकर चांदी के सिक्कों पर तिथि का वर्णन ब्राह्मी अंकों में हुआ है।

रुद्रसिंह ने क्षत्रप के रूप में अपने सिक्के शक सम्बत् 102 (180-81 ई.) में जारी किये तथा गुण्ड अभिलेख के अनुसार अगले वर्ष के आरम्भ तक उसने अपने भतीजे जीवदामन के आधीन क्षत्रप के रूप में कार्य किया। शक वर्ष 103 (ई. 181-82) के उत्तरार्ध में रुद्रसिंह प्रथम ने जीवदामन को हरा कर महाक्षत्रप की उपाधि धारण की तथा इस क्षमता में शक वर्ष 103-110 (181-89 ई.) तथा शक वर्ष 113-118 (191-97 ई.) में सिक्के जारी किये। यह बड़ा आश्चर्यजनक है कि इस बीच के काल अर्थात् शक वर्ष 110-112 (188-91) तक रुद्रसिंह प्रथम ने जो सिक्के जारी किये उन पर केवल क्षत्रप की उपाधि ही अंकित है।

इस आधार पर रैप्सन ने यह मत प्रस्तुत किया है कि कदाचित् रुद्रसिंह प्रथम की शक्ति का इस बीच के काल में अस्थायी रूप से हास हो गया था तथा इस हास का मुख्य कारण जीवदामन की शक्ति का पुनर्उत्थान था जिसके चलते जीवदामन ने 188-91 ई. के बीच पुनः महाक्षत्रप के रूप में शासन किया। परन्तु यद्यपि जीवदामन के कुछ बाद के वर्षों (शक वर्ष 119-20 अर्थात् 197-98 ई.) के सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर की उसकी मुखाकृति प्रौढ़ता दर्शाती है तथापि 188-191 ई. के बीच उसके किसी सिक्के का हमें पता नहीं चलता। अतः भण्डारकर का यह कथन उचित लगता है कि विवादित काल (188-191 ई.) में रुद्रसिंह प्रथम की शक्ति का अस्थायी पतन का कारण जीवदामन न होकर ईश्वरदत्त का उदय था जिसके महाक्षत्रप की उपाधि दर्शाते उसके शासनकाल के प्रथम तथा द्वितीय वर्षों के सिक्के सौराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं। हालांकि कुछ लेखकों ने ईश्वरदत्त को अमीर जाति से संबद्ध बताया है परन्तु फिर उसके विषय में हमें कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती।

ऐसा माना जाता है कि दूसरी शताब्दी ई. अंत में सातवाहन शासक यज्ञश्री शातकर्णी ने कारदमक से उनके साम्राज्य के दक्षिण प्रान्त छीन लिये। यह संभव है कि ईश्वरदत्त के रुद्रसिंह के विरुद्ध अनुमानित सफलता का कारण भी उसे इस सातवाहन शासक का सहयोग प्राप्त होना ही था। जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि जीवदामन तथा रुद्रसिंह के आपसी संघर्ष से उत्पन्न स्थिति का यज्ञश्री शातकर्णी तथा ईश्वरदत्त दोनों ही ने लाभ उठाया।

रुद्रसिंह प्रथम के काल के अभिलेख तथा सिक्के सौराष्ट्र, मालवा तथा राजस्थान से प्राप्त हुए हैं। गुण्ड अभिलेख (3 तथा 4) सौराष्ट्र से हमें आमीर सेनापति बापक के पुत्र सेनापति रुद्रमूर्ति के द्वारा कराये गए पवित्र कार्यों का वर्णन मिलती है।

रुद्रसिंह प्रथम के पश्चात् जीवदामन पुनः महाक्षत्रप बना तथा उसने 197-99 ई. तक शासन किया। उसके भाई सदाशिव प्रथम



का एक अन्य पुत्र) ने क्षत्रप के रूप में कई सिक्के जारी किए परन्तु इन सिक्कों के जारी होने की तिथि निश्चित नहीं है तथा हम यह नहीं जानते कि सत्यदामन ने अपने चाचा महाक्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम अन्तर्गत शासन किया अथवा अपने भाई जीवदामन के। हम तो केवल निश्चित तौर पर यह कह सकते हैं कि जीवदामन ने युवा अवस्था में राजगद्दी सम्भाली परन्तु कालान्तर में वह इसे हार गया और केवल पुनः वृद्धावस्था में वह महाक्षत्रप बना।

कारदमक वंश का अगला शासक रुद्रसिंह-1 का पुत्र रुद्रसेन (प्रथम) बना। रुद्रसेन ने क्षत्रप के रूप में वर्ष 121 (199-200 ई०) में अपने सिक्के जारी किए। परन्तु मुलवासर (द्वारका के निकट) अभिलेख, जिसकी तिथि शक वर्ष 122- वैशाख माह (200-201 ई.) मानी गई है, के अनुसार इस वर्ष के आरम्भ में रुद्रसेन प्रथम ने महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर ली थी। महादेवी प्रभूदमा जिसका वर्णन महाक्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम की पुत्री तथा महाक्षत्रप रुद्रसेन प्रथम की बहन के रूप में मिलता है से सम्बन्धित कुछ मिट्टी की मोहरें बसारह (प्राचीन वैशली), जो कि बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित है, से पाई गई हैं। ऐसा लगता है कि इस राजकुमारी का विवाह किसी लिच्छवी सरदार से हुआ हो जो कि इस प्रदेश में गुप्त शासकों से उदय से पहले शक्तिशाली थे।

महाक्षत्रप के रूप में रुद्रसेन प्रथम ने गरह (सौराष्ट्र में जसदन के निकट) अभिलेख उत्कीर्ण करवाया जिसकी तिथि वर्ष 127 (205-206 ई.) मानी जाती है। उसके शासन काल का अन्त वर्ष 144 (222-223 ई.) में हो गया जब रुद्रसिंह प्रथम के एक अन्य पुत्र तथा उसके भाई सिंहदामन ने महाक्षत्रप की पदवी सम्भाली। इस काल के क्षत्रपों के सिक्के बहुत कम संख्या में प्राप्त हुए हैं। फिर भी यह पता चलता है कि वर्ष 144 (222-223 ई.) में रुद्रसेन प्रथम का पुत्र पृथ्वीसेन अपने पिता अथवा चाचा संघदामन के आधीन क्षत्रप के रूप में कार्य करता था। महाक्षत्रप संघदामन का शासन काल मात्र दो वर्ष (शक 144-145) का था तथा उसके पश्चात् रुद्रसिंह प्रथम का तीसरा पुत्र महाक्षत्रप दामसेन शासक बना।

दामसेन के सिक्कों पर वर्ष 145 से 158 (223-237 ई.) तक की तिथियां मिली हैं, परन्तु ऐसा सम्भव लगता है कि उसका देहान्त वर्ष 160 (238-49 ई.) से बहुत पहले नहीं हुआ क्योंकि यही महाक्षत्रप यशोदामन के द्वारा जारी किए गए सबसे आरम्भिक सिक्कों की ज्ञत तिथि है। महाक्षत्रप दामसेन के शासन काल में उसके भतीजे दामजदश्री II द्वितीय (रुद्रसेन प्रथम का पुत्र) ने वर्ष 154 तथा 155 (232-234 ई.) में क्षत्रप के रूप में सिक्के जारी किये। दामजदश्री के बाद दामसेन के पुत्र वीरदामन (शक सम्वत् 156-160 अथवा 234-239 ई.) ने क्षत्रप का पद संभाला। महाक्षत्रप दामसेन के शासनकाल के पश्चात् कारदमक शासकों द्वारा प्रचलित सीसे (पोटीन) के सिक्के, जो कि मुख्यतः मालवा तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में चलाए गए थे, बंद हो गए। पोटीन के सिक्के केवल महाक्षत्रपों द्वारा चलाए गए जो कि मालवा से शासन करते थे; जबकि क्षत्रप जो कि सौराष्ट्र-गुजरात से शासन चलाते थे, उन्होंने इन सिक्कों को जारी नहीं किया। यह सुझाया गया है कि इन सिक्कों का प्रचलन बंद हो जाना यह संकेत देता है कि या तो इस समय मालवा का कुछ भाग कारदमक महाक्षत्रपों के हाथ से छिन गया अथवा सीसे (पोटीन) के स्थान पर अब चांदी के सिक्कों का प्रचलन आरम्भ हो गया।

रैप्सन ने भी दूसरे मत को ही स्वीकार किया है। परन्तु यहां यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि तीसरी शताब्दी ई. के लगभग शकों को केवल आंतरिक फूट एवं विद्रोहों का ही सामना नहीं करना पड़ा, बल्कि उन्हें उत्तर की ओर से मालवों तथा दक्षिण की ओर से आमीरों ने भी भयाक्रांत किया। नन्दसा (प्राचीन उदयपुर राज्य) अभिलेख, जिसकी तिथि 226 ई. बतायी जाती है के अनुसार इस समय मालवा सरदार के श्रेष्ठ उपलब्धियों के कारण मालवा राज्य में स्वतंत्रता, शांति तथा समृद्धि की पुनर्स्थापना हुई। यह संभवतः इस ओर इंगित करता है कि इस समय कारदमक साम्राज्य का उत्तरी भाग मालवों ने उनसे छिन लिया।

दक्षिण की ओर उत्तरी महाराष्ट्र तथा उससे लगते प्रदेशों में आमीरों ने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की तथा 248-49 ई. में अपना सम्वत् चलाया। इसके कुछ समय पश्चात् हमें एक शक महादण्डनायक श्रीधरवर्मन का उल्लेख मिलता है जो मूल रूप से पूर्वी मालवा में कारदमक शासकों का गवर्नर था तथा इस समय के आते-आते व्यवहारिक रूप से एक स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य कर रहा था। श्रीधरवर्मन के शासन काल के 13वें वर्ष के साँची अभिलेख में वर्णित एक शक वर्ष पर विवाद है। कुछ लेखक इसे वर्ष 201 अर्थात् 279-80 ई. मानते हैं जबकि अन्य इसे वर्ष 241 अथवा 319-20 मानते हैं। श्रीधरवर्मन अपने लेखों में स्वयं को धर्मविजयी तथा भगवान महासेन का अनुयायी कहता है। तीसरी शताब्दी ई. के उत्तरार्ध में विदिशा तथा पदमावती के नाग शासक भी शक क्षत्रपों के प्रतिस्पर्धी बन उग्र पड़ौसी की भूमिका निभाने लगे थे।

सिक्कों के आधार पर यह माना गया है कि दामसेन, जिसने संभवतः क्षत्रप तथा महाक्षत्रप के रूप में शासन किया, के चार पुत्र थे। दामसेन के बड़े पुत्र क्षत्रप वीरदामन अल्फायु था तथा उसका निधन शक वर्ष 160 (238-39 ई.) में ही हो गया। उसके पश्चात् दामसेन का एक अन्य पुत्र यशोदामन क्षत्रप बना। इसी वर्ष यशोदामन महाक्षत्रप बन गया तथा उसने अपने भाई विजय सेन को अपना क्षत्रप बनाया। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यशोदामन ने केवल एक वर्ष (शक 160-61 = 238-39 ई.) तक ही महाक्षत्रप के



रुप में शासन किया क्योंकि महाक्षत्रप के रुप में विजयसेन के सिक्के शक वर्ष 161-72 अर्थात् 239-251 ई. तक पाए गए हैं। विजयसेन के सिक्के गुजरात, राजस्थान तथा सौराष्ट्र से बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं। विजयसेन का भाई तथा दामन का पुत्र दामजदश्री तृतीय अगला महाक्षत्रप बना। यह निश्चित नहीं है कि दामजदश्री III ने क्षत्रप के रुप में भी शासन किया अथवा नहीं। उसके सिक्के शक वर्ष 173 तथा 177 (251-56 ई.) के बीच प्राप्त हुए हैं। 240-275 ई. के बीच क्षत्रप के रुप में जारी किये गए शक शासकों के किसी सिक्के का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु यह कहना कठिन है कि क्षत्रप पद का अस्तित्व इस समय था अथवा नहीं।

दामजदश्री तृतीय के पश्चात् उसके भतीजे रुद्रसेन द्वितीय (वीरदामन का पुत्र) ने महाक्षत्रप की पदवी सभाली। महाक्षत्रप रुद्रसेन द्वितीय के सिक्के, जो बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं, पर अंकित तिथियाँ वर्ष 177 तथा 198 अर्थात् 255-277 ई. के बीच की हैं। परन्तु यह सम्भव है कि उसका शासन काल सिक्कों से प्राप्त प्रमाण से कुछ वर्ष पश्चात् तक चलता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्रसेन द्वितीय ने आन्ध्रपथ के इक्ष्वाकुओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये तथा इक्ष्वाकु राजा वीरपुरुषदत्त से अपनी पुत्री रुद्रधारा-भट्टारिका का विवाह कर दिया। रुद्रसेन के पुत्र विश्वसिंह ने वर्ष 197-200 (275-79) में क्षत्रप के रुप में सिक्के जारी किये तथा बाद में महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। क्षत्रप के रुप में वर्ष 200 (278-79 ई.) में विश्वसिंह का भाई भर्तृदामन उसका उत्तराधिकारी बना। सिक्कों से प्राप्त भर्तृदामन की आरम्भिक ज्ञात तिथि 282-83 ई. है। उसने महाक्षत्रप के रुप में कम से कम सन् 217 (295-96 ई.) तक शासन किया। भर्तृदामन के पश्चात् उसका पुत्र विश्वसेन उसका उत्तराधिकारी बना जिसके क्षत्रप उपाधि वाले सिक्के शक वर्ष 215 तथा 226 (293-305 ई.) के बीच मिले हैं। उसने महाक्षत्रप की पदवी धारण नहीं की तथा ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ष 270 (348-49 ई.) के पश्चात् यह पद अस्तित्व में नहीं रहा। विश्वसेन अन्तिम क्षत्रप था जिसे निश्चित तौर पर चष्टन के वंश से सम्बद्ध माना जाता है। ऐसा इसलिये कहा जाता है क्योंकि हमारे पास यह निश्चित सूचना है कि शक वर्ष 226 अर्थात् 304-305 ई. में जीवदामन का पुत्र रुद्रसिंह द्वितीय क्षत्रप के पद पर आसीन था जिसने कोई राजसी उपाधि धारण नहीं की तथा जिसके पूर्वज शासकों के साथ सम्बन्ध के बारे में हमें जानकारी नहीं मिलती। जो भी हो उज्जैन से शासन करने वाला अन्तिम शक क्षत्रप रुद्रसिंह तृतीय था जिसे लगभग 388 ई. में गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मार कर गुजरात तथा सौराष्ट्र प्रदेशों को अपने साम्राज्य का हिस्सा बना लिया। इस प्रकार उज्जैन के शक शासकों ने लगभग 250 वर्षों तक शासन किया।

#### IV उत्तर पश्चिम के क्षत्रप शासक :-

वर्ष 78 के तक्षशिला ताम्रपत्रों से हमें यहाँ से शासन करने वाली शकों की एक ओर शाखा के दो शासकों— लियक कुसुलक तथा उसके पुत्र पाटिक के बारे में जानकारी मिलती है जिन्होंने तक्षशिला के महाराय मोगा के आधीन क्षत्रप के रुप में शासन किया।

#### V मथुरा के क्षत्रप शासक :-

इस शाखा के शक शासकों सर्वप्रथम हगान तथा हगामश नामक क्षत्रपों का नाम आता है जिन्होंने कुछ समय के लिये मथुरा से संयुक्त रुप से शासन किया। उनका उत्तराधिकारी संभवतः रंजुबुल अथवा राजुबुल (राजुल) था जिसे मोरा (मथुरा के निकट स्थित) अभिलेख में महाक्षत्रप कहा गया है। उसके द्वारा स्ट्रेटो प्रथम तथा स्ट्रेटो द्वितीय के सिक्कों के अनुसरण के आधार पर ही यह माना जाता है कि राजुल ने पूर्वी पंजाब के यूनानी शासन का अंत किया। उसके पश्चात् उसका क्षत्रप पुत्र सोडास महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर शासक बना। मथुरा के सिंह स्तम्भ लेख के अनुसार वह तक्षशिला लेख में वर्णित तक्षशिला नरेश पडिक अथवा पाटिक का समकालीन था। अमोहिनी दान लेख में सोडास को महाक्षत्रप बताया गया है तथा यदि रैप्सन द्वारा खोजी गई इस लेख की तिथि (वर्ष 42) की विक्रमी सम्वत् का माना जाए जो निश्चित है कि इस शासक ने 17-16 ई. पू. में शासन किया। सोडास के वंशजों के संदर्भ में हमें अधिक जानकारी नहीं मिलती।

इस प्रकार मध्य एशिया की एक यायावर प्रजाति शक अथवा शी (यूनानी लेखकों के अनुसार शकाई) जिसका की जैक्सरटीज (सय-दरिया) के उत्तरी भूभाग पर अधिकार था तथा जिसका अवरोहण लगभग 164-160 ई. पू. में मध्य एशिया की ही एक अन्य खानाददाइ प्रजाति यू-ची के कारण दक्षिण की ओर हुआ तथा जिसने कालान्तर में सीस्तान, आरकोशिया (कान्धार) तथा बलुचिस्तान के रूप में भारत में प्रविष्टि पाकर दीर्घ काल तक भारत के उत्तरी तथा पश्चिमी भागों पर शासन किया, का अन्त हुआ।

## कुषाण वंश तथा उनका प्रशासन

मध्य भारत : रदताक अभिलेख से पता चलता है कि कनिष्क के राज्य के प्रथम वर्ष में उज्जैनी सम्मिलित था जहां उसका गवर्नर प्रशासन कर रहा था। इससे सिद्ध होता है कि उसने अपने प्रथम वर्ष में यह क्षेत्र पश्चिमी क्षत्रपों से जीता होगा क्योंकि विम कैडफिसस के राज्य में त यह क्षेत्र था नहीं।

**राज्य विस्तार :-** उपरलिखित विजयों तथा अपने पिता के राज्य, जो इसने प्राप्त किया, से पता चलता है कि कनिष्क के राज्य में मध्य एशिया से लेकर मध्य भारत तक अफगानिस्तान, काश्मीर, पंजाब सिन्ध, गुजरात सौराष्ट्र, मथुरा, कन्नौज, कौशांबी पाटलीपुत्र श्री चम्पा, बंगल, उड़ीसा इत्यादि क्षेत्र थे।

**शासन प्रबन्ध :-** कुछ अभिलेखों जैसे सारनाथ अभिलेख से ज्ञात होता है कि कनिष्क ने महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप बनस्पर को नियुक्त किया हुआ था इसी प्रकार मथुरा में भी महाक्षत्रप में लल तथा लाइक नामक क्षत्रप नियुक्त थे। इससे पता चलता है कि उसने अपने शासन में क्षत्रपीय प्रणाली चला रखी थी। कौशांबी क्षेत्र में धनदेव उसके आधीन राज्य कर रहा था। अयोध्या में भी मित्र राजाओं के बाद राज्य करने वाले सेन तथा वर्मन नाम वाले (प्रथम सदी) राजा कनिष्क तथा कुषाणों के आधीन थे। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार यौधेयों के द्वितीय प्रथम शताब्दी के सिक्के प्राप्त होते हैं तथा उसके बाद तीसरी चौथी सदी के सिक्के प्राप्त होते हैं परन्तु इर काल में उनके सिक्के नहीं मिलते। शायद वे भी कुषाणों के आधीन आ चुके थे। स्वामी ओमानन्द के अनुसार यौधेय कुषाणों को हरा स्वतन्त्र हुए थे तथा उन्होंने यौधेयगणस्य जय प्रकार के सिक्के चलाए जो उनकी कुषाणों पर विजय के उपलक्ष में चलाए गए।

रदताक (Ractak अभिलेख से भी हमें पता चलता है कि कन्नौज, साकेत, उज्जैन, पाटलीपुत्र तथा श्री चम्पा क्षेत्र के राजाओं ने उसकी आधीनता स्वीकरी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके आधीन राज्य करने लगे थे।

**कनिष्क तथा बौद्ध धर्म :-**

सी. यू की (Si-u-ki) के अनुसार कनिष्क शाक्यमुनी के धर्म को मानता था तथा उसने काश्मीर में बौद्ध संगीति का आयोजन किया था जिस की प्रधानता वसुमित्र ने की। इसमें 500 भिक्षुओं ने भाग लिया। इसके बाद कनिष्क बौद्ध धर्मानुयायी बन गया। तिब्बती बौद्ध भिक्षु भी काश्मीर में आयोजित संगीति का उल्लेख करता है जबकि मंगोलिया के बौद्ध साक्ष्य पंजाब के जालन्धर में इसका स्थान मानते हैं। सिंहली महाकाव्य चौथी संगीति का उल्लेख नहीं करते। परन्तु यह संगीति काश्मीर में हुई तथा वसुमित्र ने इसकी अध्यक्षता की। इसमें साकेत से अश्वघोष को आमंत्रित किया गया था। इस संगीति ने बौद्ध ग्रन्थों के ऊपर टीकाएं लिखी जो विभाषा कहलाती हैं। इसी संगीति में बौद्ध भिक्षुओं में मतभेद हो गए तथा बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों हीनयान तथा महायान में बंट गया। हीन पान में बुद्ध की मूर्ति पूजा नहीं थी तथा उनके अस्तित्व को केवल प्रतीकों द्वारा दर्शाया जाता था परन्तु अब महायान का उदय हुआ जिसमें बुद्ध की मूर्तियां बना पूजा की जाने लगी।

कनिष्क के बौद्ध होने का एक अन्य प्रमाण यह है कि उसने बुद्ध की प्रतिमा वाले सिक्कों का प्रचलन किया यद्यपि उसके सिक्कों पर अन्य धर्मों के देवी देवता भी थे परन्तु बौद्ध धर्म का वह मानने वाला था इस लिए बोडो (Boddo) या शाक्यमन बोडो (Sakyamana Boddo) लेख वाले सिक्के उसने चलाए जिस पर भगवान बुद्ध का खड़ा हुआ रूप दिखाया गया है। कनिष्क ने पेशावर में एक बड़ा स्तूप बनवाया जिसको कनिष्क तथा फाऊचर नामक विद्यवानों ने शाहजीवी ढेरी के स्तूप से समीकृत किया है। अलबनी के कथन अनुसार कनिष्क ने काश्मीर में कनिष्कपुरा में स्तूप बनवाया। इससे उसके बौद्ध होने का पता चलता है।

**अन्य उपलब्धियां :**

**शिक्षा साहित्य के क्षेत्र में :-** कनिष्क एक महान विद्या प्रेमी था तथा उसके दरबार में बहुत से साहित्यकार थे जिनमें अश्वघोष प्रमुख था जिसे वह पाटलीपुत्र से लाया था उसने संस्कृत काव्य बुद्धचरित लिखा जिसके 17 सर्गों में बुद्ध का चरित्र तथा शिक्षाएं वर्णित हैं। एक अन्य काव्य भी उसने लिखा जो सौन्दरानन्द था। सारिपुत्र प्रकरण अश्वघोष द्वारा लिखित नाटक है जिसके 9 अंक हैं। इसके अतिरिक्त नागार्जुन जो महायान धर्म का प्रबल प्रचारक था भी उसके राज्य का ही था। उसने अपने ग्रन्थ पञ्जापारमिता सूत्र में सापेक्षवाद (Theory of Relativity) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसने शून्यवाद का भी प्रचार किया जो शंकराचार्य के मायावाद से प्रभावित बताया जाता है। इसके अतिरिक्त चौथी बौद्ध संगीति के अध्यक्षता करने वाला विद्यवान वसुमित्र भी था जिसने बौद्ध धर्म ग्रन्थों टीकाएं लिखी। इस युग के अन्य विद्यवानों पार्श्व तथा संघरक्षक थे। चरक संहिता को रचने वाले चरक उसका राज्यवैद्य

था। उसने आयुर्वेद के अमूल्य अनुष्ठान तथा फार्मूले अपने ग्रन्थ में दिए। इस प्रकार उसक काल में शिक्षा साहित्य, दर्शनशास्त्र में बहुत उन्नति हुई।

**महान निर्माता** :- ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क एक महान निर्माता था। उसने अपने राज्यकाल में बहुत से बौद्ध विहारों का निर्माण किया। छठी शताब्दी ईसा में आए चीनी यात्री सांगयुग के अनुसार उसने अपनी राजधानी पुष्पपुर (पेशावर) में 400 फीट ऊँचा 13 मन्जिलों वाला एक भवन तथा टावर बनवाया जिस पर एक छत्र भी था। इस चीनी यात्री के अनुसार इस काल में इसका टावर तीन बार आग से नष्ट हो गया था। जिसे राजाओं ने पुनः बनवा दिया। इसी के नजदीक एक बौद्ध विहार भी बनवाया गया जो 10 सदी तक बौद्ध शिक्षा का केन्द्र रहा। मगध के राजकुमार को इसी विहार में शिक्षा के लिए भेजा गया था। चीनी राजकुमारों को कि उसके दरबार में बन्धक थे, के लिए उसने बौद्ध स्तूपों एवं विहारों का निर्माण करवाया था। ह्यूनसांग तथा फाह्यान ने भी कनिष्क द्वारा बौद्ध विहारों के निर्माण का उल्लेख है। अलवरुनी ने कनिष्क चैत्य का संदर्भ दिया जो इसी राजा ने बनवाया था। कनिष्कपुर नामक एक नगर को, तथा तक्षशिला के सिरकय स्थान पर नगर उसी के बसाए थे।

**गांधार तथा मथुरा कला** :- कनिष्क के काल में गांधार कला, जो कि यवन शैली से प्रभावित थी, का विशेष प्रसार हुआ इस काल की इस काल की बुद्ध, तथा बोधिसत्व मूर्तियां बहुत सुन्दर हैं। जो महापन बौद्ध सम्प्रदाय की हैं। गांधार क्षेत्र में असाख्य बुद्ध की प्रतिमाएं स्लेटी पत्थर लारम, स्टुको तथा बाद में धातु की भी बनी। भारतीय तथा युनानी शैली से बनी यह कला बुद्ध के जीवन जैसे जन्म सम्बोधि, धर्म चक्रप्रवर्तन, महापरिनिर्वाण इत्यादि से सम्बन्धित हैं। इन पर जो वस्त्र बनाए गए हैं वे विदेशी पारदर्शी हैं। गांधार कलाकारों ने शारीरिक सौंदर्य तथा बौद्धिकता पर बहुत बल दिया। कुछ देवियों की मूर्तियों का निर्माण भी इस काल में हुआ जिनमें हारीति तथा रोमा (रोम की देवी) आदि प्रमुख हैं। बामयान के बौद्ध प्रतिमाएं भी इसी काल में बनाई गईं।

मथुरा क्षेत्र में भी कला का एक प्रमुख केन्द्र इस काल में बन गया। यद्यपि मथुरा कला का प्रारम्भ गांधार कला के प्रभाव से हुआ परन्तु इस कला का उदय सांची, भारहुत की स्वदेशी कला के सूत्र को लेकर हुआ। फागेल महोदय भी इसी मत के हैं। वसुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार मथुरा में पहले से ही यक्षों नागों, तीर्थान्करों इत्यादि की मूर्तियां बन रही थी तथा इसी पृष्ठ भूमि में यहाँ क शिल्पियों ने बौद्ध प्रतिमाएं भी बनाना प्रारम्भ कर दिया। मथुरा में मूर्तियां बालुए पत्थर की बनी हैं। गांधार कला की तरह बुद्ध की मूर्छें नहीं दिखाई जाती तथा मूर्तियां प्रायः खड़ी दिखाई गई हैं। उनके शरीर के एक कन्धे पर कपड़ा तथा दूसरा नंगा है तथा सिर मुंडा हुआ है। बुद्ध के जन्म, महानिष्क्रमण, संबोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन तथा महापरिनिर्वाण को यहाँ भी विषय बनाया गया है। इसके अतिरिक्त मथुरा में कामुक मुखों वाले यक्ष यक्षिणीय भी दिखाई गई हैं। मथुरा के अतिरिक्त पंजाब का संघोल भी इसी कला का एक केन्द्र था जहाँ सैकड़ों की संख्या में यक्ष, यक्षिणियों शालभंजिकाओं की मूर्तियां बनी प्राप्त हुई हैं।

**व्यापार तथा वाणिज्य में उन्नति** :- कनिष्क के राज्य काल में इरान, मध्य एशिया, चीन, रोम इत्यादि से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गए थे। भारत के वस्त्र आभूषण, मसाले, सौंदर्य प्रसाधन रोम में बहुत प्रसिद्ध थे या भारी कीमत पर अमीर लोग खरीदते थे। इस व्यापार में भारत का अधिक लाभ होता था। जिसकी भरपाई के लिए रोम से सोने की मुद्राएं आती थी जिन्हे डाल कुषाण ने अपनी मुद्राएं बनवाईं। पेरीप्लस ने भी कहा है कि भारत से मोती, मलमल, हाथी दान्त, चन्दन तथा औषधियां रोम जाती थी। प्लिनियस ने भी रोमन लोगों की यह कह कर आलोचना की कि वे विलास की चीजों खरीदने में भारत को बहुत मात्रा में स्वर्ण मुद्राएं दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस काल में बहुत से व्यापारिक नगरों की स्थापना हुई जिन में बहुत समृद्धि देखने को मिलती है। जितना सगराकरण इस काल में हुआ हड़प्पा सभ्यता के बाद शायद ही कभी हुआ हो। कई विद्यवान तो इस काल को भारत का स्वर्ण युग भी मानते हैं।

**कनिष्क के उत्तराधिकारी** :- 23 वर्ष राज्य करने के पश्चात् कनिष्क की मृत्यु 101 ई. में हो गई तथा उसका उत्तराधिकारी उसका बेटा वाशिष्क बना जो कनिष्क के राज्य काल में मालवा का शासक था। उसने केवल चार वर्ष ही राज्य किया। उनका जन्म मथुरा से तथा दूसरा सांची (Sanchi) से प्राप्त हुआ है। मथुरा का लेख वर्ष 24 (102 ई.) तथा सांची का वर्ष 28 (106 ई.) अतिरिक्त मथुरा में जुष्क का उल्लेख है जिसने जुष्कपुरा नामक नगर बसाया। कुछ विद्यवान इसका समीकरण वाशिष्क से करते हैं, परन्तु इसका पता हमें कोई मुद्राएं नहीं मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी मृत्यु के पश्चात् कुषाण साम्राज्य पर संकट का बादल छा गया। जैसे-जैसे पता चलता है कि इस काल में साम्राज्य का बंटवारा हो गया था। पश्चिमी भाग पर वाशिष्क का पुत्र कनिष्क द्वितीय वर्ष 106 ई. में राज्य कर रहा था। तथा कनिष्क के पुत्र हुविष्क ने 106 से 138 तक राज्य किया। मार्शल के अनुसार हुविष्क ने वर्ष 106 से 138 तक केवल रजतिरज उपाधि धारण की तथा वाशिष्क की मृत्यु के पश्चात्, उसने कुछ वर्षों के लिए वाशिष्क के पुत्र कनिष्क द्वितीय के रूप में राज्य किया। तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् हुविष्क राजा बना। परन्तु इस मत को मानने में कठिनाई प्रतीत होती है।

### हुविष्क

वर्ष 28 (106 ई.) में हुविष्क कुषाण राज्य के सिंहासन पर बैठा। इसके अनेक अभिलेख तथा बहुत बड़ी मात्रा में सिक्के मिले हैं।

के सिक्के प्राप्त होते हैं। गया अभिलेख से पता चलता है कि उसका राज्य बिहार तक विस्तृत था। वर्दक बर्तन अभिलेख के अनुसार वर्ष 51-129 में उत्तरपश्चिम प्रदेश इसके राज्य में था न कि कनिष्क द्वितीय के। सिन्ध पर इसके अतिपत्य का कोई प्रमाण नहीं है संभवतः यह क्षेत्र रुद्रदामन प्रथम ने कुषाणों से छीन लिया हो।

मथुरा से प्राप्त जैन प्रतिमा पर लिखा लेख जो वर्ष 60 का है (138 ई) इसके काल का अन्तिम राजतंत्रिणी के अनुसार काश्मीर में एक नगर हुष्कपुर बसाया जो आज बारामूला के दक्षिण पूर्व में उस्कुर नामक गांव है। यहां पर उसने बौद्ध विहार का भी निर्माण किया। 631 ई. में जब ह्यूनसांग भारत आया तो वह इसी विहार में कुछ दिन अतिथि के रूप में रहा। गया के एक बौद्ध विहार का पुर्नउत्थान भी हुविष्क के काल में किया गया। इसके अतिरिक्त उसके सिक्कों सिंहासन पर बैठे राजा का चित्रण वज्रासन पर बैठे प्रतीत होता है। मथुरा में भी उसने एक बौद्ध मठ का निर्माण करवाया जिसका पता वर्ष की मथुरा बौद्ध प्रतिमा अभिलेख से लगता है। तथा इसके अतिरिक्त वर्ष 47 के मथुरा बौद्ध स्तम्भ अभिलेख से भी यही विदित होता है जो मथुरा के समीप जमालपुर से प्राप्त हुआ था। मथुरा के विहार के बहुत से स्तम्भ थे जो भिक्षु जीवक तथा कुछ भिक्षु धर्मदेव ने स्थापित करवाए थे। इसके अतिरिक्त इसके काल के वर्ष 51 में भिक्षु बुद्धवर्मन ने भी शाक्यमुनि की एक प्रतिमा मथुरा में स्थापित करवाई थी। इन आधारों पर प्रतीत होता है कि वह एक बौद्ध था।

**राज्य विस्तार :-** हुविष्क के काल में मथुरा का क्षेत्र तो उसके अधिकार में था ही तथा उसकी चांदी की कुछ दुर्लभ मुद्राओं का निचले सिन्ध क्षेत्र में पाए जाने से वह क्षेत्र भी इसके अधिकार में होने के प्रमाण मिलते हैं। पश्चिमी भारत से लगे क्षेत्रों में उसका अधिकार का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि चैष्टन के परिवार में उसके पोते रुद्रदामन प्रथम से पहले ये शक राजाओं ने केवल क्षत्रप उपाधि धारण की जबकि सर्वप्रथम रुद्रदामन महाक्षत्रप की। इससे प्रतीत होता है कि शायद ये लोग कुषाणों के आधीन थे तथा यह तिथि हुविष्क के राज्य काल में पड़ती है। उत्तरपश्चिम में हुविष्क का राज्य वर्दक या खवात (पूर्वी अफगानिस्तान) तक अवश्य था क्योंकि यहां से प्राप्त एक अभिलेख में इसके राज्यकाल का संदर्भ है तथा इस क्षेत्र में किए गए कुछ धार्मिक कार्यों का वर्णन है। यद्यपि वर्ष 31 के सुर्खकोताल अभिलेख में इसका नाम तो नहीं परन्तु कुषाण शासन का संदर्भ है यह भी इसी राज्य काल की है। चीनी साक्ष्यों से पता चलता है कि मध्य एशिया में 114-116 ई. में काशगार क्षेत्र पर कुषाणों (यू-ची) का काफी प्रभाव था। यह काल भी हुविष्क के काल में पड़ता है। इस तरह हम देखते हैं कि कनिष्क के साम्राज्य के अधिकतर भाग हुविष्क के काल में भी जैसे के तैसे रहे। केवल पूर्वी भारत में इसके अधिकार के प्रमाण नहीं मिलते।

**व्यापार :-** इस राजा के काल में बहुत से सोने के सिक्के चलाए गए जिनके पृष्ठ भाग पर न केवल भारतीय बल्कि इरानी, युनानी, रोमन तथा मिश्री देवी देवताओं का चित्रण है। ये सभी कुजुल कैडफिसस तथा कनिष्क के सिक्कों के भार प्रणाली पर आधारित है। इसके चांदी के सिक्के शायद निचले सिन्ध के क्षेत्र में ही चलाने के लिए थे। मथुरा के एक अभिलेख से इस काल में चांदी के सिक्के पुराण या आहत मुद्राओं के एक दान कोष में देने के प्रमाण हैं जिससे पता चलता है कि इसके काल में चांदी की आहत मुद्राओं (Punch-Marked coins) का प्रचलन था जो व्यापारिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। सोने के सिक्के तो अन्तराष्ट्रीय व्यापार के लिए थे। ताम्बे के सिक्के स्थानीय व्यापार के लिए थे जिनका वजन इसके काल में धीरे-धीरे 2 कम किया जाने लगा था। परन्तु इस प्रकार के सिक्कों का व्यापार के लिए माना जाना इस काल में कुषाण मुद्रा प्रणाली के सशक्त हाने के प्रमाण हैं तथा पूर्वी भारत के खोए जाने पर भी इसकी आर्थिक स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसा माना जाता है कि इसके काल में रोमन राजा हड्रियन के तथा अन्टोनिनस के दरबार में दूत भेजे गए जो शायद रोम के दक्षिण तथा पश्चिमी भारत से सीधी व्यापार होने से रोमन-कुषाण व्यापार को हुए नुकसान को पूरा कर पुनः व्यापार बढ़ाने के लिए एक प्रयत्न था। परन्तु शायद इस का कोई अधिक असर नहीं पड़ा।

### वसुदेव प्रथम

सुदेव प्रथम का राज्य काल संवत् 64 से 98 तक था। हुविष्क की अन्तिम ज्ञात तिथि 60 या 138 ई. थी। मथुरा के अभिलेख से इसके मथुरा क्षेत्र में प्रभाव या राज्य का पता चलता है परन्तु मथुरा के पूर्व और दक्षिण में वसुदेव का राज्य होने के कोई प्रमाण नहीं मिलता। पश्चिमी भारत के क्षत्रपों ने दक्कन क्षेत्र के अनेक भागों पर अपना अधिकार कर लिया था। जुनागढ़ अभिलेख वर्ष 72 या 149-50 ई. से पता चलता है कि सिन्धु सौवीर क्षेत्र पर रुद्रदामन-1 का अधिकार हो गया था इसके साथ-2 मध्य प्रदेश राजस्थान (जहां रुद्रदामन ने यौधेयों को हराया) भी कुषाणों के हाथ से निकल पश्चिमी क्षत्रपों के हाथ में चले गए। वसुदेव के काल में भी अफगानिस्तान के बेग्राम के द्वितीय नगर के ससानिद राजा शापूर द्वारा ध्वस्त करने के प्रमाण हैं। जिसे अधिकतर विद्वान वसुदेव द्वितीय मानते हैं। यदि यह सत्य है तो मथुरा से लेकर पाकिस्तान के उत्तरपश्चिमी प्रान्त तक वसुदेव प्रथम का साम्राज्य अवश्य रहा।

### कनिष्क तृतीय

मथुरा से प्राप्त कनिष्क की एक अभिलेख वर्ष 94 का है जो कनिष्क तृतीय ही था। इससे प्रतीत होता है कि वसुदेव जिसकी अन्तिम



ज्ञात तिथि 98 है न कुछ वर्ष कनिष्क तृतीय के साथ इक्वेटा राज्य किया। वसुदेव के बाद कनिष्क तृतीय ने राज्य प्रारम्भ किया इसका सम्बन्ध वसुदेव प्रथम से क्या था इसका पता हमें उसके सिक्कों से नहीं लगता जिसकी मुद्राएं बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान, सीस्तान, गान्धार तथा पंजाब से प्राप्त होती हैं। इसकी मुद्राएं मथुरा के क्षेत्र में प्राप्त नहीं होती हैं। इसका अर्थ है कि मथुरा क्षेत्र पर अब इसका अधिकार नहीं रहा। शहर-ए-बहलोल (पेशावर) से एक अभिलेख कनिष्क का है जो कनिष्क तृतीय ही था। इसके कुछ सिक्कों रोमन राजा कारकल्ला (Carcalla) (211-217 ई) से मिलते जुलते हैं इस आधार पर हम इसका राज्य काल 211 ई. से बाद में ही रख सकते हैं। डा. बी. एन. मुखर्जी का विचार है कि कनिष्क तृतीय हुविष्क का पुत्र था क्योंकि सोंख (Sonkh) से प्राप्त नाम के सिक्कों पर हुविष्क के पुत्र घनिष्क का नाम है।

## वसुदेव द्वितीय

कनिष्क तृतीय के पश्चात् हमें मुद्राशास्त्र के आधार पर वसुदेव द्वितीय के राजा होने के प्रमाण मिलते हैं जिसके सिक्के पृष्ठ भाग पर शिव तथा नन्दि है तथा अग्रभाग पर वसुदेव प्रथम की तरह वेदिका पर खड़ा राजा आहुति दे रहा है। परन्तु यह मुद्राएं वसुदेव प्रथम की तरह सुन्दर नहीं हैं तथा न ही इनमें सोने की मात्रा है जितनी वसुदेव प्रथम के थी। चिन्ह भी भिन्न प्राप्त हो रहे हैं। इसी के काल में माना जाता है कि बेग्राम का क्षेत्र शापूर ने ध्वस्त किया तथा जीता जिसका प्रमाण हमें नक्ष-ए-रुस्तम अभिलेख से मिलता है।

## वजेष्को या वाशिष्क

प्रो. गौब्ल (Gobl) तथा बी. एन. मुखर्जी का मत है कि वसुदेव जो के पश्चात् वजेष्को या वाशिष्क राजा बना जिसके सिक्के हम प्राप्त करते हैं जिसने वसुदेव द्वितीय के बाद पंजाब क्षेत्र पर राज्य किया। इस राजा का कनिष्क तृतीय या वसुदेव के सम्बन्धों के बारे में पता नहीं। बी. एन. मुखर्जी के अनुसार वह यू-ची या कुषाणों की किसी दूसरी शाखा से सम्बन्धित रहा होगा। वसुदेव द्वितीय कनिष्क के शाही परिवार का अन्तिम राजा प्रतीत होता है यद्यपि इसके बाद भी कुछ कुषाण राजाओं का राज्य किन्हीं क्षेत्रों पर रहा।

## वासु

कुछ ताम्बे के सिक्कों पर अग्रभाग पर राजा सिंहासनारूढ़ दिखाया गया है तथा ब्राह्मी में वसु लिखा है। पृष्ठ भाग पर सिंहासन पर बैठी देवी अरदौक्षों है। यह सिक्के कुषाण प्रतीत होते हैं परन्तु इन पर युनानी लिपि में लेख न होकर ब्राह्मी में है। यदि हम इस वसु को कनिष्क तृतीय तथा वसुदेव द्वितीय के आधीन एक राजा के रूप में राज्य करने वाले से ही मिलाए तो लगता है कि बाद में इसने पंजाब क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इसके अतिरिक्त इस राजा के अन्य प्रकार के सिक्के भी प्राप्त होते हैं। डा. अल्तेकर इसे वसुदेव मानते हैं जो संभवतः कनिष्क तृतीय का पुत्र तथा उसके आधीन सीस्तान का क्षेत्रपति था।

## कुषाणों के पतन के कारण :-

कुषाणों के पतन के बहुत से कारण हैं इनमें प्रथम है कि कनिष्क के पश्चात् कुषाण वंश में कोई भी ऐसा राजा नहीं आया जो बड़े साम्राज्य को बचा कर रख सके। हुविष्क के काल में साम्राज्य, कुछ एक क्षेत्रों के अलग होने से अतिरिक्त, जाड़ा, मथुरा, पंजाब परन्तु वसुदेव प्रथम के काल में बहुत से क्षेत्र अलग हो स्वतन्त्र हो गए या अन्य राजवंशों ने हथिया लिए। वसुदेव के काल तक मध्य भारत, पूर्वी भारत तथा पश्चिमी भारत से कुषाणों का राज्य समाप्त हो चुका था तथा उनका राज्य पंजाब, मथुरा तक ही सीमित रह गया था। मथुरा से आगे के क्षेत्र में बरेली इत्यादि क्षेत्रों में पांचाल राजाओं का उदय हो गया। इनमें अहिदत्र, सप्तम अश्व नाम की मुद्राएं हैं जो प्रथम शताब्दी के अन्त तथा द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ की हैं। पंजाब, हरयाणा, उत्तरी राजस्थान आदि क्षेत्रों में यौधेयों ने कुषाणों को हरा अपना साम्राज्य फैला लिया। मथुरा में भी मारशिव नागों का अधिपत्य हो गया। हरयाणा के उत्तरी भाग हिमाचल तथा उत्तरांचल में कुणिन्द स्वतन्त्र हो गए। राजस्थान में भी गणराज्यों ने स्वतन्त्रता घोषित कर कुषाण राज्य का अन्त कर दिया।

**गुप्तों का उदय :-** बिहार क्षेत्र में गुप्त राजाओं का उदय हो गया। राखलदास बैनर्जी का मत है कि गुप्तों के उदय का कारण कुषाणों का पतन हुआ। उनके विचार में चन्द्रकुप्त प्रथम ने विदेशियों के अधिपत्य के विरुद्ध राष्ट्रीय अभियान चलाया तथा अन्त में स्वतन्त्र करा। परन्तु यह मत ठीक नहीं क्योंकि गुप्तों के उदय से पूर्व ही कुषाणों का राज्य मथुरा से आगे समाप्त हो चुका था।

**ससानी साम्राज्य के आक्रमण :-** ससानिद राजा शापूर प्रथम ने (241-72) में आक्रमण कर कुषाणों से अफगानिस्तान क्षेत्रों को जीत लिया। घिर्समैन द्वारा करवाई बेग्राम की खुदाई से इस शहर को शापूर द्वारा ध्वस्त करने के प्रमाण मिले हैं। हर्जोपल्ड के मतों के अनुसार वहरान द्वितीय ने (276-93) कुषाणों शकस्थान, सिन्ध सौराष्ट्र मालवा छीन लिए।

**पंजाब के नए विदेशी वंश :-** पंजाब क्षेत्र में शक, शीलद गडहर इत्यादि जातियों का उदय हो गया क्योंकि इनमें से इनके सिक्के प्राप्त होते हैं जो इनके स्वतन्त्र राज्य का प्रमाण है। इन कबालाई शक या कुषाणों न पंजाब से कनिष्क के वंशियों को हरा

दिया तथा समुद्र गुप्त के काल तक राज्य करते रहे जिसका प्रमाण एक गडहर सिक्के पर समुद्रगुप्त का लिखा नाम दर्शाता है। प्रयाग प्रशस्ति से ही इसी तरह के प्रमाण मिलते हैं।

आर्जुनायनों ने जयपुर आगरा क्षेत्र में अपने आप को कुषाणों से स्वतन्त्र करवा लिया। जबकि अजमेर, टोंक, मेवाड़ इत्यादि में मालव स्वतन्त्र हो गए। नान्दसा यूप अभिलेख से मालव श्री सोम के 225 ई में यज्ञ करवाने के प्रमाण हैं जो संभवतः उसने कुषाणों पर अपनी विजय के बाउ करवाया था। यौधेयों के सिक्कों पर भी यौधेय गणस्य जय के बाद द्वि तथा त्रि शब्द को विद्यवान यौधेयों की कुषाणों पर दूसरी तथा तीसरी विजय का द्योतक मानते हैं। प्रो. आल्लेकर का मत है कि कुषाणों के विरुद्ध भार शिव नागों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वाराणसी में अपनी विजय के उपलक्ष में उन्होंने दस अश्वमेघ यज्ञ किए। आज भी वहां दशाश्वमेघ घाट प्रसिद्ध है। बुन्देलखण्ड, इलाहबाद क्षेत्र में मघ वंश का उदय हो गया जिनका राजा रुद्र समुद्रगुप्त के समकालीन था। अयोध्या क्षेत्र पर मित्र अन्त नाम के राजाओं का क्षेत्र था। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में कुषाण राज्य को स्थानीय राजवंशों या गणराज्यों ने काफी नुकसान पहुँचाया तथा अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए।

## कुषाणों का प्रशासन

कुषाणों का साम्राज्य तत्कालीन अर्सासिद तथा ससानिद साम्राज्यों की तुलना में काफी कम समय तक रहा परन्तु फिर भी इनका अपना महत्त्व भारत ही नहीं बल्कि एशिया के इतिहास में रहा।

**दैविक उत्पत्ति का सिद्धान्त** :- कुषाण राजाओं ने अपने आप को देवपुत्र की उपाधि से सजाया जिसका अर्थ भगवान का पुत्र होता है। सर्वप्रथम कुजुल कैडफिसस ने इस उपाधि का धारण किया। बाद में अन्य राजाओं ने भी अपने अभिलेखों में इस उपाधि का प्रयोग किया। जैसे कनिष्क की कोशम तथा माट से प्राप्त अभिलेख इत्यादि से पता चलता है। उन्होंने यह उपाधि शायद चीनी उपाधि 'स्वर्ग के पुत्र' के आधार पर ली। इसके अतिरिक्त वाशिष्क के एक लेख में देवपुत्र के अतिरिक्त देवमानुष (या देव पुरुष) भी लिखा मिलता है। इनका अर्थ है कि कुषाण अपने आप को भगवान का पुत्र तथा देवता जैसा ही मानते थे। उनके सिक्कों पर भी राजा को कभी बादलों पर तो कभी उनके कन्धों से लपटें निकलती दिखा उनके देवी उत्पत्ति के सिद्धान्त को आगे बढ़ाया गया है। इसके अतिरिक्त मथुरा में माट नामक स्थान पर कुषाणों के देव कुल में राजाओं की प्रतिमाएं स्थापित की गई थी जो पूजने के लिए ही रही थी। जो इनके काल तथा मृत्यु के बाद भी पूजी जाती थी। रबताक अभिलेख से भी इसी प्रकार कनिष्क द्वारा अपनी तथा पूर्वजों की प्रतिमाएं स्थापित करने के प्रमाण हैं।

**वंशानुगत राजतन्त्र** :- कुषाणों का शासन राजतन्त्रात्मक प्रणाली पर आधारित था जो वंशानुगत था। पिता के पश्चात् पुत्र राजा बनाता था। रबताक अभिलेख से कुजुल कैडफिसस (परदादा) के पुत्र सददक्षन (दादा) के पुत्र विमकैडफिसस (पिता) तथा स्वयं उसके पुत्र (स्वयं) कनिष्क तक वंशावलि दी गई है इसके पश्चात् हमें अन्य साक्ष्यों से वाशिष्क, हुविष्क, वासुदेव इत्यादि का नाम मिलता है जो अपने पिता के पश्चात् राजा बनते चले गए।

**राजकुमार** :- कभी-2 शाही प्रशासन में राजकुमार को भी संयुक्त रूप से प्रशासक बना लिया जाता था जैसा कि आरा अभिलेख से पता चलता है कि जिसमें कनिष्क अपने पुत्र वाशिष्क के साथ राज्य करता दिखाया गया है। इस तरह के उत्तराधिकारी को राजकीय उपाधि तो दी जाती थी परन्तु सिक्के चलाने का अधिकार नहीं था। इस तरह का संयुक्त प्रशासन भारत में अनभिज्ञ न था इससे पहले शकों के राजा ऐजिज प्रथम एजिलिसिस तथा एजिज द्वितीय के काम में हो चुका था।

राजा तथा उत्तराधिकारी का प्रशासन चलाने में अन्य अधिकारी भी थे। अभिलेखों से उनके मंत्रियों तथा मुख्यमंत्री का भी पता चलता है। इनमें सेनापति, महादण्डनायक, दण्डनायक, होरमुर्त इत्यादि थे। कभी-2 ये अधिकारी धार्मिक कार्यों की भी निगरानी करते जैसे हुविष्क के काल में महादण्डनायक को बकानपति (या मन्दिर की देखरेख करने वाला) का कार्य भी दिया गया था जो शायद शाही देव कुल की देखरेख करता था। मनिकयाल अभिलेख से कनिष्क के दण्डनायक वेशपाशि को होरमुर्त या चढ़ावे का स्वामी (donation-master) कहा गया है जो कि उनके विहार में नियुक्त था। हमें यह पता नहीं है कि राज्य के ये अधिकारी क्या नकद वेतन पाते थे या इन्हें किसी अन्य प्रकार से वेतन मिलता है। कभी-2 तो किन्ही अधिकारियों को नकद वेतन के बदले जमीन इत्यादि भी दे दी जाती थी।

**सेना प्रबन्धन** :- कुषाणों के साम्राज्य विस्तार में सेना का बहुत महत्त्व था सेना के बड़े-2 अधिकारी तो थे ही परन्तु कनिष्क प्रथम के स्वयं सेना का संचालन करने का पता है। कुषाण सेना में पैदल, अश्वारोही, तीरन्दाज, हाथी इत्यादि थे। उनके सैनिक शास्त्रों का पता हमें उनके सिक्कों से पता चलता है जिनमें तलवार, भाला तीर कमान, गदा, त्रिशूल, दरांती (Scythe) इत्यादि थे। महादण्डनायक (मुख्य सेनापति) दण्डनायक (सेनापति) के अतिरिक्त मथुरा अभिलेख से हमें एक अन्य सैनिक अधिकारी बलाधिक यः बलाध्यक्ष का पता चलता है जो (Superior) सेना का अध्यक्ष रहा होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि क्या कुषाणों के पास नौसेना थी या नहीं।

**क्षत्रप प्रणाली :-** कुषाणों ने क्षत्रप प्रणाली का प्रयोग अपने प्रशासन में किया था। उन्होंने अपने राज्य को बहुत से भागों (Sraptes) में बांटा था जहां प्रशासन के लिए महाक्षत्रप नियुक्त किए थे जिनके प्रमाण हमें अभिलेखों से मिलते हैं। कभी-2 महाक्षत्रप के साथ क्षत्रप की नियुक्ति भी की जाती थी। महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप वनस्पर बनारस क्षेत्र के प्रशासक थे क्षत्रप लिष्क, क्षत्रप वेश्पशि क्षत्रप अवखझद उत्तरपश्चिमी भारत क्षत्रप गणभरयक कपिशा का प्रशासन देखते थे इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से उदाहरण इस काल के हमें प्राप्त होते हैं।

कुषाणों के साम्राज्य में विषय तथा मुक्ति शब्द भी साहित्य से मिलता है गुप्त अभिलेखों में मुक्ति प्रदेश तथा विषय जिले के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी भारतीय अभिलेखों में आहार नाम मिलता है जो कि कुछ गांवों के ऊपर की एक प्रशासनिक इकाई था। सांची के एक अभिलेख में उज्जैनी आहार का वर्णन है जो कुषाण साम्राज्य में था। सबसे निचली इकाई गांव थी। जिसका प्रशासक ग्रामिक था। मथुरा अभिलेख में वासुदेव प्रथम के काल के एक ग्रामिक का संदर्भ है। एक अन्य मथुरा अभिलेख (वर्ष 46) में पिता तथा पुत्र दोनों को ग्रामिक उपाधि का वर्णन है। इसी तरह कनिष्क प्रथम की दूरा अभिलेख (वर्ष 16) में वंशानुगत ग्राम प्रमुख का वर्णन है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि ग्रामिक का पद वंशानुगत था जिनकी जुम्मेवारी कानून तथा व्यवस्था की थी। कुषाण काल में हमें कनिष्क प्रथम के एक अभिलेख में वहारी (या वहारिक) का संदर्भ है जो कि संस्कृत का व्यवहारिक ही होगा। मौर्य काल में हमें व्यवहारिक तथा नगर व्यवहारिकों का पता चलता है जो कि मैजिस्ट्रेट थे। इस काल में भी इनका काम न्यायव्यवस्था सम्बन्धित रहा होगा।

कुषाण काल में हमें सीमान्त क्षेत्रों में किलाबन्द निगरानी चौकी (fortified watch stations) का संदर्भ मिलता है जिसका अधिकारी की उपाधि करल्लानो (lord of marches)। ये सैन्य कार्यों के अतिरिक्त शायद कस्टम चौकी (custom house) का भी कार्य करती होगी।

**वित्तीय प्रबन्धन :-** कुषाण काल में आर्थिक समृद्धि काफी अधिक थी तथा लोग काफी अच्छी तरह से रह रहे थे। कुछ सदन हम इस काल में सामन्तों तथा बड़े-2 लोगों के उन द्वारा उत्कीर्ण अभिलेखों से मिलते हैं गृहपतियों इत्यादि धार्मिक कार्यों के लिए दान देने के उपलक्ष में बनाई गई थी।

राज्य की आय में युद्ध से प्राप्त लूटपाट तथा हर्जाने इत्यादि का भी योगदान था। चीनी साक्ष्यों से हमें पता चलता है कि कनिष्क के पाटलीपुत्र अभियान से उसे अश्वघोष नामक विद्यवान के अतिरिक्त अपार धन मिला। अपने आधीन राजाओं तथा नज्जस भी सालाना कर प्राप्त किया जाता था। चीनी साक्ष्य हाऊ हान शू से पता चलता है कि कुषाणों के निचली सिक् क्षेत्र की विजय में वह बहुत अमीर तथा शक्तिशाली बन गए थे। इसी साक्ष्य से हमें भारतीय रोमन व्यापार का भी पता चलता था जो भारत के पक्ष में था रोमन लेखकों ने भी बड़े दुःख होकर लिखा है कि वहां के अमीर लोगों की फजूलखर्ची के कारण बहुत सा धन भारत चला जाता है। कुषाणों के सीमान्ता क्षेत्रों में निगरानी चौकियां (custom posts) का वर्णन है जहां शुल्क (Toll tax, duties) इकट्ठा किया जाता था। कुषाणों द्वारा बड़ी मात्रा में सोने तथा ताम्बे सिक्कों के प्रचलन से पता चलता है कि टैक्स इत्यादि सिक्का में भी लिए जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी कर वसूला जाता था। बेग्राम की खुदाई से कुषाण काल का एक बड़ा शाही गादाबल मिला है जिसे मार्टिनर व्हीलर उस समय का कस्टम डिपो मानते हैं। जहां बाहरी व्यापार से शुक्ल वस्तुओं इत्यादि (kind) में इकट्ठा किया जाता था। कुछ अभिलेखों से पता चलता है कि उनका खजाना बहुत से कीमती पत्थरों तथा धातुओं से भरा था। यह भी इन कीमती पत्थरों तथा धातुओं के रूप में कर वसूलने की बात सिद्ध करता है।

खदानों से राज्य की आय का वर्णन हमें चीनी साक्ष्य से लगता है। मा त्वान लिन (Ma Tuan Lin) ने लिखा है कि यू- ची क्षेत्र कुषाणों में पहाड़ों से बहुत से कीमती पत्थर तथा धातुएं निकाली जाती थी। अर्थशास्त्र में खनन कार्य पर राज्य का नियंत्रण था शायद इस काल में भी ऐसा ही होगा। तारानाथ नाम तिब्बतीय विद्यवान ने कनिष्क प्रथम के काल में सांची क्षेत्र में उसी समय हुई रत्न (diamonds) की खदानों से बहुत समृद्धि होने की बात लिखी है। इसी तरह अक्कार (मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र) में भी रत्न के खानों का टालमी (Ptoimy) ने वर्णन किया है। इस क्षेत्र में कुषाणों का अधिपत्य कनिष्क के समय से रहा है।

क्या इस काल में आम लोगों पर भाग भोग या कर जैसे कर लगाए जाते थे जिसका प्रमाण कुषाण से पहले मिलता है। यह कठिन है क्योंकि हमें इसके सीधे प्रमाण नहीं मिलते। परन्तु समकालीन सातवाहन तथा क्षत्रप साक्ष्यों से इस तरह के कर हान की बात है। कुषाण काल में भी इस तरह के कर रहे होंगे। क्योंकि करों से प्राप्त आय से ही तो कुषाण राजा इतने अधिक सैन्य के सिक्के चला सके। कुषाण काल में चांदी की आहत मुद्राओं को चलते रहने के प्रमाण अभिलेखों में मिलते हैं, जैसे मथुरा से प्राप्त वर्ष 28 के अभिलेख से, इसके अतिरिक्त सिन्ध में कुषाणों ने चांदी के सिक्के भी चलाए ताकि उस क्षेत्र में चल रहे चांदी के सिक्के की तरह उनका भी व्यापार में प्रचलन हो सके।

कुषाणों के सोने के सिक्कों के मध्य एशिय, रोमन क्षेत्र तक पाए जाने से कुषाणों के अन्तराष्ट्रीय व्यापार का सीधा-सीधा प्रमाण मिलता है। कुषाणों ने अपने सिक्के रोमन भार प्रणाली पर चला व्यापार में काफी आसानी ला दी थी।

कुषाणों अभिलेखों से हमें वणिज, सार्थवाह (दूसरी जगह जाकर व्यापार करने वाला) व्यवहारिक (व्यापारी या मैजिस्ट्रेट?) श्रेष्ठिन (श्रेणियों का अध्यक्ष) तथा श्रेणियों (व्यापारियों का संघ) इत्यादि का पता चलता है। व्यवहारी परिवार का मथुरा के अभिलेख से। सेरटी का कारला अभिलेख से, कुछ सिक्कों गन्धिकों (Perfume dealer) की श्रेणी का पता चलता है जो सिक्कों भी चलाती थी। इसके अतिरिक्त लोहवणिज, बदिक इत्यादि द्वारा दान देने के भी प्रमाण हैं। कनिष्क संवत् 28 की एक अभिलेख से एक श्रेणी का वर्णन है जिसने अक्षनीवी (Perpetual Endowment) पुराण नाम सिक्कों में दिया तथा कुछ भलाई के कामों के लिए दो श्रेणियों को नियुक्त किया। इस तरह हम इस काल में इन श्रेणियों को एक बैंक के रूप में भी देख सकते हैं जिनके पास जमा पैसे के ब्याज की आय से धार्मिक कार्य करने के प्रमाण हमारे पास हैं। रुद्रदामन जो पहले कुषाणों के आधीन था के एक अभिलेख से पता चलता है कि उसने नगरों, निगमों (market road or emporium) तथा गैर नगरीय क्षेत्रों को भी चोर डकैतों जंगली जानवरों इत्यादि से सुरक्षित कर दिया। इसका मतलब है कि नगर तथा ग्रामीण क्षेत्रों दोनों की सुरक्षा राज्य का काम था जो लोगों से कर वसूलने के ऐवज में राज्य का काम था।

कुषाण काल में मौर्य काल की तरह व्यापार पर राज्य का नियंत्रण नहीं था। खनन पर तो राज्य का एकाधिकार था न ही उन्होंने समान भार प्रणाली (Common weight system) को लागू किया अलग-2 स्थानों पर अलग-2 भाग प्रणाली थी। तक्षशिला में यह 52.2 ग्रेन थी जो चांदी के सिक्के कार्षापणों पर आधारित थी। मथुरा से आधक का वर्णन है तथा साथ ही प्रस्थ (1/4 of आधक) घटक (द्रोण) तथा मल्लक का वर्णन है। जो उस समय के सतेर (स्टेटर) द्रम (ड्रैकम) इत्यादि पर आधारित थी। कुषाणों की राज्य की कोई कारखाने या इण्डस्ट्री नहीं थी उनका व्यापार से शुल्क इकट्ठा कर के ही प्रमाण हैं। बड़े टैक्स को सिक्कों में दिया जाता था। कभी-2 व्यापारियों को भी शुल्क इत्यादि इकट्ठा करने लगा दिया जाता था जिसका प्रमाण चीनी साक्ष्य यु यांग त्स शु (yu-yang-tsa tsu) से मिलता है जहां कनिष्क को एक व्यापारी से किसी घटना का स्पष्टीकरण मांगते दिखाया गया है। क्योंकि राज्य के वित्तीय संसाधनों को दुरुस्त रखने में वे राज्य का साथ देते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुषाण काल में राज्य में बहुत समृद्धि थी जो कि उनके क्षेत्र, विशेष कर निचले सिन्ध क्षेत्र, की कृषि उपज, अन्तराष्ट्रीय व्यापार, खनन, अधीनस्थ राज्यों से करों इत्यादि से प्राप्त आय से थी। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार उनका खजाना रत्न, मणियों कीमती पत्थरों धातुओं से भरा पड़ा था। आम लोगों की समृद्धि का पता हमें उस काल के व्यापारियों, श्रेणियों द्वारा किए धार्मिक कार्य, विहार निर्माण, मुर्तियां लगवाने तथा अन्य कार्यों से लगता है। उत्खनन से इस काल के नगरों की समृद्धि का पता चलता है। जितना नगरीकरण इस काल में हुआ उतना कभी नहीं हुआ। बड़ी मात्रा में सिक्कों का प्रचलन था जो सोने तथा ताम्बे इत्यादि के थे। इससे उस काल के समृद्ध व्यापार का पता चलता है। यदि चीनी तथा बौद्ध साक्ष्यों को माना जाए तो लोगों की आर्थिक स्थिति इस काल में बहुत अच्छी थी कम से कम नगरों के बारे में तो हम यह कह ही सकते हैं। जहां पक्की इंटों के घर बनवाए जाते थे तथा बड़ी-2 इमारतों, मन्दिरों, बौद्ध विहारों, चैत्यो इत्यादि का निर्माण करवाया गया। इसी कारण बहुत से विद्यवान कुषाण काल को भारत का स्वर्णिम युग कहते हैं।



## गणराज्य (The Republics)

### गणराज्य (The Republics)

उत्तरपश्चिमी भारत में सिकन्दर के आक्रमण के समय बहुत से गणराज्य या गणतन्त्रात्मक शासन वाले कबीलों का बोलबाला था। इनमें से अधिकतर ने सिकन्दर का डट कर मुकाबला किया। इन्हीं कबीलों में से एक से लड़ाई के दौरान सिकन्दर घायल हो गया था तथा उसकी बैबीलोन में मृत्यु हो गई थी। इन्हीं में से कुछ तो रातन्त्रात्मक कबीले या राज्य भी थे। इनका आपस में भी अगला यदा कदा होता रहता था तथा इनके इसी संघर्ष में कुछ गणतन्त्रात्मक कबीलों ने तो अपना अस्तित्व भी खो दिया था। इन गणतन्त्रात्मक राज्यों में झेलम और चनाब के मध्य राज्य वाले काठ या कठाई। इन्हीं के समीप के क्षेत्र के शिबी या सिबाई, झेलम तथा चनाब के संगम पर राज्य कर रहे क्षुद्रक, रावी के नीचे वाले भाग में मालव या मल्लोई इत्यादि प्रमुख थे। परन्तु मौर्य साम्राज्य के फैलाव में इन सबको अपना अस्तित्व खोना पड़ा। कुछ कबीलों या गण राज्यों को तो अपना क्षेत्र छोड़ दूसरे स्थानों पर जाना पड़ा जैसे मालव अपने प्रारम्भिक क्षेत्र से पंजाब के पूर्वी भाग रोपड़, पटियाला, लुधियाना, संगरूर, भटिंडा, फिरोजपुर इत्यादि न बस तथा उन्हीं के कारण सतलुज तथा घग्गर का क्षेत्र मालवा कहलाया। इसके बाल पुनः इन्हें यहां से मध्य प्रदेश के आज के मालवा क्षेत्र में जाना पड़ा जो नाम भी इसी कबीले के नाम पर है। यहीं से इनकी मुद्राएं प्राप्त होती हैं। परन्तु मौर्य काल के अन्त के काल में तथा शुंगों के काल में जब सीमान्त प्रदेश पर केन्द्रिय शासन ढीला पड़ गया तो इन गणराज्यिक कबीलों ने अपनी स्वतन्त्रता धारित कर अपने सिक्के चलाने शुरू कर दिए। द्वितीय शताब्दी के आसपास जिन गणराज्यों का स्वतन्त्र स्वरूप हमें मिलता है उन में यौधेय, औयुम्बर, कुणिन्द, राजन्य इत्यादि प्रमुख हैं अपनी इस विजय के उपलक्ष में इन्होंने अपने सिक्कों पर आर्जुनायानाम जय यौधेयगणस्य जय, मालवगणस्य जय इत्यादि अंकित भी किया। इस काल में इन गणराज्यों में गैर-राजतन्त्रात्मक शासन था क्योंकि इनकी सत्ता राजा के हाथ में न हो कर गण के सदस्यों के हाथ में थी। परन्तु कुछ कबीलों का शासन राजतन्त्रात्मक रूप से भी चलता था जैसे औयुम्बरों के सिक्कों पर राजाओं के नाम हैं जिन में शिवदास, रुद्रदास, घग्गोष, महादेव इत्यादि हैं। इन गणराज्य का वर्णन पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में किया है।

#### (a) यौधेय

उत्तरपश्चिमी भारत के गणराज्यों में सबसे प्रमुख स्थान यौधेयों का है। इनके बारे में सबसे पुराना संदर्भ पाणिनी की अष्टाध्यायी में मिलता है जो कि ई. पूर्व पाचवी सदी की है। यहां पर इन्हे आयुध जीवी संघ कहा गया है यानि की आयुध (शस्त्रा) से अजायबक कमाने वाले। पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में इनका वर्णन किया है। महाभारत में इन्हें शिबी, त्रिगर्त के साथ ही बताया गया है। द्वितीय शताब्दी (150 A.D.) की रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख भी इनका वर्णन है। रुद्रदामन ने इन्हें हरान में गर्व महारूस किया (सद क्षेत्राविष्कृत वीर शब्दजातोत्सेका विधेयानाम याधेयानाम)। इस से हमें उस काल में याधेयो को शक्ति तथा महत्त्व का पता चलता है। तीसरी सदी की विजयगढ़ अभिलेख से हमें याधेयों के महाराज, महासेनपति का वर्णन मिलता है जो इनका नेता था। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भी जिन गणराज्यों को समुद्रगुप्त ने हराये था उनमें याधेयों का नाम भी है। महाम्युरी में याधेयों के दक्ष का भारज के उत्तरी क्षेत्र में राज्य करने वाले बताया है। कई पुराणों में भी यौधेयों का वर्णन है जहां इन्हें मध्यदेश में रहने वाला बताया गया है। चन्द्रगोमिन की चन्द्रव्याकरण तथा काशिका में भी याधेयों के बारे में संदर्भ है। दसवीं सदी की लिखी सामदयसूने के यशस्तिलक में याधेय क्षेत्र पटियाला जिले की तहसील राजपुरा होगा। ग्यारहवीं सदी के एक व्याकरण ग्रन्थ सरस्वतीकण्ठकभरण तथा बारहवीं सदी के वैजयन्ति में भी क्रमशः यौधेयों तथा उनके क्षेत्र के संदर्भ हैं।

**उत्पत्ति (origin)** :- महाभारत में याधेय गण के अतिरिक्त देवकी से उत्पन्न युधिष्ठिर के पुत्र यौधेय का संदर्भ है। इसी प्रकार के वर्णन मत्स्य पुराण में भी है। इसी कारण कई विद्यवान यौधेयों को युधिष्ठिर की सन्तान मानते हैं। हरिवंश के अनुसार याधेय उशीनर के वंशज हैं। वायु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा तथा कई अन्य पुराण भी इन्हे उशीनर से उत्पन्न मानते हैं। पारजीटर नामक विद्यवान के अनुसार उशीनर ने याधेयों, अम्बश्टों, नवराष्ट्रों को कृमिल नगर में स्थापित किया जो पंजाब के पूर्वी सीमा का शहर था। महाभारत में नकुल की पश्चिमी विजय के वर्णन में बहुधाज्यक क्षेत्र का वर्णन है। इसी प्रकार महाम्युरी में भी इसी नाम के संदर्भ हैं। राहतक के खाखर कोट से सर्व प्रथम यौधेयों के सिक्के तथा ठप्पे प्राप्त हुए जिन पर यौधेयानाम बहुधाज्यके लिखा है। इससे पता चलता है कि यह

शहर इनका एक महत्त्वपूर्ण नगर, टकसाल तथा संभवतः राजधानी भी था। महाभारत में भी इस क्षेत्र तथा इसके आसपास के क्षेत्र का यौधेय क्षेत्र में वर्णन है। महाम्यूरी में भी रोहितक से सम्बन्ध पता चलता है।

**राज्यकाल तथा क्षेत्र :-** साहित्यिक साक्ष्यों से यद्यपि हमें यौधेयों के ई. पूर्व पांचवीं सदी से लेकर बाहरवीं सदी तक प्रमाण मिलते हैं। परन्तु इतने दीर्घकाल में इनका स्वतन्त्र शासन कदापि नहीं रहा। पाणिनी ने इनका वर्णन किया है परन्तु जब सिकन्दर का आक्रमण हुआ उस समय के छोटे-2 राज्यों तथा गणराज्यों में यौधेयों का वर्णन नहीं है। कनिष्क के अनुसार अबस्तनई (Abastanai) जिन्हे पेरदिकको (Perdikkas) ने हराया था उन्हें जोहिया राजपूतों से सम्बन्धित माना जा सकता है। से जोहिया यौधेयों के वंशज थे। जयस्वाल नामक विद्यवान के अनुसार युनानी लेखकों ने जिस बिना नाम वाले गणराज्य का वर्णन ब्यास नदी के इस पार किया है वह यौधेय ही है। क्योंकि इस क्षेत्र को बहुत उपजाऊ तथा यहां के निवासियों को अच्छे कृषक तथा युद्ध में वीर कहा है। यह वर्णन यौधेयों पर ठीक बैठता है।

परन्तु इनके स्वतन्त्र रूप से राज्य करने के तथा सिक्कों के ढालने के प्रमाण हमें द्वितीय सदी ई. पूर्व से लेकर चतुर्थ सदी तक मिलते हैं। समुद्रगुप्त के अभिलेख में यौधेयों को हराने का वर्णन है तथा इसके बाद इन्होंने कभी भी स्वतन्त्र रूप से राज्य नहीं किया यद्यपि इनके संदर्भ किसी न किसी रूप में 12वीं शताब्दी तक प्राप्त होते हैं।

**राज्यविस्तार :-** यौधेयों के राज्य के विस्तार के बारे में विद्यवानों में काफी भ्रान्तियां रही हैं। वे इन्हे पाकिस्तान के भावलपुर क्षेत्र से पश्चिमी उत्तरप्रदेश तक के पंजाब हरियाणा, दिल्ली, उत्तरी राजस्थान (भरतपुर क्षेत्र) में राज्य करते बताते हैं। परन्तु इनके अलग-2 समय के राज्य का पता हमें इनके सिक्कों की प्राप्ति से भली भांति लग जाता है प्रथम चरण में यौधेयों ने द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर सिक्के चलाए जिन पर इनके प्रारम्भिक क्षेत्र बहुधाज्यक (रोहतक क्षेत्र) का नाम मिलता है। (यौधेयानाम बहुधाज्यके) ये सिक्के रोहतक (खोखर कोट), नौरंगाबाद, बामला क्षेत्र, पूर्व में हस्तिनापूर के आसपास के क्षेत्र, पश्चिम में कुरुक्षेत्र से आगे घग्गर नदी तक प्राप्त होते हैं। हिसार अग्रोहा क्षेत्र में इस समय अग्र या आगाच जनपद का क्षेत्र था। यहां ये सिक्के प्राप्त नहीं होते। प्रथम शताब्दी के आसपास उत्तरी भारत में शको का अधिपत्य हो गया तथा उन्होंने अपनी राजधानी मथुरा बनाई।

द्वितीय चरण में यौधेयों को अपना क्षेत्र छोड़ कर उत्तरांचल के पहाड़ी क्षेत्रों में जाकर शरण लेनी पड़ी। वहां पर इन्होंने जो सिक्के ढाले उन पर इनके कुल देव कार्तिकेय का चित्रण है। इस समय ये लोग अपने ईष्ट देव के नाम पर राज्य कर रहे थे।

तीसरे चरण में द्वितीय शताब्दी में ये लोग राजस्थान के क्षेत्र में रह रहे थे क्योंकि रुद्रदामन का इनको हराना इस गण के राजस्थान में रहने के द्योतक है। अपनी इस हार के कारण तथा क्षत्रियों के प्रभाव के कारण इस काल के मुद्रांको (Seals) पर हमें इनके महाक्षत्रय, महासेनापति उपाधियों का वर्णन मिलता है। शायद शक क्षत्रियों का सामना करने के लिए इन्होंने राजन्त्रात्मक प्रणाली अपना ली होगी। अपने राज्य के अन्तिम चरण में इनका क्षेत्र काफी व्यापक हो गया था। कुषाणों को हरा इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर यौधेयगणस्य जय लेख वाले सिक्के चलाए तथा चतुर्थ सदी में समुद्रगुप्त के काल तक ये राज्य करते रहे। इस समय में इनका राज्य विस्तार पाकिस्तान में भावलपुर से लेकर पंजाब (भारत) के अधिकतर प्रदेश हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल का कुछ भाग तथा राजस्थान के उत्तरी क्षेत्र तक था।

**सिक्के :-** यौधेयों ने ताम्बे तथा चान्दी दोनों धातुओं में सिक्के चलाए। चान्दी के तो एक ही प्रकार (छः सिर वाले कार्तिकेय प्रकार) के सिक्के मिलते हैं जबकि अधिकतर सिक्के ताम्बे के हैं। एलन नामक विद्यवान ने इनके सिक्कों को छः प्रकारों में बांटा है जिस वर्गीकरण को अधिकतर विद्यवान आंख मूंद कर मानते रहे। परन्तु इन में दो प्रकार के सिक्कों को हम इन से नहीं जोड़ सकते। इन में एलन का प्रथम प्रकार जिन पर केवल चिन्ह है तथा महाराज लिखा है। एक अन्य प्रकार, जिस पर मानुव या रावणस्य लिखा है, यह भी यौधेयों की प्रकार नहीं बल्कि पश्चिम उत्तर प्रदेश के किसी राजवंश के सिक्के रहे होंगे।

यौधेयों के प्राचीनतम सिक्के के गोलाकार, सिक्कों के एक तरफ बैल तथा ब्राह्मी लेख यौधेयानाम बहुधाज्यक है तथा दूसरी तरफ हाथी है। इसी काल के एक अन्य प्रकार जो कि आयताकार है पर बैल तथा यौधेयानाम लिखा है तथा पृष्ठ भाग खाली है।

प्रथम सदी के आसपास यौधेयों ने जो सिक्के चलाए वे चान्दी तथा ताम्बे के हैं इनके अग्रभाग पर छः सिर वाला कार्तिकेय खड़ा है तथा ब्राह्मी लेख भागवत स्वामिनो ब्रह्मण्य देवस्य कुमारस्य या भागवत स्वामिनो ब्राह्मण्य यौधेय है। तृतीय, चतुर्थ सदी के यौधेय सिक्के ताम्बे के हैं जिनके अग्रभाग पर एक सिर वाले कार्तिकेय का भाला लिए हुए चित्रण के साथ यौधेयगणस्य जय लेख है जबकि पृष्ठ भाग पर दाईं तरफ चलती देवी बनी है। कई बार अग्रभाग पर 'द्वि' या 'त्रि' शब्द लिखे मिलते हैं जिन्हे विद्यवान द्वितीय तथा तृतीय का छोटा रूप मानते हैं। इसका अर्थ क्या है इस बारे में विद्यवानों के मत भिन्न हैं। कुछ इन्हे यौधेयों की द्वितीय गणसदस्य तथा तृतीय सदस्य का द्योतक मानते हैं कुछ इसे दूसरी तथा तीसरी टकसाल का सूचक मानते हैं। स्वामी ओमानन्द तो इन्हे यौधेयों की कुषाणों पर दूसरी तथा तीसरी विजय सूचक मानते हैं।

## यौधेयगण की शासन प्रणाली :-

पाणिनी ने यौधेयों को एक गण (republic) कहा है तथा आयुध जीवी संघ की सजा दी है। जिसका अर्थ है कि ये लोग अपने-अपने-अपने से ही या सैनिक कार्यों से ही अर्जित करते थे। इस प्रकार इनका समीकरण हम युनानी नगर राज्य सपार्टा से कर सकते हैं। अपने इस शस्त्र बल के आधार पर ही ये द्वितीय शताब्दी ई. पूर्व में मौय या संभवतः शुंग शासन के अन्तिम चरणों में स्वतन्त्र हो गए। शकों, कुषाणों के काल में इन्हें अपने क्षेत्र को छोड़ कर पहाड़ी क्षेत्र में जाना पड़ा परन्तु कुषाणों के बाद इन्होंने पुनः मैदानी क्षेत्रों को विजय कर अपना स्वतन्त्र राज्य बनाया। अपने गण को इस समय उन्होंने अपने ईष्ट देवता को अर्पित कर संकट की घड़ी में लसी के नाम से शासन करने लगे। प्रथम सदी के इनके सिक्कों के लेख से हमें इसका पता चलता है। प्रो. अनन्त सदाशिव अलतकर का विचार है कि यौधेयों ने कुणिन्दों तथा आर्जुनायनों के साथ मिल कर एक संघ का निर्माण किया हुआ था तथा इस संयुक्त संघ की सना तथा विदेश नीति का संचालन एक काउंसिल करती थी जिसमें तीनों गण अपने सदस्य चुनते थे परन्तु यह केवल एक अवधारणा ही प्रतीत होती है, क्योंकि इस तरह के प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होते हैं। विजयगढ़, अग्रोहा तथा खोखर कोट (रोहतक) से हम कुछ ऐसे मुद्रांक तो प्राप्त हुए हैं जिन में यौधेय संघ के प्रमुख महाराज महासेनापति या महाशत्रय इत्यादि लिखे मिलते तो हैं परन्तु इस बात का प्रमाण नहीं है कि क्या वह पूरे संघ का नेता भी था। जहां तक महाराज शब्द का प्रयोग का प्रश्न है वह इस कारण हो सकता है कि कुछ समय के लिए यौधेयों ने शकों के विरुद्ध (रुद्रदामन) प्रभावी ढंग से लड़ने के लिए अपने सभी अधिकार एकल शासक को दे दिए थे जो उनका महासेनापति था। परन्तु इस तरह के कामचलाऊ प्रावधान से गण संविधान पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था। इसके बाद पुनः उन्होंने अपने सिक्के गण के नाम से चलाए। त्रितीय तथा चतुर्थ सदी के इन सिक्कों पर किसी महाराज-महासेनापति या महाशत्रय का नाम नहीं है केवल यौधेय गणस्य जय अंकित है।

### (b) कुणिन्द

उत्तरपश्चिमी भारत का एक अन्य गणराज्य कुणिन्दों का था जिन्हे साहित्य में कुलिन्द, कौणिन्द, कौलिन्द इत्यादि नामा से भी जाना जाता है। महाभारत में इस गण या कबीले (tribe) के बारे में यदा कदा संदर्भ आते हैं। यहां इन्हे पैशाच, अम्बष्ठ, बर्बर इत्यादि लोगों के साथ रखा है जो पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे। रामायण में भी कुणिन्दों के बारे में संदर्भ है। महाम्युरी में कुलिन्द एक स्थान का नाम दिया गया है जिसका यक्ष उष्ट्रपाद था। शायद यह नाम इस कबीले के कारण पड़ा हो। ब्राह्मिहिर की बृहत्संहिता में इन्हें उत्तरपूर्व के काश्मीरियों, कुलूतों तथा सीरिन्धरों के साथ रखा है। वायु, ब्रह्माण्ड भागवत तथा मार्कण्डेय इत्यादि पुराणों में भी इनका वर्णन है। टॉलमी (Ptolemy) की पुस्तक ज्याग्रफी में ब्यास, सतलुज, यमुना तथा गंगा के निकलने के पहाड़ी स्थान का नाम कुलिन्द्रेन (Kulindrene) दिया है जिसे हमें कुलिन्द या कुणिन्दों से सम्बन्धित मान सकते हैं। महाभारत में भी इन्हें पर्वतवासी माना है। इसी तरह वाग्भट्ट के ग्रन्थ काव्यानुशासन में भी कुलिन्द नामक पर्वत का संदर्भ है जिसे कुणिन्दों के क्षेत्र में होने के कारण नाम दिया गया हो। कुणिन्दों के पर्वतीय क्षेत्र के होने का प्रमाण इनके सिक्कों की प्राप्ति के स्थानों से भी मिलता है। कनिघन के अनुसार कुणिन्द सतलुजके पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे परन्तु एलन महोदय का कहना है कि कुणिन्द शिवालिक पर्वतों में यमुना तथा सतलुज के बीच ब्यास एवं सतलुज के उपरी भाग में रहते थे। इनके सिक्के गणवाल, हिमाचल में ज्वालामुखी, स्तपामेवा क्षेत्र, पंजाब में रोपड़, मुन्त संघोल, हरियाणा में करनाल, सुघ (यमुना नगर) इत्यादि क्षेत्र में मिलते हैं। रोपड़ के उत्खनन में इनके सिक्के उन स्तूपों में प्राप्त हुए हैं जिनकी तिथि 100 ई. पूर्व से 100 ई. के मध्य है। सिक्कों पर मिले लेखों से भी हमें इसी प्रकार के प्रमाण मिलते हैं।

**सिक्के :-** प्राचीन गणराज्यों में कुणिन्द गणराज्य ही अकेला ऐसा राज्य है जिन्होंने काफी मात्रा में चान्दी के सिक्के चलाए। यह उनकी समृद्ध आर्थिक स्थिति का द्योतक है। इनका क्षेत्र पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों के बीच का था जिससे इन्हे व्यापार में काफी लाभ रहता होगा। मैदानों के अनाज को वे पहाड़ी क्षेत्रों में भेजते थे तथा पहाड़ों की वस्तु मैदानों में विनिमय करते थे। इस कारण उन्हें ताम्बे के सिक्कों (जो स्थानीय व्यापार के लिए प्रयुक्त होते थे) के अतिरिक्त दूरदराज के क्षेत्रों में व्यापार के लिए चान्दी के सिक्का की जरूरत पड़ी ये सिक्के अर्द्ध ड्रैकम (Drachm) भार के थे तथा रेशम व्यापार प्रमुख केन्द्र तक्षशिला (Taxila) से भी प्राप्त हुए हैं। इनके सिक्के दो भागों में बांटे गए हैं प्रथम चान्दी तथा ताम्बे के हैं जिन पर अग्रभाग पर लक्ष्मी, हिरण तथा अन्य चिन्हा के साथ ब्राह्मी लेख राज कुणिन्दस अमोघभूतिस महाराज लिखा है जबकि पृष्ठ भाग पर चिन्ह तथा ख्रोष्ठी (Khrosthī) लेख जिनके अर्थ मान के लेख के समान है। ख्रोष्ठी का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि उत्तरपश्चिमी भारत में, जहां इसका प्रयोग होता था कुणिन्दों के सिक्के व्यापार में चलते थे। दूसरे प्रकार के सिक्के ताम्बे के हैं जिन पर अग्रभाग पर इनके ईष्ट देव शिव (क्षेत्रश्वर) का दिखाया गया है तथा लेख ब्राह्मी में है जो भागवत क्षेत्रश्वर महात्मनः है। पृष्ठ भाग पर केवल कुछ चिन्ह है। ये सिक्के उन्होंने उस समय चलाए

जब वे अपना राज्य अपने देव को समर्पित कर शासन कर रहे थे। इसी तरह के प्रमाण अन्य गणराज्यों में भी इस काल में मिलते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि एक प्रकार में तो कुणिन्द नाम मिलता है तथा दूसरे में नहीं।

**शासन प्रणाली** :- प्राचीन काल के गणराज्यों के समान कुणिन्दों का शासन भी गणतन्त्रात्मक ही था। जिसमें सैकड़ों ही कुल थे। महाभारत में कुणिन्दों को कुणिन्दशत सन्कुलम कहा गया है। इस से इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इन सैकड़ों कुल मिल कर एक संघ बनाया था। इस प्रकार के संविधान में इन कुलों के प्रतिनिधियों की एक सभा होती थी जो अपना एक मुखिया चुनती थी। जिसे राजा कहा जाता था कुणिन्दों के एक ऐसे राजा अमोघभूति के सिक्के हमें प्राप्त होते हैं जिन पर राजनः कुणिन्दस अमोघभूतिस महाराज लिखा है जिसका अर्थ है कि यह सिक्का महाराज अमोघभूति का है जो कुणिन्दों का राजा है। परन्तु परमेश्वरी लाल गुप्त राजा तथा महाराजा इवट्टे लिखने को गलत मानते हैं उनके अनुसार राजानः शायद राजन्य गण का द्योतक है जिनके साथ इनका संघ बना हुआ था परन्तु इसके कोई प्रमाण हमें नहीं मिलते। दूसरे राजन तथा महाराजन शायद यवनों के प्रभाव के कारण हो सकता है जिनमें सिक्कों पर बैसीलियस बैसीलियोन या महरजस रजतिरजस इवट्टा लिखा मिलता है। तो इस तरह हम देखते हैं कि प्रथम शताब्दी ई. पूर्व में जब इनका स्वतन्त्र शासन हुआ उस समय इन्होंने इस तरह के चुने हुए राजतन्त्र प्रणाली को अपनाया। दूसरी ओर बहुत से विद्यावान अमोघभूति को एक विरुद्ध (title) मानते हैं तथा उनका कहना है कि ये किसी अमोघभूति नामक राजा ने नहीं चलाए बल्कि एक लम्बे समय तक केवल विरुद्ध के नाम से ही चलाए गए। दूसरे प्रकार के सिक्के (छत्रेश्वर प्रकार) कुणिन्दों ने प्रथम शताब्दी में चलाए उस समय भारत पर शकों तथा कुषाणों का शासन था तथा बहुत से गणराज्य इनका मुकाबला न कर सके या तो इन्होंने इन विदेशी ताकतों की आधीनता स्वीकार कर ली या अपना क्षेत्र छोड़ पहाड़ों में सुरक्षित स्थानों पर चले गए जैसे यौधेय अपना क्षेत्र छोड़ कुणिन्दों के समीपवर्ती क्षेत्र में जा बसे। इस काल के गणराज्यों की विशेष बात यह है कि इस काल में इन्होंने अपने राज्य अपने ईश्वर देवता को अर्पित कर दिए थे तथा उन्हीं के नाम पर शासन कर रहे थे। यौधेय, कुणिन्द, औयुम्बर इत्यादि राज्यों के सिक्कों पर लेख इसी तरह की किसी व्यवस्था का द्योतक है।

प्रो. अलतेकर का विचार है कि कुषाणों के विरुद्ध यौधेयों, कुणिन्दों, आर्जुनायनों इत्यादि ने एक संघ बना रखा था परन्तु इस के प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होते केवल यौधेय सिक्कों पर द्वि तथा त्रि से दूसरे तथा तीसरे संघ सदस्य कुणिन्द या आर्जुनायनों को हम नहीं मान सकते क्योंकि कोई भी राज्य संघ में अपना अस्तित्व नहीं खोना चाहता। यदि ऐसा होता तो इनका भी नाम होता केवल द्वि या त्रि नहीं। परन्तु समुद्रगुप्त के इलाहाबाद अभिलेख में जिन गणराज्य का वर्णन है उनमें कुणिन्दों का नाम नहीं है। इससे पता चलता है कि प्रथम शताब्दी तथा चतुर्थ शताब्दी के बीच कुणिन्दों ने अपना राजनैतिक अस्तित्व खो दिया। शायद यौधेयों ने इन्हे जीत अपने क्षेत्र में मिला लिया।

### (b) कुणिन्द

उत्तरपश्चिमी भारत का एक अन्य गणराज्य कुणिन्दों का था जिन्हे साहित्य में कुलिन्द, कौणिन्द, कौलिन्द इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। महाभारत में इस गण या कबीले (tribe) के बारे में यदा कदा संदर्भ आते हैं। यहां इन्हे पैशाच, अम्बष्ठ, बर्बर इत्यादि लोगों के साथ रखा है जो पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे। रामायण में भी कुणिन्दों के बारे में संदर्भ है। महाम्युरी में कुलिन्द एक स्थान का नाम दिया गया है जिसका यक्ष उष्ट्रपाद था। शायद यह नाम इस कबीले के कारण पड़ा हो। वराहमिहिर की बृहत्संहिता में इन्हे उत्तरपूर्व के काश्मीरियों, कुलूतों तथा सीरिन्धरों के साथ रखा है। वायु, ब्रह्माण्ड भागवल तथा मार्कण्डेय इत्यादि पुराणों में भी इनका वर्णन है। टॉलमी (Ptolemy) की पुस्तक ज्याग्रफी में ब्यास, सतलुज, यमुना तथा गंगा के निकलने के पहाड़ी स्थान का नाम कुलिन्द्रेन (Kulindrene) दिया है जिसे हमें कुलिन्द या कुणिन्दों से सम्बन्धित मान सकते हैं। महाभारत में भी इन्हें पर्वतवासी माना है। इसी तरह वाग्भट्ट के ग्रन्थ काव्यानुशासन में भी कुलिन्द नामक पर्वत का संदर्भ है जिसे कुणिन्दों के क्षेत्र में होने के कारण नाम दिया गया हो। कुणिन्दों के पर्वतीय क्षेत्र के होने का प्रमाण इनके सिक्कों की प्राप्ति के स्थानों से भी मिलता है। कनिंघन के अनुसार कुणिन्द सतलुजके पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे परन्तु एलन महोदय का कहना है कि कुणिन्द शिवालिक पर्वतों में यमुना तथा सतलुज के बीच ब्यास एवं सतलुज के उपरी भाग में रहते थे। इनके सिक्के गणवाल, हिमाचल में ज्वालामुखी, स्तपामेवा क्षेत्र, पंजाब में रोपड़, सुनेत संघोल, हरियाणा में करनाल, सुघ (यमुना नगर) इत्यादि क्षेत्र में मिलते हैं। रोपड़ के उत्खनन में इनके सिक्के उन स्तलों से प्राप्त हुए हैं जिनकी तिथि 100 ई. पूर्व से 100 ई. के मध्य है। सिक्कों पर मिले लेखों से भी हमें इसी प्रकार के प्रमाण मिलते हैं।

**सिक्के** :- प्राचीन गणराज्यों में कुणिन्द गणराज्य ही अकेला ऐसा राज्य है जिन्होंने काफी मात्रा में चान्दी के सिक्के चलाए। यह उनकी समृद्ध आर्थिक स्थिति का द्योतक है। इनका क्षेत्र पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों के बीच का था जिससे इन्हे व्यापार में काफी लाभ



रहता होगा। मैदानों के अनाज को वे पहाड़ी क्षेत्रों में भेजते थे तथा पहाड़ों की वस्तु मैदानों में विनिमय करते थे। इसी कारण उन्हें ताम्बे के सिक्कों (जो स्थानीय व्यापार के लिए प्रयुक्त होते थे) के अतिरिक्त दूरदराज के क्षेत्रों में व्यापार के लिए चांदी के सिक्का की जरूरत पड़ी ये सिक्के अर्द्ध डैकम (Drachm) भार के थे तथा रेशम व्यापार प्रमुख केंद्र तक्षशिला (Taxila) से भी प्राप्त हुए हैं। इनके सिक्के दो भागों में बांटे गए हैं प्रथम चांदी तथा ताम्बे के हैं जिन पर अग्रभाग पर लक्ष्मी, हिरण तथा अन्य चिन्हों के साथ ब्राह्मी लेख राज कुणिन्दस अमोघभूतिस महाराज लिखा है जबकि पृष्ठ भाग पर चिन्ह तथा खोष्ठी (Khrostri) लेख जो कि अग्र भाग के लेख के समान है। खोष्ठी का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि उत्तरपश्चिमी भारत में, जहां इसका प्रयोग होता था, कुणिन्दों के सिक्के व्यापार में चलते थे। दूसरे प्रकार के सिक्के ताम्बे के हैं जिन पर अग्रभाग पर इनके ईष्ट देव शिव (क्षेत्रेश्वर) का दिखाया गया है तथा लेख ब्राह्मी में है जो भागवत् क्षेत्रेश्वर महात्मनः है। पृष्ठ भाग पर केवल कुछ चिन्ह है। ये सिक्के उन्होंने उस समय चलाए जब वे अपना राज्य अपने देव को समर्पित कर शासन कर रहे थे। इसी तरह के प्रमाण अन्य गणराज्यों में भी इस काल में मिलते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि एक प्रकार में तो कुणिन्द नाम मिलता है तथा दूसरे में नहीं।

**शासन प्रणाली :-** प्राचीन काल के गणराज्यों के समान कुणिन्दों का शासन भी गणतन्त्रात्मक ही था। जिसमें सैकड़ों ही कुल थे। महाभारत में कुणिन्दों को कुणिन्दशत सन्कुलम कहा गया है। इस से इस बात का अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इन सैकड़ों कुल मिल कर एक संघ बनाया था। इस प्रकार के संविधान में इन कुलों के प्रतिनिधियों की एक सभा होती थी जो अपना एक मुखिया चुनती थी। जिसे राजा कहा जाता था कुणिन्दों के एक ऐसे राजा अमोघभूति के सिक्के हमें प्राप्त होते हैं जिन पर राजान कुणिन्दस अमोघभूतिस महाराज लिखा है जिसका अर्थ है कि यह सिक्का महाराज अमोघभूति का है जो कुणिन्दों का राजा है। परन्तु परमेश्वरी लाल गुप्त राजा तथा महाराजा इक्के लिखने को गलत मानते हैं उनके अनुसार राजानः शायद राजन्य गण का द्योतक है जिनके साथ इनका संघ बना हुआ था परन्तु इसके कोई प्रमाण हमें नहीं मिलते। दूसरे राजन तथा महाराजन शायद यवनों के प्रभाव के कारण हो सकता है जिनमें सिक्कों पर बैसिलियस बैसिलियोन या महरजस रजतिरजस इक्का लिखा मिलता है। तो इस तरह हम दखत हैं कि प्रथम शताब्दी ई. पूर्व में जब इनका स्वतन्त्र शासन हुआ उस समय इन्होंने इस तरह के चुने हुए राजतन्त्र प्रणाली का अपनाया। दूसरी ओर बहुत से विद्यवान अमोघभूति को एक विरुद्ध (title) मानते हैं तथा उनका कहना है कि ये किसी अमोघभूति नामक राजा ने नहीं चलाए बल्कि एक लम्बे समय तक केवल विरुद्ध के नाम से ही चलाए गए। दूसरे प्रकार के सिक्के (क्षेत्रेश्वर प्रकार) कुणिन्द ने प्रथम शताब्दी में चलाए उस समय भारत पर शकों तथा कुषाणों का शासन था तथा बहुत से गणराज्य इनका मुकाबला न कर सके या तो इन्होंने इन विदेशी ताकतों की आधीनता स्वीकार कर ली या अपना क्षेत्र छोड़ पहाड़ों में सुरक्षित स्थानों पर चल गए। यौधेय अपना क्षेत्र छोड़ कुणिन्दों के समीपवर्ती क्षेत्र में जा बसे। इस काल के गणराज्यों की विशेष बात यह है कि इस काल में इन्होंने अपने राज्य अपने ईष्ट देवता को अर्पित कर दिए थे तथा उनकी ही नाम पर शासन कर रहे थे। यौधेय कुणिन्दः अमोघभूतिस महाराज राज्या के सिक्कों पर लेख इसी तरह की किसी व्यवस्था का उल्लेख है।

प्रो. अलतेकर का विचार है कि कुषाणों के विरुद्ध यौधेयों, कुणिन्दों, आर्जुनायना इत्यादि ने एक संघ बना लिया था परन्तु इन कुल हमें प्राप्त नहीं होते केवल यौधेय सिक्कों पर द्वि तथा त्रि से दूसरे तथा तीसरे संघ सदस्य कुणिन्द या आर्जुनायना का नाम मिल सकता है क्योंकि कोई भी राज्य संघ में अपना अस्तित्व नहीं खोना चाहता। यदि ऐसा होता तो इनका भी नाम होता केवल द्वि या त्रि ही नहीं। परन्तु समुद्रगुप्त के इलाहाबाद अभिलेख में जिन गणराज्य का वर्णन है उनमें कुणिन्दों का नाम नहीं है। इससे पता चलता है कि प्रथम शताब्दी तथा चतुर्थ शताब्दी के बीच कुणिन्दों ने अपना राजनैतिक अस्तित्व खो दिया। शायद यौधेय ने इन्हें जीत अपना क्षेत्र में मिला लिया।

### (c) औदुम्बर

औदुम्बर भी उत्तरपश्चिम भारत का एक महत्वपूर्ण गणराज्य था जिन्हे औदुम्बर या उदुम्बर भी कहा जाता है। इनके सिक्के प्रायः पठानकोट कांगड़ा इत्यादि क्षेत्रों में प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर एलन ने इनका क्षेत्र ब्यास नदी की घाटी तथा शायद शतद्रव्य तथा रावी इत्यादि के बीच माना है।

**प्राचीनता :-** औदुम्बरों के सर्वप्रथम संदर्भ हमें पाणिनी के गणपाठ में पांचवीं सदी ई. पूर्व के हैं जहां इन्हें राजन्य के समूह में वर्णित किया गया है। इसके अतिरिक्त पतंजलि के महाभाष्य, महाभारत, हरीवंश, वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, यार्कंड्य पुराण, ब्राह्मण्डि, वृहत्संहिता इत्यादि में भी इनका वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रगोघिन की चन्द्रव्याकरण, काशिका परमेश्वरी, अमोघभूतिस वैजयन्ती तथा गुणरत्नमहोदोधि इत्यादि में भी इनके वर्णन मिलते हैं। प्लिनी ने इनका नाम आदोम्बियारेस (अदोम्बियनम) लिखा

है। जबकि विनय पिटक तथा महाम्यूरी में औदुम्बर गण या लोगों का तो संदर्भ नहीं अपितु एक स्थान उदुम्बर का वर्णन है। शायद यह नाम इस कबीले के कारण ही पड़ा हो। उपरलिखित साक्ष्यों से हमें इस गणराज्य के होने के प्रमाण 5वीं सदी ई. पूर्व से तो अश्वय मिलने शुरू होते हैं तथा 5वीं सदी के ग्रन्थ चन्द्रव्याकरण में मिलते हैं। इस प्रकार इनका एक हजार वर्ष का इतिहास हमें ज्ञात है। डा. कल्याण कुमार दास गुप्ता तो इन्हे आठवीं सदी ई. पूर्व के शतपथ ब्राह्मण में वर्णित शाल्वों की एक शाखा मानते हैं।

नाम :- औदुम्बर या उदुम्बर नाम प्राकृत में इनके सिक्कों पर आदुबरिस मिलता है। औयुम्बर का अर्थ है अंजीर (fig)। इसका अर्थ हुआ या तो इनका अंजीर के पेड़ से किसी प्रकार का सम्बन्ध है या ये उस क्षेत्र के रहने वाले हैं जहां अंजीर का पेड़ होता है। इनका यह सम्बन्ध मुद्राशास्त्र के साक्ष्यों से भी प्रमाणित होता है क्योंकि इनके सिक्कों पर पेड़ (Tree-in-railling) का चित्रण है जिसे कुछ विद्यवान अंजीर का ही पेड़ मानते हैं। दूसरे इनके सिक्के कांगड़ा में नूरपुर के आसपास प्राप्त हुए हैं जहां अंजीर के पेड़ पाए जाते हैं। इसी प्रकार औदुम्बरों का ईष्ट देवता विश्वामित्र था जिनका चित्रण इनके सिक्कों पर मिलता है। विश्वामित्र का भी अंजीर के पेड़ से सम्बन्ध था क्योंकि कालिका पुराण तथा महाभारत के अनुसार विश्वसमित्र की माता ने सन्तान प्राप्ति के लिए औयुम्बर वृक्ष का आलिंगन किया था तब जाकर विश्वामित्र का जन्म हुआ। हरिवंश में औदुम्बरों को विश्वामित्र के परिवार से सम्बन्धित बताया है। पुराणों के अनुसार औदुम्बरों का गोत्र कुशिक या कौशिक है। ऋग्वेद में भी विश्वामित्र को कुशिक का पुत्र बताया गया है। यद्यपि औदुम्बरों के संदर्भ हमें पांचवी सदी ईसा पूर्व से तो अवश्य मिलने शुरू हो जाते हैं परन्तु इनके स्वतन्त्र राज्य का पता हमें इन द्वारा चलाए गए सिक्कों से चलता है। इनके प्राचीनतम सिक्के हिन्द युनानी शासको विशेषकर अपोलोडोरस से मिलते जुलते हैं। प्रकार तथा इन पर लेख के अक्षरों की बनावट के आधार पर हम इन्हे द्वितीय सदी ई. पूर्व रखते हैं। ये सिक्के जो कि लम्बे के चकोर हैं। इन पर अग्रीभाग पर पेड़, हाथी का अगला भाग मिलता है तथा खरोष्ठी में लेख के आधार पर ये शिवदास, रुद्रदास, धरघोष तथा महादेव नामक राजाओं के हैं। इनके पृष्ठ भाग पर दो मंजिला डोम (dome) वाला मन्दिर, जिसके सामने त्रिशुल गड़ा है मिलता है तथा ब्राह्मी के लेख में राजा का नाम मिलता है जैसे शिवदास रुद्रदास धरघोष तथा महादेव इत्यादि। इनके दूसरे प्रकार के सिक्के प्रथम शताब्दी ई. पूर्व से प्रथम शताब्दी के आसपास के हैं जिनके अग्रभाग पर विश्वामित्र खड़ा दिखाया गया है खोष्ठी लेख के साथ विश्वामित्र लिखा है। इन सिक्कों पर दो राजाओं का नाम है धरघोष तथा महादेव। पृष्ठ भाग पर त्रिशुल वाला परशु, वृक्ष तथा ब्राह्मी में लेख है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्यवानों ने कनिन्धम के विवरण के आधार पर ताम्बे के गोल सिक्कों, जिन पर मित्र अन्त वाले राजाओं के नाम हैं, को भी औदुम्बर सिक्के मान लिया था। परन्तु इन सिक्कों पर तो न तो औदुम्बर नाम है तथा न ही औदुम्बर सिक्कों वाले चिन्ह हैं। इसके अतिरिक्त ये अलग क्षेत्र में मिलते हैं। इस कारण विद्यवान इन्हे औदुम्बरों से नहीं बल्कि पंजाब के मित्र वंश से सम्बन्धित मानते हैं। राजनैतिक इतिहास :- औदुम्बरों के राजनैतिक इतिहास के बहुत कम विवरण मिलते हैं। प्रजिलुस्की (Prazyluski) के अनुसार औदुम्बरों को आर्य आक्रमण का समना करना पड़ा तथा इस कारण इनके कई भाग हो गए। इसका प्रमाण हमें महाभारत (जहां इन्हे पंजाव का एक कबीला बताया गया है) महाम्यूरी, मार्कंडेय पुराण तथा बृहत्संहिता (जहां इनकी दक्षिण औदुम्बर शाखा का वर्णन है) इत्यादि से मिलता है परन्तु पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व में पाणिनी के प्रमाणों से हमें इनका वास्तविक इतिहास पता चलता है। लेकिन राजनैतिक रूप से इनकी स्वतन्त्रता द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से मानी जा सकती है जब इन्होंने स्वतन्त्रता घोषित कर अपने सिक्के चलाए। प्रथम सदी ई. पूर्व में भी इनकी स्वतन्त्रता का पता चलता है परन्तु तारन (Tarn) महोदय का विचार है कि ये हिन्द युनानियों के आधीन भी रहे। परन्तु हमें इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिलते।

शासन पद्धति :- इनकी शासन पद्धति के बारे में भी ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। जयसवाल का विचार है कि इस राज्य का संविधान गणतन्त्रात्मक था तथा उनका चुना हुआ राजा हुआ करता था। इनके सिक्कों पर कई राजाओं के नाम हैं। महादेवस राज शिवदासस औदुम्बरिस का अर्थ कुछ विद्यवान राजा शिवदास, जो कि औदुम्बर था तथा शिव का भक्त था मानते हैं। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार ये सिक्के महादेव शिव, उनके राजा शिवदास (या कोई अन्य) तथा औदुम्बर कबीले के हैं। उनके अनुसार औदुम्बरों ने भी इस काल में अपने पड़ोसियों की तरह ही धर्म पर आधारित (Theocratic) शासन प्रणाली अपनाई हुई थी। इसी तरह इनके दूसरी प्रकार के सिक्कों पर इनके ईष्ट देवता विश्वामित्र का चित्रण है। जो यह दर्शाता है कि ये अपने ईष्ट देवता के नाम पर राज्य का संचालन कर रहे थे।